सच्चे सुख का मार्ग

मूल्य अध्ययन, मनन, सत्यान्वेषण व आचरण

पुस्तक मिलने का स्थान —

प्रेम रेडियो एन्ड इलेक्ट्रिक मार्ट

महालक्ष्मी मार्केट, भागीरथ पैलेस,
चांदनी चौक,
दिल्ली—११०००६

"अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व का
वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर,
सब प्रकार की हिंसा व राग-द्वेष को,
मन, वचन व कर्म से त्याग कर,
ममता को छोड़कर,
समता की ओर बढ़ना ही
सच्चे सुख का मार्ग है।"

प्रकाशक :

सरला देवी प्रेमचन्द जैन धर्मार्थ ट्रस्ट
८-सी/१ राजपुर रोड,
दिल्ली—५४

मुद्रक :- ए॰आर॰ प्रिंटिंग प्रेस, डी-१०२, नई सीलमपुर, दिल्ली-५३

दो शब्द

संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं। ये प्राणी चाहे जो भी कार्य करें, परन्तु इनका अन्तिम लक्ष्य सुख प्राप्त करना ही होता है। ये प्राणी अपने प्रयत्नो के परिणामों को भ्रमवश, भले ही, सुख मान लें, किन्तु तथ्य तो यह है कि अथक प्रयत्न करने के पश्चात् भी, सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने में वे नितान्त असफल ही रहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि जो प्राणी यही नहीं जानते कि "सच्चा व स्थायी सुख क्या है ?" वे उसे प्राप्त भी कैसे कर सकते हैं ? सच्चे व स्थायी सुख की सही पहचान न होने के कारण, उनके प्रयत्न भी सही दिशा में नहीं होते। ऐसी परिस्थिति में सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करना दुराशा मात्र ही तो कहा जायेगा।

"सच्चा व स्थायी सुख क्या है और वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?" इस विषय पर ही कुछ संकेत देने का प्रयत्न प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। वैसे तो यह विषय ही ऐसा है जिस पर पिछले सहस्त्रों वर्षों में बड़े-बड़े महापुरुषों और उच्चकोटि के दार्शनिकों व विद्वानों ने गहन चिन्तन व मनन करके बड़े-बड़े उच्चकोटि के ग्रंथो की रचना की है। फिर भी मेरा विश्वास है कि जिज्ञासु पाठकों को इस विषय पर चिन्तन व मनन करने के लिये इस पुस्तक से भी कुछ सामग्री अवश्य ही मिल जायेगी।

अपने लक्ष्य का सही ज्ञान हो और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग की सही जानकारी हो, तो सही प्रयत्न करने पर अपना लक्ष्य अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है और यही जीवन की सच्ची सफलता है।

लेखक

सच्चे सुख की अनुभूति !

एक समय की बात है कि एक बड़े राज्य के राजा को संसार से वैराग्य हो गया। उस राजा ने एक आचार्य के पास जाकर साधु की दीक्षा ले ली और उन्ही के आश्रम में ही रहने लगा। उठते-बैठते वह हर समय "अहो ! सुखम्, अहो ! सुखम्" बोला करता। आश्रम में रहने वाले अन्य साधुओं को संदेह हुआ कि इस राजा को अपने राज्यकाल में भोगे हुए सुखों की याद आती होगी। उन साधुओ ने अपने मन का सदेह अपने आचार्य से प्रकट किया। आचार्य ने उस राजा को बुलाया और उससे पूछा, "वत्स! तुम हर समय, अहो ! सुखम्, अहो ! सुखम्, क्यो बोला करते हो ? क्या तुम्हे अपने राज्यकाल में भोगे हुए सुख याद आते है ?" राजा ने उत्तर दिया, "आचार्यश्री ! साधु-जीवन मे मुझे सच्चे सुख की अनुभूति होती रहती है, इसीलिये मेरे मुख से ये शब्द निकलते रहते हैं।" आचार्य ने फिर पूछा, "अहो वत्स ! जब तुम राजा थे तब तुम्हे कौन-सा सुख उपलब्ध नही था ? उससे भी बड़ा ऐसा कौन-सा सुख है जिसकी तुम्हे साधु जीवन में अनुभूति होतो रहती है ?" राजा ने कहा "पूज्यवर ! उस समय राजा होते हुए भी मैं सुखी नही अपितु बहुत दुःखी था। अपने पड़ौसी राजाओं से मुझे हर समय आक्रमण का भय लगा रहता था। अपने राज्य के अन्दर भी षड्यन्त्र होते रहने के कारण मुझे चैन नही मिलता था। जब मैं भोजन करने बैठता था तो मुझे सदेह होता था कि भोजन में किसी ने विष तो नहीं मिला दिया। रात को बन्द महलों में सोता था; मेरे शयनकक्ष के बाहर नंगी तलवारे लिये सैनिक पहरा देते थे, फिर भी मै सुख से सो नहीं पाता था। और तो क्या, मेरा अपना पुत्र भी मेरी मृत्यु की कामना किया करता था। आचार्यश्री ! जिस जीवन मे न दिन मे चैन था न रात को आराम, जिस जीवन में न सुख से भोजन कर पाता था, न रात को बेखटके सो पाता था, क्या वह जीवन सुखी था ? अब मैं भिक्षा-जीवी होकर भोजन करता हू। अनजाने व्यक्ति से अनजाना भोजन सेवन करते हुए भी मुझे कोई भय नही होता। किसी भी अरक्षित तथा खुले स्थान पर मैं रात को सो जाता हू। मुझे अब किसी का कोई भय नहीं रहा। मुझे अब किसी प्रकार की आकुलता भी नही है। अतः मुझे अब सच्चे सुख की अनुभूति होती रहती है। अस्तु इसी कारण मेरे मुख से सहज भाव से ही, अहो ! सुखम्, अहो सुखम्, निकलता रहता है।"

कहां क्या पढ़ें ?



नोट— पर्याप्त सावधानी रखने पर भी छपाई के समय कुछ अक्षरों की मात्रायें टूट गयी हैं, जिनके लिये प्रकाशक क्षमा चाहते हैं। आशा है कि विद्वान पाठक उन अक्षरो को सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगे।

पृष्ठ २४८ पर एक रूल डाला गया है, उस रूल को अगली पांच पंक्तियों के बाद समझें।



मेरी भावना

(लेखक—स्वर्गीय श्री जुगल किशोर जी मुख्तार 'युगवीर')

(सच्चे देव का लक्षण और उनकी भक्ति में लीन रहने की भावना)

जिनने राग-द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उनको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उन्हीं में लीन रहो ॥ १ ॥

(सच्चे साधु का लक्षण और उनका सत्संग करने तथा उनके पद-चिन्हों पर चलते रहने की भावना)

विषयो की आशा नही जिनके, साम्य-भाव-धन रखते हैं,
निज-पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥ २ ॥
रहे सदा सत्संग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे,
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।

(पांचो पापों तथा अन्य दुष्प्रवृत्तियों के त्यागने और परोपकार करते रहने की भावना)

नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं,
परधन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥ ३ ॥
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ॥ ४ ॥

(समस्त जीवों से मित्रता रखने की, दुःखी जीवों पर दया करने की और दुर्जन व क्रूर जीवों के प्रति साम्यभाव रखने की भावना)

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे।
दुर्जन, क्रूर, कुमार्ग-रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खू मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥ ५ ॥

(गुणी जनों को सेवा करने और उनके गुणों को ग्रहण करने को भावना)

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥ ६ ॥

(न्याय-मार्ग पर दृढ़ रहने की भावना)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
अनेकों वर्षों तक जीऊ, या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावें ॥ ७ ॥

(समता भाव रखने तथा निडर व सहनशील बनने की भावना)

होकर सुख में मगन न फूलें, दुःख में कभी न घबरावें,
पर्वत, नदी, श्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावें।
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥ ८ ॥

(समस्त जीवों के सुखी व धर्मनिष्ठ होने तथा मनुष्य जन्म सफल करने की भावना)

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
बैर, पाप, अभिमान छोड़कर, नित्य नये मंगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान चरित्र उन्नति कर अपना, मनुज-जन्म-फल सब पावें ॥ ९ ॥

(जगत में कभी रोग व दुर्भिक्ष न फैलें तथा राजा न्याय-प्रिय होवे और समस्त प्रजा सुखी होवे तथा अहिंसक जीवन जीये, ऐसी भावनाएं करना)

ईति-भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग-मरी, दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे ॥ १० ॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय, कटुक, कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करें ॥ ११ ॥

सुख की चाह

यह विश्व अनन्त प्राणियो से भरा हुआ है। यहा पर हाथी और व्हेल मछली जैसे विशाल—काय प्राणी भी है और सूक्ष्म कीट पतग भी जिनकी गिनती करना भी असम्भव है। इन प्राणियो के अतिरिक्त बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीटाणु व जीवाणु भी सारे विश्व मे भरे हुए है। (इसीलिये प्राणियो की सख्या अनन्त—जिसका कोई अन्त न हो—बतलायी गई है।) इन सभी प्राणियो मे जीने की इच्छा या और अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहे तो सुख पूर्वक जीने की प्रबल इच्छा होती है। मनुष्य के अतिरिक्त जितने भी पशु पक्षी कीट पतग आदि है वे केवल वतमान मे ही जीते है और इस वतमान को ही सुख पूर्वक जीना चाहते है। उनको अपने भविष्य की विशेष चिन्ता नही होती। हा उनमे से अनेक प्राणी अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार भविष्य मे अपने प्रयोग मे लाने के लिए खाद्य पदार्थों व जल का सग्रह भी करते है और अपने रहने के लिये बिल व घोसले आदि भी बनाते है। वे अपने बच्चो को प्यार करते है उनकी रक्षा करते है और उनका पालन पोषण भी है। परन्तु ये प्राणी ऐसे सभी क्रिया कलाप अपने जातिगत स्वभाव के कारण ही करते है। ज्ञान व विवेक तथा दूरदर्शिता का इसमे कोई विशेष योग नही होता। सिखलाने से कुछ पशु पक्षी बहुत ही आश्चर्यजनक काय कर लेते है जैसे सरकस के पशु पक्षी आदि। परन्तु यह भी उनकी प्रकृति प्रदत्त शक्तियो का उपयोग करने से ही सम्भव हो पाता है।

परन्तु मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसमे ज्ञान तथा विवेक है। मनुष्य भी सुख पूवक जीना चाहता है। परन्तु पशु पक्षियो के समान उसकी दष्टि केवल वतमान तक ही सीमित नही रहती। वतमान मे सुखपूवक जीने के साथ साथ उसकी दृष्टि भविष्य की ओर भी रहती है और वह चाहता है कि वह भविष्य मे भी सुख पूर्वक जिये। इसलिए वह अपने को वतमान मे मिलने वाले सुख व दुख के कारणो की छानबीन करता है और इस छानबीन से प्राप्त ज्ञान का उपयोग वह भविष्य मे सुख पूर्वक जीने के लिए करता है। इसी छान बीन अध्ययन व मनन के फलस्वरूप उसको इहलोक से परे परलोक का ज्ञान प्राप्त हुआ। यह सम्भव नहीं है कि इस

प्रकार की छानबीन, अध्ययन व मनन के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति सही निर्णय पर ही पहुंचे और सभी व्यक्तियों के निष्कर्ष एक जैसे ही हो। क्योंकि यह भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की उनकी अपनी-अपनी योग्यता, अनुभव और तत्कालीन परिस्थितियो पर निर्भर करता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार अध्ययन, चिन्तन व मनन करने के फलस्वरूप, भिन्न-भिन्न निष्कर्षों पर पहुचने के कारण ही ससार में इतने मत-मतान्तर, धर्म व सम्प्रदाय प्रचलित हुए।

●

दानी व्यक्ति छोटा होने पर भी सेवा के योग्य होता है और कृपण व्यक्ति समृद्धि के कारण धनवान होने पर भी सेवनीय नही होता। स्वादिष्ट जल से परिपूर्ण कुआ ही प्यासे प्राणियो के आनन्द का कारण होता है, समुद्र नही।

पचतन्त्र

●

सूर्य समुद्र का जल सोखता है और फिर उस जल से पृथ्वी को तर कर देता है जिससे असख्य प्राणियो को जीवन मिलता है। इसी प्रकार सज्जन पुरुष भी बिना स्वार्थ के दूसरो की भलाई करते रहते है।

●

वृक्ष सर्दी, गर्मी व वर्षा सहते है, परन्तु अपनी शरण मे आने वालो को सदैव शीतल छाया प्रदान करते है। इसी प्रकार सज्जन पुरुष स्वय कष्ट सहकर भी दूसरों की भलाई करते है।

●

हे चन्दन तुम्हारी रीति को अपनाने मे कौन मनुष्य कुशल है? तुम तो पीसे जाते हुए भी पीसने वाले को अपनी सुगन्ध से सुरभित कर देते हो।

●

सुख-प्राप्ति के लिए प्रस्तुत विभिन्न विचार धाराएं

इस ससार मे भिन्न-भिन्न कालो मे भिन्न-भिन्न देशो मे बहुत से विचारक हुए हैं। उन्होने अपने-अपने देश की तत्कालीन परिस्थितियो और अपने अपने चिन्तन-मनन ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर मनुष्यो को सुख प्राप्त करने और उनको अपने-अपने समाज का उपयोगी अग बनने के लिए भिन्न-भिन्न विचार धाराए प्रस्तुत की। इन विचार धाराओ के कुछ नियम व सिद्धान्त सार्वदेशिक व सार्वकालिक भी हो सकते है तथा आज की परिस्थितियो मे भी वे उपयोगी प्रमाणित हो सकते है। किन्तु उन सभी पर गम्भीरतापूर्वक विचार किये बिना अन्ध विश्वासी बनकर उन नियमो को मान लेना और उनका पालन करते रहना ठीक नही है। क्योकि हो सकता है कि जो विचार व नियम किसी परिस्थिति विशेष मे उपयोगी रहे हो वे आज अपनी उपयोगिता खो चुके हो। इसलिए हमे उन नियमो को बहुत सोच समझ कर मानना व पालना चाहिये।

ऊपर हमने जिन विचार धाराओ का उल्लेख किया है उन्हे हम मोटे रूप मे चार श्रेणियो मे रख सकते है।

(१) पहली विचारधारा

कुछ ऐसे विचारक (यदि वे विचारक कहे जाने योग्य हो) हुए है जिनकी दृष्टि अपने वर्तमान जीवन और इस जीवन मे अधिक-से-अधिक शारीरिक सुख प्राप्त करने तक ही सीमित रही। वे किसी अन्य जीवन तथा उस जीवन मे प्राप्त होने वाले सुख-दुख की कल्पना तक नही करते थे। अपने वर्तमान जीवन को अधिक-से-अधिक शारीरिक सुख प्राप्त करते हुए जीना ही उनका मुख्य ध्येय था। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए अथवा यह कह लें कि अपने वर्तमान जीवन मे अधिक-से-अधिक शारीरिक सुख प्राप्त करने के लिए वे कोई भी उचित तथा अनुचित साधन का प्रयोग करने से भी नही हिचकिचाते थे। अपने लिए शारीरिक सुख प्राप्त करने के प्रयत्नो के फलस्वरूप दूसरे प्राणियो को कितना कष्ट हो रहा है, वे इस ओर से बिल्कुल बेपरवाह रहते थे। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक प्राणी

का अस्तित्व केवल वर्तमान जीवन तक ही सीमित है। न तो इस वर्तमान जीवन से पहले किसी भी प्राणी का किसी भी रूप मे कोई अस्तित्व था और न वर्तमान जीवन मे मृत्यु हो जाने के पश्चात् किसी भी प्राणी का किसी भी रूप मे कोई अस्तित्व रहेगा। फिर ऐसे किसी परलोक की चिन्ता ही क्यो की जाये जिसको किसी ने कभी देखा तक भी नही है, और जिसका अस्तित्व ही संदिग्ध है।

(२) दूसरी विचारधारा

इन विचारको मे भिन्न कुछ ऐसे विचारक भी हुए है जिनकी यह मान्यता थी कि एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने इस विश्व का निर्माण किया है और उसी परमेश्वर ने प्रत्येक प्राणी को पहली बार ही इस विश्व मे उत्पन्न किया है। ये प्राणी यहा पर जैसे भी अच्छे या बुरे कार्य करेगे, उन्ही कार्यो के अनुसार ही वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर इन प्राणियो को अच्छा या बुरा फल देगा। यदि हम इस जीवन मे, इन विचारको की मान्यता के अनुसार, अच्छे कार्य करेगे, तो हमारी मृत्यु के पश्चात् वह परमेश्वर हमे ऐसे स्थान (जन्नत) मे भेज देगा, जहा हमको शारीरिक सुख ही सुख मिलता रहेगा। इसके विपरीत यदि हम इस जीवन में, इन विचारको की मान्यता के अनुसार, बुरे कार्य करेगे तो वह परमेश्वर हमे ऐसे स्थान (दोजख) मे भेज देगा, जहा हम सदा-सदा के लिए दुःख की आग में जलते रहेगे। ये विचारक वर्तमान जीवन के अतिरिक्त केवल एक और जीवन (जन्नत या दोजख) को ही मानते थे। परन्तु उस दूसरे जीवन (दोजख) मे किसी भी प्राणी के वश मे ऐसी कोई बात नही होती कि वह अपने बुरे कर्मो के लिए प्रायश्चित करके फिर से सुख पाने का अधिकारी हो सके। अतः इन विचारको ने दूसरे जीवन मे शारीरिक सुख प्राप्त करने के लिए इस जीवन में, अपनी मान्यता के अनुसार दान, दया, परोपकार करने तथा विशेष विधिपूर्वक उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की पूजा व भक्ति करने पर बल दिया। उन्होने यह भी कहा कि अगर वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर किसी प्राणी पर प्रसन्न हो जाये तो वह परमेश्वर उस प्राणी के पापो को क्षमा भी कर देता है।

उन्होने यह भी कहा कि इस विश्व में उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की इच्छा के बगैर एक पत्ता भी नही हिल सकता।

(३) तीसरी विचारधारा

कुछ विचारक ऐसे भी हुए है जो आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म को मान्यता देते थे। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक प्राणी के आत्मा होती

है और प्रत्येक प्राणी का पुनर्जन्म होता रहता है। वे कहते थे किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिल रहा है, वह भूतकाल मे उसके अपने ही द्वारा किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिल रहा है। ये कार्य उसके इस जन्म के किये हुए भी हो सकते है और पिछले जन्मो के किये हुए भी। इसी प्रकार कोई भी प्राणी इस समय जो अच्छे व बुरे कार्य कर रहा है, उनका फल उसको भविष्य मे मिलेगा। इसको वह फल तुरन्त भी मिल सकता है तथा कुछ समय के बाद इसी जन्म मे भी मिल सकता है और अगले जन्मो मे भी मिल सकता है।

वे विचारक यह मानते थे कि जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी को इस जीवन मे शारीरिक सुख अच्छा लगता है, उसी प्रकार अगले जन्मो मे भी प्रत्येक प्राणी को शारीरिक सुख अच्छा लगेगा। वे विचारक वर्तमान जीवन मे मिलने वाले शारीरिक सुख की अपेक्षा अगले जन्मो मे मिलने वाले शारीरिक सुख को अधिक महत्त्व देते थे। क्योकि उनका कहना था कि वर्तमान जीवन तो सीमित है, परन्तु भविष्य तो अनन्त (जिसका कभी अन्त न हो) है। अगले जन्मो मे शारीरिक सुख प्राप्त करने के लिये उन्होने मनुष्यो को अच्छे कार्य करने पर बल दिया तथा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने जप, तप, यज्ञ पूजा दान, दक्षिणा आदि धार्मिक अनुष्ठानो के विधि-विधान बनाये। इन विचारको का अन्तिम लक्ष्य अगले जन्मो मे अधिक से अधिक शारीरिक सुख व सुविधाये प्राप्त करना ही था।

उन विचारको की एक अन्य महत्त्वपूर्ण मान्यता यह थी कि जिस प्रकार किसी भी वस्तु का निर्माण करने के लिये एक निर्माता की और किसी भी कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये एक कुशल सचालक की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इस विश्व का निर्माण करने और इसका सुचारू रूप से सचालन करने के लिये कोई निर्माता और कुशल सचालक भी अवश्य होना चाहिये। इस आवश्यकता को दृष्टि मे रखकर इन विचारको ने एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कल्पना की, जिसको इस विश्व का कर्त्ता, हर्ता व पालनकर्त्ता बतलाया गया। उन विचारको की मान्यता थी कि उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने ही अपनी इच्छानुसार इस विश्व का निर्माण किया है, वही परमेश्वर इस विश्व का सचालन कर रहा है, और वही परमेश्वर, जब चाहेगा, इस विश्व का विनाश कर देगा। उनकी यह भी मान्यता थी कि वही परमेश्वर प्रत्येक प्राणी को उसके अच्छे व बुरे कार्यों का फल देता है, और इसीलिये वह प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मों के अनुसार सुख व दुःख देने के लिये विभिन्न योनियो और विभिन्न परिस्थितियों में

उत्पन्न करता रहता है। इसके अतिरिक्त उन विचारको ने उस सर्व-शक्तिमान परमेश्वर को सर्वव्यापक, निराकार, निर्विकार, कृत-कृत्य, आनन्द-स्वरूप, करुणासागर, सच्चा न्यायकर्ता आदि अनेक गुणो से सम्पन्न बतलाया। उन्होने यह भी कहा कि जो प्राणी उस परमेश्वर की पूजा व भक्ति करेंगे, वह परमेश्वर उन प्राणियो के अपराधो को क्षमा कर देगा तथा उनको सुख व सम्पत्ति प्रदान करेगा। इसके विपरीत जो प्राणी उस परमेश्वर के अस्तित्व को मानने से इन्कार करेंगे तथा उस परमेश्वर को निन्दा करेंगे, उनको वह परमेश्वर दण्ड देगा।

(४) चौथी विचारधारा

ऊपर लिखित विचारको से बिल्कुल अलग कुछ ऐसे विचारक भी हुए है जो आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म मे भी विश्वास करते थे और किसी भी प्राणी का वर्तमान मे मिलने वाले सुख व दुख का कारण उसी प्राणी के द्वारा पूर्व मे किये गये अच्छे व बुरे कर्मों को भी मानते थे। परन्तु उन विचारको की दृष्टि इहलोक व परलोक मे प्राप्त होने वाले शारीरिक सुख से भी परे किसी अनुपम, अतीन्द्रिय, सच्चे व स्थायी सुख की ओर गयी। उनकी मान्यता थी कि यह प्राणी सदैव के लिये ही नये-नये शरीर धारण करते रहने (जन्म मरण करने) तथा शारीरिक सुख व दुख भोगते रहने के चक्कर मे फसा नही रह सकता। यदि वह अपने समस्त कर्मों को नष्ट करके अपनी आत्मा को अत्यन्त निर्मल व पवित्र करले तो फिर वह नये-नये शरीर धारण करने (जन्म मरण करने) और शारीरिक सुख व दुख भोगने के चक्कर से छूटकर ऐसी गति प्राप्त कर सकता है, जहा पर न तो उसके साथ किसी प्रकार का भी भौतिक शरीर ही रहेगा और न उसको किसी भी प्रकार का शारीरिक सुख व दुख ही प्राप्त होगा। अपितु सदैव के लिये उसे एक अपूर्व, अनुपम, अतीन्द्रिय, सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त होता रहेगा। इस गति को मोक्ष कहा गया और उन विचारको ने इस मोक्ष (मुक्ति, निर्वाण) की प्राप्ति को ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य माना।

उन विचारको ने कहा कि जो भी कर्म हम करते हैं, वे अच्छे हो या बुरे, उनका फल हमे अवश्य ही मिलेगा। (तप व ध्यान आदि के द्वारा कुछ कर्मों को, उनका फल भोगे बिना भी, नष्ट किया जा सकता है)। जब तक हमको अपने द्वारा किये हुये समस्त कर्मों का अच्छा व बुरा फल नही मिल जाता, तब तक हम नये-नये शरीर धारण करते रहने (जन्म मरण करने) और शारीरिक सुख व दुख भोगते रहने के चक्कर से नहीं छूट

सकते। इसलिये यदि हमको मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करना है तो हमे बुरे कर्मों के साथ-साथ अच्छे कर्मों को भी छोडना होगा। इसी प्रकार की साधना करते रहने से ही एक समय ऐसा आयेगा जब हमारे सब प्रकार के कर्म नष्ट हो जायेंगे, और तभी हम मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे। एकबार मोक्ष प्राप्त कर लेने पर हम सदैव-सदैव के लिये मोक्ष मे ही रहेगे। फिर हमको नये-नये शरीर धारण करने (जन्म मरण करने) तथा सुख दु ख भोगने के चक्कर में पडना नही पड़ेगा।

उन विचारकों ने दूसरी व तीसरी श्रेणी के विचारको की मान्यता के विरुद्ध किसी भी तथाकथित सर्वशक्तिमान तथा इस विश्व के कर्त्ता, हर्त्ता व पालन कर्त्ता परमेश्वर का अस्तित्व मानने से इकार कर दिया। उन्होंने कहा कि यह विश्व अनादिकाल से (सदैव से) ऐसे ही चलता आया है और अनन्त काल तक (सदैव तक) ऐसे ही चलता रहेगा। न तो किसी तथाकथित सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने किसी विशेष समय मे इस विश्व का निर्माण ही किया था और न वह परमेश्वर कभी इस विश्व का विनाश ही करेगा। हा प्राकृतिक कारणो, जैसे—भूकम्प, बाढ, भूस्खलन, जलवायु-परिवर्तन आदि से इस विश्व मे स्थानीय परिवर्तन होते रहते है।

उन विचारको ने यह भी बतलाया कि यह प्राणी स्वय ही अपनी अच्छी व बुरी भावनाओ का कर्त्ता है। इन्ही भावनाओ के अनुसार ही यह प्राणी अच्छे व बुरे कार्य करता रहता है और उन अच्छे व बुरे कर्मों का फल भी वह स्वय ही भोगता रहता है। अपने द्वारा किये हुये अच्छे व बुरे कर्मो का फल प्रत्येक प्राणी को स्वतः (automatically) ही मिलता रहता है। किसी भी प्राणी को उसके द्वारा किये हुए कर्मों का फल देने मे किसी भी तथाकथित सर्वशक्तिमान परमेश्वर का कोई हाथ नही होता।

उन विचारकों ने यह भी बतलाया कि प्रत्येक प्राणी स्वयं ही, अपने कर्मों को नष्ट करके अपनी आत्मा को परम पवित्र करके, मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त कर सकता है। किसी भी प्राणी को किसी भी महापुरुष अथवा तथाकथित परमेश्वर के आशीर्वाद अथवा वरदान के फलस्वरूप मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त नही हो सकता। यह मोक्ष (मुक्ति) तो प्रत्येक प्राणी को स्वय उसके अपने सत्-पुरुषार्थ से ही प्राप्त हो सकता है। एकबार मोक्ष प्राप्त कर लेने पर वह प्राणी किसी की न तो बुराई ही करता है, न भलाई ही। वह सब प्रकार के संकल्पो-विकल्पों से मुक्त होकर अनन्त काल तक (सदैव के लिये) सच्चे सुख और परमआनन्द की अवस्था मे ही रहता है। समस्त

कर्मों से मुक्त उस आत्मा को ही परमात्मा (परम-आत्मा) कहते है। इन मान्यताओं को दृष्टि मे रखकर उन विचारको ने प्रत्येक प्राणी को स्वयं ही अपने समस्त कर्मो को नष्ट करके अपनी आत्मा को परम पवित्र करने पर बल दिया।

इस प्रकार हमने इन चारो विचारधाराओ का सक्षेप मे वर्णन किया। अगले पृष्ठो मे हम इन चारो विचारधाराओ पर कुछ विस्तार से विचार करेगे और यह पता लगाने का प्रयत्न करेगे कि इनमें से कौन सी विचारधारा सत्य है, अथवा सत्य के अधिकतम निकट है।

सासारिक विषमताए

किसी भी निर्णय पर पहुंचने से पहले यह आवश्यक है कि हम अपने चारो ओर, एक वैज्ञानिक के समान खोजपूर्ण दृष्टि डाले और इस ससार की वास्तविकताओ को देखे।

जब हम अपने चारो ओर दृष्टि डालते है तो हम इस ससार मे बहुत सी विषमताए व विडम्बनाए पाते है।

हम छोटे-छोटे बालको को देखे तो हम पायेंगे कि उनमे से कुछ तो जन्म से ही अपग व रोगी होते है तो कुछ जन्म से ही हृष्ट-पुष्ट होते है। कुछ बालको की अत्यधिक सम्हाल रखने पर भी रोग उनका पीछा नही छोड़ते, जबकि कुछ बालक यथोचित पालन-पोषण के बिना ही स्वस्थ रहते है। कुछ बालको को जन्म से ही सर्व प्रकार की सुख-सुविधाए उपलब्ध होती हैं, जबकि कुछ बालक अभावों में ही पलते है। कुछ बालक जन्म से ही मेधावी, चतुर व चञ्चल होते हैं, जबकि कुछ बालक जन्म से ही सुस्त और मन्द-बुद्धि होते है।

कुछ बडे बालको को देखे, तो उनमे भी हमको ऐसी ही विषमताए मिलेगी। कुछ बालक शान्तिप्रिय व सतोषी स्वभाव के होते है, जबकि कुछ बालक शरारती व बदनीयत होते है। कुछ बालक मधुर-भाषी व अच्छे स्वभाव के होते है; जबकि कुछ बालक बोलने मे कटु और दुष्ट स्वभाव के होते है। कक्षा मे सभी बालको को एक साथ और एक जैसा ही पढ़ाया जाता है, परन्तु कुछ बालक परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करते है और कुछ अनुत्तीर्ण ही रह जाते है। कुछ बालक पर्याप्त परिश्रम करने पर भी बहुत कठिनाई से उत्तीर्ण हो पाते है, जबकि कुछ बालक विशेष परिश्रम किये बिना ही अच्छे अंक प्राप्त कर लेते है। कुछ बालक उनके माता पिता द्वारा अत्यधिक सावधानी रखे जाने पर भी कुसगति में पड जाते है; जबकि कुछ

बालक सावधानी बरते बिना ही सच्चरित्र बने रहते हैं। इन विषमताओं की हम कहां तक गिनती करें, यहां तक कि एक ही माता-पिता की विभिन्न सन्तानें भी विभिन्न स्वभाव और विभिन्न गुणों वाली होती हैं, उनके चरित्र, रूप-रग व रुचियो, आदि सभी बातो में पर्याप्त भिन्नता दिखलाई पडती है।

इसी प्रकार हम सब का प्रतिदिन का अनुभव है कि हम जो भी कार्य करते है, उनका फल सदैव ही हमारे प्रयत्नो के अनुसार नही मिलता। कभी-कभी हमको तनिक सा परिश्रम करने पर ही सफलता मिल जाती है, और कभी-कभी पर्याप्त प्रयत्न करने के बावजूद भी हम असफल ही रह जाते हैं। हम सब प्रतिदिन देखते है कि विभिन्न व्यक्तियो को एक समान परिश्रम और एक समान प्रयत्न करने पर भी एक समान फल नहीं मिलता। इस सम्बन्ध मे हम कुछ उदाहरण देते हैं :—

१ एक बाजार में दो व्यक्तियों की एक प्रकार की ही वस्तुओं की अलग-अलग दूकानें है। परन्तु एक व्यक्ति की दूकान पर तो ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है जबकि दूसरा व्यक्ति खाली ही बैठा रहता है।

२. इसी प्रकार दो डॉक्टरो के चिकित्सालय बराबर-बराबर एक ही स्थान पर होते है। दोनो डाक्टरो की योग्यता भी एक जैसी ही है। परन्तु एक डॉक्टर के पास तो रोगियो की भीड़ लगी रहती है, जबकि दूसरे को कोई पूछता भी नही है। यही स्थिति वकीलो, इजीनियरो तथा अन्य व्यवसाइयो की भी देखी जा सकती है।

३ बहुधा ऐसा भी देखने में आता है कि एक व्यक्ति किसी समय मे तो उन्नति के शिखर पर होता है, सब उसका सम्मान करते है और हर जगह उसकी तूती बोलती है, परन्तु एक समय ऐसा भी आता है जब वह अवनति के अन्धकार में गिर जाता है और उसकी ओर कोई आँख उठाकर भी नही देखता।

४. बहुत से ऐसे व्यक्ति होते है जो इस जीवन में पूरी ईमानदारी व परिश्रम से कार्य करते हैं, परन्तु फिर भी सदैव दु:खी व दरिद्री रहते है। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते है जो न्याय, नीति व परिश्रम के नाम से चिढते हैं परन्तु फिर भी वे अपना जीवन मौज व मजे में व्यतीत करते है।

५ एक व्यक्ति दाल का पानी पीता है, फिर भी बीमार रहता है ; जबकि दूसरा व्यक्ति हर प्रकार की बदपरहेजी करता है, फिर भी स्वस्थ रहता है।

६ कुछ व्यक्तियो को थोडी ही सिगरेट पीने व तम्बाकू सेवन करने से कैंसर हो जाता है, जबकि कुछ व्यक्ति रात-दिन सिगरेट पीते रहते है और तम्बाकू का सेवन करते रहते है, फिर भी उनका कुछ नही बिगड़ता।

७ कुछ व्यक्तियो के दात, कान, आख इत्यादि चालीस वर्ष तक पहुचते-पहुचते और कभी-कभी इससे भी कम उम्र मे खराब हो जाते है, जबकि कुछ व्यक्तियो की ये इन्द्रिया ६० वर्ष के हो जाने पर भी ठीक बनी रहती है।

८ एक से ही वातावरण मे और एक सी ही परिस्थितियो मे रहने वाले एक ही परिवार के सदस्यो मे कभी-कभी कोई सदस्य किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाता है, जबकि परिवार के अन्य सदस्य स्वस्थ रहते है।

९ जब किसी स्थान पर महामारी फैलती है, तब वहा के निवासियो मे से कुछ व्यक्ति तो उस महामारी की चपेट मे आ जाते है, जबकि अन्य व्यक्तियो पर उस महामारी का कोई प्रभाव नही पडता।

१० एक कार्यालय मे एक जैसी ही योग्यता वाले दो व्यक्ति एक साथ ही नौकरी करना प्रारम्भ करते है उनमे से एक व्यक्ति तो उन्नति करते करते वहा का उच्च अधिकारी बन जाता है, जबकि दूसरा व्यक्ति साधारण पद पर ही पहुच पाता है।

११ सेना मे दो व्यक्ति एक साथ ही भरती होते है, एक व्यक्ति तो उन्नति करते-करते सेनाध्यक्ष बन जाता है जबकि दूसरा व्यक्ति यह सम्मान प्राप्त नही कर पाता।

१२ कभी-कभी ऐसा भी देखने मे आता है कि अधिक योग्यता वाले व्यक्ति तो जीवन मे असफल रह जाते है और उनकी अपेक्षा कम योग्यता वाले व्यक्ति सफलता प्राप्त कर लेते है।

१३ अनेको बार ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति किसी कार्य को पूरा करने का निरन्तर प्रयत्न करता है, परन्तु उसको सफलता नही मिलती जबकि कोई अन्य व्यक्ति उसके द्वारा किये गये परिश्रम के आधार पर सहज ही मे सफलता पा लेता है और इस सफलता के फलस्वरूप सम्मान भी उसे ही मिलता है।

१४ कुछ सैनिक एक स्थान पर अधिकार करने के लिए भेजे जाते है, उनमे से बहुत से सैनिक वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए मारे जाते है और शेष बचे हुए सैनिक उस स्थान पर अधिकार कर लेते है। अधिकाश मे

देखा जाता है कि मरजाने वाले सैनिकों को कोई जानता भी नही है और सारा सम्मान जीवित सैनिकों को ही मिल जाता है , यद्यपि यह सफलता मरने वाले सैनिको के कारण ही प्राप्त हुई होती है ।

१५ अनेक बार ऐसा होता है कि अपराध कोई करता है और पकड़ा कोई दूसरा जाता है और दण्ड भी उस निरपराध व्यक्ति को ही मिल जाता है ।

१६. हम प्रति दिन देखते है कि किसी भी व्यक्ति को जो दुःख मिलता है, वह अधिकाश मे उसे अनायास ही मिल जाता है । ऐसा तो बहुत कम होता है कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा दु.ख देने पर ही वह दु.खी हो । जैसे चलते चलते हमारा पैर फिसल जाता है, हमारे ऊपर कोई भारी वस्तु गिर जाती है, हम किसी अग्निकाड तथा किसी अन्य दुर्घटना मे फस जाते हं । इसी प्रकार आर्थिक हानि भी हमको अनायास ही हो जाती है । कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति हमको सुख पहुचाने के लिये कुछ प्रयत्न करता है, परन्तु उसकी भलाई के प्रयत्न के फलस्वरूप हमको सुख के बदले दु ख ही मिल जाता है ।

इसी प्रकार कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति किसी ऐसी दुर्घटना मे फस जाते है जिसका परिणाम घातक ही सिद्ध हो सकता था, परन्तु फिर भी वे पूर्ण रूप से सुरक्षित बच निकलते हैं , जैसे चलती रेल से गिर जाने पर, गिरते हुए मकान मे दब जाने पर, डूबती हुई नाव में बैठे हुये होने पर और भयकर अग्निकाड मे फस जाने पर भी व्यक्ति जीवित बच जाते है और उनका बाल भी बाँका नही होता ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने किसी अच्छे व बुरे कार्य का फल हमको तुरन्त ही मिल जाता है । परन्तु प्राय: ऐसा होता है कि अपने को मिलने वाले सुख व दु.ख के कारणो का हमें पता भी नही चलता कि किन अपराधो के कारण हमको दु.ख मिल रहा है और किन अच्छे कार्यों के फलस्वरूप हमको सुख मिल रहा है ।

अधिक क्या लिखें तथ्य तो यह है कि इस संसार मे जितने भी व्यक्ति है सब एक दूसरे से भिन्न है । औरो की तो बात ही क्या, दो जुड़वां भाई भी गुणो, योग्यता व स्वभाव की अपेक्षा एक-दूसरे से भिन्न होते हैं ।

इसी प्रकार हम देखते है कि प्रत्येक व्यक्ति के विचारो में भी भिन्नता पाई जाती है । सुख के सम्बन्ध में भी प्रत्येक व्यक्ति की मान्यता

भिन्न-भिन्न मिलेगी। एक व्यक्ति किसी विशेष वस्तु को सुख का कारण मानता है , जबकि दूसरा व्यक्ति उसी वस्तु को दु ख का कारण समझता है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति मदिरापान में सुख मानता है, तो एक अन्य व्यक्ति उसको दु खो की जड समझकर मदिरापान से घृणा करता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति धन-सम्पत्ति को सुख का कारण मानकर दिन-रात धन कमाने और उसका सग्रह करने मे ही लगा रहता है, जबकि एक अन्य व्यक्ति धन को दु खो का कारण मानकर अपने पास के धन का भी त्याग कर देता है।

इसके विपरीत यदि हम जड पदार्थो जैसे—चादी, सोना, लोहा, ताबा, पत्थर इत्यादि का अध्ययन करे तो हम पायेगे कि एक ही प्रकार के जड पदार्थो मे कोई भेद नही होता। विशेष परिस्थितियो में किसी भी जड पदार्थ से यदि कोई कार्य लिया जा सकता है, तो वैसी ही विशेष परिस्थितिया कही भी, किसी भी समय मे कोई भी व्यक्ति निर्माण करके उस जड पदार्थ से वही काम ले सकता है। इन जड पदार्थों की इस विशेषता के कारण ही आज विज्ञान ने इतनी उन्नति की है। यदि चेतन (जानदार) पदार्थों के समान इन जड पदार्थो मे भी ऐसी ही विषमताए पाई जाती, तो क्या विज्ञान के क्षेत्र मे इतनी उन्नति होनी सभव होती? जिस प्रकार हम जड़ पदार्थों के गुणो के सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं, उसी प्रकार किसी भी चेतन प्राणी के विचारो के सम्बन्ध मे हम निश्चय-पूर्वक यह नही कह सकते कि अमुक परिस्थितियो का अमुक प्राणी पर निश्चित रूप से ऐसा ही प्रभाव पडेगा और वह प्राणी इस प्रकार का ही व्यवहार करेगा। क्योकि इस तथ्य से सभी परिचित है कि एक जैसी परिस्थितियो में दो विभिन्न व्यक्तियो का आचरण एक समान नही होता। दो व्यक्तियो की बात तो जाने दीजिये, एक ही व्यक्ति को एक जैसी ही परिस्थितियो में, किन्तु विभिन्न अवसरो पर प्राय. भिन्न-भिन्न व्यवहार करते देख सकते है। एक समय तो ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति लाख रुपये के लिए भी अपनी नीयत नही बिगाडता, परन्तु एक समय ऐसा भी आता है कि जब वही व्यक्ति केवल दस रुपये के लिये ही अपनी नीयत खराब कर लेता है।

हमने ऊपर जिन विषमताओं व बिडम्बनाओं का उल्लेख किया है, वे कोई काल्पनिक बाते नही है , परन्तु हम सबके प्रतिदिन के अनुभव में आने वाली वास्तविकताएं है। कोई भी व्यक्ति जब भी चाहे अपने चारों ओर घटती हुई इन वास्तविकताओ, विषमताओ और बिडम्बनाओं को देख सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या ये विषमताएं अपने आप

अचानक ही घटित हो जाती है, या इनके पीछे कोई ठोस कारण होता है ? हमको इन विषमताओ व विडम्बनाओं के कारणों की खोज करनी है और सत्य का पता लगाना है। सत्य का निर्णय करने के लिये यह आवश्यक है कि हम सब प्रकार के पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर अपना दृष्टिकोण एक वैज्ञानिक के समान रक्खे। इस पुस्तक के पिछले पृष्ठों में हमने चार प्रकार की विचारधाराओं का उल्लेख किया है। हमे उन विचारधाराओं के माध्यम से ऊपर वर्णित विषमताओं के कारण खोजने है और देखना है कि कौनसी विचारधारा इन विषमताओं के सम्बन्ध मे हमारी जिज्ञासाओ का तर्क सम्मत समाधान प्रस्तुत कर सकती है। जो भी विचारधारा हमारी जिज्ञासाओ का तर्क सम्मत उत्तर दे सकेगी और हमारी शंकाओं का समाधान कर सकेगी, वही विचारधारा सत्य अथवा सत्य के अधिकतम निकट होगी।

प्राकृतिक नियम सबके लिये समान

एक बात हम यहा पर और स्पष्ट करदें। प्राकृतिक नियम सब प्राणियों के लिये समान होते है। ऐसा कभी नही होता कि कुछ प्राणियो के लिये एक नियम लागू हो और कुछ प्राणियो के लिये दूसरा। उदाहरण के लिये हम आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म को ही लें। ऐसा कभी नही हो सकता कि जो व्यक्ति आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में विश्वास करते है, केवल उनके ही आत्मा होती हो और केवल उनका ही पुनर्जन्म होता हो। और जो व्यक्ति, आत्मा के अस्तित्व एव पुनर्जन्म में विश्वास नही करते, उनके न आत्मा होती हो और न उनका पुनर्जन्म ही होता हो। इसके विपरीत यदि यह तथ्य है कि आत्मा का अस्तित्व है और प्राणियों का पुनर्जन्म होता है तो प्रत्येक प्राणी के आत्मा भी होगी और प्रत्येक प्राणी का पुनर्जन्म भी होगा, चाहे कोई उन्हे स्वीकार करे या न करे।

अब हम इन चारो विचारधाराओ पर विस्तार से विचार करेंगे।

पहली विचारधारा का विवेचन

पहली विचारधारा पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि यह विचारधारा संसार में प्रायः देखी जाने वाली इन विषमताओं के सम्बन्ध में हमारी जिज्ञासाओं को तनिक भी शान्त नही करती और न इससे हमारे इस प्रश्न का तर्कसम्मत उत्तर ही मिल पाता है कि वर्तमान में हमको अकारण ही दुःख व सुख क्यों मिल रहे है ? कुछ ईमानदार व

परिश्रमी व्यक्ति भी दुःखी देखे जाते हैं और कुछ बेईमान व आलसी व्यक्ति भी दुःखी देखे जाते है। इसी तरह इन दोनों प्रकार के कुछ व्यक्ति सुखी भी देखे जाते है। प्रश्न यह उठता है कि इस संसार का अन्तत: कोई नियम भी है या नही? यदि कोई नियम ही नही है, तो फिर कोई व्यक्ति करे तो क्या करे? इसके अतिरिक्त यह विचारधारा हमें उद्दण्डता और उच्छृंखलता की ओर ले जाती है। क्योकि जब हमारा न कोई अतीत है, और न कोई भविष्य, तो हम इनकी चिन्ता ही क्यो करें? जब हमें न तो बुरे कार्यों का दण्ड ही मिलेगा और न अच्छे कार्यों का कोई पुरस्कार ही तो हम दुःख व कष्ट सहकर भी अच्छे कार्य और परोपकार क्यो करें? हमको तो अपना वर्तमान जीवन ही मौज मजे में व्यतीत करना है। ऐसा करते हुए दूसरे प्राणियो को चाहे कितना ही कष्ट क्यों न हो, हम इसकी परवाह क्यो करे? क्योकि इस जीवन के अतिरिक्त हमारा कोई अस्तित्व ही नही है। इसलिये यदि इस जीवन में हम अपने बुरे कार्यों का दण्ड न पा सके तो फिर हमको अपने बुरे कार्यो का कभी भी दण्ड मिलने वाला नही है। इसलिये हमे तो केवल इतनी ही सावधानी बरतनी है कि इस जन्म मे हम किसी न किसी तरह अपने बुरे कार्यों का दण्ड पाने से बचे रहे। अथवा यह कह ले कि अच्छे या बुरे कैसे भी साधनो का प्रयोग करके हम कष्ट पाने से बचे रहे।

परन्तु क्या अपने अच्छे व बुरे सब प्रकार के प्रयत्नो के बावजूद प्रत्येक व्यक्ति सुखी रह सकता है? क्या उसको रोग, शोक, बुढापा और आकस्मिक दुर्घटनाओ आदि का कभी कष्ट नही होगा? क्या सदैव ही उसकी समस्त इच्छाएं और आकाक्षाए पूरी होती रहेगी? क्या इन प्रश्नो का उत्तर सदैव 'हां' में ही मिलता रहेगा? प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव तो यही है कि इन प्रश्नो का उत्तर सदैव 'हा' मे ही नही मिलता। इसके विपरीत हम सबके अनुभव में तो यही आता है कि अधिकांश व्यक्तियो के जीवन में कभी-न-कभी ऐसा अवसर अवश्य ही आ जाता है जब अपने सब प्रकार के अच्छे व बुरे प्रयत्नो के बावजूद उनको निराशा ही हाथ लगती है, चारो ओर अन्धकार सा छाया लगता है और वे बिल्कुल ही असहाय व लाचार-सा अनुभव करते है। इतना बडा सत्य सामने उपस्थित रहने पर भी बहुतेरे व्यक्ति तर्क और विवेक से काम नही लेते। अपने मार्ग की रुकावटे दूर करने के लिये वे और अधिक उद्दण्डता व अत्याचार करते है और दूसरो को कष्ट देते है। परन्तु फिर भी असफलता व निराशा से उनका पीछा नही छूटता। ऐसे व्यक्तियो ने ही इस ससार को दु:ख का सागर बना रक्खा है। यद्यपि इस संसार मे इस प्रकार की विचारधारा

और ऐसी मनोवृत्ति वाले कुछ प्रतिशत व्यक्ति ही होंगे, फिर भी उनके कारण इस संसार की यह दशा है। यदि संसार का प्रत्येक व्यक्ति ही इस विचारधारा को मानने लगे और तदनुसार ही आचरण करने लगे तो इस संसार की क्या दशा होगी, इसकी कल्पना सहज से ही की जा सकती है।

सबसे अधिक आश्चर्य तो उन तथाकथित बुद्धिजीवियों पर होता है जो अपने हृदय से यह मानते हुए भी कि "हमें जो सफलता व असफलता तथा सुख व दुःख मिल रहे है वे अधिकांश में हमारे अपने ही पिछले जन्मो के अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिल रहे है" वे कभी भी इस तथ्य को स्वीकार नही करते। इसके विपरीत वे अपने लेखों तथा भाषणो में यही प्रकट करते रहते हैं कि आत्मा के अस्तित्व व पुनर्जन्म और पिछले जन्मो के अच्छे व बुरे कार्यों का फल इस जन्म में मिलने के सिद्धान्त केवल निहित स्वार्थों वाले व्यक्तियो की कल्पना मात्र है, जो इन स्वार्थी व्यक्तियों ने समाज का शोषण करने के लिये रच रक्खे है। इस प्रकार ऐसा कहने वाले व्यक्ति दूसरो को दिखाने के लिये तथाकथित प्रगतिवादी बनने का मुखौटा लगाये रहते है।

दूसरी विचारधारा का विवेचन

आइए, अब हम दूसरी विचारधारा पर विचार करे। दूसरी विचारधारा वालो की मान्यता है कि इस वर्तमान जीवन से पहले हमारा किसी भी रूप में कोई अस्तित्व नही था। सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने हमको प्रथम बार ही इस संसार में उत्पन्न किया है और अब हम जैसे भी अच्छे व बुरे कार्य करेंगे, उन्ही के अनुसार ही, वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर हमको सदैव के लिये स्वर्ग या नरक (जन्नत या दोज़ख) में डाल देगा।

इस विचारधारा के सम्बन्ध में भी कई प्रश्न उठते है जिनका कोई तर्क-सम्मत समाधान नही मिल पाता।

इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात तो यह है कि अमुक कार्य अच्छा है और अमुक कार्य बुरा—यह निर्णय करने की कसौटी क्या है? क्योंकि एक व्यक्ति की दृष्टि मे जो कार्य अच्छा है दूसरा व्यक्ति उसी कार्य को बुरा समझता है।

जैसे कि कुछ व्यक्ति ईश्वर के नाम पर पशुओं की बलि देना अच्छा कार्य मानते हैं जबकि कुछ अन्य व्यक्ति पशुबलि को हिंसा—बुरा कार्य—समझते हैं।

कुछ व्यक्ति मूर्तिपूजा को बहुत अच्छा कार्य मानते हैं जबकि कुछ व्यक्ति इसका विरोध करते है।

किसी स्थान पर एक महिला के एक साथ कई-कई पति होना साधारण बात है, जबकि कुछ अन्य स्थानो पर किसी महिला के पति की मृत्यु हो जाने पर भी उस महिला के पुनर्विवाह को बुरा समझा जाता है।

कुछ स्थानों पर मांसाहार व मदिरापान को बुरा नहीं समझा जाता, जबकि कुछ स्थानो पर इनको बहुत बुरा कार्य समझा जाता है।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न स्थानो में और विभिन्न समुदायों में विभिन्न कार्यों को अच्छा व बुरा मानने के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यताए हैं। अत एक साधारण व्यक्ति के लिये समुचित निर्णय कर पाना बहुत कठिन हो जाता है कि कौन सा कार्य अच्छा है और कौन सा कार्य बुरा।

दूसरी बात यह है कि जब वर्तमान जीवन से पहले किसी भी प्राणी का कोई अस्तित्व ही नही था और उस परमेश्वर ने इस प्राणी को पहली बार ही इस विश्व में उत्पन्न किया है तो इस जीवन मे जन्म लेने के क्षण से ही कुछ प्राणियो को अकारण ही दु ख और कुछ प्राणियो को अकारण ही सुख क्यो मिलते है ? जब परमेश्वर ने सभी प्राणियो को पहली ही बार उत्पन्न किया है, तो प्रत्येक प्राणी को एकसी ही अवस्था में उत्पन्न करना चाहिये था। यह बात कैसे न्यायसगत है कि किसी को पशु बना दिया, तो किसी को पक्षी, किसी को निर्बल तो किसी को बलवान, किसी को सूक्ष्म कीट-पतग तो किसी को मनुष्य। मनुष्यों में भी किसी को स्वस्थ तो किसी को रोगी, किसी को चतुर तो किसी को मूर्ख, किसी को सुन्दर तो किसी को कुरुप क्यो बनाया ? किसी को धनवान तो किसी को निर्धन के घर पैदा क्यो किया ? उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर को विश्व का निर्माण करने और फिर प्राणियो को पैदा करने की आवश्यकता ही क्या थी ? यदि विश्व का निर्माण ही करना था, तो यहाँ पर रोग, शोक, बुढापा आदि दु ख क्यो बनाये ? क्या वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर ऐसे विश्व का निर्माण नही कर सकता था जहा पर कोई भी दु.ख, कष्ट, रोग व शोक नही होता और सब ओर सुख ही सुख होता ? क्या यह संभव नही था कि उस परमेश्वर के बनाये हुए सभी प्राणी सुख से ही रहते ? उस परमेश्वर ने कुछ प्राणियो को दुष्ट स्वभाव का क्यो बनाया ? इस बात मे क्या तुक है कि पहले तो प्राणियों को निर्दयी और दुष्ट स्वभाव का बनाया और फिर दण्डस्वरूप उनको सदैव-सदैव के लिये नरक (दोजख) की आग में झोक

दिया ? उनको प्रायश्चित करने का अवसर भी क्यों नहीं दिया ?

इन विचारकों से जब कोई व्यक्ति यह प्रश्न करता था कि जब परमेश्वर ने प्रत्येक प्राणी को पहली बार ही इस विश्व में पैदा किया है, तो यहां पर किसी प्राणी को अपेक्षाकृत अधिक सुखी और किसी को अपेक्षाकृत अधिक दुःखी क्यों बनाया ? तो वे विचारक कह देते थे कि परमेश्वर विभिन्न प्राणियों को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उनकी परीक्षा लेता है । परन्तु यह बात समझ में नही आती कि किसी विशेष कारण के बिना ही विभिन्न प्राणियों में यह भेद-भाव क्यों किया जाता है और उन्हे विभिन्न परिस्थितियों मे रखकर उनकी परीक्षा क्यो ली जाती है ? यदि परीक्षा लेनी ही है तो सभी प्राणियों को एक जैसी ही परिस्थितियो में रखकर परीक्षा लेनी चाहिये , जैसी कि साधारणतया हम प्रतिदिन अपने विद्यालयो में लेते रहते है । यह तो स्पष्ट है कि उस परमेश्वर ने जिन व्यक्तियो को दयालु स्वभाव का और सब प्रकार से सम्पन्न बनाया है, वे बुरे कार्य कम ही करेगे । इसके विपरीत जिन व्यक्तियों को उस परमेश्वर ने दुष्ट स्वभाव का और निर्धन बनाया है, उनके द्वारा बुरे कार्य होने की अधिक सम्भावना है ।

एक बात और, मनुष्यो के सम्बन्ध में हम एक बार यह मान भी ले कि वे अपने ज्ञान व विवेक का उपयोग करके अच्छे कार्य करेंगे , परन्तु पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में इन विचारकों के पास क्या उत्तर है ? क्या ये पशु-पक्षी उस परमेश्वर के द्वारा उत्पन्न नहीं किये गये ? कुछ पशु-पक्षी (जैसे पालतू) बहुत आराम से अपना जीवन बिताते है, जबकि करोड़ों पशु-पक्षी मनुष्यो द्वारा बडी निर्दयता-पूर्वक मारे जाते हैं । उनसे भी लाखों गुने पशु-पक्षी अन्य पशु-पक्षियों के द्वारा मारे व खाये जाते है । इन मरने वाले और मारने वाले पशु-पक्षियों को क्या फल मिलेगा ? ये पशु-पक्षी तो उस परमेश्वर के द्वारा दी हुई अपनी प्रकृति के अनुसार ही अन्य पशु-पक्षियो को मार कर खाते है । इसमें इनका क्या दोष है ?

यह कहा जाता है कि परमेश्वर प्राणियो की परीक्षा लेने के लिये ही किसी को सुख तथा किसी को दुःख देता है । यदि यह बात ठीक है तो उन छोटे-छोटे बालको के विषय में इन विचारको को क्या कहना है जो जन्म से ही रोगी, अपंग व मन्द-बुद्धि होते है और कष्ट पाते रहते है । क्या इन छोटे-छोटे बालको की भी परीक्षा ली जाती है, जो बिल्कुल ही अबोध व अज्ञानी होते है, और जो अपनी इच्छा से कुछ भी नही कर सकते ?

इसी प्रकार जिन बालकों की उत्पन्न होते ही तथा उत्पन्न होने के

साल, दो साल के पश्चात ही मृत्यु हो जाती है (उस समय तक न तो वे कोई अच्छा या बुरा कार्य करते हैं, न उनमें अच्छे या बुरे का विवेक ही होता है), उन बालकों को वह परमेश्वर कहा भेजेगा ? क्योंकि न तो उन्होने कोई अच्छे कार्य किये है, जिससे वे जन्नत में भेजे जा सके और न बुरे कार्य ही किये हैं, जिससे वे दोजख में भेजे जा सके।

ये विचारक यह भी कहते थे कि उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की इच्छा व आदेश के बिना इस विश्व का एक पत्ता भी नही हिल सकता। यदि ऐसी बात है तो इसका अर्थ तो यही हुआ कि इस ससार में जितने भी बुरे कार्य (चोरी, ठगी, बेईमानी, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, हिसा आदि) होते है वे सब उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की इच्छा व आदेश के अनुसार ही होते है। तो फिर इन बुरे कार्यों को करने वाले प्राणियो को दण्ड देने का विधान क्यों बना रक्खा है ?

एक बात और, इन विचारको की एक मान्यता यह भी है कि वह परमेश्वर "इंसाफ के दिन" ही सब प्राणियो के कर्मों का निर्णय करेगे। अभी तक वह "इंसाफ का दिन" नही आया है और यह भी नही मालूम है कि वह "इंसाफ का दिन" कब आयेगा ? यह बात तर्क-सम्मत नही लगती। जबसे परमेश्वर ने इस विश्व को बनाया है, तब से अभी तक किसी भी प्राणी के कर्मों का इसाफ ही नही हुआ और यह भी नहीं मालूम है कि यह इसाफ कब होगा ? बिना इसाफ हुए ही इस विश्व मे अधिकाँश प्राणी कष्ट पा रहे हैं, ऐसा क्यों ? इस मान्यता से तो यह भी स्पष्ट है कि अभी तक स्वर्ग व नरक (जन्नत व दोजख) खाली ही पडे होंगे।

इस प्रकार इस विचार-धारा पर विचार करने से बहुत सी ऐसे शंकाएं उठती हैं जिनका कोई तर्क-सम्मत समाधान नही मिल पाता। जिन विषमताओं व बिडम्बनाओ का उल्लेख हमने इस पुस्तक के पिछले पृष्ठो में किया है, उनका भी इस विचारधारा के माध्यम से कोई समुचित समाधान नही मिल पाता। अत यह दूसरी विचारधारा भी तर्कों व तथ्यो पर खरी नहीं उतरती।

तीसरी विचारधारा का विवेचन

अब हम तीसरी विचारधारा पर विचार करते है। इस विचारधारा वाले यह मानते है कि जो कुछ भी हम आज हैं, और इस समय हमको जो भी सुख व दु.ख मिल रहे हैं वे सब हमारे अपने द्वारा भूतकाल में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों का ही फल है। ये कार्य हमारे इस जन्म के किये हुए भी

हो सकते हैं और पिछले जन्मो के किये हुए भी। उन कर्मों का फल हमको अब भी मिल सकता है और भविष्य मे भी मिल सकता है। इसी प्रकार जो कार्य हम इस समय कर रहे हैं इनका अच्छा व बुरा फल हमको भविष्य मे मिलेगा। इनका फल हमको तुरन्त भी मिल सकता है और कुछ समय के पश्चात भी। इनका फल हमको इस जन्म मे भी मिल सकता है और अगले जन्मो मे भी। इस प्रकार इस विचारधारा को मानने वाले आत्मा के अस्तित्व और पुनर्ज म मे विश्वास रखते हैं। भविष्य मे तथा अगले जन्मों मे सुख पाने की आशा मे वे इस जन्म मे सयम तप त्याग दान परोपकार, यज्ञ व अन्य धार्मिक अनुष्ठान तथा परमेश्वर की भक्ति आदि करने पर विशेष बल देते है।

इस विचारधारा के आधार पर यदि हम पिछले पृष्ठो मे दी हुई विषमताओ और विडम्बनाओ के कारण जानना चाहें तो हमारे बहुत से प्रश्नो का उत्तर हमे स्वत ही मिल जाता है। यह विश्व केवल सयोगवश (By Accident) ही नही चल रहा है और यहाँ पर जो घटनाए हो रही है तथा जो विषमताए व विडम्बनाए हम अपने चारो ओर देख रहे हैं वे केवल सयोगवश ही नही घट रही है अपितु इस विश्व की प्रत्येक घटना तथा प्रत्येक विषमता व विडम्बना के पीछे कोई-न कोई ठोस कारण है चाहे हम उन कारणो को जान पाय या न जान पाय। यह विश्व कारण व काय (Cause and Effect) के नियम पर चल रहा है। इसी नियम के अनुसार हमारी वतमान दशा का कारण हमारे भूतकाल के कार्य है ओर हमारे वतमान के काय हमारी भविष्य की दशा के कारण होगे। इसी नियम के अनुसार कोई व्यक्ति दु खी तो कोई सुखी कोई निर्धन तो कोई धनवान कोई निबल तो कोई बलवान कोई स्वस्थ तो कोई रोगी कोई मूख तो कोई चतुर आदि होते है। जिस व्यक्ति ने पिछले जन्मों में अच्छे कार्य किये थे वह व्यक्ति अपने पिछले जन्मो के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप वर्तमान मे सुख भोग रहा है चाहे अपने वर्तमान जीवन मे वह सुखी होने के लिये कोई भी प्रयास न कर रहा हो अथवा चाहे वह बुरे काय ही कर रहा हो। इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने अपने पिछले जन्मो मे बुरे कर्म किये थे वह व्यक्ति अपने पिछले जन्मो के बुरे कर्मों के फलस्वरूप वर्तमान मे दु ख उठा रहा है चाह अपने वतमान जीवन मे उसने कोई भी बुरा कार्य न किया हो वरन दूसरो की भलाई ही करता रहा हो। परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि उनको अपने वर्तमान के अच्छे कार्यों का पुरस्कार नही मिलेगा अथवा अपने वर्तमान के बुरे कार्यों का दण्ड नही मिलेगा। उनको अपने अच्छे व बुरे कार्यों का फल अवश्य मिलेगा, चाहे

वह कभी भी और किसी भी रूप में मिले।

इस प्रकार जहां तक आत्मा के अस्तित्व और प्राणियों के पुनर्जन्म का प्रश्न है तीसरी विचारधारा इन पर पूर्ण रूप से विश्वास करती है और इसके फलस्वरूप हमारे बहुत से प्रश्नो का तर्क-सम्मत समाधान मिल जाता है। परन्तु इसके साथ-साथ ये विचारक एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर के अस्तित्व को भी मानते है जिसको विश्व का कर्त्ता, पालनकर्त्ता, हर्त्ता, प्राणियों को उनके कर्मों का फल देने वाला तथा पूर्ण कृतकृत्य, निर्विकार, निराकार, सर्वव्यापक, आनन्द-स्वरूप, दीन-बन्धु, परम-दयालु, न्याय-शील आदि सर्व-गुण सम्पन्न कहा जाता है। अब हम इन विचारको की इसी मान्यता पर विचार करेंगे।

क्या किसी ऐसे सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अस्तित्व है जो इस विश्व का कर्त्ता, पालनकर्त्ता और हर्त्ता है तथा प्राणियों को उनके कर्मों का फल देने वाला है ?

तीसरी विचारधारा के विचारको की मान्यता है कि जिस प्रकार किसी भी वस्तु का निर्माण करने के लिए एक निर्माता की और किसी भी कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक सचालक की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इस विश्व का निर्माण करने और इसको सुचारू रूप से चलाने के लिए भी कोई शक्ति होनी चाहिए। उस शक्ति का नाम ही परमेश्वर है।

यहा पर यह प्रश्न उठता है कि जब प्रत्येक वस्तु के निर्माण के लिए किसी निर्माता का होना आवश्यक है तो उस परमेश्वर का भी कोई निर्माता होना चाहिये। फिर, उस परमेश्वर के निर्माता को निर्माण करने के लिए भी कोई अन्य निर्माता होना चाहिये और इस प्रकार यह श्रृखला कभी टूटेगी ही नही। परन्तु इस तर्क से बचने के लिए इन विचारको ने उस परमेश्वर को स्वयभू (जो अपना निर्माता स्वय ही हो) ही मान लिया।

(यदि किसी पदार्थ को स्वयंभू मानना ही है, तो फिर इस विश्व को ही स्वयंभू क्यों न मान लिया जाये ?)

जब उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने इस विश्व का निर्माण किया है, तब कोई समय ऐसा भी अवश्य ही रहा होगा (चाहे वह समय अरबों वर्ष पहले हो अथवा अरबों गुना अरबो वर्ष पहले) जब यह विश्व नही था। क्या उस समय यहा पर केवल शून्य ही था ? इस विश्व का निर्माण करने

से पहले वह परमेश्वर क्या करता रहता था ? क्या वह परमेश्वर खाली बैठे-बैठे ऊब गया था जो उसने अपनी ऊब मिटाने के लिये इस विश्व का निर्माण कर डाला ? जब उस परमेश्वर को आनन्द-स्वरूप कहा जाता है तो खाली बैठे-बैठे वह ऊब कैसे गया ?

जब उस परमेश्वर को निर्विकार कहा जाता है, तो उसके मन में विश्व का निर्माण करने का विकार (विचार) ही क्यो आया ?

जब उस परमेश्वर को पूर्ण कृतकृत्य (जिसके करने के लिये कोई भी कार्य शेष न रहा हो) कहा जाता है, तो उसने इस विश्व का निर्माण ही क्यो किया और अपने ऊपर इस विश्व का निर्माण करने, इसका पालन करने, इसको नष्ट करने, तथा प्राणियो को उनके कर्मों का फल देने का उत्तरदायित्व क्यों ले लिया ?

एक प्रश्न यह उठता है कि उस परमेश्वर ने इस विश्व का निर्माण किया ही क्यो ? क्या वह अपनी शक्ति दिखाना चाहता था ? यदि हा, तो किसे ? क्या उस परमेश्वर का कोई प्रतिद्वन्द्वी भी था जिसको वह अपनी शक्ति दिखाना चाहता था ? क्योंकि अधिकाश मे प्रतिद्वन्द्वियों के सामने ही अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया जाता है । क्या वह अपने द्वारा उत्पन्न प्राणियो को अपनी शक्ति दिखाना चाहता था ? इसका तो यही अर्थ हुआ कि वह परमेश्वर दम्भी था और अपने दम्भ की सतुष्टि के लिये ही उसने इस विश्व की सृष्टि की। एक दम्भी को निर्विकार कैसे कहा जा सकता है ?

जब उस परमेश्वर को निराकार कहा जाता है तो उस निराकार परमेश्वर ने इस साकार विश्व का निर्माण कैसे कर दिया ?

उस परमेश्वर ने जिन पदार्थों से इस विश्व का निर्माण किया था, क्या वे पदार्थ पहले स ही विद्यमान थे या परमेश्वर ने पहले उन पदार्थों का निर्माण किया और फिर उन पदार्थों से इस विश्व का निर्माण किया ? यदि उस परमेश्वर ने स्वय ही उन पदार्थों का निर्माण किया जिनसे यह विश्व बना है, तो शून्य मे से ये सब पदार्थ कैसे बन गये ?

उस परमेश्वर ने इस समस्त विश्व का निर्माण क्षण भर में ही कर दिया था या क्रम-क्रम से किया ? यदि क्रम-क्रम से निर्माण किया, तो वह क्रम क्या था ? सबसे पहले किस वस्तु का निर्माण किया फिर किस वस्तु का और फिर किस वस्तु का ? इस प्रकार क्रम-क्रम से विश्व का निर्माण करने में उस परमेश्वर को कितना समय लगा ?

इस विश्व में लाखो प्रकार के पशु-पक्षी, मगर-मछली, कीट-पतंग

तथा लाखो प्रकार की वनस्पतिया पाई जाती है। इन लाखों प्रकार के प्राणियो व वनस्पतियों का निर्माण करने मे उस परमेश्वर का क्या प्रयोजन था? क्या परमेश्वर ने इन सब का निर्माण इसी रूप मे किया था या समय व्यतीत होने के साथ-साथ इनका रूप परिवर्तन होता गया?

जब परमेश्वर ने इस विश्व मे मनुष्यो व पशु-पक्षियो आदि का निर्माण किया था, तो उनको किस रूप मे बनाया था—शिशु के रूप मे या युवा के रूप में? यदि उन्हे शिशु के रूप में बनाया था, तो उनका लालन-पालन किसने किया? परमेश्वर ने पक्षियो को अण्डो के रूप मे बनाया था या पूरे पक्षियो के रूप मे? इसी प्रकार वनस्पतियो व अनाजो को वृक्षों के रूप में बनाया था या बीजों के रूप में?

आज हम देखते है कि ससार के लगभग सभी प्राणी अपने से निर्बल प्राणियों को खाकर (अर्थात उन्हे कष्ट देकर) या वनस्पतियो को खाकर (वनस्पतियों में भी जीवन होता है और वे भी दु ख व सुख का अनुभव करती है) ही जीवित रहते है। क्या परमेश्वर ने ही ऐसे क्रूर और मासाहारी प्राणियो का निर्माण किया था या वे बाद मे क्रूर और मासाहारी बन गए? यदि परमेश्वर ने ही ऐसे क्रूर व मासाहारी प्राणियो का निर्माण किया था, तो वह परमेश्वर परम-दयालु व करुणा-सागर कैसे हुआ? ऐसे कष्टो व दु खो तथा निर्दयी व क्रूर प्राणियो से भरा हुआ विश्व किसी परम-दयालु, करुणा-सागर व आनन्द-स्वरूप परमेश्वर की कृति कैसे हो सकती है? ऐसे दु खो व कष्टो से पूर्ण विश्व का निर्माण करके उस परमेश्वर को क्या मिला?

यदि यह कहें कि परमेश्वर ने तो इन प्राणियो को दयालु ही बनाया था, परन्तु समय व्यतीत होने के साथ-साथ वे स्वयं ही क्रूर व मासाहारी बन गये, तो क्या उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अपने बनाये हुए प्राणियो पर कोई नियन्त्रण नही था? क्या उस परमेश्वर को पहले से ही यह ज्ञात नही था कि उसके बनाये हुए प्राणी ऐसे हिसक व क्रूर बन जायेंगे तथा उसका बनाया हुआ यह विश्व दु.खो व कष्टो से पूर्ण हो जायेगा? क्या अपने द्वारा बनाये गये प्राणियो की भूख मिटाने के लिए वह परमेश्वर कोई अहिसक साधन नही जुटा सकता था? क्या यह सभव नही था कि वह परमेश्वर अपने बनाये प्राणियो मे "भूख" ही नही बनाता? काश! वह परमेश्वर ऐसा कर पाता तथा सभी प्राणियो मे आनन्द, सन्तोष और समभाव भर पाता!

परमेश्वर ने सबसे पहले जिन मनुष्यो को बनाया था, क्या उन्हे

सँज्जन तथा अच्छे स्वभाव का बनाया था ? तो आज अधिकांश मनुष्य दुर्जन, कठोर, निर्दयी और बुरे स्वभाव के कैसे हो गये और वे दूसरे प्राणियों को दु:ख पहुंचाने वाले कार्य क्यो करने लगे ? क्या उस परमेश्वर का अपने बनाये हुए मनुष्यो तथा उनके कार्यों पर कोई नियन्त्रण नही है ?

इस तर्क से बचने के लिए इन विचारको ने यह कह दिया कि इस विश्व के प्राणी कर्म करने के लिये तो स्वतन्त्र है, परन्तु उनके कर्मों का फल देना उस परमेश्वर के अधिकार मे ही है। परन्तु यह कह कर वे विचारक अपने शब्द जाल मे स्वय ही उलझ गये। यदि उस परमेश्वर का अपने बनाए हुए प्राणियों और उनके कार्यो पर कोई नियन्त्रण ही नहीं है तो वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान कैसे हो गया ? उसकी शक्ति तो सीमित ही हो गयी। और फिर यदि हम उस परमेश्वर को सर्वशक्तिमान मान भी लें तो ऐसे परमेश्वर का हम क्या करे जो सर्वशक्तिमान होते हुए भी अपने द्वारा निर्मित प्राणियों को बुरे कार्य करने से तो रोक नही सकता, परन्तु उन प्राणियो के द्वारा किये हुए बुरे कार्यों के फलस्वरूप उन्हे दण्ड अवश्य देता है।

यदि उस परमेश्वर ने ही कुछ मनुष्यो व पशु-पक्षियो को निर्दयी व दुष्ट-प्रकृति का बनाया था, तो उनको इस निर्दयता व दुष्ट प्रकृति का दण्ड क्यो दिया जाता है ? पहले तो प्राणियों को निर्दयी और दुष्ट प्रकृति का बनाना और जब वे प्राणी उस परमेश्वर के द्वारा दी गयी प्रकृति के अनुसार व्यवहार करने लगे, तो उनको दण्ड देना, यह उस न्यायशील परमेश्वर का कैसा न्याय है ?

जब परमेश्वर ने सर्व प्रथम प्राणियो का निर्माण किया था, तो उन्हें दु:खी बनाया था या सुखी ? यदि उस परमेश्वर ने कुछ प्राणियों को सुखी बनाया और कुछ प्राणियो को दुखी बनाया, तो यह भेद किस आधार पर किया था ? क्योकि वे प्राणी प्रथम बार ही अस्तित्व मे आये थे और उनका कोई अतीत तो था ही नही। जिन प्राणियो को सुखी बनाया था उन्हे कौन से अच्छे कार्यों के फलस्वरूप पुरस्कार दिया और जिन प्राणियो को दुखी बनाया था उनको कौनसे अपराधो का दण्ड दिया था ?

उस परमेश्वर ने इस विश्व के निर्माण के समय जितनी आत्माएं व जितना पुद्गल (Matter) बनाया था वे सब उतने-के-उतने ही है या कुछ घट-बढ़ गये हैं ?

उस परमेश्वर को निर्विकार कहा जाता है, फिर वह अपनी पूजा व तभक्ति करने वालों से प्रसन्न और अपनी निन्दा करने वालों से अप्रसन्न

क्यो हो जाता है ?

परमेश्वर के द्वारा बनाये गये प्राणियो के लिये मुक्ति प्राप्त करने की भी कोई व्यवस्था है या नही ? यदि मुक्ति प्राप्त करने की कोई व्यवस्था नही है, तो क्या परमेश्वर के द्वारा बनाये गये प्राणी उस समय तक सुख-दुःख भोगने व नये-नये शरीर धारण करने के चक्कर मे ही पडे रहेगे, जब तक परमेश्वर इस विश्व को नष्ट नही कर देता ?

जिस समय वह परमेश्वर इस विश्व का विनाश करेगा, उस समय विश्व के प्राणियो के द्वारा संचित किये हुए कर्मो का क्या होगा ? क्या वे कर्म फल दिये बिना ही नष्ट हो जायेगे ?

उस परमेश्वर को सच्चा न्याय-कर्त्ता कहा जाता है। न्यायकर्त्ता का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपराधी को दण्ड देते समय यह बतला देता है कि उस अपराधी को अमुक बुरे कार्य का दण्ड दिया जा रहा है, जिससे भविष्य मे वह व्यक्ति उस बुरे कार्य को फिर से नही करे। अपराधी को दण्ड देने के साथ-साथ यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि अपराधी को ऐसी परिस्थितियो मे रक्खा जाये, जिससे वह सुधर सके और भविष्य मे फिर से अपराध न करे। परन्तु परमेश्वर के न्याय के सम्बन्ध मे हम ऐसी कोई व्यवस्था नही देखते। न तो दुःख पाने वाले (दण्ड पाने वाले) प्राणी को चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी, यही पता चल पाता है कि उसे कौनसे अपराध के फलस्वरूप दुःख मिल रहा है, न उसको ऐसी परिस्थितियो व ऐसे वातारण मे ही रक्खा जाता है, जहा उसको फिर से अपराध न करने और सुधरने की प्रेरणा मिले। बुरे कार्य करने के दण्ड-स्वरूप प्राणियो को पशु-पक्षी के रूप मे या दीन-दुखी मनुष्यो के रूप मे जन्म मिलता है। ऐसे स्थानो मे और ऐसे वातावरण मे जन्म लेने पर उनकी अपराध-वृत्ति मे कमी होने की बजाय बढोतरी की ही अधिक सम्भावना होती है। इन तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए उस परमेश्वर को सच्चा न्यायकर्त्ता कैसे कह सकते है ?

उस परमेश्वर को सर्व-व्यापक कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि सभी प्राणियो मे उस परमेश्वर का ही अंश है। यदि यह बात ठीक होती, तो विश्व के प्रत्येक प्राणी का एक जैसा ही स्वभाव व एक जैसी ही भावनाए होती। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इस विश्व के प्रत्येक प्राणी का भिन्न-भिन्न स्वभाव व भिन्न-भिन्न भावनाए होती है। औरो की तो बात ही क्या, दो जुड़वा बालको के स्वभाव भी भिन्न-भिन्न होते है। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति तो क्रूर व कठोर बना हुआ एक अन्य व्यक्ति

की हत्या करने पर उतारू है, जबकि दूसरा व्यक्ति दीन-हीन बना हुआ उससे अपने प्राणो की भिक्षा मांग रहा है। ऐसी परिस्थितियों में यह कैसे कहा जा सकता है कि इन दोनो व्यक्तियो मे एक ही परमेश्वर का वास है तथा वह परमेश्वर सर्वव्यापक है ?

ये विचारक कहते है कि दुष्ट प्राणियो का सहार करने के लिये और भले प्राणियो का कष्ट दूर करने के लिये वह परमेश्वर इस पृथ्वी पर बार-बार अवतार लेता रहता है। परन्तु उनके उस कथन से भी कई शकाएं उठ जाती है। सब से पहली शका तो यही है कि जब वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान है, तो वह दुष्ट प्राणियो को पैदा ही क्यो करता है ? दूसरी शका यह है कि जब वह परमेश्वर सर्वव्यापक है, तो उसको किसी विशेष स्थान मे अवतार लेने की आवश्यकता ही क्या है ? एक शका यह है कि जितने समय तक परमेश्वर अवतार लेकर किसी विशेष स्थान मे रहता है, उतने समय के लिये उस परमेश्वर के नियमित कार्य जैसे —प्राणियो को उत्पन्न करना, प्राणियो का पालन करना, प्राणियो को नष्ट करना तथा प्राणियो को उनके अच्छे व बुरे कार्यो का फल देना, आदि कार्य कौन करता है ? यदि यह कहा जाये कि वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान है, अतः वह अवतार अवस्था मे रहते हुए भी अपने अन्य सब कार्य करता रहता है, तो यह बात भी समझ मे नही आती। यदि वह परमेश्वर सर्वशक्तिमान है तो उसे किसी विशेष स्थान मे अवतार लेने की आवश्यकता ही क्या थी ? क्या वह अपने स्थान पर ही रहता हुआ दुष्टो का सहार या उनका हृदय-परिवर्तन नही कर सकता था ?

एक बात यह भी समझ मे नही आती कि क्या वह परमेश्वर केवल भारतवर्ष का ही परमेश्वर है जो उसने केवल भारत मे ही अवतार लिया ? क्या उस परमेश्वर का कार्य-क्षेत्र और अधिकार-क्षेत्र केवल भारतवर्ष तक ही सीमित है। इस विशाल विश्व की तो बात ही क्या, भारत तो हमारी इस पृथ्वी का भी बहुत छोटा सा भाग है। क्या भारत के अतिरिक्त इस विश्व के और किसी भी भाग मे दुष्ट प्राणी नही रहते ? क्या वहां केवल सज्जन प्राणी ही रहते है जो उस परमेश्वर को भारत के अतिरिक्त इस विश्व के अन्य किसी भाग में दुष्ट प्राणियो का सहार करने के लिये अवतार लेने की आवश्यकता नही पड़ी ?

एक बात यह समझ मे नही आती कि इस समस्त विश्व का एक ही परमेश्वर है या यहा पर अनेकों परमेश्वर है ? यदि इस विशाल विश्व का एक ही परमेश्वर है, तो उसने विभिन्न विचारको को भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान क्यो दिया ? इस समस्त विश्व के प्राणियों को एक ही

समान ज्ञान और एक ही प्रकार के सिद्धान्त क्यों नहीं दिये, जिससे विभिन्न विचारकों के अनुयायी एक दूसरे का रक्त नहीं बहाते, और धर्म के नाम पर इतना रक्तपात नहीं होता।

एक बात और, कुछ दशाब्दी पहले तक आधुनिक वैज्ञानिक इस विश्व को कुछ लाख वर्ष पुराना मानते थे। परन्तु जैसे-जैसे नये-नये अनुसन्धान और नई-नई खोज हो रही है, वैज्ञानिक इस विश्व को अरबों वर्ष पुराना मानने लगे है। परन्तु यह बात समझ में नही आती कि उस परमेश्वर ने किन्ही विचारको को अब से लगभग डेढ हजार वर्ष पहले ज्ञान दिया, किन्ही विचारको को अब से लगभग दो हजार वर्ष पहले ज्ञान दिया तथा किन्ही विचारको को अब से लगभग आठ-दस हजार वर्ष पहले ज्ञान दिया। क्या अब से दस-बारह हजार वर्ष पहले करोडो वर्षो के कालखण्ड में जो मनुष्य इस पृथ्वी पर रहते थे उनको ज्ञान की आवश्यकता नही थी ? क्या वह परमेश्वर उनको भूल गया था ?

एक कुशल गायक दो पक्तिया गाता है, तो वे भी बहुत मधुर व कर्णप्रिय लगती है, एक कुशल चित्रकार एक छोटा-सा चित्र बनाता है, तो वह भी कलात्मक होता है, एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक दो पक्तिया लिख देता है, तो वे भी लाखो पाठको को प्रेरणा देती है, परन्तु उस आनन्द-स्वरूप परमेश्वर द्वारा निर्मित इस विश्व मे कही भी आनन्द दिखलाई नही देता। इस वास्तविकता को देखते हुए परमेश्वर को आनन्द-स्वरूप कैसे कहा जा सकता है ?

इस सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। एक साधारण व्यक्ति एक छोटा सा घर बनाता है, तो वह इस बात की यथा-शक्ति व्यवस्था करता है कि उस घर मे अधिक-से-अधिक सुविधाओ व आराम का प्रबन्ध हो, उस घर मे सर्दी, गर्मी, धूप व वर्षा से बचाव की व्यवस्था हो, हवा व प्रकाश के आने का समुचित प्रबन्ध हो, चोरो व असामाजिक तत्त्वों से सुरक्षा की व्यवस्था हो, उसमे गन्दे पानी व धुए के निकलने की पर्याप्त व्यवस्था हो, कुछ समय के बाद उसका परिवार बढे तो भी सभी सदस्य उसमें सुविधापूर्वक रह सके।

इसी प्रकार एक इजीनियर एक नया नगर बसाने की योजना बनाता है तो वह अगले एक सौ वर्ष बाद तक की परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर ही उस नगर की योजना बनाता है। जैसे, उसके मार्ग इतने चोड़े हों, गन्दे पानी व बरसाती पानी के निकलने की इस प्रकार व्यवस्था हो, यातायात का प्रबन्ध इस प्रकार हो। प्रकाश व पेय जल की व्यवस्था इस

प्रकार हो। बाजारों, विद्यालयों, धर्म-स्थानों, धर्म-शालाओं, चिकित्सालयों, खेल के मैदानों, आदि की समुचित व्यवस्था हो, इत्यादि। परन्तु उस सर्व-शक्तिमान, त्रिकालज्ञ और परम-दयालु कहे जाने वाले परमेश्वर के द्वारा निर्मित इस विश्व मे हमें ऐसी कोई व्यवस्था दिखलाई नही देती। समस्त विश्व की बात को जाने भी दें और केवल अपनी पृथ्वी को ही देखें तो हम पायेगे कि किसी स्थान पर तो रक्त तक को जमा देने वाली सर्दी पड़ती है और किसी स्थान पर शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी पडती है। किसी स्थान पर नदियो में बाढ आ जाने से बरबादी होती रहती है तो किसी स्थान पर सूखा पड जाने से प्राणी मौत के मुह में जाते रहते हैं। इन दुखदायी परिस्थितियों के साथ-साथ अनिश्चित मौसम, आधी, तूफान, भूकम्प व ज्वालामुखी पर्वत भी इस पृथ्वी के प्राणियों पर तबाही व बर-बादी लाते रहते है। क्या यही उस परम-दयालु सर्वशक्तिमान परमेश्वर की आदर्श व्यवस्था है? आज इस पृथ्वी पर सुख-सुविधाओं के जो थोड़े से साधन दिखलाई द रहे है, वे परमेश्वर के वरदान-स्वरूप नही, अपितु मनुष्य के अपने ही पुरुषार्थ के फल है।

हम कई धार्मिक ग्रन्थो मे पढते है कि वह परमेश्वर चाहता है कि उसके बनाये हुए प्राणी अच्छे कार्य करे। तो क्या परमेश्वर केवल इच्छा ही कर सकता है? क्या उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर मे इतनी शक्ति नही है कि वह अपने द्वारा उत्पन्न किये गये प्राणियो से अपनी इच्छानुसार अच्छे कार्य करा सके? यदि वह ऐसा नही कर सकता, तो उसे सर्वशक्तिमान कैसे कहा जा सकता है?

कुछ विचारक यह कहते है कि वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर विश्व के सभी प्राणियों का पालनकर्त्ता है। वह जब भी किसी प्राणी को उत्पन्न करता है, तो उसको उत्पन्न करने से पहले ही वह उसके पेट भरने का प्रबन्ध कर देता है। ये विचारक कहते है कि चीटी को कण (अनाज का एक दाना) और हाथी को मन (पर्याप्त मात्रा में भोजन) वह सर्वशक्ति-मान परमेश्वर ही देता है। वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही बालक को उत्पन्न करने से पहले ही उसकी माता के स्तनो में दूध पैदा कर देता है। दिवा-स्वप्न जैसी कितनी अनोखी कल्पना है यह? यदि यह बात सत्य होती, तो आज हमारी यह पृथ्वी ही स्वर्ग होती। काश! वह परमेश्वर, इस पृथ्वी के समस्त प्राणियों की बात छोड भी दें, केवल मनुष्यों का पेट भरने का ही उत्तरदायित्व ले लेता, तो किसी भी मनुष्य को अपना पेट भरने की चिन्ता नहीं होती। जिस प्रकार एक धनवान का पुत्र अपना पेट

भरने की ओर से चिन्तामुक्त होता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने पेट भरने की ओर से निश्चिन्त होता। परन्तु वास्तविकता तो ठीक इसके विपरीत दिखलाई देती है। हम छोटे-छोटे बालको को, जिनकी खेलने व खाने की उम्र होती है, पेट भरने के लिये कठिन परिश्रम करते हुए तथा भिक्षा मांगते हुए देखते है। हम अबोध बालिकाओ को अपनी पेट की आग बुझाने के लिये अपने शरीर का सौदा करते हुए देखते है। अनेको प्रकार के बुरे कार्य, जैसे चोरी, बेईमानी, ठगी आदि पेट का गड्ढा भरने के लिये ही किये जाते है। आज भारत और भारत जैसे अन्य निर्धन देशो में करोडो व्यक्तियों को दिन मे एक बार भी पेट भरकर भोजन नही मिलता। लाखो व्यक्ति भूख से तथा कुपोषण से होने वाले रोगो से तडप-तडपकर मर जाते है। ऐसे देशो में जब कभी अकाल पडता है, तो उस समय की दयनीय दशा की तो कल्पना से ही रोंगटे खडे हो जाते है। पशु-पक्षियो की तो बात ही क्या, लाखो मनुष्यो के प्राण भूख से तडप-तडप कर निकल जाते है। सामान्य समय मे भी अधिकाश पशु-पक्षी अपने से निर्बल प्राणियो को ही अपना आहार बनाते है। क्या उस सर्वशक्तिमान, परम-दयालु परमेश्वर की यही आदर्श व्यवस्था है? यदि इसके उत्तर मे कोई यह कहे कि वह परमेश्वर तो प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मो के अनुसार ही फल देता है, तो फिर इसमे परमेश्वर का कर्तृत्व ही क्या रहा, और वह पालनकर्ता कैसे कहलाया?

अब प्रश्न यह होता है कि परमेश्वर प्राणियो को उनके कर्मों का फल किस प्रकार देता है? क्या वह प्रत्येक प्राणी को उसके प्रत्येक कर्म का फल स्वय सोच-विचार कर देता है? यदि ऐसा है तो एक शका उठती है कि इस विश्व मे अनन्त प्राणी है। यहा पर प्रतिक्षण असख्य प्राणियो की मृत्यु होती रहती है। इनमें से प्रत्येक प्राणी के कर्मों के फल का निर्णय करने में उस परमेश्वर को कुछ समय तो लगता ही होगा। जितना समय एक प्राणी के कर्मो के फल का निर्णय करने मे लगता होगा, उतने समय मे तो करोडो अन्य प्राणियो की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार तो न जाने कितने प्राणी अपने कर्मो के फलो का निर्णय कराने के लिये पंक्ति में लग रहे होगे और यह संख्या क्षण-प्रतिक्षण बढती ही जाती होगी। मरने वालो से करोड़ो गुने अधिक जीवित प्राणी भी है। उस परमेश्वर को उनके कर्मों का लेखा-जोखा रखने और उनको उनके कर्मों का फल देते रहने का कार्य भी देखना पड़ता होगा। और फिर यह आवश्यक तो नही है कि प्राणियो के कर्मों का निर्णय उनकी मृत्यु के पश्चात् ही हो। प्राणियों के जीवित रहते हुए भी तो उनके वर्तमान मे किये हुए कर्मो का फल मिल सकता

है। इतने सारे कार्य वह अकेला परमेश्वर कैसे कर लेता है ? क्या उसने अपनी सहायता के लिये कुछ सहायक भी नियुक्त कर रक्खें है ? इस सब व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये परमेश्वर ने क्या कोई कार्यालय भी खोल रक्खा है ? वह कार्यालय किस स्थान पर है ? यदि ऐसी कोई व्यवस्था नही है, तो क्या परमेश्वर ने ऐसी कोई स्वचालित (automatic) व्यवस्था बना रक्खी है, जिससे किसी भी प्राणी के द्वारा कोई भला या बुरा कार्य होते ही वह कार्य किसी विशेष प्रकार की प्रणाली से कही पर अंकित हो जाता हो और फिर समय आने पर उन अच्छे व बुरे कार्यों का अच्छा व बुरा फल स्वत ही मिल जाता हो।

(यदि ऐसी ही कोई व्यवस्था है, तो हम यह सिद्धान्त ही क्यों न मानले कि प्राणियो को उनके कर्मों का फल स्वतः ही मिलता रहता है उस परमेश्वर का इस व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नही है।)

यहा एक बात और भी ध्यान मे रखने योग्य है कि कोई भी स्वचालित व्यवस्था स्वत ही कार्य करती रहती है। वह बिलकुल निर्लिप्त होती है। कोई उसकी खुशामद व प्रशंसा करे, तो वह प्रसन्न नहीं होती और कोई उसकी निन्दा करे, तो वह अप्रसन्न नही होती। स्वचालित व्यवस्था में किसी प्रकार के पक्षपात व अन्याय होने की सम्भावना भी नही होती। जैसे कि अनेको सार्वजनिक स्थानो पर वजन तोलने की मशीनें तथा टेलीफोन रक्खे रहते है। उनमें कोई भी व्यक्ति निर्धारित सिक्का डालकर अपना वजन कर सकता है तथा टेलीफोन से बात कर सकता है। उसमें कोई त्रुटि नही होती (जब तक तोलने की मशीन तथा टेलीफ़ोन खराब ही न हो)। यदि मशीनों व टेलीफोनों का मालिक भी उनसे काम लेना चाहे, तो उसको भी निर्धारित सिक्का डालना ही पड़ेगा।

इसके विपरीत इन स्वचालित उपकरणों के स्थान पर यदि साधारण उपकरण हो और उनको चलाने के लिये व्यक्ति बैठे हों, तो इतनी निष्पक्षता से व न्यायपूर्वक कार्य नहीं हो सकता। यह उनको चलाने वाले व्यक्तियों की इच्छापर निर्भर है कि वे जिससे चाहे फ़ीस लें जिससे चाहें न लें।

यही बात परमेश्वर की स्वयं की व्यवस्था पर भी लागू होती है। (ये विचारक तो कहते ही हैं कि अपनी भक्ति व प्रशंसा करने वाले पर वह परमेश्वर प्रसन्न हो जाता है और उसके पापों को क्षमा कर देता है तथा अपनी निन्दा करनेवालों पर वह परमेश्वर अप्रसन्न हो जाता है और

उनको निन्दा करने के फलस्वरूप दण्ड देता है ।) ऐसी परिस्थितियों में हम यह कैसे कह सकते है कि वह परमेश्वर सच्चा न्यायकर्ता है ?

ईश्वर को सर्वशक्तिमान, दीन-बन्धु, करुणा-निधान व पतितपावन कहा जाता है । क्या ऐसा नही हो सकता कि एक बार वह परमेश्वर अपनी करुणा से सब प्राणियो के अपराध क्षमा करदे और अपनी सर्वशक्ति-सम्पन्नता से समस्त प्राणियो को सज्जन व सुखी बना दे जिससे इस विश्व से दुख व कष्ट, रोग व शोक सदैव के लिए समाप्त हो जाये । अपनी पृथ्वी पर भी हम यही देखते है कि यदि सदैव के लिये झगडा समाप्त होने की सम्भावना हो, तो सज्जन पुरुष दुष्टो के अपराध क्षमा कर देते है ।

एक बात और, इस बात का निर्णय करने की कसौटी क्या है कि कौनसा कार्य अच्छा है और कौनसा कार्य बुरा है तथा किसी विशेष विषय के सम्बन्ध में किस व्यक्ति की मान्यता ठीक है और किस व्यक्ति की मान्यता ठीक नही है । जैसे बहुत से व्यक्ति धर्म के नाम पर पशुओ की बलि देने को अच्छा कार्य मानते है, जबकि बहुत से अन्य व्यक्ति इस कार्य को अज्ञानता व हिंसा का कार्य मानकर बुरा समझते है । इसी प्रकार बहुत से व्यक्ति मूर्ति को परमेश्वर का रूप मानकर उसकी पूजा व भक्ति करते है, जबकि बहुत से अन्य व्यक्ति मूर्ति को पत्थर व धातु के टुकडे से अधिक नही समझते और उसकी पूजा व भक्ति को अनुचित मानते है । इसी मत-भिन्नता के कारण इस पृथ्वी पर अनेक धर्म व सम्प्रदाय प्रचलित हुए । इन धर्म व सम्प्रदायो के अनुयायी अधिकाश में एक दूसरे से लडते-झगडते रहते है । विभिन्न सम्प्रदायो की तो बात ही क्या, एक ही सम्प्रदाय के दो उप-सम्प्रदायो के अनुयायी भी एक दूसरे का रक्त बहाते रहते हैं और अमान-वीय यातनाए देने से भी नही हिचकिचाते । क्या इन सम्प्रदायो व उप-सम्प्रदायो के अलग-अलग परमेश्वर है जिन्होने अपने-अपने अनुयायियो को अलग-अलग आदेश दे रक्खे है, जिसके फलस्वरूप ये अनुयायी एक दूसरे के कट्टर शत्रु हो रहे है । इन धर्म के ठेकेदारों की ऐसी गतिविधियां देखकर ही आजकल के बहुत से नवयुवक धर्म से विमुख होते जा रहे है । सतो, महात्माओं व धर्मगुरु कहे जाने वाले व्यक्तियों की ऐसी मनोवृत्ति देखकर ही किसी शायर ने क्या खूब कहा है —

खुदा के बन्दों को देखकर ही, खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया,
कि ऐसे बन्दे है जिस खुदा के, वह कोई अच्छा खुदा न होगा ।
('मुनकिर' का अर्थ है 'न मानना')

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी

सर्वशक्तिमान, निराकार, निर्विकार, पूर्णकृतकृत्य, त्रिकालज्ञ, परम-दयालु, दीन-बन्धु, दया-निधान, पतित-पावन, सर्वव्यापक, सच्चे न्याय-कर्त्ता आनन्द-स्वरूप, इस विश्व के कर्त्ता, पालनकर्त्ता व हर्त्ता तथा प्राणियों को उनके कर्मों का फल देने वाले तथाकथित परमेश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। यह परमेश्वर इन विचारकों के मस्तिष्क की ही उपज है। प्रकृति के जिस रहस्य का भी उनको समाधान नही मिला, उस रहस्य को उन्होंने उस परमेश्वर की माया व चमत्कार मान लिया। कुछ विचारको ने तो यहा तक कह दिया कि उस परमेश्वर ने यह आदेश दे रक्खा है कि परमेश्वर के सम्बन्ध में कोई तर्क-वितर्क व विचार भी न करो, नही तो तुम पापी हो जाओगे। मनुष्य के मस्तिष्क और उसकी विचार-शक्ति को कुण्ठित करने का यह कैसा सीधा-सादा तरीका है ?

जिस प्रकार आज कल भी बहुत से आदिवासी प्राकृतिक रूप से घटी घटनाओं, जैसे बिजली का चमकना, पानी का बरसना, नदियो में बाढ आजाना, भूकम्प आजाना आदि घटनाओ से भयभीत होकर उनकी रोक-थाम के लिये किन्ही काल्पनिक देवी-देवताओ की पूजा-उपासना करते रहते है, उसी प्रकार प्राचीन काल में ये विचारक भी ऐसा ही करते रहे होगे। इसके साथ-साथ किन्ही प्राकृतिक शक्तियो के द्वारा अपनी भलाई होते देखकर उन विचारको ने इन प्राकृतिक शक्तियों की भी देवताओ के रूप मे पूजा करनी शुरू करदी होगी। उदाहरण के लिये सूर्य को प्रकाश, गर्मी व शक्ति का स्रोत जानकर तथा उसको अनाज के उत्पन्न होने में सहायक जानकर, सूर्य की पूजा करने लगे। वर्षा के लिये एक विशेष देवता की पूजा करने लगे, इत्यादि। इसी प्रकार उन्होंने इस समस्त विश्व और इन सब देवताओं को बनाने वाले एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर के अस्तित्व की कल्पना करली। उनके पास केवल एक ही तर्क था कि किसी निर्माता के बिना किसी भी वस्तु का निर्माण नही हो सकता और किसी संचालक के बिना कोई भी व्यवस्था चल नही सकती। परन्तु इस कल्पित परमेश्वर के कारण वे अपने द्वारा निर्मित भूल-भुलैयां में स्वयं ही उलझते चले गये।

इस प्रकार हम देखते है किसी परमेश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने और उसको सर्वशक्तिमान तथा इस विश्व का कर्त्ता, पालनकर्त्ता व हर्त्ता मानने के साथ-साथ उसको आनन्दस्वरूप, परम-दयालु, निराकार, निर्विकार, सर्वव्यापक, कृतकृत्य और प्राणियो को उनके कर्मों का फल देने वाला मानने से बहुत से ऐसे प्रश्न उठ खड़े होते है, जिनका कोई तर्क-सम्मत समाधान नही मिल पाता। हम एक वैज्ञानिक-दृष्टि लेकर खोज करने चले है। वैज्ञानिक खोज में किसी भी प्रकार के अन्ध-विश्वासों, पूर्वा-

ग्रहों अथवा गढ़े-गढ़ाये सिद्धान्तो का कोई स्थान नहीं होता। वहां तो केवल प्रयोगो द्वारा मान्यता प्राप्त, तर्कसम्मत तथा अनुभव द्वारा सत्य पाये गये तथ्यों पर ही विश्वास किया जाता है। इस प्रकार तीसरी विचारधारा वाले विचारकों के आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म वाले सिद्धान्त तो तर्क-सम्मत सिद्ध होते है, परन्तु एक सर्वशक्तिमान, कर्त्ता, हर्त्ता व पालन कर्त्ता तथा प्राणियों को उनके कर्मो का फल देने वाले परमेश्वर के अस्तित्व वाला सिद्धान्त तर्क की कसौटी पर खरा नही उतरता।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। यदि हम इन विचारको के मतानुसार एक ऐसे सर्वशक्तिमान परमेश्वर, जिसकी इच्छा से इस विश्व का संचालन हो रहा है, का अस्तित्व मानले, तो इस विश्व के समस्त प्राणी कठपुतली मात्र बनकर रह जायेंगे और उन प्राणियो के पुरुषार्थ का भी कोई महत्त्व नही रह जायेगा।

चौथी विचारधारा का विवेचन

अब हम चौथी विचारधारा पर विवेचन करेंगे।

(विश्व चेतन व जड का संयोग)

इस विचारधारा के विचारको का मत है कि यह विश्व दो प्रकार के तत्त्वो से बना है—एक चेतन, दूसरा जड अर्थात् एक आत्मा (soul) व दूसरा पुद्गल (Matter)। ये दोनो ही तत्त्व अकृत्रिम (जिनको किसी ने नही बनाया हो) अनादि (जिनका कोई प्रारम्भ न हो) तथा अनन्त (जिनका कभी अन्त न हो) है। इन दोनो तत्त्वो का अस्तित्व सदा से है और सदैव तक रहेगा। वास्तव मे आत्मा ही चेतन है। यही सुख व दुख भोगने वाली तथा जानने, देखने, अनुभव करने व विचार करने वाली है। आत्मा का अस्तित्व तो अवश्य है, परन्तु यह अभौतिक—किसी भी प्रकार के पुद्गल से रहित (without any kind of matter) है। इसलिये न तो इसमें तनिक सा भी वजन है न यह किसी भी प्रकार से देखी जा सकती है, न छुई जा सकती है, न यह काटी जा सकती है, न जलाई जा सकती है, न भिगोई जा सकती है। इस आत्मा का स्त्री, पुरुष व नपुंसक कोई लिंग भी नही है। यह केवल अनुभूति के द्वारा जानी जा सकती है। प्रत्येक आत्मा के साथ अनादि काल से (सदैव से) कर्मों का आवरण (एक प्रकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पुद्गल) लगा हुआ है। जब तक किसी आत्मा के साथ कर्मों का आवरण लगा हुआ है तब तक वह आत्मा उन कर्मों के फलस्वरूप ही नये-नये शरीर धारण करती रहती है और उन कर्मों के

अनुसार ही अपने को मिले भौतिक शरीर के माध्यम से सुख व दुख भोगती रहती है। यद्यपि सुख व दुख का अनुभव करती तो आत्मा ही है परन्तु भ्रमवश ऐसा प्रतीत होता है कि यह भौतिक शरीर ही सुख व दुख का अनुभव कर रहा है। यह आत्मा इस शरीर के माध्यम से ही अच्छे व बुरे कार्य करती है और इस शरीर के माध्यम से ही उन कार्यों का फल, सुख व दुख भोगती है। प्रति क्षण पुराने कर्म अपनी अवधि आने पर इस आत्मा को अपना अच्छा व बुरा फल देकर इस आत्मा से अलग होते रहते हैं और प्रतिक्षण ही इस आत्मा की भावनाओ व विचारो के अनुसार नये-नये कर्म आत्मा की ओर आकृष्ट होत रहते है और कर्मों का आवरण बनाते रहते है।

इन विचारको के मतानुसार प्रत्येक प्राणी अनादिकाल से चले आये इस भ्रम व अज्ञान (यह शरीर सुख व दुख का अनुभव करता है) के कारण विभिन्न जन्मो मे अपने को मिलने वाले इस भौतिक शरीर को ही अपना सब कुछ मानता रहा है। यद्यपि जो भी सुख व दुख इस प्राणी को मिलत रहत है वे उसको अपने ही द्वारा भूतकाल मे किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही मिलत रहत है परन्तु अपने अज्ञान के कारण यह प्राणी इस तथ्य का नही समझता। यह प्राणी तो उन प्राणियो को ही अपने को सुख व दुख का देने वाला मानता रहता है जिन प्राणियो के माध्यम से उसको सुख व दुख मिलत है। जिस प्राणी के माध्यम (निमित्त) से उसको सुख मिलता है उस प्राणी का सुख देने वाला मानकर यह प्राणी उससे राग—प्यार—करता रहता है और जिस प्राणी के माध्यम (निमित्त) से उसको दुख मिलता है उस प्राणी को दुख देने वाला मानकर यह प्राणी उससे द्वेष—नफरत—करता रहता है। इन्ही राग-द्वेष की भावनाओ के कारण ही इस प्राणी की आत्मा की ओर नये-नये कर्म आकृष्ट होते रहते हैं, जो भविष्य मे अपनी अवधि आने पर अपना-अपना फल देते रहते है। यह चक्र अनादि काल से ऐसे ही चलता आया है और तब तक इसी प्रकार चलता रहेगा जब तक यह आत्मा मुक्ति प्राप्त नही कर लेती।

परन्तु जब इस प्राणी का यह अज्ञान (मेरा भौतिक शरीर ही मेरा सब कुछ है अर्थात यह भौतिक शरीर ही मैं हू) दूर हो जाता है तब यह प्राणी अपनी आत्मा को अपने भौतिक शरीर से भिन्न मानने लगता है। उस समय यह प्राणी यह समझ लेता है कि उसे जो भी सुख व दुख मिल रहे हैं वे उसको उसके अपने ही द्वारा भूतकाल में किये गये अच्छे व बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही मिल रहे हैं, तथा किसी अन्य प्राणी का इसमें कोई

हार्थ नहीं है। अतः वह उन प्राणियों, जिनके माध्यम से उसे सुख व दुःख मिल रहे हैं, के प्रति राग व द्वेष की भावनाएं भी अपने हृदय में नहीं आने देता। इस प्रकार की साधना से इस प्राणी के नये-नये कर्मों का संचय होना रुक जाता है। इस प्रकार जब यह आत्मा अपने ही सत्-पुरुषार्थ अर्थात् संयम व अहिंसक आचरण आदि के द्वारा नये-नये कर्मों को आने से रोक देती है और तप, त्याग व ध्यान आदि के द्वारा अपने पिछले कर्मों के आवरण को अपने से अलग कर देती है तब यह आत्मा अत्यन्त पवित्र हो जाती है और उस भौतिक शरीर की आयु पूरी होने पर मुक्ति प्राप्त कर लेती है। इस मुक्ति की प्राप्ति यह आत्मा स्वय अपने ही सत्-पुरुषार्थ और अपनी ही शक्ति से कर सकती है। कोई सर्वशक्तिमान परमेश्वर अथवा अन्य कोई भी शक्ति न तो इस प्राणी को मुक्ति ही प्रदान कर सकती है न सुख या दुःख ही दे सकती है।

इन विचारकों ने यह भी बतलाया कि इस विश्व में आत्माओं के अतिरिक्त और जो कुछ भी है, वह सब पुद्गल (Matter) है। यह जितना भी पुद्गल है, वह सब अनादि काल से है, न तो इसका अणुमात्र भी कभी नया बनता है और न इसके अणुमात्र का कभी विनाश ही होना है। हा, इसका रूप परिवर्तन अवश्य होता रहता है, जैसे आज जो पत्थर का टुकड़ा है कल कोई मूर्तिकार उसको तराश कर, उसमे से एक मूर्ति बना देता है। कालान्तर में वह मूर्ति टूट फूट जाती है और मिट्टी का रूप ले लेती है। इसी प्रकार हम जिन वृक्षो को बढता हुआ देखते है वे भी कोई नई वस्तु नही बन रहे होते, हवा, पानी, मिट्टी, सूर्य की किरणो आदि से पोषक तत्त्व ग्रहण करके ये वृक्ष बढते है। एक बढई उनकी लकडी से मेज, कुर्सी, अलमारी आदि बना देता है। कुछ समय के पश्चात् वह लकडी गल-गल कर व घिस-घिस कर मिट्टी में मिल जाती है। जलाने से वह लकडी गर्मी उत्पन्न करती है और फिर राख बन जाती है। इसी प्रकार एक बालक हवा, पानी, भोजन आदि से पोषक तत्त्व ग्रहण करके एक युवा पुरुष बन जाता है। ये सब परिवर्तन स्वाभाविक रूप से ही होते रहते हैं। परन्तु इन परिवर्तनो के फलस्वरूप किसी भी नये परमाणु का निर्माण नही होता, कोई बिल्कुल नई वस्तु या जड़ से चेतन अथवा शून्य से भौतिक वस्तु अस्तित्व में नहीं आती।

परमात्मा का स्वरूप

"यह विश्व और यहां की समस्त आत्माएं तथा पुद्गल अकृत्रिम अनादि व अनन्त हैं", "प्राणियों को अपने द्वारा किये हुये कर्मों के फल के

अनुसार स्वतः ही सुख व दुःख मिलते रहते हैं", "यह विश्व स्वाभाविक रूप से स्वतः ही संचालित हो रहा है"—इन मान्यताओं के कारण इन विचारकों ने किसी भी प्रकार के कर्त्ता, पालनकर्त्ता, हर्त्ता तथा प्राणियों को उनके कर्मों का फल देने वाले सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अस्तित्व मानने से इन्कार कर दिया। इनकी मान्यता है कि जो भी प्राणी अपने समस्त कर्मों को नष्ट कर देता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है तथा वही परमात्मा (परम-आत्मा, परम-श्रेष्ठ, परम-शुद्ध, आत्मा) हो जाता है। वह मुक्त आत्मा न तो फिर इस विश्व में लौटकर ही आता है और न सुख-दुःख पाने व नये-नये शरीर धारण करने के चक्कर मे ही पड़ता है। एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर वह सदैव के लिये मुक्ति में ही रहता है और एक अपूर्व, अनुपम, अतीन्द्रिय व निर्बाध (बाधा रहित) परम-आनन्द को भोगता रहता है। वह परमात्मा पूर्ण वीतरागी होता है। अतः न तो किसी की भक्ति व प्रशंसा से वह प्रसन्न ही होता है और न किसी की निन्दा से अप्रसन्न ही। वह परमात्मा पूर्ण रूप से निर्विकार और कृतकृत्य होता है। इसलिये उसके हृदय में किसी का हित व अहित करने और कुछ बनाने व बिगाड़ने का विचार भी नही आता।

एक बात और, मुक्ति प्राप्त कर लेने पर किसी भी मुक्त आत्मा का किसी परम-आत्मा मे विलय नही हो जाता। अपितु प्रत्येक मुक्त-आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहता है।

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट है कि चौथी विचारधारा के माध्यम से हमारी बहुत सी शंकाओं का तर्कसम्मत समाधान मिल जाता है तथा पिछले पृष्ठों में दी गयी विषमताओं और विडम्बनाओं के भी तर्क-सम्मत कारणों का ज्ञान हो जाता है।

चौथी विचारधारा के विचारकों ने संक्षेप में निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है :—

(१) यह विश्व अर्थात् इसकी समस्त आत्माएं व सभी प्रकार के पुद्गल द्रव्य अकृत्रिम, अनादि व अनन्त है।

(२) न तो किसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने कभी इस विश्व का निर्माण ही किया था और न वह परमेश्वर कभी इसका मूल से विनाश ही कर सकता है। वास्तव में कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता जैसे किसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह विश्व स्वाभाविक रूप से स्वतः ही संचालित हो रहा है।

(३) प्रत्येक चेतन प्राणी में आत्मा व्याप्त है तथा यह आत्मा उस प्राणी के भौतिक शरीर से बिल्कुल भिन्न होती है।

(४) इस विश्व की समस्त आत्माओं (प्राणियों) के साथ अनादि काल से कर्मों का आवरण लगा हुआ है। इन कर्मों के फल-स्वरूप ही ये प्राणी नये-नये शरीर धारण करते रहते है और सुख व दु:ख भोगते रहते है। इन प्राणियो को जो भी सुख व दु:ख मिलते है, वे उनको अपने ही द्वारा भूतकाल में किये गये अच्छे व बुरे कर्मों के फलस्वरूप स्वत ही मिलते रहते है। अपने ही द्वारा किये गए कर्मों के अतिरिक्त कोई भी अन्य प्राणी अथवा शक्ति उनको सुख व दुख देने में समर्थ नही है। हां, दूसरे प्राणी उनको सुख व दु:ख देने मे निमित्त अवश्य बन जाते है।

(५) जब यह प्राणी अपने ही सत्प्रयत्नो के द्वारा इस कर्मों के आवरण को अपनी आत्मा से अलग कर देगा, तब वह मुक्ति प्राप्त कर लेगा। एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर वह आत्मा सदैव के लिये मुक्ति मे ही रहती है और फिर कभी भी लौटकर इस विश्व मे नही आती।

(६) यह प्राणी केवल अपने ही सत्प्रयत्नो से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। कोई भी अन्य शक्ति इस प्राणी को मुक्ति प्रदान नहीं कर सकती।

(७) मुक्ति में आत्मा के साथ किसी भी प्रकार का भौतिक शरीर नही रहता। अभौतिक होते हुए भी मुक्ति में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है और वह अनन्तकाल तक एक अपूर्व अनुपम, अतीन्द्रिय परम-आनन्द का उपभोग करती रहती है।

वस्तुत ये सभी सिद्धान्त अनिवार्य रूप से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। एक को स्वीकार करने पर हमें सभी को स्वीकार करना पड़ेगा।

इनको भली प्रकार समझने के लिये अगले पृष्ठों में हम इन्हीं सिद्धान्तों का यथाशक्ति विस्तार से विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे।

आत्मा

जिस चौथी विचारधारा पर हम विवेचन कर रहे हैं उसके मुख्य सिद्धान्त—आत्मा का अस्तित्व और पुनर्जन्म (आत्मा द्वारा अपने कर्मों के फलस्वरूप नये-नये शरीर धारण करना) है। इन विचारकों की मान्यता है कि यह आत्मा अकृत्रिम (जो किसी के द्वारा बनाई नही गयी हो), अनादि (जिसका कोई आदि—आरम्भ—न हो), व अनन्त (जिसका कभी अन्त न हो) है। यह आत्मा अजर, अमर तथा स्वतन्त्र रूप से जानने व देखने वाली है। यह अभौतिक (without any kind of matter) है। अभौतिक होने के कारण यह किसी भी भौतिक पदार्थ से प्रभावित नही होती, किसी भी भौतिक प्रक्रिया से इसको घटाया-बढाया नही जा सकता। न इसको अग्नि से जलाया जा सकता है न पानी से भिगोया जा सकता है और न शस्त्र से काटा जा सकता है। इसके किसी गुण अथवा शक्ति को नष्ट भी नहीं किया जा सकता। इतना अवश्य है कि इसके ऊपर कर्मों का आवरण पड़ा रहने से इसकी शक्तियाँ व गुण पूर्ण रूप से प्रकट नही हो पाते। जैसे बादलो से सूर्य के ढक जाने पर सूर्य का पूरा प्रकाश फैलने नही पाता, इसी प्रकार आत्मा पर कर्मों का आवरण होने से इसकी शक्ति व गुण पूर्ण रूप से प्रकट नही हो पाते। जैसे-जैसे कर्मों का आवरण घटता व बढ़ता रहता है उसी के अनुसार इसकी शक्ति व गुण अधिक व कम मात्रा में प्रकट होते रहते है। अपने ही कर्मों के फलस्वरूप यह आत्मा जो भी शरीर धारण करती है, यह उस शरीर के आकार की ही हो जाती है। अपने द्वारा किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही आत्मा को सुख व दु.ख मिलते रहते है। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि सुख व दु.ख इस शरीर को मिल रहे है परन्तु वास्तव में उन सुखो व दुःखो का अनुभव यह आत्मा ही करती है क्योंकि यह शरीर तो जड़ होता है।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि आत्मा जैसी किसी वस्तु का कोई अस्तित्व ही नही है तथा अनेको देशो मे आत्मा के अस्तित्व को मान्यता नही दी गयी है। परन्तु यह ठीक नही है। हिन्दी में आत्मा के अर्थ सूचक चेतन व जीव शब्द है, उर्दू में रुह और अंग्रेजी में soul शब्द हैं; इसी प्रकार अन्य देशो की भाषाओ मे भी आत्मा के अर्थसूचक शब्द हैं। ये शब्द कोई नये नहीं गढ़े गये, अपितु बहुत प्राचीन शब्द हैं। अन्य देशों

की भाषाओं में आत्मा के अर्थसूचक शब्दो का होना ही इस तथ्य का प्रमाण है कि इन देशों में आत्मा के सम्बन्ध में किसी-न-किसी प्रकार की धारणा अवश्य चली आ रही है।

इस सम्बन्ध मे एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। दूसरी विचार धारा के विचारको की मान्यता है कि उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने इस विश्व के प्राणियो को पहली बार ही उत्पन्न किया है अर्थात् उनका कोई अतीत नही है। परन्तु ये प्राणी यहा पर अच्छे या बुरे जैसे भी कार्य करेगे उनकी मृत्यु के बाद उन प्राणियो को, उनके किये हुए कार्यों के अनुसार ही नरक या स्वर्ग में डाल दिया जायेगा। प्रश्न यह है कि प्राणियो का भौतिक शरीर तो यही रह जाता है, कुछ शरीर जला दिये जाते है। कुछ भूमि में दफना दिये जाते है, कुछ पानी में बहा दिये जाते है (तात्पर्य यही है कि समस्त भौतिक शरीर यही पर नष्ट हो जाते है) फिर सुख व दु ख भोगने के लिये स्वर्ग व नरक मे किस वस्तु को भेजा जाता है? थोडा सा विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इस भौतिक शरीर के साथ किसी-न-किसी अभौतिक पदार्थ का सम्बन्ध अवश्य ही रहता है तथा उसी अभौतिक पदार्थ को सुख व दु ख भोगने के लिये स्वर्ग व नरक मे भेजा जाता है। उस अभौतिक पदार्थ को ही आत्मा कह सकते है।

अब से तीन चार हजार वर्ष पहले मिस्र देश मे मृत शरीरो पर रसायन लगाकर उन्हे कक्षो मे सुरक्षित रक्खा जाता था। उन मृत शरीरो के साथ जीवन मे उपयोग मे आने वाली अनेको वस्तुए भी उन कक्षों मे रक्खी जाती थी। अमीरो व राजाओ के शवो के साथ अनेको दास व दासियों को भी दफना दिया जाता था। तत्कालीन मिस्र निवासियों का यह विश्वास था कि ये मृत व्यक्ति भविष्य मे फिर से जीवित होगे और उस समय ये सब वस्तुए व दास-दासिया उनके काम आयेगी। तात्पर्य यही है कि उस समय के मिस्र-वासियो का यह विश्वास था कि मृत व्यक्ति फिर से जीवित होगे। अर्थात् किसी विशेष तत्त्व की कमी हो जाने से प्राणी की मृत्यु हो जाती है और जब वह विशेष तत्त्व फिर से आ जाता है तो प्राणी जीवित हो जाता है। वह विशेष तत्त्व आत्मा के समान ही कोई वस्तु हो सकती है।

संसार के लगभग प्रत्येक देश में कुछ व्यक्ति आत्म-हत्या करते रहते है। आत्म-हत्या करने वाले यही विश्वास करते है कि आत्म-हत्या करने से वे शारीरिक और मानसिक कष्टों से छूट जायेंगे। आत्म-हत्या चाहे किसी भी तरीके से की जाये, आत्म-हत्या करने के बाद यह भौतिक शरीर तो

यही पड़ा रहता है। तब वे शारीरिक व मानसिक कष्टों से कैसे छूटे ? स्पष्ट है कि इस भौतिक शरीर से किसी ऐसे तत्त्व का सम्बन्ध है जो शारीरिक व मानसिक कष्टो का अनुभव करता है और आत्म-हत्या करने के पश्चात् यह अनुभव करने वाला तत्त्व इस भौतिक शरीर से प्रथक हो जाता है। इसी अनुभव करने वाले चेतन तत्त्व को ही आत्मा कहते हैं।

जो व्यक्ति दूसरे की हत्या करते है, वे भी यही सोचते हैं कि इस व्यक्ति की हत्या कर देने से यह मेरा कुछ भी बुरा नही कर सकेगा। जिसकी हत्या की जाती है उस व्यक्ति का भौतिक शरीर तो यही रहता है परन्तु उसकी चेतना, उसकी अनुभव करने की शक्ति या यह कहले कि उसकी वह शक्ति जिसके द्वारा प्राणी के सारे क्रिया-कलाप सचालित होते है, उस भौतिक शरीर से निकल जाती है। उस सचालक शक्ति को ही आत्मा कहते है।

अब हम इस आत्मा के लक्षणो का वर्णन करेगे।

आत्मा अभौतिक है

सबसे पहले यही प्रश्न उठता है कि जब आत्मा किसी भी प्रकार से दिखलाई नही देती, तब हम उसका अस्तित्व कैसे स्वीकार करले ?

इस सम्बन्ध मे हम यही कह सकते है कि आत्मा कोई भौतिक पदार्थ (Material object) नही है जो यह किसी शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से दिखाई दे सके। यह तो केवल तर्क द्वारा समझाई जा सकती है और अनुभूति द्वारा जानी जा सकती है।

एक क्षण पहले ही मृत हुए व्यक्ति का शव हम देखे, तो हमे उस शव मे कोई भी विकार दिखाई नही देगा। परन्तु जैसे जैसे समय बीतता जाता है उस शव मे विकार उत्पन्न होते जाते है। तुरन्त ही मरे हुए व्यक्ति की आखे, हृदय रक्त व गुर्दे आदि अग बिल्कुल ठीक अवस्था मे होते है। शल्य चिकित्सक तुरन्त के मरे हुए व्यक्तियो के शरीरो से इन अगो को निकाल कर ऐसे रोगी व्यक्तियो के लगा देते हैं जिनके ये अग खराब हो चुके होते है। इसी प्रकार तुरन्त के मरे हुए व्यक्ति का रक्त भी किसी अन्य व्यक्ति के शरीर मे चढाया जा सकता है। इन तथ्यो को दृष्टि मे रखकर यदि हम खोज करे कि कि उस व्यक्ति मे किस वस्तु की कमी हो गयी थी जिससे कि उसकी मृत्यु हो गयी, तो हम पायेगे कि जिस वस्तु की कमी हो गयी थी, वह आत्मा ही थी। शरीर मे आत्मा के रहने पर ही यह शरीर वर्षों तक ठीक दशा मे रहता है, परन्तु इसी शरीर मे आत्मा के न रहने पर वह कुछ ही घन्टो में खराब हो जाता है और

उसमें से दुर्गन्ध आने लगती है। यद्यपि कुछ रसायनो का प्रयोग करके शवों को सुरक्षित रखा जा सकता है, परन्तु फिर भी वे जीवित नही होते।

इन तथ्यो से यही प्रमाणित होता है कि जीवित प्राणियो मे आत्माएं होती है और ये समस्त आत्माए अभौतिक होती है।

इस सम्बन्ध मे एक तथ्य और भी ध्यान मे रखने योग्य है। प्रत्येक मनुष्य के शरीर मे अनेकों प्रकार के कीटाणु व रोगाणु होते है। कुछ वर्षों पहले तक इन कीटाणुओ व रोगाणुओ को किसी ने भी नही देखा था। परन्तु शरीर पर पड़ने वाले इनके प्रभावो को देखा जाता था और अनुभव भी किया जाता था। अब तो बहुत ही अधिक शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षण यत्र (Microscope) बन गये है, जिनके द्वारा इनमे से बहुत से कीटाणुओ व रोगाणुओ को देखा जा सकता है। यह भी बहुत सम्भव है कि अभी भी कुछ कीटाणुओं व रोगाणुओं को देखा न जा सका हो (क्योकि अब भी कुछ रोग ऐसे है जिनके कारणो का पता नही चल सका है। बहुत सम्भव है कि ये रोग अब तक न देखे जा सकने वाले रोगाणुओ व कीटाणुओ के कारण ही होते हो)। इस प्रकार हम देखते है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म द्रव्यो के अस्तित्व का पता उनके द्वारा किये जाने वाले प्रभावो के कारण ही चलता है। यही बात बैक्टीरिया के सम्बन्ध मे भी है। सम्भव है कि कुछ बैक्टीरिया अभी भी देखे न जा सके हो, परन्तु उनके द्वारा किये गये प्रभावो के द्वारा हमको उनके अस्तित्व का पता चलता है।

एक धातु का तार है। क्या हम केवल देखकर ही बतला सकते है कि उस तार मे विद्युत-प्रवाह (Electric Current) है या नही? जब हम उसको छूते है या उसके साथ कोई यन्त्र लगाते हैं तभी हमको उस तार में हो रहे विद्युत-प्रवाह (electric current) के अस्तित्व का पता चलता है। वैज्ञानिक यही कहते है कि असंख्य इलैक्ट्रोनो का अत्यधिक तीव्र गति से चलना ही विद्युत-प्रवाह है, परन्तु हम इसको आखो से नही देख पाते।

इसी प्रकार आत्मा, अभौतिक होने के कारण, किन्ही भी शक्तिशाली यन्त्रो से देखी नही जा सकती। परन्तु आत्मा की जानने, देखने व अनुभव करने की शक्ति के कारण ही हमे आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

जानने, देखने व अन्य विषयों को ग्रहण करने वाली शक्ति आत्मा ही है

साधारणतया यह कहा जाता है कि हम अपनी आंखों से देखते हैं, कानो से सुनते है, जिह्वा से स्वाद लेते है तथा शरीर की त्वचा से ठण्डे, गरम, रूखे, चिकने आदि का अनुभव करते है; परन्तु यह सत्य नही है। तथ्य तो यह है कि ये इन्द्रियां केवल उपकरण मात्र है। अनुभव करने की, जानने-देखने की तथा सभी विषयो के ग्रहण करने की शक्ति तो आत्मा में ही है। आत्मा साधारणतया इन इन्द्रियो के माध्यम से ही विषयो को ग्रहण करती है।

यहा पर यह शंका उठती है कि जब आत्मा ही समस्त विषयो को ग्रहण करने वाली है, तो हम इन्द्रियो के बिना भी विषयों का ग्रहण क्यों नही कर सकते ?

इसके उत्तर मे हम आपको एक उदाहरण देते है। मान लीजिये आप एक अंधेरे कमरे में बैठे हुए हैं। उस कमरे में तनिक भी प्रकाश नहीं है। आपकी आखे भी खुली हुई हैं, फिर भी आप कुछ भी देख नही पाते। तब आप प्रकाश करते है और तत्क्षण ही कमरे की समस्त वस्तुएं आपको दिखाई देने लगती है। यहां पर देखने का कार्य तो आख ने ही किया है, परन्तु किया है प्रकाश की सहायता से। इसी प्रकार विषयों के ग्रहण करने का कार्य तो हमारी आत्मा ही करती है, परन्तु करती है इन्द्रियो के माध्यम से ही।

यहा पर एक और तथ्य की ओर भी पाठको का ध्यान दिलाना चाहता हू। साधारणतया तो यह आत्मा इन्द्रियो के माध्यम से ही विषयो को ग्रहण करती है, परन्तु कुछ ऐसे उदाहरण भी है जब यह आत्मा इन्द्रियों के बिना भी विषयो को ग्रहण कर लेती है। इस पृथ्वी पर ऐसे व्यक्ति भूत-काल मे भी हुए हैं और अब भी है, जो कोई तो साधना के द्वारा प्राप्त शक्ति के बल पर और कोई बिना साधना के हो यह जान लेते है कि दूसरे स्थानों पर क्या घटना घट रही है। कुछ व्यक्तियों को भूतकाल में घट चुकी और भविष्य में घटने वाली घटनाओं का आभास हो जाता है। कुछ व्यक्ति आखो पर पट्टी बाध कर भीड़-भाड़ वाले बाजारो व सड़कों पर मोटर-साइकिल चला लेते हैं। कुछ व्यक्ति, आंखों से देखे बगैर ही पुस्तक पढ़ लेते है तथा रगो को पहचान लेते हैं। ऐसे अतीन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न कुछ व्यक्तियो का वर्णन हमने इस पुस्तक के "अद्‌भुत व आश्चर्य जनक जगत" नामक अध्याय में तथा अन्यत्र भी किया है।

आधुनिक वैज्ञानिक भी अतीन्द्रिय शक्ति के सम्बन्ध मे प्रयोग कर रहे है। वे एकाग्रमन से किसी दूरस्थ वस्तु अथवा स्थान पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है तो उस वस्तु व स्थान का पर्याप्त सीमा तक ठीक-ठीक वर्णन कर देते है, भले ही उन्होने उस वस्तु तथा स्थान को अपने जीवन मे कभी देखा ही न हो।

चैकोस्लोवाकिया के परामनोवैज्ञानिक डाक्टर मिलान रायजल ने भी अतीन्द्रिय शक्तियो के कुछ सफल प्रयोग किये है। डाक्टर मिलान रायजल किसी व्यक्ति को सम्मोहित करके उससे भविष्य में घटने वाली घटना के सम्बन्ध मे पूछते है और वह व्यक्ति भविष्य मे घटने वाली उस घटना का ऐसा वर्णन कर देता है जैसे कोई आखो देखा हाल सुना रहा हो।

इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि देखने, जानने व अन्य विषय ग्रहण करने का कार्य इन्द्रियो का सहायता के बगैर भी हो सकता है। परन्तु आत्मा के बगैर न तो हम देख सकते है, न जान सकते है न अन्य कोई विषय ग्रहण कर सकते है। उदाहरण के लिये मृत प्राणी समस्त इन्द्रियों के होते हुए भी कोई भी विषय ग्रहण नही कर सकता। अत जानने, देखने व अन्य विषय ग्रहण करने वाली वास्तविक शक्ति आत्मा ही है।

आत्मा का लक्षण . उपयोग

हम सब का अनुभव है कि हम केवल—वही विषय ग्रहण कर पाते है जिस विषय की ओर हमारा उपयोग—ध्यान लगा होता है। मान लीजिये आप कोई चल-चित्र देख रहे है। उस चल-चित्र को देखने मे आप पूरी तरह तल्लीन है। उस समय आपका सारा उपयोग चल-चित्र की ओर लगा रहता है। आपकी आखो के सामने अन्य व्यक्ति आ-जा रहे है, आपके पास ही कुछ खटपट हो रही है, किसी ने आपकी जेब से आपका बटुआ निकाल लिया है, परन्तु इन सब बातो से आप बिल्कुल बेखबर है। क्योकि उस समय आपका सारा उपयोग उस चल चित्र पर ही लगा होने के कारण अन्य घटनाओ की ओर आपका उपयोग नही है। इसी प्रकार हमारी आखो के सामने बहुत सी घटनाए हो रही है, परन्तु हमारा उपयोग किसी एक वस्तु अथवा एक छोटे से बिन्दु की ओर लगा हुआ है। उस समय हमे उस वस्तु अथवा उस बिन्दु के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नही देता, जैसे-जैसे हम उस वस्तु अथवा बिन्दु को देखने में तन्मय होते जाते है, वैसे-वैसे हमारी दृष्टि से शेष दृष्य ओझल होता जाता है।

सोते हुये व्यक्ति को अर्धमृतक की संज्ञा दी जाती है। सोते समय हमारे नाक व कान खुले रहते है, कुछ व्यक्तियो की तो सोते समय आंखे

भी खुली रहती है। उस समय इन इन्द्रियों की यान्त्रिक क्रियायें भी होती ही रहती हैं। परन्तु सोया हुआ व्यक्ति, इन यान्त्रिक क्रियाओं के होते रहने पर भी अपने नाक, कान, आंख से कुछ भी विषय ग्रहण नहीं कर पाता, क्योंकि सोया हुआ होने के कारण उस व्यक्ति का उपयोग इन इन्द्रियों की ओर नहीं होता। ऐसे ही जागते हुए व्यक्ति के शरीर में शक्ति होती है, परन्तु सोते समय उसका शरीर शिथिल हो जाता है, क्योंकि सोए हुए व्यक्ति का उपयोग शरीर की ओर लगा हुआ नहीं होता।

प्राचीन समय मे जब आज के समान रोगी को चेतना-शून्य करने के लिये क्लोरोफार्म व इजेक्शन जैसे कोई साधन उपलब्ध नहीं थे, उस समय शल्य-चिकित्सक रोगी का उपयोग किसी दूसरी ओर लगा देते थे और उसके पश्चात् ही रोगी की शल्य-क्रिया करते थे। ऐसा करने से रोगी को बिल्कुल भी कष्ट नहीं होता था। (इसको हम एक प्रकार का सम्मोहन—हिपनोटाइज—करना भी कह सकते है)। आजकल फिर से इस पद्धति का प्रयोग होने लगा है।

इस उपयोग को और अधिक स्पष्ट समझने के लिए हम कैमरे के लैन्स (शीशे) का उदाहरण ले सकते है। उस लैन्स के फोकस में जो वस्तु होती है, वह हमको बहुत स्पष्ट दिखलाई देती है और अन्य वस्तुएँ दिखलाई देते हुए भी धुँधली रह जाती है। एक अन्य उदाहरण हम टॉर्च का भी ले सकते है। टॉर्च से हम जहां प्रकाश फेंकते है, केवल वही स्थान प्रकाशित होता है, बाकी सब स्थान चाहे वह टॉर्च के समीप ही क्यो न हो अन्धकार मे ही रहते है। इसी प्रकार जिस ओर हमारा उपयोग लगा होता है, हमे उसी पदार्थ का ज्ञान होता है, अन्य पदार्थों का नही।

यह उपयोग क्या है? वास्तव मे यह उपयोग आत्मा का ही लक्षण है, जिसके द्वारा हमें आत्मा की अनुभूति होती है।

आत्मा का स्वरूप : ज्ञान

आत्मा का लक्षण जानना और देखना है। हम यह भी कह सकते है कि जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहीं-वहीं जानना अर्थात् ज्ञान है। ज्ञान और आत्मा एक दूसरे से अभिन्न हैं। विभिन्न आत्माओं पर कर्मों का हल्का व गाढ़ा, भिन्न-भिन्न प्रकार का आवरण होने के कारण, भिन्न-भिन्न प्राणियों के ज्ञान में अधिकता व न्यूनता होती है, परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता कि जहां आत्मा हो वहां ज्ञान न हो। हम भौतिक पदार्थों को देखें, उनमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता। परन्तु प्रत्येक जीवित प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी या सूक्ष्म कीट-पतंग अथवा वनस्पति, उसके कुछ न कुछ ज्ञान

अवश्य होता है। परन्तु जैसे ही उसकी मृत्यु हो जाती है, वैसे ही उसका मृत शरीर ज्ञान-शून्य हो जाता है। यदि शरीर के भौतिक अगो अर्थात् आंख, कान, मास, रक्त, हड्डी, दिल, दिमाग इत्यादि में ज्ञान होता, तो वह मृत शरीर मे भी अवश्य रहता। परन्तु ये सब अंग ज्ञान-शून्य होते है। जब तक शरीर मे आत्मा रहती है, तभी तक हम इन अगो के माध्यम से देख और जान सकते है तथा अच्छा व बुरा अनुभव कर सकते हैं।

एक बात और है, यदि ज्ञान इस भौतिक शरीर का लक्षण होता, तो बड़े शरीर में अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान होता और छोटे शरीर मे अपेक्षाकृत कम। परन्तु यह बात अनुभव के विपरीत है। हम अधिकाश मे देखते है कि एक लम्बे-चौड़े पहलवान मे एक छोटे दुबले-पतले विद्वान व्यक्ति की अपेक्षा कम ज्ञान होता है।

कुछ व्यक्ति यह शका कर सकते है कि जब सभी प्राणियो मे आत्मा होती है और आत्मा का लक्षण ज्ञान है, तो सभी प्राणियो को एक समान ज्ञान क्यो नही होता ?

तथ्य यह है कि आत्मा तो वस्तुत ज्ञानमय ही है, परन्तु इस पर कर्मों का आवरण पडा हुआ है, और इस कर्मों के आवरण के कारण ही आत्मा का ज्ञान-गुण ढका रहता है। जैसे-जैसे कर्मो का आवरण हल्का होता जाता है, वैसे-वैसे ज्ञान-गुण अधिकाधिक प्रकट होता जाता है। विश्व के समस्त प्राणियो की आत्माओ पर भिन्न-भिन्न मात्राओ मे कर्मों का आवरण है, इसीलिये विश्व के प्रत्येक प्राणी के ज्ञान मे भिन्नता होती है। कोई कम ज्ञानी होता है तो कोई अधिक ज्ञानी। भिन्न-भिन्न प्राणियों की बात तो जाने दीजिये, एक ही व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न अवसरो पर ज्ञान की न्यूनता व अधिकता पाई जाती है।

आत्मा के ज्ञान की तुलना हम सूर्य के प्रकाश से और कर्मों के आवरण की तुलना हम बादलो से कर सकते है। सूर्य तो निरन्तर ही अपने सम्पूर्ण प्रकाश के साथ विद्यमान रहता है। परन्तु हमारे और सूर्य के बीच में, आकाश मे बादल आ जाने से सूर्य का सम्पूर्ण प्रकाश हम तक नही पहुंचता। सूर्य के प्रकाश की मात्रा बादलो के घनत्व पर निर्भर करती है। यदि बादल घने हो तो प्रकाश कम होता है। जैसे-जैसे बादलो का घनत्व कम होता जाता है, वैसे-वैसे प्रकाश अधिकाधिक होता जाता है। इसी प्रकार आत्मा तो ज्ञानमयी ही है, परन्तु उस पर कर्मों का आवरण पड़ा हुआ होने के कारण उस का ज्ञान-गुण पूर्ण रूप से प्रकट नही हो पाता। जैसे-जैसे यह कर्मों का आवरण कम होता रहता है आत्मा का ज्ञान-गुण अधिकाधिक प्रकट होता जाता है।

प्रत्येक प्राणी में —चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी—हर्ष, विषाद, प्रेम, घृणा आदि की भावनाएं होती हैं। ये भावनाएं कहां से उत्पन्न होती हैं ? क्या ये भावनाएं प्राणियों के रक्त, मांस, हड्डी, त्वचा आदि की गुण हैं ? यदि ये भावनाएं इन भौतिक अंगों की गुण होतीं, तो ये सदैव ही इन सब भौतिक अगों में पाई जाती। परन्तु ऐसा कभी नही होता। ज्ञान के समान ये भावनाएं भी केवल जीवित प्राणियों में ही होती हैं। इसलिये ये भावनाएं भी शरीर में किसी अभौतिक पदार्थ, जो वास्तव में आत्मा ही है, की अनुभूति कराती हैं।

हम कहते है, "हम सोच विचार कर रहे है, हमने यह कार्य करने का संकल्प किया है, हमको अपने बचपन की याद है।" परन्तु क्या ये सब कार्य इस शरीर अथवा इसके किसी विशेष अंग के है ? अगर ये कार्य इस शरीर अथवा इसके किसी विशेष अंग के ही होते तो मृत शरीर भी ये सब कार्य कर सकता था, परन्तु ऐसा कभी नही होता। वास्तव में ये सब कार्य उस ज्ञानमयी आत्मा के ही है, जिसके इस शरीर से निकल जाने पर ही प्राणी मृत कहलाता है।

यहा पर हम एक और तथ्य की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करना चाहते है। आधुनिक वैज्ञानिक यह मानते है कि एक मनुष्य के मस्तिष्क का वजन लगभग १३०० ग्राम होता है। परन्तु इसमें कई अरब (Nerve-Cells) कोषिकाएं होती है। यदि मनुष्य इन समस्त कोषिकाओं से काम लेने लगे, तो वह समस्त विश्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परन्तु एक साधारण व्यक्ति में इन कोषिकाओ में से केवल दो या तीन प्रतिशत से ही काम लेने की क्षमता होती है। इसीलिये एक साधारण व्यक्ति का ज्ञान बहुत ही सीमित होता है। या हम यह कह लें कि मनुष्य में विश्व का समस्त ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता तो है, परन्तु वह ऐसा कर नही पाता। इस तथ्य से भी विभिन्न प्राणियों में न्यूनाधिक ज्ञान होने की पुष्टि होती है।

आत्मा स्वभाव से ही निर्मल है

यह आत्मा स्वभाव से तो निर्मल ही है, परन्तु अनादिकाल से इस पर कर्मों का आवरण पड़ा होने के कारण इसकी निर्मलता पर परदा पड़ा हुआ है जिसके फलस्वरूप यह अनादि काल से ही नये-नये शरीर धारण करने (जन्म मरण करने) और सुख-दुःख भोगने के चक्कर में पड़ी हुई है। यह आत्मा स्वयं अपनी शक्ति और अपने सत्-प्रयत्नों से ही इन कर्मों को अपने से अलग करके अत्यन्त निर्मल हो सकती है और मुक्ति प्राप्त

कर सकती है। यदि यह आत्मा स्वभाव से ही निर्मल नही होती, तो कैसे तो इससे कर्म अलग होते और कैसे यह मुक्ति प्राप्त करती ? उदाहरणार्थ, हम यह जानते हैं कि शुद्ध सोना चमकीला व पीला होता है। परन्तु खान से निकले हुए सोने में अनादि काल से विजातीय द्रव्यो का मिश्रण होने के कारण वह अपने स्वाभाविक रूप-रग मे नही दिखता। इसीलिये हम उसको उसकी स्वाभाविक दशा मे लाने के लिये रासायनिक प्रक्रियाओ द्वारा शोधते हैं, जिससे वह अपने स्वाभाविक रूप-रंग व चमक-दमक का हो जाता है। यदि सोना स्वभाव से ही चमकीला व पीला नही होता, तो हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी वह चमकीला व पीला नही किया जा सकता था। इसी प्रकार आत्मा भी स्वभाव से ही निर्मल है, तभी वह कर्मों को अपने से अलग करके अत्यन्त निर्मल दशा को प्राप्त कर लेती है।

आत्मा स्वभाव से ही आनन्दमयी है

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है और दुख से डरता है। यद्यपि सुख व दुख के सम्बन्ध में प्रत्येक प्राणी की मान्यता भिन्न-भिन्न है (जैसे कोई शारीरिक सुख को ही सुख मानता है, कोई धन-सग्रह करने में ही सुख मानता है, कोई मदिरापान में ही सुख मानता है, कोई तप, त्याग ध्यान आदि करने व सयम पालने में ही सुख मानता है), परन्तु चाहते सब सुख ही है। वे जो भी कार्य करते है, अन्तत सुख पाने के लिए ही करते है। हम अज्ञानवश यह समझ बैठे है कि हमको जो सुख व दुःख मिल रहे हैं, उनको हमारा शरीर ही भोग रहा है। परन्तु यह ठीक नही है। वास्तविकता तो यह है कि सुख व दु.ख का अनुभव हमारी आत्मा ही करती है। शरीर तो केवल माध्यम मात्र ही है। यदि सुख व दु.ख का अनुभव करने वाला हमारा शरीर ही होता, तो मृत्यु के पश्चात् जब आत्मा शरीर से निकल जाती है, उस समय भी यह शरीर सुख व दुख का अनुभव करता रहता। परन्तु ऐसा कभी नही होता। अत निष्कर्ष यही निकलता है कि सुख व दुःख का अनुभव हमारी आत्मा ही करती है। विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। इसका वास्तविक अर्थ यही है कि प्रत्येक आत्मा सुख चाहती है। क्योकि आत्मा स्वाभाविक रूप से आनन्दमयी है, इसीलिये वह सुख में रहना चाहती है।

तथ्य तो यह है कि आत्मा को अपने ही द्वारा भूतकाल में किये हुए बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही दुःख भोगने पड़ते है। यदि उसके कर्म नष्ट हो जायें, तो वह अपनी स्वाभाविक अवस्था में ही रहेगी जो आनन्दमयी है। जिस प्रकार किसी रोगी का रोग दूर होने पर वह प्राणी स्वतः ही स्वस्थ

हो जाता है, क्योंकि स्वस्थ अवस्था ही प्रत्येक प्राणी की स्वाभाविक अवस्था है। चिकित्सक किसी भी प्राणी को स्वास्थ्य प्रदान नहीं करते। वे तो प्राणियो के रोग दूर करने के लिए चिकित्सा करते हैं। रोग दूर होने पर प्राणी अपनी स्वाभाविक अवस्था प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार जल का स्वभाव शीतल होता है, परन्तु अग्नि के सम्पर्क में आने से वह गरम हो जाता है। जब पानी से अग्नि का सम्पर्क हट जाता है, तो वह स्वतः ही शीतल हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा स्वभाव से तो आनन्दमयी ही है, परन्तु अपने ऊपर पड़े कर्मों के आवरण के कारण वह दु ख पाने के चक्कर में पड़ी हुई है। कर्मों के आवरण से अलग होते ही वह स्वत. ही अपनी स्वाभाविक अवस्था प्राप्त कर लेती है अर्थात् आनन्दमयी हो जाती है।

इस भौतिक शरीर की वास्तविक शक्ति आत्मा ही है।

हम एक जीवित प्राणी को देखे तो पायेंगे कि उसमें कुछ न कुछ शक्ति होती है। परन्तु एक मृत-शरीर में शक्ति नहीं होती, यद्यपि मृत शरीर मे हड्डी, मांस, मज्जा, रक्त इत्यादि सभी पदार्थ होते हैं। फिर मृत्यु हो जाने पर उस प्राणी की शक्ति कहां चली गई? तथ्य यह है कि जीवित प्राणी में आत्मा होती है, जबकि मृत शरीर में आत्मा नहीं होती। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि शक्ति का वास्तविक स्रोत आत्मा ही है अर्थात् आत्मा ही शक्ति है। यह शरीर तो माध्यम मात्र है जिसके द्वारा आत्मा की शक्ति अभिव्यक्त होती है।

आत्मा और शरीर का सम्बन्ध समझाने के लिए हम विद्युत के उपकरण का उदाहरण लेते हैं। वह उपकरण सब प्रकार से ठीक होने पर भी जब तक उस उपकरण में विद्युत-प्रवाह (Electric Current) नहीं छोड़ा जाता तब तक वह कोई कार्य नहीं करता। उसमें विद्युत-प्रवाह छोड़ते ही वह अपेक्षित कार्य करने लगता है। अब आप बतलाइये कि कार्य करने की शक्ति विद्युत-प्रवाह में है अथवा उस उपकरण में। तथ्य तो यह है कि ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। बिना विद्युत-प्रवाह के वह उपकरण कोई कार्य नहीं कर सकता और बिना उस उपकरण के विद्युत-प्रवाह का संचार नहीं हो सकता। कुछ इसी प्रकार से हमारे शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है। जब तक शरीर में आत्मा रहती है, तभी तक यह शरीर सभी कार्य करता है। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर शरीर निश्चेष्ट हो जाता है।

आत्मा नित्य है

जिस अस्तित्व रखने वाले पदार्थ की उत्पत्ति किन्ही भी अन्य पदार्थों के संयोग से न हो सकती हो, वह पदार्थ नित्य (चिरस्थायी, अनादि) होता

है। आत्मा किन्हीं भी अन्य पदार्थों के संयोग से उत्पन्न हो सकती है—ऐसा अभी तक देखने में नहीं आया। वास्तविकता तो यह है कि जड पदार्थों के कितने ही और कैसे भी संयोग कर ले, उनमें चेतना उत्पन्न नहीं हो सकती। क्योंकि जो गुण जिस पदार्थ में नही होता, उस प्रकार के बहुत से पदार्थों को इकट्ठे कर लेने पर भी उनमें वह गुण उत्पन्न नही हो सकता। इस प्रकार हम देखते है कि आत्मा का मुख्य गुण चेतना किसी भी अन्य पदार्थ में न तो पाया जाता है, न किसी प्रकार से भी अन्य पदार्थों मे उत्पन्न ही किया जा सकता है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि चेतन स्वरूप आत्मा नित्य है। किसी भी हालत में आत्मा का एक अंश भी न तो कम ही हो सकता है और न बढ ही सकता है। आत्मा जितना है उतना ही बना रहता है।

आत्मा अमर है

जब किसी प्राणी की एक जन्म में मृत्यु हो जाती है, तब वह फिर नया जन्म धारण करता है। नये जन्म में उसको अपने पुराने जन्मो मे किये हुए अच्छे व बुरे कर्मों का फल मिलता है। नये शरीर में और पुराने शरीर मे कोई भी भौतिक सम्बन्ध नही होता। फिर किस कारण से नये-नये शरीरो को पुराने शरीरों के अच्छे व बुरे कार्यों का फल भोगना पडना है ? स्पष्ट है कि इसका वास्तविक कारण उन नये व पुराने शरीरो मे एक ही आत्मा का विद्यमान होना है और वास्तव में तो वह आत्मा ही उन फलो को भोगती है, ये भौतिक शरीर तो केवल माध्यम मात्र ही होते है। यह आत्मा कभी मरती नही है। इसका अस्तित्व अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा। वह तो केवल अपने कर्मों के अनुसार नये-नये शरीर धारण करती रहती है और अपने ही कर्मों के फलस्वरूप सुख व दु.ख भोगती रहती है। इसकी तुलना हम किसी व्यक्ति के द्वारा अपने वस्त्र बदलने से कर सकते है। एक व्यक्ति कभी कोट-पैण्ट पहन लेता है, कभी कमीज-पाजामा और कभी धोती-कुरता। इस प्रकार वस्त्र बदलते रहने से वह व्यक्ति नही बदल जाता। व्यक्ति वही रहता है और उसकी भलाई व बुराई भी उसके साथ रहती है। ऐसा कभी नही होता कि किसी व्यक्ति ने कोट-पैण्ट पहने हुए कोई अपराध किया हो और वह फिर कुरता-धोती पहन ले, तो वह अपराधी नही कहलायेगा। वह कोई भी वेष धारण कर ले, अपराध करने वाला अपराधी अवश्य ही कहलायेगा और उसको अपने अपराध का दण्ड भी भोगना पड़ेगा। बिलकुल यही बात हमें आत्मा के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये। जो सम्बन्ध शरीर व वस्त्रों का है, लगभग वैसा ही सम्बन्ध आत्मा व शरीर का है।

शारीरिक क्रियायें बन्द होने पर भी आत्मा का अस्तित्व रहता है

भारतीय योग व प्राणायाम पद्धति में आत्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। योगी अपने अभ्यास को इतना अधिक बढा लेते हैं कि वे अपने शरीर की सारी क्रियायें, यहां तक कि सांस लेना तक रोक लेते हैं और चालीस-चालीस, पचास-पचास दिनों तक समाधि में बैठे रहते हैं। आजकल भी ऐसे योगी हैं, जिनको जमीन में या हवा-बन्द (Airtight) कमरों में बन्द कर दिया जाता है और समाधि का समय पूरा होने पर निकाला जाता है और वे जीवित निकल आते हैं। आधुनिक डाक्टर इस प्रकार सांस रोक लेने पर जीवित रहना असम्भव समझते हैं, परन्तु अपनी आंखों के सामने इन चमत्कारों को देखकर वे इसे झुठला भी नही सकते। उनका विज्ञान इसका कारण ढूंढने में अभी तक असमर्थ रहा है।

ऐसी भी कई घटनाएं प्रकाश में आई हैं कि जब सर्पदंश के कारण व्यक्तियों की समस्त शारीरिक क्रियायें बन्द हो गयी थीं और लोगों ने उनको मृत समझ कर, गोबर में या जमीन में गाड दिया था या नदी में बहा दिया था, परन्तु कई-कई दिन तक शारीरिक क्रियायें बन्द रहने पर भी समुचित उपचार करने पर उनकी शारीरिक क्रियाये फिर से चालू हो गयी।

इस सम्बन्ध में हम आपको एक उदाहरण और देते हैं। जीव-वैज्ञानिक कहते है कि बरसात का मौसम समाप्त हो जाने पर मेंढक जमीन के अन्दर गीली मिट्टी में बैठ जाते है। धूप पडने पर कुछ समय के पश्चात जमीन के अन्दर की मिट्टी सूखकर जम जाती है और वे मेंढक उस जमी हुई मिट्टी में दबे रहते हैं जहां पर सांस लेने के लिये हवा आने का प्रश्न ही नही होता। इस प्रकार मेंढकों की शारीरिक क्रियायें कई-कई महीनों तक बन्द रहती है। परन्तु बरसात का मौसम शुरू होने पर जब मिट्टी गीली हो जाती है तो उन मेंढकों की शारीरिक क्रियायें फिर से चालू हो जाती हैं और वे बाहर निकल आते हैं। इस तथ्य से यही निष्कर्ष निकलता है कि समस्त शारीरिक क्रियायें बन्द हो जाने पर भी प्राणी जीवित रह सकता है और इसका कारण उस शरीर में आत्मा का विद्यमान होना ही है जो प्राणी को जीवित रखती है।

शरीर-शास्त्रियों की आधुनिकतम मान्यता तो यह है कि शरीर की समस्त क्रियायें बन्द हो जाने पर भी किसी को मृत नही मान लेना चाहिये; अपितु उस शरीर को पन्द्रह-बीस घन्टे तक सुरक्षित रखकर देखना

चाहिये। शायद उस शरीर में जीवन की सामान्य क्रियायें फिर से चालू हो जायें। क्योंकि इस प्रकार की भी कई घटनाए हो चुकी है, जब मृत समझे जाने वाले व्यक्तियो में पुन: जीवन का सचार हो गया। ऐसे तो अनेकों व्यक्ति समुचित उपचार के द्वारा ठीक किये गये है, जिनके दिल की धड़कन अचानक ही बन्द हो गयी थी अर्थात् जिनका हार्ट फेल हो गया था।

रूस में पिछले पचास वर्षों में "पुनर्जीवन" चिकित्सा-पद्धति के द्वारा सैकडों ऐसे व्यक्तियों को बचा लिया गया है, जिनको डाक्टरो ने मृत घोषित कर दिया था। इस चिकित्सा-पद्धति के प्रणेता अकदमीशियन श्री ब्लादमिर नेगोवस्की हैं।

इन तथ्यो पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि इस शरीर को जीवित रखने के लिए हवा मे सास लेने की भौतिक क्रिया से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कोई अभौतिक शक्ति अवश्य है और वह अभौतिक शक्ति आत्मा ही है।

आत्मा में संकोच व विस्तार का गुण होता है

आत्मा में संकोच व विस्तार का गुण भी होता है। इसी गुण के फलस्वरूप जब वह हाथी जैसा बडा शरीर ग्रहण करती है, तो वह हाथी के शरीर के परिमाण की हो जाती है और जब वही आत्मा किसी छोटे से कीट या पतंग का शरीर धारण करती है, तो वह आत्मा उस कीड़े के शरीर के बराबर हो जाती है। इसको स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं। एक बालक है, उसके शरीर मे भी आत्मा होती है। जब वह बालक युवा हो जाता है (अर्थात् जब उस बालक का शरीर पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है) तब भी उसके शरीर में वही आत्मा होती है। (यदि बड़ा होने पर उसके शरीर में कोई अन्य आत्मा आ गयी होती, तो बड़े होने पर उसको बचपन की बातें याद नहीं रहती।) पहले वह आत्मा छोटे रूप में थी, अब वही आत्मा बड़े रूप में हो गयी। आत्मा में संकोच व विस्तार का गुण होने के फलस्वरूप ही ऐसा सम्भव हो पाता है। जिस प्रकार एक दीपक को हम एक छोटे से घड़े में रख दे तो उसका प्रकाश उस घड़े तक ही सीमित रहेगा, परन्तु जब हम उसी दीपक को एक कमरे में रख देते है, तो उसका प्रकाश उस कमरे में फैल जाता है। (यह दृष्टान्त केवल समझने के लिये ही दिया है। इसका तात्पर्य यह नहीं समझ लेना चाहिये कि जिस प्रकार दीपक से दूर के स्थानों में उसका प्रकाश कम होता जाता है, ऐसे ही बड़े शरीर में फैलने पर आत्मा के कुछ भागों की शक्ति क्षीण पड़ जाती हो।

इसके विपरीत आत्मा आकार में बड़ी हो जाये चाहे छोटी, उसके प्रत्येक अंश में एक सी ही शक्ति रहती है।)

आत्मा के टुकड़े नहीं हो सकते

एक शंका यह उठती है कि यदि हम जीवित प्राणी के तलवार से दो टुकड़े कर दे, तो वे दोनो टुकड़े थोड़ी देर के लिए हिलते-डुलते रहते हैं, तो क्या इस प्रकार आत्मा के दो टुकड़े हो जाते हैं ?

इस शका के उत्तर मे निवेदन है कि आत्मा के टुकड़े कभी नही होते। यह तो शरीर की प्राकृतिक क्रिया है जो शरीर के दोनों टुकडो को कुछ क्षण के लिए ऐसी अवस्था में रखती है। यदि उस शरीर को इस प्रकार काटा गया है कि उसका जीवित रहना असम्भव है, तो आत्मा किसी भी टुकडे में नहीं रहती। यदि शरीर इस प्रकार कटा है कि उसका जीवित रहना सम्भव है, तो आत्मा मुख्य शरीर में आ जाती है। दूसरे छोटे टुकड़े मे आत्मा नहीं रहती। मुख्य शरीर से अलग हुए उस बिना आत्मा के मृत टुकडे की हलन-चलन को समझने के लिए हम लट्टू का उदाहरण ले सकते है। जिस प्रकार हम एक लट्टू को घुमा कर छोड़ देते हैं, तो वह लट्टू हमारे द्वारा प्रयोग की गई शक्ति के सहारे कुछ समय तक घूमता रहता है और फिर उसका घूमना रुक जाता है, कुछ इसी प्रकार का अनुमान हम उस शरीर के मृत टुकडे के सम्बन्ध में भी लगा सकते हैं।

कुछ व्यक्ति यह प्रश्न करते हैं कि यदि एक केंचुए (Earthworm) के दो टुकडे कर दें, तो वे दोनों टुकडे ही जीवित रहते हैं; तो क्या एक ही आत्मा के दो टुकडे होकर वह दोनों टुकड़ों में बंट जाती है ?

हम यह पहले भी कह चुके हैं कि आत्मा के कभी भी टुकड़े नहीं हो सकते। हाँ, आत्मा में सिकुड़ने और फैलने का गुण होने के कारण यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार मिले शरीर के अनुरूप ही फैल जाती है और सिकुड़ जाती है। वास्तव में हम आत्मा की किसी भी अन्य द्रव्य से उपमा नहीं दे सकते। दूसरी वस्तुओं के माध्यम से इसे केवल समझाया जा सकता है। जहां तक एक केंचुए के दोनो टुकडो का सम्बन्ध है, एक टुकड़े में तो उसकी अपनी आत्मा ही रहती है जो सिकुड़ कर उस टुकडे के आकार की ही हो जाती है, दूसरे टुकडे में यदि वह जीवित रहने योग्य है तो तत्क्षण किसी अन्य आत्मा का, उसके कर्मों के अनुसार, प्रवेश हो जाता है, इसलिये दोनों ही टुकड़े जीवित रहते हैं। इन दोनों टुकड़ों का जीवित रहना केंचुए की प्राकृतिक बनावट पर भी निर्भर करता है। जल, मिट्टी, हवा आदि के संयोग से केंचुओं की उत्पत्ति होती रहती है और अपने कर्मों के अनुसार

उनके शरीर में आत्माएं भी आती रहती है, क्योंकि इस विश्व में अनन्त आत्माए हैं और वे अपने कर्मों के अनुसार नये-नये शरीर धारण करती रहती हैं।

इस विश्व में अनन्त आत्माएं है

जहा तक इस विश्व मे आत्माओं की सख्या का प्रश्न है, हम तो यही कह सकते है कि इस विश्व में अनन्त (Infinite) आत्माएं है। मनुष्यों, पशु-पक्षियो, कीडे-मकोडो आदि की तो बात ही क्या, वनस्पति, मिट्टी व जल मे भी जीवन होता है। जल की एक बूद मे भी लाखो जीव होते है। प्रत्येक प्राणी की त्वचा पर तथा उसके शरीर में भी असख्य जीवाणु व कीटाणु रहते है। तनिक सी भोजन-सामग्री व मैल मे भी असख्यात बैक्टीरिया रहते है। इस तथ्य को वैज्ञानिक भी स्वीकार करते है। इन समस्त जीवाणुओ, कीटाणुओ व बैक्टीरियाओ मे जीवन होता है। और जहा जीवन होता है वहा आत्मा का होना अवश्यम्भावी है, चाहे वह जीवन कितना ही क्षुद्र क्यों न हो। अत यह स्पष्ट है कि इस विश्व मे अनन्त आत्माए है। ये अनादि काल से है और अनन्त काल तक बनी रहेगी।

क्या भौतिक द्रव्यो के मिश्रण से आत्मा अस्तित्व में आ जाती है?

कुछ व्यक्ति यह कहते है कि जहा पर भी पाच द्रव्य अर्थात् मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा आदि (आजकल के शब्दो में कहे तो रक्त, मास, आदि) इकट्ठे होते है, वहा आत्मा स्वय ही आ जाती है और जब ये द्रव्य अलग हो जाते हैं, तो आत्मा विलीन हो जाती है।

परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। यदि इन व्यक्तियो की यह मान्यता (जहां रक्त, हड्डी, मांस आदि पदार्थ इकट्ठे होते है, वहा जीवन अस्तित्व मे आ जाता है।) सत्य होती, तो किसी भी प्राणी की मृत्यु ही नही होनी चाहिए थी। क्योकि मृत्यु के समय लगभग प्रत्येक प्राणी मे रक्त, हड्डी मास आदि सभी पदार्थ विद्यमान होते है, तो फिर प्राणियों की मृत्यु क्यो हो जाती है? हृदय की गति रुक जाने से व्यक्ति में कौन से द्रव्य की कमी हो जाती है जो उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है? अत इस मान्यता का कोई तर्कसम्मत आधार नही है।

तथ्य तो यह है कि जब तक आत्मा मुक्ति प्राप्त नही कर लेती, वह अपने कर्मों के अनुसार कोई-न-कोई भौतिक शरीर धारण करती ही रहती है। भौतिक शरीर पाँच द्रव्यों से ही बना हुआ होता है। अत ऐसा मालूम होता है कि जहां ये द्रव्य मिलते हैं वहां आत्मा आ जाती है, जबकि

वास्तविकता तो यह है कि आत्मा अपने कर्मों के अनुसार आती है, न कि पांच द्रव्यों के एकत्र होने से।

क्या समस्त आत्माएं एक परमात्मा की ही अंश हैं ?

कुछ विद्वान् आत्मा के अस्तित्व को तो स्वीकार करते हैं, परन्तु वे कहते है कि इस विश्व में जितनी भी आत्माए हैं वे सब एक परम-आत्मा की ही अंश है। वे कहते है कि जैसे एक सूर्य सारे जगत को प्रकाशित करता है, वैसे ही एक ही परम-आत्मा सभी शरीरों को प्रकाशित करती है, अर्थात् सब में एक ही आत्मा है।

परन्तु उनका यह विचार ठीक नही है। यदि इस विश्व की समस्त आत्माएं एक परमात्मा की ही अंश होती, तो इस विश्व के समस्त प्राणियों (जिनमे ये आत्माए विद्यमान है) के गुण व स्वभाव भी एक समान ही होते। परन्तु ऐसा कभी नही होता। अधिक क्या कहे एक साथ पैदा होने वाले दो जुड़वां प्राणी भी ऐसे नही मिलेगे जो गुणों व स्वभाव में एक समान ही हो। विभिन्न प्राणियो के स्वभावों व गुणों में पर्याप्त अन्तर होता है। पशुओ की बात जाने भी दे और केवल मनुष्यों का ही विचार करें, तो हम देखेगे कि भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न स्वभाव, भिन्न-भिन्न गुणों व भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले होते है। एक मनुष्य तो ऐसा होता है जो कि किसी सूक्ष्म जीव को भी कष्ट पहुचाने मे हिचकिचाता है, जबकि एक अन्य मनुष्य, सूक्ष्म जीव तो क्या, एक मनुष्य तक को अमानवीय कष्ट पहुंचाते हुए भी नही घबराता। इतने विशाल विश्व की बात तो जाने दीजिए, एक ही स्थान पर एक मनुष्य तो किसी अन्य मनुष्य के धन का अपहरण करने के लिए अथवा अन्य किसी कारण से उसकी हत्या करने को उद्यत है, जबकि दूसरा मनुष्य बड़े ही कातर स्वर में उससे अपने जीवन की भीख मांग रहा होता है। अत. प्राणियो की इस प्रकार की भिन्न-भिन्न भावनाओं को दृष्टि मे रखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि इन समस्त प्राणियों की आत्माएं एक ही परम-आत्मा की अंश हैं ? तथ्य तो यह है कि इस विश्व में अनन्त आत्माएं हैं और प्रत्येक आत्मा का अपना बिल्कुल स्वतन्त्र व निरपेक्ष अस्तित्व होता है।

आत्मा का परिमाण

आत्मा के परिमाण के सम्बन्ध में भी विभिन्न विचारकों की विभिन्न धारणायें हैं। कुछ विचारक कहते हैं कि आत्मा एक अंगूठे के बराबर होती है। कुछ विचारक आत्मा को अणु के बराबर बताते हैं। कुछ विचारक आत्मा को जौं के दाने से कुछ छोटी बतलाते हैं। उनका यह

विचार है कि आत्मा हृदय के केन्द्र भाग में स्थित रहती है।

परन्तु आत्मा के परिमाण के सम्बन्ध मे यह विचार ठीक प्रतीत नहीं होते। हम पहले कह आये है कि हम जो भी जानते है, देखते है, तथा दु:ख-सुख का अनुभव कर है वह हमारा शरीर नही, अपितु हमारी आत्मा ही करती है। शरीर तो केवल एक माध्यम मात्र ही है। यदि आत्मा अगूठे के बराबर होती और हृदय के केन्द्र भाग मे स्थित होती, तो हमारी आत्मा इस शरीर के माध्यम से दु ख-सुख का अनुभव कैसे करती? आप एक सुई को शरीर के बिलकुल पास ही, किन्तु इतनी दूर रखिए कि सुई शरीर को छुए नही। इस अवस्था में आपको किसी भी प्रकार की अनुभूति नही होगी। फिर आप शरीर के किसी भी भाग में वह सुई चुभोइये, आपको तत्क्षण ही दु ख का अनुभव होगा। इसी प्रकार कोई सुखद समाचार सुनते ही हमारा सारा शरीर पुलकित व प्रफुल्लित हो जाता है और कोई दु.खद समाचार सुनते ही हमारा शरीर उदास और निढाल हो जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि शरीर के प्रत्येक कण के द्वारा दु.ख व सुख की अनुभूति होती है। इसका तात्पर्य यही है कि हमारे शरीर के प्रत्येक अंश मे आत्मा विद्यमान है, अथवा यह कह ले कि हमारी आत्मा का परिमाण हमारे शरीर के बराबर ही है। जिस प्रकार दूध के प्रत्येक कण मे चिकनाई तथा तिल के प्रत्येक भाग में तेल विद्यमान है, उसी प्रकार शरीर के प्रत्येक रोम-रोम मे आत्मा फैली हुई है। आत्मा के अपने स्वाभाविक 'संकोच व विस्तार' करने के गुण के कारण ही वह अपने कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त शरीर के परिमाण के अनुरूप ही छोटी व बडी हो जाती है।

यदि आत्मा का परिमाण केवल एक अगूठे के बराबर ही होता और उसमे सिकुड़ने व फैलने का गुण नही होता, तो एक छोटी-सी चीटी के शरीर मे यह अगूठे के परिमाण की आत्मा कैसे रहती?

आत्मा का वजन

कुछ दिन हुए समाचार पत्रो मे पढ़ा था कि यूरोप के एक देश के एक वैज्ञानिक ने कहा है कि आत्मा का वजन २१ ग्राम होता है। उस वैज्ञानिक ने बहुत से मरणासन्न व्यक्तियो को मृत्यु से पहले और फिर मृत्यु के पश्चात् तोल, तो उन दोनो अवस्थाओ के वजनो में लगभग २१ ग्राम का अन्तर पाया। इसलिए उस वैज्ञानिक ने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि मृत्यु होने पर आत्मा शरीर से निकल जाती है, इसलिये आत्मा का वजन २१ ग्राम होना चाहिये।

परन्तु यह विचार ठीक नही है। पहली बात तो यह है कि वजन

भौतिक पदार्थों मे होता है। आत्मा एक अभौतिक पदार्थ है इसलिए आत्मा में कुछ वजन होने का प्रश्न ही नही उठता। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार से एक हाथी तथा ह्वेल मछली की आत्मा का वजन २१ ग्राम से पर्याप्त अधिक होना चाहिए, क्योकि हाथी तथा ह्वेल मछली की आत्माएं मनुष्य की आत्मा से बहुत बड़ी होती हैं। इसी प्रकार एक मच्छर तथा एक मक्खी की आत्मा का वजन बहुत कम होना चाहिए, क्योंकि उनकी आत्माएं बहुत छोटी होती है। जब हाथी की आत्मा अपने कर्मों के अनुसार हाथी का शरीर छोड़कर किसी छोटे पशु-पक्षी का शरीर धारण करती है, तब उसका वज़न कहां जाता होगा ? इसी प्रकार जब किसी छोटे शरीर के पशु की आत्मा किसी बड़े शरीर वाले पशु का शरीर धारण करती है, तो उसमें अतिरिक्त वजन कहा से आता है ? इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मा मे वज़न होने वाली बात ठीक नही है। ऐसा मालूम होता है कि मृत्यु से पहले और मृत्यु के पश्चात् शरीर के वज़न में जो अन्तर जान पड़ा होगा, वह कदाचित् सांसों द्वारा रहने वाली उस प्राणवायु के अभाव के कारण पड़ा होगा जो मृत्यु के समय शरीर से निकल जाती है।

क्या कम्प्यूटरों मे आत्मा होती है ?

कुछ व्यक्ति यह कहते है कि आजकल बहुत ही शक्तिशाली व सवेदनशील कम्प्यूटर बनने लगे है जो हमारे जटिल प्रश्नों का बहुत शीघ्रता से और बिलकुल सही उत्तर देते है। इसलिए इन कम्प्यूटरों मे ज्ञान होना चाहिए और यदि इनमें ज्ञान है, तो हमारे कथनानुसार इनमें आत्मा भी अवश्य होनी चाहिए।

यह ठीक है कि आजकल के शक्तिशाली कम्प्यूटर हमारे जटिल प्रश्नो का बहुत शीघ्रता से और बिलकुल ठीक उत्तर देते है और इन कम्प्यूटरो के कारण विज्ञान की बहुत सी समस्याए सुलझाना सरल भी हो गया है, परन्तु न तो कम्प्यूटरो मे चेतना है, न आत्मा है, न ज्ञान ही है। यह तो एक प्रकार की यान्त्रिक क्रिया मात्र है। एक ही कम्प्यूटर सब प्रकार के प्रश्नो के उत्तर नही दे सकता। भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्नों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के कम्प्यूटर बनाये जाते हैं। जिस प्रकार मनुष्य द्वारा बनाई हुई अन्य मशीनें मनुष्य की अपेक्षा शीघ्रता से कार्य सम्पन्न कर देती है, ठीक उसी प्रकार ये कम्प्यूटर भी कार्य करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि इन चमत्कारी कम्प्यूटरों का निर्माता आत्माधारी मनुष्य ही हैं।

कुछ शंकाएं और उनका समाधान

आत्मा के अस्तित्व और उसके गुणों के सम्बन्ध में कुछ शंकाएं उठ सकती हैं। यहां हम उन शंकाओं के समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।

एक शका तो यह उठती है कि यदि आत्मा एक अभौतिक द्रव्य है, यह न मरती है, न किसी शस्त्र से कटती है, न आग से जलती है, न पानी से भीगती है, न कभी सडती है, न कभी पुरानी पडती है और जब तक किसी प्राणी के शरीर मे आत्मा रहती है, तभी तक वह प्राणी जीवित रहता है, तो फिर किसी प्राणी की गर्दन काट देने से या उसके मर्म-स्थल पर चोट मार देने से आत्मा का कुछ नही बिगडना चाहिए, किन्तु तब उस प्राणी की मृत्यु क्यो हो जाती है ?

यह ठीक है कि आत्मा न कटती है, न जलती है, न भीगती है और न मरती है परन्तु जब तक आत्मा के ऊपर कर्मों का आवरण पड़ा हुआ है, तब तक उन कर्मो के फलस्वरूप ही यह आत्मा नये-नये शरीर धारण करती रहती है तथा सुख व दु ख भोगती रहती है। किसी शरीर में यह आत्मा कितनी अवधि तक रहती है (अर्थात् उस शरीर की कितनी आयु है) तथा किस दुर्घटना तथा किस रोग के कारण उस शरीर की मृत्यु होती है, ये सब उस आत्मा के अपने कर्मों के अनुसार ही घटित होता है।

इस भौतिक शरीर की कैसी अवस्था है यह बात किसी भी प्राणी की मृत्यु होने या न होने का निश्चित कारण नही है। इसीलिये कभी-कभी स्वस्थ शरीर वाले नवयुवक भी क्षण भर मे मृत्यु के ग्रास बनते देखे जाते हैं, और कभी-कभी ऐसे लुज-पुज, अपग रोगी व बूढे व्यक्ति भी जीवित देखे जाते है जिनको देखकर डाक्टर भी यह आश्चर्य करते है कि न जाने इनकी सास कहा अटकी हुई है ? हम पहले भी कह चुके है कि यह शरीर तो जड है। जब तक इसमे आत्मा रहती है, तभी तक यह जीवित रहता है। जैसे ही आत्मा इस शरीर से निकल जाती है यह मृत हो जाता है। आत्मा का कुछ न बिगडते हुए भी कर्मो के अनुसार मिली आयु पूरी होने पर यह एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण करने चली जाती है। आत्मा के निकलते ही प्राणी मृत कहलाता है। आत्मा के शरीर को छोड़ने का निमित्त कारण उसके कर्मो के फल के अनुसार कुछ भी हो सकता है (शरीर को काट दिया जाये, जला दिया जाये, पानी में डुबो दिया जाये या उसमे कोई असाध्य व घातक रोग हो जाये)।

हमे यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिये कि किसी भी प्राणी के कट-फट, व जल जाने के कारण ही आत्मा शरीर से नही निकलती, अपितु कर्मों के अनुसार मिली आयु के पूरी होने पर ही आत्मा शरीर से निकलती है।

कृत्रिम मनुष्य मे आत्मा कैसे आती है ?

दूसरी शका यह उठती है कि वैज्ञानिको ने परखनली में मनुष्य का

निर्माण करने की दिशा में सफलता प्राप्त कर ली है। इस प्रकार निर्माण किये गये मनुष्य में आत्मा कैसे आती है ?

इसके उत्तर में निवेदन है कि वैज्ञानिक बिलकुल नयी विधि से मनुष्य का निर्माण नही कर रहे है , अपितु वे तो कृत्रिम रूप से वैसी ही परिस्थितियां, वैसा ही वातावरण और वैसा ही स्थान बनाते है और उन्हीं विधियों का प्रयोग करते है, जैसी कि प्राकृतिक रूप से गर्भ-धारण व गर्भ-पोषण के लिये आवश्यक होती है। इन्ही विधियो से परखनली में मनुष्य का निर्माण सम्भव हुआ है। प्रारम्भ के कुछ सप्ताह के लिये परखनली का प्रयोग किया जाता है और उसके पश्चात् उस भ्रूण को स्त्री के गर्भाशय में स्थापित किया जाता है और बालक गर्भाशय में ही बढ़ता है। पुरुष के जो शुक्र-कीट, स्त्री के गर्भाशय में प्राकृतिक रूप से प्रविष्ट होकर गर्भ धारण की क्रिया को सम्भव बनाते है, उन्ही शुक्र-कीटों का प्रयोग परखनली में किया जाता है। परखनली जड़ मे से जीवन का निर्माण नहीं कर देती, अपितु जीवित शुक्र-कीट से जीवित भ्रूण बनाने (अर्थात् परखनली गर्भाशय का काम करती है) में माध्यम होती है। वास्तव में तो शुक्रकीट स्वयं ही आत्मा सहित चेतन होते है और ये शुक्रकीट ही अनुकूल परिस्थितियों में बढ़ते-बढ़ते पहले भ्रूण और फिर बालक का रूप लेते है।

एक तथ्य यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि आत्मा के बिना कोई भी पदार्थ स्वयमेव नही बढ़ सकता। जिस किसी भी पदार्थ मे आत्मा होती है, वह कुछ सीमा तक अपने आप ही और अपने अन्दर की ओर से बढ़ता है। मनुष्यो, पशुओ, पक्षियो, कीड़े-मकोड़ो, जल मे रहने वाले जीवो व वनस्पतियों तक मे हम यही प्रक्रिया देखते है। हम किसी भी वनस्पति को देखें, तो पायेंगे कि प्रत्येक छोटे-छोटे पौधे मे जड़ व पत्तिया होती है। जैसे-जैसे समय बीतता है, उस पौधे की जड़ भी मोटी होती जाती है और पत्तिया भी बड़ी-बड़ी होती जाती है। यही प्रक्रिया पशु-पक्षी, व मनुष्य आदि प्रत्येक आत्मा सहित प्राणी में पाई जाती है। जब किसी वृक्ष की बढ़त रुक जाती है, तब भी वह वृक्ष उस समय तक हरा-भरा रहता है, जब तक उसमें आत्मा होती है अर्थात् जब तक वह वृक्ष जीवित रहता है। उसके पुराने पत्ते झड़ते रहते है और नये-नये पत्ते आते रहते है तथा वह फल-फूल भी देता रहता है। परन्तु जब वृक्ष की आयु समाप्त हो जाती है, तब उसमें से आत्मा निकल जाती है और वह वृक्ष मर जाता है। उस समय वह वृक्ष सूख जाता है, फिर उसमें न पत्ते आते है और न फल-फूल। इसी प्रकार कीट-पतंग, पशु-पक्षी व मनुष्य भी बढ़त रुक जाने के बाद भी तब तक जीवित रहते हैं, जब तक उनमें आत्मा रहती है। परन्तु जड़ पदार्थों अर्थात्

बिना आत्मा के पदार्थों में यह प्रक्रिया नही होती, वे अपने आप और अपने अन्दर से नही बढते। यदि हम किसी वृक्ष की एक टहनी को काट दें, तो वह टहनी तथा उसकी पत्तिया कभी नही बढेंगी, अपितु वे तो मुरझा जायेगी। इसी प्रकार यदि किसी पशु-पक्षी या मनुष्य का शिशु मर जाता है, तो उसका बढना भी बन्द हो जाता है और कुछ समय मे ही उसका मृत शरीर खराब होने लगता है और सड़ने लगता है तथा उसमे से दुर्गन्ध आने लगती है। उस मृत शरीर को रासायनिक क्रियाओं द्वारा हम सुरक्षित रख सकते है, परन्तु उसको बढा नही सकते।

जिन पुरुषो के शुक्रकीट नही होते या जिनके शुक्रकीट बहुत ही निर्बल होते है, वे गर्भ धारण कराने मे असमर्थ होते है। इसी प्रकार जो शुक्रकीट मर जाते है, उनके द्वारा भी गर्भाधान नही हो सकता। यदि किसी कारण से गर्भाशय मे गर्भस्थ भ्रूण मर जाता है, तो वह भ्रूण भी बढ नही पाता और ऐसी अवस्था मे या तो स्वय ही गर्भपात हो जाता है, नही तो शल्य-क्रिया द्वारा गर्भपात कराया जाता है। शरीर-विज्ञान के इन तथ्यो से भी हमको आत्मा के अस्तित्व का बोध होता है।

वास्तविकता तो यह है कि इस विश्व मे अनन्त आत्माएं है। ये आत्माए अपने-अपने कर्मों के अनुसार नये-नये शरीर धारण करती रहती है। यह बात नही है कि कोई शरीर जीवित रहने योग्य है, तो उसमे आत्मा अवश्य आ जायेगी, अपितु आत्मा अपने कर्मों के अनुसार ही कोई शरीर धारण करती है।

तीसरी शका यह उठती है कि प्रयोगशालाओं मे वैज्ञानिक शरीर के विभिन्न अगो— जैसे हृदय, आमाशय, नेत्र, गुर्दे आदि को अलग-अलग परखनलियो मे पर्याप्त समय तक ठीक दशा में रख लेते है, तो क्या उन अगो मे आत्माए होती है ?

जहा तक शरीर के ऊपर-लिखित अंगो की बात है, उनमें आत्मा नही होती। वैज्ञानिक इन अगों को विशेष रसायनो मे और विशेष वाता-वरण मे सुरक्षित रखकर ठीक अवस्था मे रखते है और कुछ समय बाद किसी अन्य रोगी के लिये उन अगो का उपयोग भी कर लेते है। इसी प्रकार वैज्ञानिक मृत शरीरो को भी रसायनो मे सुरक्षित रखकर ठीक दशा में रख लेते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि वे शरीर जीवित हैं तथा आत्मा सहित हैं।

एक शंका यह उठती है कि कभी-कभी किसी मनुष्य के पेट में कीड़े हो जाते है, पुरुष के वीर्य में लाखों शुक्रकीट होते हैं, इनके अतिरिक्त

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में और भी अनेकों प्रकार के लाखों कीटाणु होते है। रोगियो के शरीर में अनेकों प्रकार के जीवाणु, वायरस आदि होते हैं, तो क्या इन सबमें आत्माएं होती हैं ? इन सब प्राणियों का उस मनुष्य की आत्मा से क्या सम्बन्ध होता है ? क्या उस मनुष्य की आत्मा इन सब असंख्य आत्माओं को अपने प्रभाव में रखती है ?

इसके उत्तर में निवेदन है कि जैसा हम पहले भी कह चुके है कि जहा-जहां जीवन होता है (चाहे वह जीवन कितना ही क्षुद्र क्यों न हो) वहां-वहा आत्मा अवश्य होती है। इस विश्व में अनन्त आत्माएं हैं, तो प्रत्येक प्राणी के शरीर मे उसकी अपनी आत्मा के अतिरिक्त अन्य असंख्य आत्माए हों, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नही है। हा, प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और स्वतन्त्र शरीर होता है। किसी भी प्राणी के शरीर में जो आत्मा है, वह ही उस प्राणी की अपनी आत्मा है जो केवल एक ही होती है। इसके अतिरिक्त उस प्राणी के शरीर के आधार पर रहने वाले जीवाणु, कीटाणु, शुक्र-कीट आदि की जो आत्माएं है, उन सबका अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही ऐसे क्षुद्र शरीर धारण करके सुख व दुःख भोगती रहती हैं। इन जीवाणुओ व कीटाणुओ आदि के कारण उस प्राणी को जो सुख व दुःख पहुचता है, वह तो उसकी आत्मा के अपने कर्मों के फलस्वरूप ही पहुचता है। ये जीवाणु व कीटाणु तो निमित्त मात्र ही होते है।

ये जीवाणु व कीटाणु बहुत ही सूक्ष्म होते है। इनको बहुत ही शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षण-यन्त्रो (Microscopes) से ही देखा जा सकता है। बहुत ही सूक्ष्म होने के कारण इनके किसी प्राणी के शरीर मे इतनी बड़ी सख्या में रहने मे कोई आपत्ति नही आती।

पिछले पृष्ठों में किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा एक अभौतिक द्रव्य है जो अनादि, अकृत्रिम व अनन्त (अर्थात अमर) है, जो न कट सकती है, न जल सकती है, न भीग सकती है, न सड़ सकती है, जो ज्ञान-स्वरूप, ज्ञाता व दृष्टा है तथा जिसमें सकोच व विस्तार का गुण है। सभी आत्माए स्वभाव से तो निर्मल ही है, परन्तु इन पर अनादि काल से कर्मों का आवरण पड़ा हुआ है। इन कर्मों के आवरण के फलस्वरूप ही ये आत्माएं नये-नये शरीर धारण करती रहती हैं और सुख-दुःख भोगती रहती हैं। इस विश्व में अनन्त आत्माएं हैं और प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व है। ये आत्माएं स्वयं अपने ही प्रयत्नों से अपने कर्मों को अपने से अलग करके अत्यन्त निर्मल व पवित्र होकर मुक्ति प्राप्त कर सकती हैं।

हमने ऊपर आत्मा के जो गुण बतलाये है, वे सभी गुण प्रत्येक आत्मा में होते हैं और सदैव आत्मा के साथ ही रहते है। इन गुणों के बगैर किसी भी आत्मा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार शुद्ध सोने से उसकी चमक-दमक, उसका पीलापन तथा उसका भारीपन अलग नही किया जा सकता तथा जिस प्रकार शुद्ध चीनी (खाड) से उसकी मिठास अलग नही की जा सकती, उसी प्रकार आत्मा से ये गुण अलग नही किये जा सकते। हा, इतना अवश्य है कि जब तक आत्मा के साथ कर्मों का आवरण लगा हुआ है, तब तक इनमें से अनेको गुण पूर्ण रूप से प्रकट नही हो पाते।

यहा पर एक शका उठती है। हमने पिछले पृष्ठो में बतलाया है कि इस विश्व में अनन्त आत्माए विद्यमान है, तथा अनादि काल से ही आत्माए अपने कर्मों को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त करती रही है। इस प्रकार अब तक अनन्त आत्माए मोक्ष प्राप्त कर चुकी है, परन्तु फिर भी यह विश्व आत्माओं से विहीन नही हुआ। अब भी यहा पर अनन्त आत्माए विद्यमान है। इसका क्या कारण है?

इस शका के समाधान के लिये हम उच्च-गणित का एक सूत्र उद्धृत करते है, जिसका आशय यह है कि यदि अनन्त सख्या मे से अनन्त सख्या निकाल दी जाये, तब भी अनन्त सख्या ही शेष रहती है। इसी प्रकार एक रेखा अनन्त बिन्दुओ का समूह होती है। यदि उस रेखा को छोटा कर दिया जाये, तो भी वह शेष रेखा अनन्त बिन्दुओ का समूह ही होगी। यही सूत्र इस विश्व की आत्माओ पर भी लागू होता है। इस विश्व में अनन्त आत्माए थी, उनमे से अनन्त आत्माए मोक्ष चली गयी है, फिर भी विश्व मे अनन्त आत्माए ही शेष है।



बडे हुए तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर।
पंथी को छाया नही, फल लागे, अति दूर॥



बडे बड़ाई न करे, बड़े न बोले बोल।
हीरा पन्ना कब कहे, लाख हमारो मोल॥

क्या हमारी इस पृथ्वी से परे भी जीवन है ?

बहुत से धर्मों की प्राचीन पुस्तको में ऐसा उल्लेख है कि प्राचीन काल में पृथ्वी से दूर किन्ही अन्य ग्रहों से देवता इस पृथ्वी पर आया करते थे। कुछ दशक पहले तक हमारे विद्वान इस बात को कपोल-कल्पना बतलाया करते थे। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में विद्वानो ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त खोज की है और वे यह मानने लगे है कि पृथ्वी पर अन्य ग्रहों के प्राणियो के आने की बात सत्य हो सकती है।

एक पश्चिमी विद्वान श्री एरिक वान ने दो पुस्तकें लिखी है जिनके नाम है "चेरियट्स ऑफ गॉड्स" अर्थात् "देवताओं के रथ" और "गॉड्स फ्रॉम दी आउटर स्पेस" अर्थात् "अन्तरीक्ष से देवताओं का आगमन"। इन पुस्तकों में विद्वान लेखक ने कहा है कि इस पृथ्वी पर सहस्रों वर्ष प्राचीन ऐसी अद्भुत वस्तुएं मिली है, जिनका निर्माण करना तत्कालीन पाषाण-युगीन मनुष्यों के लिए सम्भव नही था। इस सम्बन्ध में हम कुछ उदाहरण दे रहे हैं :—

चिली के तट से लगभग १५०० मील दूर ईस्टर द्वीप में सैंकड़ों की सख्या में इतनी विशाल मूर्तियां है जिनको देखकर पुरातत्व शास्त्री आश्चर्य में पड गये है। इनमें से अनेकों मूर्तियां ३३ फुट से लगाकर ६६ फुट तक ऊंची है और इनमें से एक-एक मूर्ति के वजन का अनुमान पचास टन तक किया जाता है। वे मूर्तिया ज्वालामुखी के कठोर लावे को काटकर तराशी गयी हैं। परन्तु ज्वालामुखी के कठोर लावे को केवल आधुनिक यन्त्र ही काट सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में उन पाषाण-युगीन मनुष्यों ने अपने पत्थर के उपकरणों से इन मूर्तियों को कैसे तराशा ? इससे यही अनुमान होता है कि या तो किसी अन्य ग्रह के निवासी किसी कारणवश कुछ समय के लिये उस द्वीप पर आये और उन्होंने अपने उन्नत शिल्प-ज्ञान के द्वारा वे मूर्तिया बनाईं, अथवा हजारों वर्ष पहले यहां के निवासी ही इतने अधिक उन्नत थे, परन्तु अब उनका नाम भी शेष नही है।

इसी प्रकार तिआहुन-को की सभ्यता कितनी पुरानी है, इसका ठीक-ठीक निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। यहां पर १४ फुट लम्बी व लगभग २० टन वजन की लाल पत्थर की बनी हुई एक बहुत ही सुन्दर मूर्ति है जो हजारों वर्ष पहले की बनी हुई मालूम होती है। उस नगर की

चार दीवारी १००-१०० टन वजन के पत्थरों के ऊपर ६०-६० टन वजन के पत्थर रखकर बनाई गयी है। प्रश्न यह है कि क्या तत्कालीन पाषाण-युगीन मानव इतनी विशाल व सुन्दर मूर्ति बना सकता था तथा इतने भारी-भारी पत्थर उठा सकता था? यहा पर भी यही अनुमान होता है कि या तो हजारों वर्ष पहले किसी अन्य ग्रह के निवासियों ने किसी कारणवश उस स्थान पर आकर अपनी उन्नत शिल्पकला का परिचय दिया अथवा हजारों वर्ष पहले वहां के निवासी ही इतने अच्छे शिल्पकार थे।

सन् १९३८ मे चीन के पुरातत्त्व शास्त्री श्री फूते ने तिब्बत व चीन की सीमा पर पहाड की गुफाओ में बनी कब्रों मे से ऐसे अस्थि-पंजर प्राप्त किये है, जिनके सिर उनके धड की तुलना मे बहुत बड़े थे। उन अस्थि-पजरों के पास ग्रेफाइट की प्लेटे भी मिली है जिन पर सांकेतिक भाषा में कुछ लिखा हुआ है। सन् १९६२ में चीन की 'अकादमी ऑफ प्री-हिस्टोरिक रिसर्च' के प्रोफेसर श्री तसुम उम तुई ने उन लेखो को पढने में सफलता पाई है। इन लेखो के अनुसार यह अनुमान है कि लगभग १२००० वर्ष पहले ये प्राणी अपने यान खराब हो जाने के कारण वहा पर उतरे। यानो की मरम्मत का कोई साधन उपलब्ध न होने के कारण वे फिर वापिस नही जा सके और यही पर उनकी मृत्यु हो गयी।

पिछले कुछ वर्षों से उडन-तश्तरियों की चर्चा बहुत चल रही है। ये उडन-तश्तरिया भारत सहित अनेक देशो में देखी गई है। कुछ व्यक्ति इन उडन-तश्तरियो को केवल दृष्टि-भ्रम बतलाते है। परन्तु बहुत से वायु-यान चालको, वैज्ञानिकों तथा लाखो अन्य व्यक्तियो ने इनकी वास्तविकता की पुष्टि की है।

अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जिमि कार्टर ने ६ जनवरी १९६९ को एक उडन तश्तरी देखी थी।

रूस के अन्तरीक्ष-यान से अन्तरीक्ष यात्रा पर गये प्रथम भारतीय वायुयान चालक स्क्वाड्रन लीडर श्री राकेश शर्मा ने सन् १९७८ में नासिक (महाराष्ट्र) में उडन-तश्तरी देखी थी। उसके आगे के दो छिद्रो से प्रकाश निकल रहा था। उसके पीछे की ओर से नारंगी रंग के प्रकाश की बोछार हो रही थी। उसमें से बाजा बजने जैसी ध्वनि भी निकल रही थी।

१९ मार्च १९७८ को माडल टाउन दिल्ली के कुछ व्यक्तियों ने कटोरी की शक्ल की एक वस्तु आकाश में बहुत तेज गति से घूमती हुई देखी थी।

दिल्ली विश्वविद्यालय के विज्ञान के प्राध्यापक श्री स्वदेश कुमार भिखा इस विषय में विशेष रुचि ले रहे हैं। उनका कहना है कि सन् १९७८ मे दिल्ली विश्वविद्यालय क्षेत्र में जो भयानक चक्रवात आया था उसका

कारण उड़न-तश्तरी ही थी। वह कई अन्य दुर्घटनाओं (जिनके कारणों का अभी तक कोई पता नहीं चला है) का सम्बन्ध भी इन उड़न-तश्तरियों से ही जोड़ते हैं।

इन उडन-तश्तरियों का पता लगाने के लिये उनके पीछे जिन वायुयानो को भेजा गया, उनमें से कुछ दुर्घटना-ग्रस्त हो गये और उनके चालक भी मारे गये। कुछ वायुयानों व उनके चालको का तो बहुत खोजबीन के पश्चात् भी पता ही नही चला कि उनका क्या हुआ। जिस-जिस स्थान से ये उडन तश्तरियां गुजरती है उस-उस स्थान की रेडियो-प्रसारण-व्यवस्था गड़बडा जाती है। उसके आस-पास के पेड़ों व पत्तियो पर भी कुछ प्रभाव होते देखे गये है।

कहा जाता है कि अमरीका की गुप्तचर संस्थाओं सी०आई०ए० और एफ० बी० आई० के पास उडन-तश्तरियों के सम्बन्ध में बहुत से फोटो और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इन दस्तावेजों में उन हजारों व्यक्तियो के बयान है जिन्होने उड़न-तश्तरियां देखी हैं और जिनसे वैज्ञानिकों और मनो-वैज्ञानिकों ने बहुत बारीकी से पूछताछ की है।

इगलैंड से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका नाम है "The Encyclopedia of U F.O.S." इस पुस्तक को न्यू इंगलिश लायब्रेरी ने प्रकाशित किया है और बी० आई० पब्लिकेशन्स इसके वितरक हैं। इसका मूल्य लगभग तेरह पोंड है। इस पुस्तक में लगभग २४० फ़ोटो हैं, और उन सैकड़ों व्यक्तियों के बयान है जिन्होंने उड़न-तश्तरियों को देखा है। कुछ व्यक्तियो ने तो यह भी बतलाया है कि उन्होंने इन उड़न-तश्तरियों में बैठे हुए प्राणियों को भी देखा है। कुछ व्यक्तियो ने तो यहां तक कहा है कि उडन-तश्तरियों में बैठे प्राणी उनको अपने साथ ले गये और फिर थोड़ी देर बाद वापिस छोड़ गये।

कुछ व्यक्तियों का कहना है कि सन् १६४७ के आस-पास रोसवेल, न्यू मैक्सिको (अमरीका) में दुर्घटना-ग्रस्त होकर कई उड़न-तश्तरियां उतरी थी। उन उड़न-तश्तरियों तथा उनमें बैठे यात्रियों को अमरीकी सेना ने अपने कब्जे में ले लिया था। इस घटना को बहुत ही गुप्त रखा गया। अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री आइजनहावर को इस घटना की पूरी जानकारी थी। उन अन्तरीक्ष यात्रियों को अमरीका ने अपनी क़ैद में रक्खा। यदि वे अन्तरीक्ष यात्री अब जीवित नहीं है तो उनके शव अमरीका के पास अवश्य ही सुरक्षित रक्खे होंगे।

बहुत से वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि ये उड़न-तश्तरियां किन्हीं अन्य ग्रहों से भेजे जाने वाले वायुयान हैं तथा उन ग्रहों पर रहने वाले प्राणी विज्ञान में हमसे बहुत अधिक उन्नत होंगे।

दक्षिण अमेरिका की एंडीज पर्वतमाला के क्षेत्र में एक स्थान पर कई मील तक ऐसी रेखाये बनी हुई हैं जो वायुयान में बैठ कर देखने से बहुत चमकीली दिखाई देती है। ये रेखायें हमारी पृथ्वी के मनुष्यों के द्वारा बनाई हुई नही हैं। वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि किसी अन्य ग्रह के निवासियो ने या तो अपने वायुयान उतारने के लिये या किसी अन्य कार्य के लिये ये रेखायें अकिन की होगी।

इन उदाहरणो से इस सम्भावना की पुष्टि होती है कि हमारी इस पृथ्वी से परे किन्ही अन्य ग्रहो पर भी जीवन है। इसी सम्बन्ध मे हम कुछ और तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्री जान स्टीफेंस नामक एक अमरीकी राजदूत ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है—'Incidents of Tıavels ın Central America' अर्थात् 'मध्य अमरीका की यात्रा के कुछ प्रसग'। इस पुस्तक को पुरातत्त्ववेत्ता एक प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। इस पुस्तक मे लेखक ने "मय" सभ्यता के सम्बन्ध मे बहुत ही आश्चर्यजनक धारणाओ का उल्लेख किया है। उनकी धारणा है कि लाखो वर्ष पहले "मयो" के पूर्वज किसी अन्य ग्रह से इस पृथ्वी पर आये थे। वे अपने साथ बहुत ही विकसित सभ्यता और बहुत ही उन्नत तकनीकी ज्ञान लेकर आये थे। लाखो वर्ष पूर्व भी उनका तकनीकी ज्ञान हमारे आज के तकनीकी ज्ञान से बहुत अधिक उन्नत था। वे अपने अन्तरीक्ष-यानो में बैठकर ही यहा आए थे। इतने लम्बे अन्तराल के दौरान भी वे उस ग्रह से सम्पर्क बनाए रहे, जिस ग्रह से वे आये थे। उन्होने अपना समस्त ज्ञान बहुत सी पुस्तको में चित्रलिपि मे लिख रखा था। परन्तु इन पुस्तको में से अब कुछ पुस्तकें ही उपलब्ध है, परन्तु उनकी भाषा पढ पाना बहुत कठिन है। इतने लम्बे अन्तराल मे "मयो" की सभ्यता और ज्ञान का भी ह्रास होता गया। उन "मयो" की सन्ताने आजकल मैक्सिको और मध्य अमरीका में आबाद हैं। कुछ विद्वानों का यह विश्वास है कि अमरीका व रूस के पास इन मयों की लिखी हुई कुछ पुस्तकें है और वहा के विद्वान उन पुस्तको के पढ़ने और समझने का प्रयत्न कर रहे है। वे तो यह भी कहते है कि अमरीका व रूस ने अन्तरीक्ष-विज्ञान में जो सफलता प्राप्त की है, वह इन पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान के कारण ही प्राप्त हो सकी है। इस "मय" जाति के बहुत से अभिलेख भी उपलब्ध हैं, जिनको पढने के प्रयत्न हो रहे हैं।

महाभारत में "मय" दानव का उल्लेख है जिसने पाण्डवों के लिए अद्भुत महल बनाया था। सम्भव है कि वह मय—दानव इस "मय" जाति का ही कोई शिल्पकार हो।

कुछ विद्वानों का तो यह भी विचार है कि मिस्र व मैक्सिको के पिरामिड इसी "मय" जाति के ही बनाये हुए हैं। मय जाति के बनाये हुए महलों, मन्दिरों व पिरामिडों तथा नगरों के खण्डहर यत्र-तत्र मिल जाते हैं। हजारों वर्ष पहले के बने हुए इन नगरों व भवनों को देखकर उनकी उच्चकोटि की वास्तुकला पर आश्चर्य होता है। इनमें बहुत बड़े-बड़े पत्थरों का उपयोग हुआ है। अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि वैसे पत्थर इन निर्माण स्थलों से मीलों दूर तक भी उपलब्ध नही हैं। किन्ही दूर के स्थानो से इतने बड़े-बड़े पत्थरो को निर्माण-स्थल पर लाना ही एक बहुत बडी बात है।

यह भी कहा जाता है कि मय जाति का खगोलीय-ज्ञान भी उच्च-कोटि का था। जिन यूरेनस व नेपच्यून ग्रहों का पता हमारे वैज्ञानिकों को अठारहवी व उन्नीसवी शताब्दी में लगा है, मय लोगों को उन ग्रहो की जानकारी बहुत प्राचीनकाल से ही थी।

मय सभ्यता पर और भी कई लेखकों ने पुस्तकें लिखी हैं।

पुरातत्त्ववेत्ताओं को हजारों वर्ष पुराने भित्ति-चित्र मिले है। इन चित्रों मे ऐसी आकृति भी मिली है जैसे कि अन्तरीक्ष-परिधान पहिने आजकल का अन्तरीक्ष यात्री होता है। इस आकृति को देखकर विद्वानों का यह अनुमान है कि प्राचीन काल में किसी दूसरे ग्रह के निवासी ऐसे परिधान पहन कर इस पृथ्वी पर आये होंगे और इस पृथ्वी के निवासियो ने उनको देखकर यह आकृति बनाई होगी।

ऋग्वेद भारतवर्ष का सबसे पुराना ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ में अनेकों ऐसी ऋचाए है जिनसे यह ध्वनित होता है कि मंत्र के रचयिता ऋषि किसी अन्तरीक्ष यात्री व अन्तरीक्षयान के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं:—

"तुम्हारे घोड़े किधर है? उनकी लगाम कहां है? कैसे तुम सामर्थ्य-वान हुए हो? और तुम भला कैसे जाते हो? उनके पीठ की जीन और नथुने की रस्सी कहां धर आये हो?" ऋ० वे०५-६१८२

"हे मरुत वीरों! आपका रथ दोषरहित रहे। उसको घोड़े जोते नहीं जाते, रथ पर न बैठने वाला भी जिसको चलाता है। जिस पर रक्षा का कोई साधन नहीं है, जिसकी लगाम नहीं है, धूलि उड़ाता, इच्छा पूर्ण करता हुआ आकाश और पृथ्वी के मध्य-भाग से जाता है।"

ऋ० वे० ६-६६-७

दूसरे ग्रहों से आने वाले मनुष्यों ने (जिनको देवता कहा जाता था) यहां पर आकर यहां के निवासियों से युद्ध भी किये थे। ऋग्वेद में इन युद्धों का वर्णन है और उन युद्धों में प्रयोग में लाये गये हथियारों का भी वर्णन है

इन हथियारों में से कुछ हथियार हमारे आधुनिक हथियारों से मिलते-जुलते से लगते हैं। ऋग्वेद ४-३८-८

दूसरे ग्रहों से पृथ्वी पर आने वाले प्राणियों के सम्बन्ध में और भी विद्वानों ने पुस्तके लिखी है। अमरीकी वैज्ञानिक श्री चार्ल्स फोर्ट ने "The book of the Damned", श्री ब्रेड स्टीमर ने "Strangers From the Sky", डाक्टर कार्ल सागन और प्रोफेसर जोसेफ स्कलोवस्की ने "Intelligent Life in the Universe", सर जेम्स जीस ने "The mysterial Universe" अमरीकी व्यापारी श्री ट्रेवर जेम्स ने "They Live in the Sky" नामक पुस्तकें लिखी है। और भी अनेको विद्वानों व वैज्ञानिको ने इस सम्भावना की पुष्टि की है कि हमारी पृथ्वी से परे अन्तरीक्ष में किन्हीं ग्रहो पर हम से भी अधिक उन्नत प्राणी रहते है।

इन तथ्यो का उल्लेख करने से हमारा तात्पर्य यही बतलाना है कि यह विश्व बहुत अधिक विशाल है और हमारी पृथ्वी से दूर अन्तरीक्ष में किन्हीं ग्रहो पर हमसे बहुत अधिक उन्नत प्राणियों का अस्तित्व होने की बहुत अधिक सम्भावना है।

इस विश्व की विशालता और हमारी पृथ्वी के मनुष्य की अल्पज्ञता व तुच्छता के सम्बन्ध मे एक बात का उल्लेख करना उचित होगा। अमेरिका के कुछ वैज्ञानिक चाद का चक्कर लगाकर और कुछ चॉद पर पदार्पण करके वापिस आये हैं। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचारपत्र "नवभारत टाइम्स" के एक सम्पादकीय लेख मे लिखा है, "जबसे ये अन्तरीक्ष यात्री अपनी चन्द्रयात्रा से वापिस आये है, तब से उनमें कुछ विरक्ति जैसी भावना आ गई है और वे आत्म-केन्द्रित-से हो गये है। उनके ऐसे व्यवहार से उनकी पत्नियो को भी परेशानी हो रही है। कई पत्नियो ने तो अपने इन अन्तरीक्ष-यात्री पतियो को तलाक भी दे दिया है। इसका कारण यही विदित होता है कि बहुत सम्भव है कि इस विश्व की विशालता का कुछ अनुभव करके इन अन्तरीक्ष-यात्रियो को इस पृथ्वी की और यहाँ के निवासियों की क्षुद्रता का कुछ भान हुआ हो और इसीलिए उनमें यह विरक्ति की भावना जाग्रत हो गई हो।

एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। विभिन्न धर्मों के शास्त्रों में स्वर्ग व नरक का उल्लेख हुआ है। बहुत सम्भव है कि पृथ्वी से दूर किसी ग्रह पर बहुत अच्छा वातावरण होने के कारण उस ग्रह को स्वर्ग कहा गया हो और जिस ग्रह पर बहुत खराब वातावरण हो उसको नरक कहा गया हो।

इस अध्याय में जो भी वर्णन किया गया है वह सब सामग्री लोकप्रिय, विश्वसनीय, प्रसिद्ध व प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं से ली गयी है। अतः हम उन सबके अभारी हैं।

विकासवाद की धारणा

अब से साठ-सत्तर वर्ष पहले वैज्ञानिकों की यह मान्यता थी कि अरबों वर्ष पहले आकाश में केवल आग का एक गोला था, उसी गोले को हम सूर्य कहते हैं। भिन्न-भिन्न समयों पर उस गोले में से छोटे-छोटे टुकड़े टूट कर गिरे, जो उस आग के गोले के चारों ओर उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण भिन्न-भिन्न दूरियो पर चक्कर काटने लगे।* ये ही टुकड़े मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र आदि ग्रह व नक्षत्र कहे जाने लगे। उन्हीं टुकड़ों में से एक टुकड़े से हमारी यह पृथ्वी अस्तित्व में आई। यह आग का टुकड़ा (हमारी पृथ्वी) करोड़ों वर्षों में धीरे-धीरे ठण्डा हुआ। फिर इस पर बहुत समय तक बरसात होती रही, जिससे पृथ्वी पर पानी व दलदल हो गयी। उस पानी व दलदल में ही पहली बार जीवन अस्तित्व में आया। प्रारम्भिक जीव बहुत ही सादे, बगैर हड्डियों के केंचुओं के समान थे। उन्हीं प्रारम्भिक जीवों से उन्नति करते-करते आज का मनुष्य अस्तित्व में आया। उन वैज्ञानिको ने वन-मानुषों को आज के मनुष्य का सबसे निकट का पूर्वज बतलाया था।

---

*यह बात समझ में नही आती कि उस सूरज के गोले ने पहले तो इन ग्रहों व नक्षत्रों को अपने से छिटक जाने दिया, परन्तु जब वे करोड़ों किलोमीटर दूर चले गये, तब उस सूरज ने अपने गुरुत्वाकर्षण से उनको बाँध लिया और वे सूरज के चारों ओर एक निश्चित पथ पर और निश्चित गति से चक्कर लगाने लगे। इस प्रकार चक्कर लगाते हुए उन्हे करोड़ों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

इस सम्बन्ध में यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी से दो सौ-ढाई सौ किलोमीटर ऊपर समाप्त हो जाती है। पृथ्वी से छोड़े गये कृत्रिम उपग्रह उस गुरुत्वाकर्षण-शक्ति-विहीन क्षेत्र में ही घूमते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की सीमा है उसी प्रकार सूरज की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की भी कोई सीमा होगी। तब करोड़ों किलोमीटर दूर सूरज ने इन ग्रह व नक्षत्रों को अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से कैसे बाँध रक्खा है?

इस धारणा को वही व्यक्ति तथ्य मानते हैं जो दुहाई तो विज्ञान की देते हैं परन्तु जो विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों से बिलकुल अपरिचित होते हैं।

हमारी इस पृथ्वी की और उसके ऊपर जीवन की उत्पत्ति तथा विकास की जो धारणा ऊपर दी गई है, वह केवल धारणा ही थी, तथ्य नही था। अधिकाश आधुनिक वैज्ञानिक इस धारणा और इस धारणा पर आधारित विकासवाद को मान्यता नही देते। जैसे-जैसे अन्तरीक्ष-विज्ञान द्वारा नये-नये तथ्य प्रकाश मे आ रहे है, वैसे-वैसे वैज्ञानिक अपनी पुरानी धारणाओ को छोडते जा रहे हैं। बहुत-से उच्चकोटि के वैज्ञानिक अब यह स्वीकार करते है "यह विश्व हमारी धारणाओ से भी बहुत अधिक विशाल और बहुत अधिक प्राचीन है। हम निश्चयपूर्वक यह नही बतला सकते कि इस विश्व का निर्माण कब और कैसे हुआ। क्योकि यह एक तथ्य है कि न तो कोई परमाणु नया बनता है और न कोई परमाणु नष्ट ही होता है, इसलिए बहुत सम्भव है कि यह विश्व और इसके असख्य ग्रह व नक्षत्र सभी अकृत्रिम (जो वस्तु किसी की बनाई हुई न हो) व अनादि (जो वस्तु सदैव से ही विद्यमान हो) ही हो। अभी हमको इस विश्व का ज्ञान 'नहीं' के बराबर ही है। इस विश्व में हमारे सौर-मण्डल जैसे असंख्य सौर-मण्डल है। इस बात की बहुत अधिक सम्भावना है कि हमारी इस पृथ्वी के अतिरिक्त और भी अनेको ऐसे ग्रह व नक्षत्र हो जहा पर जीवन हो और उनमें हमसे भी अधिक चतुर, दीर्घायु और शक्तिशाली प्राणी रहते हो।" वैज्ञानिकों की ऐसी स्पष्टोक्ति के पश्चात् भी विज्ञान की दुहाई देकर पुरानी धारणाओ से चिपटे रहना तथ्यो से आंखें मूदना ही माना जायेगा।

एक बात और, ऊपर-लिखित धारणा वाले विकासवादी कहते थे कि जीवन सर्वप्रथम दलदल व पानी में अस्तित्व में आया। उन प्रारम्भिक प्राणियो मे से जो प्राणी पानी में ही रह गये, वे इस प्रकार विकसित हुए कि वे पानी में ही रह सकें (जैसे मछलिया) और जो प्राणी भूमि पर चले गये वे इस प्रकार विकसित हुए कि वे भूमि पर रह सके (जैसे गाय, भैंस आदि पशु व मनुष्य) और उनमें से जो प्राणी फुदकने लगे, उनका विकास पक्षियो के रूप में हुआ।

यदि जीवन के विकास की कहानी इतनी-सी ही होती, तो समस्त प्राणी एक ही प्रकार की प्रक्रिया में से होकर विकसित होने के कारण, आज बहुत थोड़े प्रकार के प्राणी ही अस्तित्व में आये होते। परन्तु आज हम पानी

में भी और भूमि पर भी एक ही स्थान पर हजारों प्रकार के प्राणी देखते हैं जो एक दूसरे से रूप, रंग, बनावट, परिमाण, शक्ति व स्वभाव आदि हर तरह से भिन्न होते हैं। इसी प्रकार एक ही स्थान पर बहुत-सी प्रकार की वनस्पतिया भी देखी जाती है। इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि ये सभी वनस्पतिया व प्राणी एक समान ही प्रक्रिया मे से होकर विकसित हुए है।

जहा तक इस पृथ्वी पर मनुष्यो की संख्या में वृद्धि का प्रश्न है, हम यही कह सकते है कि आत्मा केवल मनुष्यों में ही नही होती, अपितु प्रत्येक पशु-पक्षी, कीट-पतंग व सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओ के अतिरिक्त वनस्पतियों में भी आत्माए होती है। ये आत्माएं अपने-अपने कर्मों के फलस्वरूप ही भिन्न-भिन्न योनियों मे शरीर धारण करती रहती है। पशु-पक्षियों आदि की आत्माए किन्ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य का शरीर भी धारण करती रहती है और इसी प्रकार मनुष्यों की आत्माएं किन्हीं बुरे कर्मों के फलस्वरूप पशु-पक्षियो व कीट-पतगों आदि का शरीर भी धारण करती रहती है। इसलिए मनुष्यो की संख्या में वृद्धि होने से उनमें बिल्कुल नई आत्माए नही आती, अपितु जो अनन्त आत्माएं सदैव से ही अस्तित्व में हैं, उनमे से ही कुछ अपने-अपने कर्मों के अनुसार मनुष्यों का शरीर धारण करती रहती है।

यदि हम थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि अरबो वर्ष पहले हमारी इस पृथ्वी पर जीवन नही था, तो भी इसका तात्पर्य यह तो नही है कि इस विशाल विश्व मे कही भी जीवन नही था। ऐसी परिस्थिति में भी हम अधिक-से-अधिक यही कह सकते है, कि ठीक है किसी समय हमारी पृथ्वी का वातावरण प्राणियों के द्वारा निवास करने योग्य न रहा हो, परन्तु जैसे-जैसे यहां का वातावरण व जलवायु प्राणियों के निवास के योग्य बनता गया, दूसरे ग्रहो के प्राणी वहा से मरकर अपने-अपने कर्मों के अनुसार इस पृथ्वी पर भी जन्म लेने लगे। (वैज्ञानिक इस सम्भावना से इंकार नही करते कि पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों में भी जीवन हो सकता है।) जिस प्रकार हम अपनी पृथ्वी पर ही देखते है कि बहुत से नगर ऐसे स्थानों पर बसे हुए है, जहा अब से ढ़ाई-तीन सौ वर्ष पहले भयानक जंगल थे। परन्तु जैसे-जैसे परिस्थितिया अनुकूल होती गयी, लोग बाहर से आ-आ कर उन स्थानों पर बसने लगे। और इस प्रकार आज के ये विशाल नगर अस्तित्व में आते गये।

इस सम्बन्ध में एक तथ्य और भी ध्यान देने योग्य है। हमारी पृथ्वी पर ही एक ही समय में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न मौसम होते है। एक ही समय मे किसी स्थान पर तो भीषण गर्मी पडती होती है जबकि उसी समय किसी दूसरे स्थान पर कड़कड़ाती सर्दी होती है। उदाहरण के लिये अरब के रेगिस्तान में भीषण गर्मी पड़ती रहती है जबकि दक्षिण ध्रुव प्रदेश (अन्टार्कटिका) मे सदैव ही कडकड़ाती सर्दी का मौसम रहता है। वहा पर सदैव ही सैकड़ो मीटर मोटी बर्फ की परत जमी रहती है। परन्तु फिर भी इन दोनो प्रदेशो मे भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी रहते है जो वहा की जलवायु और वातावरण के अभ्यस्त होते है। दक्षिण ध्रुव प्रदेश मे करोडो की सख्या मे पेगुइन नामक प्राणी रहते है। वहा पर 'नील' व 'क्रिल' नामक मछलिया भी बहुतायत से होती है। इनके अतिरिक्त कुछ और पक्षी और समुद्री प्राणी भी वहा पर होते है। इसी प्रकार अरब के रेगिस्तान मे भी वहा की जलवायु के अभ्यस्त प्राणी रहते है। ऊँट तो वहा का प्रसिद्ध पशु है ही जिसके बिना रेगिस्तानी इलाके मे जीवन व्यतीत करना ही कठिन हो जाये। इससे यह स्पष्ट है कि प्राणी अपने-अपने प्रदेश की जलवायु और वातावरण के अभ्यस्त होते है।

इस सम्बन्ध मे यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है। आजकल वैज्ञानिक कीडे-मकोडो को नष्ट करने के लिए कीट-नाशक रसायन बनाते है। इन वैज्ञानिको ने अपने अध्ययन से यह पाया है कि कोई भी कीट-नाशक अधिक समय तक प्रभावशाली नही रहता। साल, दो साल या तीन साल के बाद ये कीडे-मकोडे उन कीट-नाशको के अभ्यस्त हो जाते है और वे कीट-नाशक उन कीडे-मकोड़ो को नष्ट नही कर पाते। अतः वैज्ञानिको को इन कीडे-मकोड़ो को नष्ट करने के लिए और अधिक शक्ति के कीट-नाशको का उत्पादन करना पड़ता है, जो फिर कुछ समय के बाद प्रभाव-हीन हो जाते है।

वैज्ञानिको ने कुछ ऐसे कीटाणुओ का भी पता लगाया है जो उबालने पर भी जीवित रहते है।

इन तथ्यो को देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि कोई समय ऐसा भी था जब हमारी पृथ्वी पर किसी भी प्रकार का जीवन ही नही था। इसके विपरीत यहा पर सदैव ही किसी न किसी प्रकार का जीवन अवश्य ही रहा होगा और जैसे-जैसे पृथ्वी का वातावरण व जलवायु बदलता रहा होगा, प्राणी उसी प्रकार के जलवायु व वातावरण के अभ्यस्त होते गये होगे।

एक ज्वलन्त प्रश्न

आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म व परलोक के सिद्धान्त को न मानने वाले एक तथाकथित प्रगतिशील लेखक ने एक प्रश्न किया है, "जीव विज्ञान (बायोलॉजी) की शोधों से पहले तक तो हमे यह भी पता नही था कि हमारे शरीर मे कितनी नस-नाड़ियाँ है और उनमें कितने-कितने और किस-किस तरह के कीटाणु हर समय रेंगते रहते है, तो फिर "आत्मा" नाम की अदृश्य चीज को इन "अध्यात्मवादियों ने शरीर के भीतर कौन सी "एक्सरे" मशीन से देख लिया था ?"

इस प्रश्न के उत्तर मे हमे यही निवेदन करना है कि आत्मा कोई भौतिक पदार्थ नही है जिसे किसी भी प्रकार की शक्तिशाली 'एक्सरे' मशीन से अथवा अन्य किसी साधन से देखा जा सके। इसका अस्तित्व तो पिछले पृष्ठो मे वर्णित किये हुए उसके गुणो व उसके प्रभावो से ही जाना जाता है। आत्मा देखने की नही, अपितु अनुभव करने की चीज है। तथ्य तो यह है कि अनुभव करने वाली शक्ति ही आत्मा है।

हम यहाँ पर एक और तथ्य दे रहे है—

अब से कुछ दशाब्दी पहले तक "परमाणु" को इस जगत का सबसे छोटा कण माना जाता था। इसके कुछ वर्ष पश्चात् परमाणु मे इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन नामक कणो के अस्तित्व का पता चला। परन्तु अब वैज्ञानिको ने परमाणु के भीतर ढाई सौ से भी अधिक सूक्ष्म कणो के अस्तित्व का पता लगाया है। इन सूक्ष्म कणों मे सबसे विलक्षण जो कण माना जाता है, वैज्ञानिकों ने उसका नाम "न्यूट्रिनो" रक्खा है। ये कण सूर्य जैसे विशाल पिण्ड में से भी बड़ी आसानी से पार हो जाते है। यह कल्पनातीत भेदन-शक्ति न्यूट्रिनो का सर्वाधिक विलक्षण गुण माना जाता है। वैज्ञानिक इन "न्यूट्रिनो" के सम्बन्ध में और अधिक खोज कर रहे है।

इस तथ्य से क्या हम यह मान ले कि वैज्ञानिकों के खोज करने से पहले इन "न्यूट्रिनो" तथा अन्य सूक्ष्म कणो का अस्तित्व ही नहीं था ? इसी प्रकार यदि भौतिक वैज्ञानिकों ने अभी तक अभौतिक आत्मा के अस्तित्व को

स्वीकार नही किया है, तो क्या आत्मा का अस्तित्व ही नही है ? (वास्तव मे तो अभौतिक आत्मा भौतिक वैज्ञानिको का विषय ही नही है ।)

हमें यह नही भूलना चाहिए कि वैज्ञानिकों की आज की धारणायें ही अन्तिम सत्य नही है। हम प्रतिदिन देखते है कि नए-नए अनुसन्धानों और नयी-नयी शोधो के फलस्वरूप वैज्ञानिको की पुरानी धारणाये बदलती रहती है और नई-नई धारणायें बनती रहती हैं ।

जहा तक भारतीय मनीषियों के शरीर की नस नाड़ियों के सम्बन्ध मे अज्ञानता का प्रश्न है, हम तो यही कह सकते है कि भारतीय मनीषियों को इन नस-नाडियो का पूर्ण ज्ञान था। यदि उन्हे इन नस-नाड़ियो का ज्ञान नही होता तो उन्हे योगिक क्रियायों द्वारा तन और मन को स्वस्थ रखने की कला का ज्ञान कैसे होता ? कुछ वर्ष पहले तक प्रगतिशील कहे जाने वाले सज्जन योगिक क्रियायो का उपहास उडाया करते थे। परन्तु जब पश्चिमी देशो के शरीर-वैज्ञानिको ने इन क्रियायो की तन मन को स्वस्थ करने की क्षमता को स्वीकार कर लिया, तो भारत के ये प्रगतिशील सज्जन भी योगिक क्रियायो की क्षमता को स्वीकार करने लगे है ।

तथ्य तो यह है कि भारतीय मनीषियों की उपलब्धियो को नकारना, उनकी बुराई करना तथा उनका उपहास उड़ाना ही आज प्रगतिशीलता का प्रथम लक्षण माना जाता है।

भारतीय मनीषियो की उपलब्धियो के निम्नलिखित उदाहरण देने ही पर्याप्त होंगे—

आयुर्वेद के महान् ग्रन्थ "सुश्रुत सहिता" (जो कई हजार वर्ष पुराना ग्रन्थ माना जाता है) के कल्पस्थान के आठवे अध्याय मे मलेरिया और मच्छरो के आपसी सम्बन्ध का स्पष्ट वर्णन है। इसमे लिखे सस्कृत सूत्र का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है, "पाच प्रकार के मच्छर होते है, जिनके नाम है सामुद्र, परिमण्डल, हस्तिमशक, कृष्ण एव पार्वतीय। इनके काटने पर तीव्र खाज और दश-स्थान मे सूजन आ जाती है, लेकिन पार्वतीय मच्छर के काटने पर प्राणहर कीटो के समान लक्षण उत्पन्न होते है।"

सु० क० ८/३६

प्राणहर कीटों के काटने से उत्पन्न होने वाले लक्षणो के सम्बन्ध में कहा गया है, "प्राणहर कीटों के काटने पर ज्वर, अंगो का टूटना, रोमांच,

तीव्र वेदना, अतिसार, तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, जम्भाई आना, शीत लगना, कम्पन होना, श्वास बढ़ना तथा अत्यन्त दाह अनुभव करना आदि लक्षण उत्पन्न होते है।" सु० क० ८/१६-२०

ये सभी लक्षण मलेरिया ज्वर के समान ही हैं। सुश्रुत ने जिसे पार्वतीय मशक (मच्छर) कहा है, वह 'एनोफिलीज' नामक मच्छर ही है। क्योंकि प्राचीन काल में मलेरिया ज्वर पैदा करने वाले मच्छर हिमालय की तराई के क्षेत्र में बहुत अधिक सख्या में होते थे, इसलिए उस क्षेत्र में मलेरिया भी अधिक फैलता था। अत वहा उत्पन्न होने वाले मच्छरों को पार्वतीय मच्छर कहा गया है। इसी वर्णन के आधार पर सर रौनैल्ड रौस ने *हैदराबाद में अपने अन्वेषण किये और सिद्ध किया कि मलेरिया* एनोफिलीज नामक मादा-मच्छर के काटने पर होता है। इस अनुसंधान के फलस्वरूप ही उन्हे सन् १६०२ में 'नोबल प्राइज' मिला।

सर हेनरी ब्लेक एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बगाल के सक्रिय सदस्य थे। उन्होने सन् १६०५ मे अपने एक प्रपत्र में स्पष्ट लिखा है कि सुश्रुत-संहिता मे यह जानकारी मिलती है कि मच्छर के काटने पर मलेरिया जैसा ज्वर उत्पन्न होता है।

इतना ही नही, अति प्राचीन काल मे आयुर्वेद-शास्त्रियो को रोग कारक सूक्ष्म जीवाणुओ का भी ज्ञान था। इन जीवाणुओ के सम्बन्ध मे महर्षि चरक ने लिखा है—

> "रक्त जन्य जीवाणुओ का निदान कुष्टकारक विषाणुओ के समान करना चाहिये। इन विषाणुओ का स्थान रक्त-वाहक मार्ग है। उनकी आकृति अणु के समान है (वे एक कोशिकानुरूप है) तथा आकार में गोल तथा पदादि रहित होते है। सूक्ष्मता के कारण उन्हे अदृश्य कहा जाता है।" चरक-विमान ७/११

यह वर्णन वर्तमान युग में कहे जाने वाले सूक्ष्म-जीवाणुओ से एकदम मिलता है। इतना ही नही इन जीवाणुओ द्वारा अस्थिमज्जा शोथ (Infaction) उत्पन्न करने का भी उल्लेख मिलता है जिसे आजकल अंग्रेजी भाषा में आस्टियो मेलाइटिस कहा जाता है। इस रोग का मुख्य कारण स्टैफाइलो काकस नामक जीवाणु कहा गया है।

कुछ विद्वानों का मत है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में आयुर्वेद की शिक्षा अत्यन्त उच्चकोटि की होती थी। महात्मा बुद्ध के चिकित्सक

जीवक ने यहा से शिक्षा ग्रहण करके ही पेट व मस्तिष्क के ऐसे ओपरेशन किये थे जो आज भी बहुत जटिल व कष्टसाध्य माने जाते है। जीवक ने राजगृह के एक सेठ के सिर का सफल ओपरेशन किया था, जिसको सिर की एक बहुत पुरानी बीमारी थी। वाराणसी के एक सेठ के पुत्र की आतें उलझ गयी थी, जीवक ने उसका भी सफल ओपरेशन किया था।

इसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिको ने बीसवी शताब्दी मे यह स्वीकार किया है कि वनस्पति मे जीवन होता है, जबकि भारतीय मनीषियो ने अब से हजारो वर्ष पहले ही इस तथ्य की घोषणा कर दी थी।

इसी प्रकार ग्रह-नक्षत्रों की जिन गतियो को पाश्चात्य वैज्ञानिक अपने यन्त्रो का सहायता से कुछ समय पहले ही जान पाये है, भारतीय मनीषियो ने उन ग्रह-नक्षत्रो की गतियो को हजारो वर्ष पहले ही ज्ञात कर लिया था और उन गतियो के आधार पर ही अति प्राचीन काल से पचाग बनाए जाते रह है तथा पूर्णमासी, अमावस्या, और सूर्य व चन्द्र ग्रहणो की भविष्यवाणिया की जाती रही है। उन भारतीय मनीषियो ने तो यह भी बतला दिया था कि इन ग्रह-नक्षत्रो की गतियो का इस पृथ्वी और पृथ्वी क मनुष्या पर क्या प्रभाव पड़ता है (ज्योतिष-शास्त्र)।

आज हमारे विद्यालयो मे यही पढाया जाता है कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षक शक्ति के सिद्धान्त (Law of Gravitation) की खोज न्यूटन नाम के पाश्चात्य वैज्ञानिक ने की थी। परन्तु ज्योतिष व गणित के प्रकाड विद्वान् भारत के श्री भास्कराचार्य को कौन जानता है जिन्होने बारहवीं शताब्दी मे ही अपने महान् ग्रन्थ "सिद्धान्त शिरोमणी" मे इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए लिखा था, "पृथ्वी मे एक आकर्षण शक्ति है। उसी शक्ति से आकाश स्थित भारी बस्तु उसके द्वारा स्वाभिमुख आकृष्ट की जाती है, वह गिरती हुई सी प्रतीत होती है।"

भारत के इन प्रगतिशील सज्जनो की पाश्चमी देशो की बौद्धिक दासता की बाते कहा तक कहे? एक विदेशी लेखक ने यह लिख दिया कि भारत सापो, साधुओ, लुटेरो व गवारो का देश है तो हमारे प्रगतिशील सज्जनो ने सिर झुका कर आखे मीच कर इस बात को स्वीकार कर लिया।

हम उन प्रगतिशील सज्जनो से पूछते है—

दक्षिण भारत के मन्दिरो मे बने कई-कई मंजिलों के मुख्य द्वार (गोपुरम)जो सैकड़ो वर्षों से काल के थपेड़ो तथा वर्षा व भूकम्प के झटको

को झेलते हुए भी सिर उठाए खड़े हैं, कौन से सीमेंट से बनाए गये थे, किस देश से उस सीमेंट का आयात किया गया था और कौन से देश के इजीनियर उनको बनाने आये थे ?

दिल्ली की कुतुबमीनार को बनाने के लिए कौन से देश से इंजीनियर बुलाये गये थे ?

दिल्ली में ही सिर उठाये खडे लौह-स्तम्भ का निर्माण करने के लिए कौन से देश के धातु-विशेषज्ञ आये थे ?

आबू व राणकपुर (राजस्थान) के जैन मन्दिरो को कौन से देश के शिल्पकारो ने बनाया था ?

श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) की पहाड़ी पर बनी भगवान बाहुबली की विशाल व सुन्दरतम प्रतिमा कौन से देश के शिल्पकारो की कृति है ? अजन्ता, एलोरा व खजुराहो की अनुपम शिल्पकारी किसकी देन है ?

एलोरा (महाराष्ट्र) मे बने विशाल कैलाश मन्दिर का निर्माण कौन से देश के शिल्पकारो ने किया था ?

किस देश के ऐसे विशाल जलयान थे जो हजारों वर्ष पहले अपने देश की कलात्मक वस्तुएँ तथा मसाले व वस्त्र आदि लेकर विशाल सागरो की छाती को चीरते हुए विदेशों मे जाते थे और वहा से उन कलात्मक वस्तुओ के बदले मे सोना-चादी, हीरे-जवाहरात लाकर अपने देश को मालामाल बनाते रहते थे ?

वह कौन सा देश था जो हजारो वर्षों तक सोने की चिड़िया के नाम से प्रसिद्ध रहा ?

नालन्दा व तक्षशिला के विश्वविद्यालय कौन से देश मे थे, जहा पर अनेको कष्ट सहकर भी विदेशी विद्वान् अध्ययन तथा ज्ञानार्जन के लिये आते थे और वापिस जाते समय अपने देशों में भी ज्ञान की ज्योति प्रज्व-लित करने के लिए यहा से सैकड़ो ग्रन्थ ले जाया करते थे, जिनकी वे अपने प्राणों से भी अधिक सुरक्षा किया करते थे ?

ज्ञान व विज्ञान के भंडार वे लाखों-करोड़ों ग्रन्थ कौन से देश में थे, जिनकी होली जलाकर विदेशी आक्रमणकारी वर्षों तक अपने स्नाना-गारों का पानी गरम करते रहे थे ?

वे कौन से देश के शिल्पी और कलाकार थे, जिनकी कला-सृजन की शक्ति को नष्ट करने के लिए विदेशी उन पर अमानवीय अत्याचार करते रहते थे और उनके हाथ तक काट दिया करते थे ?

यह सब लिखने का हमारा तात्पर्य यह नही है कि प्राचीन काल में भारत मे केवल अच्छाई ही अच्छाई थी और कोई बुराई नही थी। दूसरे देशो की उपलब्धियो को नकारने का भी हमारा कोई इरादा नही है। हमने तो उन प्रगतिशील कहे जाने वाले सज्जनो के सम्मुख कुछ तथ्य प्रस्तुत किये है जो प्राचीन भारत की प्रत्येक क्षेत्र मे बुराई ही बुराई देखते है। हमे शिकायत इन सज्जनो से नही अपितु उस मानसिकता से है जिसके रहते अपने देश की प्रत्येक वस्तु को बुरा समझा जाता है। इसी मानसिकता पर व्यग करते हुए सुप्रसिद्ध उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने कहा था—

हम ऐसी कुल किताबे लायके जब्ती समझते है,
जिन्हे पढकर के बेटे बाप को खब्ती समझते है।

जो सज्जन आत्मा के अस्तित्व तथा पुनर्जन्म व कर्म-फल के सिद्धान्तों को नही मानते, उनसे हम भी एक प्रश्न पूछना चाहेगे। समस्त विश्व की बात को जाने भी दे, हमारी यह पृथ्वी तथा इस पृथ्वी के समस्त प्राणी किन्ही नियमो व कायदो के अनुसार चल रहे है या बिना किसी नियम व क़ायदो के ही ? यदि हमारी यह पृथ्वी तथा इसके सभी प्राणी किन्ही नियमो व क़ायदो के बिना ही, वैसे ही सयोगवश चल रहे है, तब तो हमे कुछ कहना ही नही है। (यदि यहा पर कोई नियम व कायदा ही नही होता, तो यहा "जगल के न्याय" जैसा हाल हो गया होता और यह पृथ्वी इतनी सुव्यवस्थित ढग से नही चल रही होती। हम आलू बोते तो उसमें से मटर या कुछ और उग आता।) इसके विपरीत यदि उनके विचार मे यह पृथ्वी और समस्त प्राणी किन्ही नियमो व कायदो के अनुसार चल रहे है तो वे नियम व कायदे क्या है ? क्या यह सब कारण व कार्य (Cause & Effect) के अनुसार ही नही हो रहा है ? क्या वे सज्जन यह बतलाने का कष्ट करेगे कि इस पृथ्वी पर हर समय देखी जाने वाली इन विडम्बनाओं का कारण क्या है? हमे अकारण ही कभी सुख व कभी दु.ख क्यो मिलते रहते है ? परन्तु इन सज्जनो के पास इन प्रश्नो को कोई उत्तर नही होता। इनमें से अधिकाश सज्जन यही कह देते है कि कुछ शक्तिशाली, धनवान व निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियो ने निर्बल वर्ग का शोषण करने के लिये आत्मा के

अस्तित्व, पुनर्जन्म तथा कर्म-फल आदि के सिद्धान्त घड़ रक्खे हैं और इस प्रकार वे निर्बल-वर्ग का शोषण करते रहते हैं। इसलिए निर्बल-वर्ग दुःख भोगता रहता है। परन्तु यह कोई तर्कसंगत समाधान नही है। यह तो इन सज्जनो के कुण्ठाग्रस्त दिलों की भडास मात्र है। क्या इस पृथ्वी पर आज तक कोई ऐसी शासन-व्यवस्था या समाज-व्यवस्था हुई है जिसमें देश का प्रत्येक नागरिक समान रूप से सुखी रहा हो? इस पृथ्वी पर क्या बलवान क्या निर्बल, क्या धनवान क्या निर्धन, क्या शासक और क्या शासित कौन-सा ऐसा वर्ग या व्यक्ति है जो सर्व प्रकार से सुखी हो या सर्व प्रकार से दुःखी ही हो। लगभग सभी व्यक्ति किसी अपेक्षा से सुखी देखे जाते हैं और किसी अपेक्षा से दुःखी देखे जाते हैं। रोग व शोक जिस प्रकार निर्बलों, निर्धनों व शासितों को सताते हैं, उसी प्रकार बलवानों, धनवानों व शासकों को भी सताते हैं। इन वास्तविकताओं को दृष्टि में रखकर हम कुण्ठाग्रस्त दिलों की भडास नही, अपितु इन विडम्बनाओं का तर्क-संगत समाधान चाहते हैं। क्या वे सज्जन कुछ समाधान प्रस्तुत करने का कष्ट करेगे ?



गुणो का पारखी गुणी को पाकर प्रसन्न हो जाता है, किन्तु निर्गुण व्यक्ति गुणवान की कदर नही करता। भौंरा जगल में रहते हुए भी तालाब में खिले कमल के पास जाता है, जबकि मेंढक तालाब में रहते हुए भी कमल के पास भी नही फटकता।



चलते रहने से पुरुष धीरे-धीरे मार्ग के अन्त तक पहुंच जाता है। काम को आरम्भ करने वाला पुरुष यहाँ क्या नहीं कर लेता ?



किसी वस्तु के दोष का ध्यान न करते हुए विद्वान पुरुष उसके गुणों को ग्रहण कर लेते हैं। जैसे भौंरा कांटे वाले पौधे की सुगन्ध को ग्रहण कर लेता है।

पुनर्जन्म

अब हम पुनर्जन्म के विषय पर कुछ विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में हम पिछले कुछ वर्षों मे प्रकाश में आई पूर्व-जन्म-स्मृति की कुछ घटनाओ का उल्लेख कर रहे है। ये घटनाएं बहुत से प्रतिष्ठित समाचार पत्रो व पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुकी है। इन घटनाओ की तथा इनसे सम्बन्धित व्यक्तियो की बहुत से उच्चकोटि के वैज्ञानिको, चिकित्सको और मनोवैज्ञानिकों ने जाच की है और वे इन घटनाओं की सत्यता को नि सकोच स्वीकार करते है। भारत के अतिरिक्त इंग्लैण्ड, अमरीका आदि पश्चिमी देशो में इस विषय पर बहुत खोज हो रही है और वहा पर इस विषय पर बहुत सा साहित्य भी प्रकाशित हो चुका है और अब भी हो रहा है।

क्यूबा निवासी महिला की घटना

न्यूयार्क में रहने वाली क्यूबा निवासी २६ वर्षीया राचाले ग्राण्ड (Rachale Grand) को यह अलौकिक अनुभूति हुआ करती थी कि वह अपने पूर्व जन्म मे नर्तकी थी और यूरोप मे रहती थी। खोज करने पर पता चला कि यूरोप के स्पेन देश में ६० वर्ष पहले उसके विवरण की एक नर्तकी रहती थी। राचाले का कथन है कि अपने वर्तमान जन्म में भी वह जन्मजात नर्तकी ही है। और उसने किसी के सिखाये बिना एव अभ्यास किये बिना स्वय ही हाव-भावो से युक्त नृत्य सीख लिया था।

स्विटज़रलैण्ड की घटना

स्विट्जरलैण्ड निवासी ६२ वर्षीय गैब्रियल उराइब (Gabriel Uribe) अपने देश के रहन-सहन से बहुत असन्तुष्ट और बेचैन रहता था तथा उसका गहरे रग के लोगो की ओर अधिक लगाव था।

एक बार वह कुछ दिनो के लिए स्पेन गया, जहा उसकी उद्विग्न आत्मा को शान्ति मिली। वहाँ उसको स्मृति हो आई कि अपने पिछले जन्म में वह कोलम्बिया का रहने वाला यू राफेल (U Raphael) नाम का राजनीतिज्ञ था। उसको अपने पिछले जन्म की पत्नी सिक्स्टा तुलिया (Sixta Tulia) तथा बच्चों जुलियन और मारिया की स्मृति भी हो आई।

सन् १६१४ में कोलम्बिया में एक कुल्हाड़े से यू राफेल की हत्या कर दी गई थी। हत्यारे ने उसके माथे पर एक प्राणघातक प्रहार किया था। अधिक विस्मय तो इस बात का है कि राफेल के सिर पर जहां कुल्हाड़े का प्रहार हुआ था, गैब्रियल के माथे का वह भाग पूरी तरह से उभरा हुआ दिखाई नही देता था।

अमरीकी महिला की घटना

अमरीकी महिला श्रीमती रोजनवर्ग प्राय. एक शब्द 'जैन' बोला करती थी, जिसका अर्थ न वह स्वयं जानती थी और न उसके निकट-समीप के व्यक्ति ही। साथ ही वह सदैव आग से बहुत डरा करती थी। उसके जन्म से ही उसकी उंगलियो को देखकर यह प्रतीत होता था कि जैसे वे कभी जल गयी हो। यद्यपि इस जीवन में उसके साथ जलने जैसी कोई दुर्घटना नही हुई थी। एक बार उन्होंने जैन धर्म सम्बन्धी एक गोष्ठी में भाग लिया, जहां पर उनको अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो आई। वह पिछले जन्म में भारत के एक जैन मन्दिर में रहा करती थी और अग्नि की दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई थी।

आस्ट्रिया देश की घटना

डा० कारमैलो सैमोना और उसकी पत्नी एडेला के एक पुत्री थी, जिसका नाम था—एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना। पाच वर्ष की आयु में १५ मार्च १६१० को पैलोरमो सिटी, सिसली में उसकी मृत्यु हो गई थी। २२ नवम्बर, १६१० को श्रीमती एडेला ने दो जुड़वां बालिकाओं को जन्म दिया। उनमे से एक बालिका की आकृति मृत बालिका की आकृति से बिलकुल मिलती-जुलती थी। इसलिए इस बालिका का नाम भी एलेक्जैण्ड्रिना रक्खा गया। सुविधा के लिये हम यह कह लें कि मृत बालिका का नाम एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम तथा नवजात बालिका का नाम एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय था। दोनों बालिकाओं में कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण समानताएं थी। एक समानता यह थी कि दोनों ही शान्तिप्रिय थी व स्वच्छ रहती थी और अकेले में रह कर स्वयं से ही खेलना पसन्द करती थीं। दोनों में कुछ शारीरिक समानताएं भी थीं। दोनों की मुखाकृति तो मिलती ही थी, दोनों की बाईं आंखों में अधिरक्तता का लक्षण था और दाहिने कानों से स्राव हुआ करता था। दोनों ही बायें हाथ से सब काम करती थी। दोनों को पनीर से चिढ़ थी तथा दोनों को ही अपने हाथों को साफ रखने का शौक था।

जब एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय दस वर्ष की हुई तो उसे इस बात की अनुभूति हुई कि वह कभी मानरियल (Monreale) नामक स्थान पर गई थी। उसने कहा कि वह सीगवाली एक महिला के साथ मानरियल गई थी, और वहा उसे लाल कपडे पहने हुए पुजारी मिले थे। एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय मानरियल कभी नहीं गई थी, परन्तु उसकी बातो से उसकी मा को स्मरण हो आया कि एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम की मृत्यु से कुछ महीने पहले वह एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम को लेकर मानरियल गई थी। साथ मे एक महिला भी थी, जिसके माथे पर भद्दे सीग थे। वहा उनकी भेंट यूनानी पुजारियों से हुई थी, जिनके नीले कपडो को लाल रग की वस्तुओं से सजाया गया था। इन सब कारणो से डाक्टर सैमोना और उनके मित्रो को यह विश्वास हो गया कि एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम ने ही द्वितीय के रूप में जन्म लिया है।

ब्राजील की घटना

इमिलिया लारेन्ज का जन्म ४ फरवरी, सन् १६०२ को हुआ था। उसके पिता का नाम एफ० बी० लारेन्ज था। जब तक वह जीवित रही वह सदैव ही यह कह कर अपने को कोसती रही कि उसने लडकी होकर जन्म क्यों लिया? उसने अपने भाई-बहिनों से कई बार कहा था कि यदि वास्तव मे पुनर्जन्म होता है, तो वह लडका होकर जन्म लेना पसन्द करेगी। उसने विवाह करने से इन्कार कर दिया और कहा कि वह अविवाहित रहकर ही मरना चाहती है। अपनी हीन तथा निराशापूर्ण भावनाओ के कारण उसने कई बार आत्महत्या करने का प्रयत्न किया और अन्तत १२ अक्तूबर, सन १६२१ को वह विष खाकर मर गयी।

इमिलिया की मृत्यु के पश्चात् उसकी माँ बहुत सी ऐसी सभाओ में गयी, जहां पर मृत व्यक्तियों की आत्माओं का आह्वान कर उनसे वार्त्तालाप किया जाता था। एक सभा मे उसे एक आत्मा (जो अपने को इमिलिया की आत्मा कहती थी) से सन्देश मिला कि आत्महत्या करने के कारण उसे बहुत पश्चात्ताप है और अब वह परिवार में लडका बनकर लौटना चाहती है। अन्तत ३ फरवरी, सन् १६२३ को माँ ने एक लड़के को जन्म दिया, जिसका नाम इमिलिया ही रक्खा गया। यद्यपि लोग उसे पौलो (Paulo) के नाम से पुकारते थे।

पौलो और इमिलिया की रुचियों और गुणों में बहुत समानताएं थीं। पौलो बहुत अच्छी तरह कपड़े सी लेता था। चार-पाँच वर्ष तक पौलो

ने लड़कियों के कपड़े पहिनने में रुचि दिखलाई। कभी-कभी वह ऐसी बातें करता था, जिससे पता चलता था कि वह मृत इमिलिया के जीवन से परिचित है।

लंका की घटना

सन् १९६३ में लंका के बाटापोला गाँव में एक कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम रुबी कुसुमा रक्खा गया। उसके पिता का नाम सीमन सिल्वा था और वह डाकिये का काम करता था। रुबी जब बोलने लगी तो वह प्रायः अपने पिछले जन्म की बातें करने लगी। वह कहती थी कि पिछले जन्म में वह एक लड़की थी। उसका पुराना घर यहाँ से चार मील दूर अलूथवाला गांव में है। पुराना घर इस घर से बहुत बड़ा है और उसके पास बहुत से पाजामे थे। उसकी पुरानी माँ इस माँ से बहुत गोरी थी।

उस बालिका ने यह भी बताया कि वह स्कूल में पढ़ती थी। एक बार उसकी चाची उसे अलूथवाला नन्दराम मन्दिर में ले गई। वहाँ बरामदे में किताबें रखने का एक बक्सा रक्खा हुआ था। उसे यह भी अच्छी तरह याद है कि उसकी चाची ने उसे वह पेंसिल उठा लेने को कहा था जो बक्से में से गिर गई थी। मन्दिर के आंगन में बेली का एक पेड था, जिसका फल भी उसने खाया था।

वह कहती थी कि उसका पहला बाप मोटर-बस चलाता था और वह जब भी घर में आता था, टमाटर और शक्कर लाता था।

उसका कहना था कि एक बार फसल की कटाई में हाथ बंटाने के बाद जब वह घर लौटी, तो कुए पर अपने पैर धोते हुए उसका पैर फिसला और वह कुएं में गिर पडी। उसने शोर भी मचाया, परन्तु किसी ने नहीं सुना।

उस बालिका के पिछले माता-पिता का पता लगा कर उनसे पूछा गया, तो उन्होंने बताया कि उनका पुत्र करुणासेना १९५६ में मरा था। उन्होंने उसके कुए में डूबने की घटना और दूसरी बातें भी ठीक बतलाईं।

जाँच-पड़ताल करने वाले अलूथवाला नन्दराम मन्दिर भी गये। वहाँ के पुजारी ने कहा कि मन्दिर के सम्बन्ध में जो बातें इस बालिका ने बतलाई हैं, वे ठीक है। वहाँ पर किताबें रखने का बक्सा और बेली का पेड़ भी मौजूद हैं। सन् १९५६ से १९६३ तक के बीच के समय के सम्बन्ध में उस बालिका को कुछ याद नहीं है।

लंका की एक और घटना

नवम्बर, १९६२ में नुगेगोडा के निवासी जयसेना के घर एक बालक ने जन्म लिया। दो वर्ष की उम्र में ही उस बालक ने अपनी मां से कहना

शुरू कर दिया कि "तुम मेरी असली मां नही हो। मेरी असली मां बेयन-गोडा में रहती है।"

अप्रैल, १९६५ में जयसेना परिवार के लोग अपने मित्रों से मिलने मटाले जा रहे थे। २४वें मील के पत्थर के गुजरते ही बच्चा सीट पर खड़ा होकर चीखने लगा कि उसकी मा वहा रहती है। पूछताछ करने पर पता चला कि बालक श्रीमती सेनेबिरत्ने को अपनी माँ कहता है। श्रीमती सेनेबिरत्ने का पुत्र १९६० के लगभग खो गया था।

कुछ दिन बाद उस बालक को दोबारा वहा लाया गया। बालक ने कार के ड्राइवर को अपने घर का मार्ग बतलाया। कार से उतरकर बालक सीधा अपने घर पहुँच गया और श्रीमती सेनेबिरत्ने से इस प्रकार मिला जैसे कोई अपने घर वालो से बहुत दिन बाद मिल रहा हो। उस बालक ने अपने पिछले जन्म के भाई को भी पहचान लिया और उसे असली नाम से पुकारते हुए अपनी मा को याद दिलाया कि एक बार उसके भाई ने उसे पीटा था। उसने चाचा चार्ली के बिजली के कारखाने की बात भी की और अपने धान के खेतो की तरफ भी इशारा किया।

इन बातो से श्रीमती सेनेबिरत्ने को विश्वास हो गया कि १९६० मे उनका जो बच्चा खो गया था, उसी का पुनर्जन्म हुआ है।

टर्की की एक घटना

तुर्किस्तान के जिला अडाना में सन् १९५६ में एक कसाई परिवार में एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम इस्माइल रखा गया। जब वह केवल १८ मास का शिशु था, तब वह अपने पिछले जीवन की बातें बड-बडाता रहता था। वह कहता था "मै यहा रहते-रहते थक गया हूँ। मै अपने बच्चों के पास अपने घर वापिस जाना चाहता हूँ।"

उसने कहा कि वह अलबैन सुजुल्मस (Albeit Suzulmus) है, जिसके सिर पर चोट मार कर हत्या कर दी गई थी। इस्माइल के सिर पर पर जन्म से ही एक रेखा का निशान था, जो सन् १९६२ तक दिखता रहा था।

अलबैन सुजुल्मस जिला मिदिक के बहाहेहे भाग में रहता था। वह एक धनी माली था। चूंकि उसकी प्रथम पत्नी हतीस से कोई सन्तान नही थी, इसलिए उसने उसको तलाक दे दिया और एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। उसकी दूसरी पत्नी साहिदा से उसे कई सन्तानें हुईं। अलबैत अपनी पहली पत्नी हतीस का भरण-पोषण भी किया करता था, जो उसके पड़ोस में ही रहती थी।

अलबैत सुजुल्मस ने अपने बाग में काम करने के लिए कई मजदूर

रक्खे हुए थे। एक दिन मजदूर उसे घोड़ों के अस्तबल में ले गए, जहां पर उसके सिर पर आघात करके उसकी हत्या कर दी गई थी।

इस्माइल अपने घर के लोगों से कहा करता था कि वे उसे अपने पहले घर में जाने दे। अन्तत. जब इस्माइल तीन वर्ष का हुआ, तब वे उसको अलबैत के मकान पर ले गए। इस्माइल ने स्वयं ही अपने पहले मकान का मार्ग बतलाया। वहा पहुँच कर उसने अलबैत के परिवार के सभी सदस्यों को पहचान लिया और अपनी पहली पत्नी हतीस को गले लगाया। उसने अलबैत की सब वस्तुओं को पहचान लिया। बाद में अलबैत की एक लडकी इस्माइल से मिलने गई, जिससे इस बालक ने घन्टों बात-चीत की। उस लड़की को पक्का विश्वास हो गया कि उसके पिता ने ही इस्माइल के रूप में दोबारा जन्म लिया है।

अलबैत राकी पीने के लिए बदनाम था। इस्माइल को भी राकी पीने का बहुत शौक है। उसको अपने पिछले जन्म के कुटुम्ब और सम्बन्धियो मे बहुत लगाव है और वह अधिकतर उनके विषय में ही सोचता रहता है।

एक बार मेहमत नाम का कुल्फी मलाई बेचने वाला एक व्यक्ति मिदिक जिला आया। इस्माइल ने उसको पुकार कर पूछा कि क्या वह उसे पहचानता है? मेहमत के इकार करने पर इस्माइल ने कहा कि वह अलबैत है। उसने यह भी बतलाया कि मेहमत पहले तरबूज और सब्जी बेचा करता था और उस पर अलबैत के तरबूज के दाम बाकी है। मेहमत ने इन बातों को ठीक बतलाया।

लेबनान की घटना

२१ दिसम्बर, १६५८ को लेबनान के कोरनेयल गांव में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम अहमद एलावर रक्खा गया। जब वह केवल दो वर्ष का था, तभी उसने अपने पिछले जन्म की बातें बतानी शुरू कर दी थीं। वह प्राय: 'महमूद' और 'जमील' का नाम लिया करता था। उसने कहा कि मैं पास वाले गांव खिरबी का रहने वाला हू। उसने अपने पिछले जीवन की कुछ खास-खास घटनाएँ बताईं और पिछले जीवन की अपनी सम्पत्ति का विस्तृत विवरण भी दिया।

जब वह बालक अपने पैरों पर चलने लगा, तब वह हैरानी से अपनी माँ से कहता "माँ! देखो, अब मैं अपने पैरों पर चल सकता हूँ।" वह एक दुर्घटना का किस्सा सुनाया करता था जब एक आदमी के पैरों पर ट्रक गुज़र गया था, जिससे उसके पैर बेकार हो गए थे।

अन्ततः उस बालक को खिरबी ले गए। वहाँ जाकर पता चला कि

अहमद की बतलाई हुई घटनाएँ इब्राहीम बोहमजी नामक एक २३ वर्षीय नवयुवक के जीवन से पूरी तरह मेल खाती है, जो रीढ के क्षयरोग से मरा था और अपनी मृत्यु से पहले कई वर्ष तक वह चलने-फिरने से लाचार था। शायद इसी वजह से बालक अहमद अपने पैरो पर चलने से बहुत प्रसन्न था। यह भी पता चला कि इब्राहीम बोहमजी को जमील नाम की एक सुन्दर लडकी से बहुत प्यार था, परन्तु उसकी शादी नही हो सकी थी।

वहा पर यह भी पता चला कि शाहिद बोहमजी नाम का एक युवक ट्रक दुर्घटना का शिकार हो गया था। शाहिद इब्राहीम का पड़ोसी और गहरा दोस्त था और उसकी मृत्यु से इब्राहीम को गहरा सदमा पहुँचा था। शायद इसीलिए बालक अहमद ट्रक दुर्घटना का बार-बार जिक्र किया करता था।

बालक अहमद ने इब्राहीम के घर में बहुत सी वस्तुओ को पहचान लिया। इब्राहीम को शिकार का शौक था और अहमद भी अपने पिता से जंगल मे शिकार खेलने के लिये जाने को कहा करता था।

दक्षिण अफ्रीका की घटना

दक्षिण अफ्रीका के प्रिटोरिया नगर मे रहने वाली बालिका जोय वर्वे का विश्वास है कि उसके दस जन्म हो चुके है। उसके पूर्व जन्मों का सम्बन्ध उन सैकडो वर्षों के काल-खण्ड से है, जो पत्थर के युग से लेकर बाइबिल के मिस्र, प्राचीन रोम, १५वी शताब्दी के इटली, १७वी शताब्दी के दक्षिण अफ्रीका के जगलो मे रहने वालो तथा गत १६वी शताब्दी मे समाप्त होता है।

जब उस बालिका ने बोलना सीखा था, तभी से उसने अपने पिछले जन्मों के सम्बन्ध मे बतलाना शुरू कर दिया था और जब वह पेसिल का प्रयोग करने लगी, तो वह अपने पिछले जन्मो से सम्बन्धित वस्तुओ के चित्र बनाने लगी।

प्रोफेसर आर्थर ब्लेक्सले (Prof. Arthur Bleksley) ने जोय से भेंट करके पूछताछ की है। ये प्रोफेसर दक्षिण अफ्रीका के जोहन्सबर्ग नगर में विट्टाटर स्ट्रैंड (Wittater Strand) विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान मे मानस-अनुभूति के सम्बन्ध में प्रयोग कर रहे थे।

जोय के पिता श्री एडवर्ड माइकल वर्वे ने बतलाया कि जब जोय दो-तीन वर्ष की बच्ची थी, तभी से उसने प्राचीन कथाएँ कहना प्रारम्भ कर दिया था और प्राचीन काल के ऐतिहासिक दृश्यों तथा उस समय उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं के चित्र बनाने आरम्भ कर दिए थे।

जोय ने बतलाया कि एक जन्म में वह जंगल में एक गुफ़ा में रहती थी। उसकी गुफा का केवल एक ही प्रवेश-द्वार था। गुफा में आने जाने के कई-कई रास्ते होने से हिसक पशुओ के अन्दर आने का खतरा रहता था। कभी-कभी गुफ़ा में हिसक पशु आ जाते थे और किसी व्यक्ति को उठा कर ले जाते थे।

एक बार जोय ने एक पानी के जहाज का चित्र बनाया और कहा कि वह उसमें कैद थी। उसने एक महल का चित्र भी बनाया और बताया कि वह वहा पर बाध कर रक्खी गई थी। उसने कहा, "हम दासो को कभी बोलने नही दिया जाता था। यदि कोई ऐसा करता था, तो उसकी जीभ काट दी जाती थी। दासी के रूप मे हम सब महल मे एक मूर्ति के सामने गोलाकार घूम-घूम कर चिल्लाते और नाचते हुए बाला का नाम ले लेकर सूर्यदेव की प्रार्थना किया करते थे। बादशाह एक भयानक व्यक्ति था। उसकी सुन्दर और लम्बे केशो वाली पत्नी थी। एक दिन क्रुद्ध हो जाने पर बादशाह ने उसका सिर काट कर थाली मे लाने का आदेश दिया। एक दीर्घकाय दास रानी का सिर काटकर और उसे धोकर और सुगन्धित करके बादशाह के सामने ले आया। तांबे की एक थाली मे उसका सिर लम्बे बालो से सभी तरफ से ढका हुआ था। एक दिन बादशाह ने मुझे बुलवा भेजा। मै डर के मारे जाना नही चाहती थी। एक लम्बा-चौड़ा व्यक्ति मुझे ले गया और एक लकड़ी के ऊपर जबर्दस्ती मुझे पकड़े रहा। एक दूसरे व्यक्ति ने छुरी से मेरा सिर काट दिया।"

उसने कहा—"एक जन्म में मैं रोम मे जवान लड़की थी। हम में से पन्द्रह लडकिया रेशम के धागे से रग-बिरगे कालीन बुना करती थी।" उसने लकड़ी की खडाऊ, युद्ध की पोशाक और ऐसी चमड़े की ढाल का उल्लेख किया, जिस पर ताबे के बेल-बूटे की कढ़ाई की हुई रहती थी।

उसने बताया—"एक जन्म मे मैं वहा पैदा हुई थी, जहां पर जंगली लोग बड़े-बड़े अण्डे जमीन मे दबाया करते थे और वहाँ निशानी के तौर पर लकड़ी गाड दिया करते थे। हम बच्चों को उन लकड़ियों को उखाड़ डालने तथा उन पर लगे हुए पशुओ के रक्त के निशान पोंछ कर मिटा देने में बड़ा मजा आता था।"

जोय की इस बात का केप ओफ़ गुड होप (Cape of Good Hope) मे रहने वाले उन जगली लोगों से सम्बन्ध लगता है, जो वहां पर १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे रहा करते थे। उस समय उन लोगों ने ईस्टइण्डीज जाने के लिए यहा पर एक रसदपूर्ति का अड्डा स्थापित किया हुआ था।

एक बार जोय क्रूगर हाउस (Kruger House) का संग्रहालय

देखने गयी, तब उसने कहा—"इस स्थान के संग्रहालय बनने से पहले मैं वहा आयी थी और मै ऊम पॉल को व्यक्तिगत रूप से जानती थी। ऊम पॉल की प्रथम पत्नी सोलह वर्षीया मेरिया डू प्लेसिज (Maria Du Plessis) की मृत्यु एक बच्चे को जन्म देते समय हुई थी और उसकी दूसरी पत्नी (जो पहली पत्नी की भतीजी थी) से उसके सोलह बच्चे हुए।" ऊम पॉल की मृत्यु स्विटजरलैंड मे निर्वासित अवस्था मे हुई थी। इतिहास साक्षी है कि ये सब बाते बिल्कुल सही है।

जेरुसलम की घटना

जेरुसलम मे श्री सामे मारिस (Samme Morris) नामक दाँतो के डाक्टर रहते है। उनकी पत्नी का नाम एडना (Edna) है। उनके एक बालक है, जिसका नाम डविड मोरिस (David Morris) है जो १९६१ मे पैदा हुआ था। सन् १९६४ मे श्रीमती एडना ने एक बार अपने पति सामे मॉरिस को बताया कि डेविड आजकल स्वाभाविक ढग से बातचीत नही कर रहा है। उसे एक प्रकार की समाधि-सी लग जाती है और वह मुह से लार गिराने लगता है तथा जल्दी-जल्दी कुछ बड़बड़ाता है। यदि मैं उसको मना करती हू और दण्ड देती हू, तो उसकी दशा और भी अधिक खराब हो जाती है। उसे किसी विशेषज्ञ को दिखाना चाहिये। परन्तु डाक्टर सामे मारिस ने इस बात पर कोई ध्यान नही दिया।

एक बार जब डाक्टर सामे मॉरिस घर आये, तो उन्होने देखा कि डेविड प्लास्टिक और लकड़ी के टुकडो आदि को मिला कर एक भवन की आकृति बना रहा है। डाक्टर को याद आया कि यह आकृति तो ध्वस्त असली पवित्र देवालय (Original Holy Temple) का नमूना (Model) है, जिसका रेखाचित्र उन्होने संग्रहालय मे देखा था, परन्तु डेविड ने यह रेखाचित्र कभी नही देखा था, उसको वह कैसे ज्ञात हुआ? डाक्टर ने अपने पुत्र से बात करनी चाही, परन्तु वह केवल बड़बड़ाता ही रहा। डाक्टर का उसके शब्द बिल्कुल भी समझ मे नही आये। अत. उन्होने उस बालक के वे शब्द टेप-रिकार्डर पर रिकार्ड कर लिये।

डाक्टर सामे टेप-रिकार्डर लेकर अपने मित्र डाक्टर ज्वी हरमन (Dr Zvi Hermann) के पास गए। डाक्टर हरमन उस समय जेरुसलम के राष्ट्रीय संग्रहालय के प्राचीन पाण्डुलिपि-विभाग के प्रमुख थे। वे पवित्र देश इसराइल (Holy Land) के इतिहास के सर्वोच्च अधिकृत जानकार व्यक्ति है। वे प्राचीन शिलालेखो और चमड़े पर लिखी हुई प्राचीन पाण्डुलिपियो को पढ़ सकने वाले एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ हैं। डाक्टर सामे मारिस ने डाक्टर हरमन को वह टेप सुनवाया। डाक्टर हरमन ने टेप

को कई बार सुना और बताया कि "यह ध्वनि प्राचीन हिब्रू (यहूदियों की भाषा) के समान सुनाई देती है। हमारी वर्तमान भाषा से उसके बहुत से शब्द मिलते-जुलते है। ऐसा मालूम होता है कि इस टेप में एक बादशाह अपनी प्रजा से कह रहा है कि 'मेरे कहे अनुसार चलो। मैं तुम्हें गौरव की ओर ले चलूंगा।' डाक्टर हरमन ने पूछा कि यह किसकी आवाज है और जब डाक्टर सामे ने उन्हे बताया कि यह उनके पुत्र की आवाज है, तो उनको बहुत आश्चर्य हुआ।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो० एफ्रैम एयूरबैच (Ephraim Auerbach) और डाक्टर हरमन ने उस बालक का बहुत समय तक निरीक्षण किया। उन्होने देखा कि उसके कमरे की खिडकिया बन्द कर देने पर तो वह बालक अपनी आयु के बच्चो के समान व्यवहार करता है, परन्तु खिड़कियों के खोल देने पर वह समाधिस्थ होने लगता है। उन्होने यह भी देखा कि जब वायु की गति की दिशा उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर होती थी, तब उस बालक की समाधिस्थ की-सी अवस्था जल्दी-जल्दी हो जाती थी। यह उल्लेखनीय है कि डाक्टर सामे मारिस का निवास स्थान रेहाविया क्वार्टर (Rehavia Quarter) मे है, जो माउण्ट मोरिया (Mount Moriah) की दक्षिण-पश्चिम दिशा में दो मील की दूरी पर है। यही पर पुराने जेरुसलम मे ईश्वर का प्रथम देवालय तथा शाह डेविड का किला था। कुछ विद्वानो का ऐसा विचार है कि बादशाह डेविड का, जिनको मरे हुए तीन हजार वर्ष हो चुके है, बालक डेविड मोरिस के रूप मे पुनर्जन्म हुआ है।

पश्चिमी जर्मनी की घटना

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध दैनिक पत्र "नवभारत टाइम्स" के ३ फरवरी, १९८० के अंक मे पश्चिमी जर्मनी के आग-स्वर्ग नामक स्थान में जन्म लेने वाली फैड्रिका नामक कन्या का विवरण प्रकाशित हुआ है। उस कन्या के बालो व आंखो का रंग भारतीयों जैसा है। उसके नक्श भी अपने बहन-भाइयो से भिन्न है। उसकी बुद्धि तीव्र है और उसने छोटी आयु में ही लिखना-पढ़ना व अन्य कार्य सीख लिये थे। उसने थोड़े समय मे ही जर्मन, डच व अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसको संस्कृत व अन्य भारतीय भाषाओं से भी गहरा लगाव हो गया। उसको मूर्ति-पूजा व पूजा-पाठ मे भी विश्वास होने लगा। उसने भारतीय धर्म-ग्रन्थो तथा वेद-पुराणों के अनेकों अंश कंठस्थ कर लिये। उसने बताया कि अपने पूर्व-जन्म में वह एक धर्म-परायणा भारतीय महिला थी, जिसकी एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी।

कुमारी फ़ैड्रिका अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय कलाकार व

धर्म-प्रचारक श्री हरीश जौहरी के सम्पर्क में आयी। उसको श्री हरीश जौहरी, उनकी पत्नी तथा उनके बालको से बहुत लगाव हो गया। भारतीय वेश-भूषा तथा निरामिष भोजन उसे बहुत पसन्द है और वह भारतीय सभ्यता में रग गयी है। फरवरी, १९७९ में वह भारत भी आई थी। उसने अपने पूर्व जन्म के पति व बच्चो के नाम तथा अपने पूर्व जन्म के निवास स्थान का विस्तृत ब्यौरा भी दिया है।

अमरीका की घटना

अमरीका मे होलीवुड के प्रसिद्ध चलचित्र अभिनेता श्री ग्लैन फोर्ड पर पूर्व जन्म के सम्बन्ध मे कुछ प्रयोग किये गये। एक प्रयोग के समय वे उन्नीसवी शताब्दी की अग्रेजी बोलने लगे और अपना परिचय एक सगीत-शिक्षक के रूप मे देने लगे। उन्होने पियानो पर उन्नीसवी शताब्दी मे प्रचलित एक धुन भी निकाली और यह भी बताया कि उन्हे घुडसवारी का शौक है। उन्होने यह भी बताया कि सन् १८९१ मे क्षयरोग के कारण स्काटलैड मे उनकी मृत्यु हुई थी और उनको अमुक स्थान पर दफनाया गया था। बाद मे जाच करने पर पता चला कि उनके द्वारा दी गई जानकारिया बिलकुल सही थी।

एक अन्य प्रयोग के समय श्री ग्लैन फ़ोर्ड ने बताया, "मैं अठारहवी शताब्दी में हू और फ़ास के लुई पन्द्रहवे के राज दरबार मे दरबारी हू। मैं वर्साइल के महल मे रहता हू। इस महल मे दलदल व नमी है। किसी साजिश मे भाग लेने के कारण मुझे फ़ास के एक विख्यात तलवारबाज से लड़ना पड़ा। उसने मेरे सीने मे तलवार घुसेड़ दी और मेरी मृत्यु हो गयी।" ग्लैन फोर्ड ने यह सब अठारहवी शताब्दी मे प्रचलित फ़ासीसी भाषा मे बतलाया। ये सब बातें टेप-रिकार्ड कर ली गयी। श्री ग्लैन फोर्ड को फ़ासीसी भाषा बिलकुल नही आती। उनके सीने मे उस स्थान पर अब भी दर्द होता है जिस जगह पिछले जन्म मे उनके तलवार लगी थी।

कहा जाता है कि द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रख्यात अमेरिकी जनरल जार्ज पैटन को अपने पिछले छ. जन्मो की याद थी। उन्होने बतलाया था कि सबसे पहले वह प्राग-ऐतिहासिक काल मे योद्धा थे, दूसरे जन्म मे यूनान मे योद्धा थे। तीसरे जन्म में वह सिकन्दर की सेना में थे और चौथे जन्म में जूलियस सीजर की सेना मे थे, पाचवे जन्म में वह अग्रेज सैनिक थे और उन्होने "Hundred years war" मे भाग लिया था। छठे जन्म में वह नैपोलियन की सेना मे थे।

अमरीका की सुप्रसिद्ध भविष्यवक्ता

अमरीका में श्रीमती जीन डिक्सन नाम की एक महिला हैं, जो अपनी

अनेकों सच्ची भविष्यवाणियों के कारण सारे ससार में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अमरीकी राष्ट्रपति श्री केनेडी की हत्या की भविष्यवाणी काफी समय पहले कर दी थी।

सन् १९६२ में वह अपनी सहेली श्रीमती मेरी सिस्लर के आमन्त्रण पर रोम (इटली) मे होने वाले क्रिसमस-समारोह देखने के लिए गयी। श्रीमती सिस्लर के पुत्र पाल ने श्रीमती जीन डिक्सन को रोम की सैर करायी ओर वहा की प्राचीन मूर्तिया, कला-कृतियाँ व प्राचीन गिरजाघर भी दिखलाये। पाल ने श्रीमती जीन डिक्सन से "जीसस का पवित्र हृदय" नामक कलाकृति भी देखने को कहा। परन्तु पाल को यह ठीक-ठीक मालूम नही था कि यह कलाकृति कौन से गिरजाघर मे है। उसी समय श्रीमती जीन डिक्सन को स्मरण हो आया कि यह कलाकृति अमुक गिरजाघर मे अमुक स्थान पर टगी हुई है। उन्होने पाल से उस गिरजाघर का इस प्रकार विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जैसे कि वे उस गिरजाघर मे अनेको बार हो आई हो। परन्तु वास्तविकता तो यह थी कि वे उस गिरजाघर मे पहले कभी नही गयी थी। पाल के पूछने पर उन्होने बताया कि अपने किसी पूर्व जन्म में वह उस गिरजाघर के दर्शन कर चुकी है, जिसकी उन्हे स्मृति हो आयी है। परन्तु उनको यह याद नही आ रहा था कि ये दर्शन कब और कैसे हुए ?

भारतवर्ष की कुछ घटनाए

(१) अप्रैल, १९५० मे कोसीकला निवासी श्री भोलानाथ जैन का पुत्र निर्मल चेचक के रोग से ग्रस्त था। अन्ततः उसने कोसीकलां से ६ मील दूर छत्ता कस्बे की ओर सकेत किया और उसकी मृत्यु हो गयी।

अगस्त, १९५१ में छत्ता निवासी श्री बी० एल० वार्ष्णेय के घर एक बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम प्रकाश रक्खा गया। जब वह चार-पांच वर्ष का हुआ तो कहने लगा, "मैं कोसीकलां का रहने वाला निर्मल हूं और मैं अपने पुराने घर जाना चाहता हू।" कभी-कभी वह रात को जागकर दौड़ने लगता था। प्रकाश के घर वालों ने उसकी बातें अनसुनी कर दी और उसको निरुत्साह कर दिया। एक बार सन् १९६१ मे श्री भोलानाथ जैन अपनी पुत्री के साथ छत्ता गये, वहाँ पर उनको प्रकाश के सम्बन्ध में विदित हुआ। वे श्री वार्ष्णेय के घर गये। प्रकाश ने तुरन्त ही श्री भोलानाथ को अपने पिता रूप में पहचान लिया। कुछ दिनो बाद श्री भोलानाथ की पुत्री अपने लड़के देवेन्द्र व लड़की तारा के साथ प्रकाश से मिलने आई। उन्हें देखते ही प्रकाश रो पडा और अपने पिता से कोसीकलां ले चलने के लिये कहने लगा। अन्ततः प्रकाश को कोसीकलां ले जाया गया, जहाँ पर उसने अपने पिछले सम्बन्धियों और घर की विभिन्न वस्तुओं को पहचान लिया।

प्रकाश का अपने पुराने सम्बन्धियों से बहुत अधिक लगाव था और वह कोसीकला जाना चाहता था।

(२) सन् १९५१ मे चादगरी के वीरेन्द्रपाल सिह के यहा एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम मुनेश रक्खा गया। जब मुनेश चार वर्ष का हुआ, तो उसे अपने पिछले जन्म की स्मृति हो आयी। वह कहने लगा, "मैं इतरानी का रहने वाला भजनसिह हू। मेरी पत्नी है, पुत्री है, तीन भाई है, मा है। वहा पर मेरा घर, कुआ, खेत और बगीचा है।" कुछ समय तक तो लोगो ने उसकी बातो पर ध्यान नही दिया, परन्तु जब वह इस सम्बन्ध मे अधिक बात करने लगा, तो मुनेश के दादा नेत्रपाल सिह ने इसमे रुचि ली ओर वह इतरानी गये। वहा पर उनको पता चला कि भजनसिह नाम का एक युवक वहा रहता था, जिसकी १९५१ मे ज्वर से मृत्यु हो गयी थी। भजनसिह के पुनर्जन्म की बात सुनकर भजनसिह का भाई और बहनोई ठाकुर नेत्रपाल सिह के साथ चादगरी आये। मुनेश ने उन दोनो को तुरन्त पहचान लिया। वे दोनो भी भजनसिह और मुनेश की आकृति और व्यवहार मे अद्भुत समानता से बहुत प्रभावित हुए। जब वे दोनो वापिस जाने लगे तो मुनेश अपने पिछले जन्म के भाई से चिपट गया और उसके साथ जाने की जिद की।

भजनसिह की विधवा पत्नी अयोध्या देवी अपने पिता के घर बिसारा ग्राम मे रहती थी। उसको भी इस सम्बन्ध मे पता चला। वह अपनी भावज को साथ लेकर चादगरी आई। दोनो महिलाओ की लम्बाई व बदन एक-सा था और दोनो एक जैसे ही कपडे पहिने हुए थी तथा दोनो ने घूघट निकाल रक्खा था। मुनेश ने उन दोनो को तुरन्त पहिचान लिया। मुनेश ने बतलाया, "जब मैं आगरा से इण्टरमीडियेट की परीक्षा देकर वापिस लौटा था, तो मुझे पता चला कि मेरी मा और पत्नी मे झगड़ा हुआ है। इस बात पर गुस्सा होकर मैने अपनी पत्नी को मथानी से पीटा था। जिससे मथानी टूट गयी थी और पत्नी के हाथ में घाव हो गया था।" इसके अतिरिक्त मुनेश ने अयोध्या देवी को अपने पिछले जन्म के दाम्पत्य जीवन की कई ऐसी गुप्त बाते भी बतलाई, जो उन दोनों के अतिरिक्त और कोई नही जानता था। इन बातो से अयोध्या देवी को विश्वास हो गया कि उसके मृत पति भजनसिह ने ही मुनेश के रूप मे पुनर्जन्म लिया था।

मुनेश को इतरानी ले जाया गया, जहा पर उसने अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियो व मित्रो को तथा अपने घर, अपनी सभी वस्तुओं, अपने खेत अपने बगीचे, अपने बैल और भैसो को भी बहुत सुगमता से पहचान लिया। अपनी लड़की को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

मुनेश को अपने पिछले जन्म की पत्नी व पुत्री से बहुत लगाव था और वह उनके पास ही रहना चाहता था।

(३) गुजरात प्रदेश के जिला राजकोट के सलोद नामक स्थान में प्रवीणचन्द्र शाह रहते थे। वे एक बैंक में कर्मचारी थे। सन् १९६० में उनके यहा एक बालिका का जन्म हुआ, जिसका नाम राजुल रक्खा गया। जब वह तीन वर्ष की भी नही थी, तभी वह कहने लगी, "मैं जूनागढ की रहने वाली गीता हूं।" शुरू शुरू मे तो घर वालो ने उसकी बातों पर कोई ध्यान नही दिया, परन्तु बाद मे पता लगाने पर उनको विदित हुआ कि जूनागढ़ के टैली स्ट्रीट मे रहने वाले गोकुलदास ठक्कर को पुत्री गीता की १९५६ में ढाई वर्ष की आयु में मृत्यु हुई थी। सन् १९६५ में राजुल को जूनागढ़ ले गये, जहाँ पर वे लोग दिगम्बर जैन धर्मशाला मे ठहरे। वहा पर राजुल ने अपने पिछले जन्म के घर व सम्बन्धियो को पहचान लिया।

(४) दिल्ली के एक अग्रवाल परिवार मे सन् १९५६ मे एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम गोपाल रक्खा गया। उसके पिता आसफ अली रोड, नई दिल्ली स्थित एक पैट्रोल पम्प के मैनेजर थे। जब वह बड़ा हुआ तो उसको अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी और वह कहने लगा, "मैं मथुरा का रहने वाला शक्तिपाल शर्मा हू। मेरी मथुरा में सुख संचारक कम्पनी नामक दवाओ की दुकान थी। मेरे तीन भाई थे और उनमें से एक ने गोली से मेरी हत्या कर दी थी। यह सन् १९४८ की बात है। उस समय मेरी आयु ३५ वर्ष की थी।" गोपाल के पिता सच्चाई का पता लगाने मथुरा गये और उन्होने पाया कि गोपाल की कही हुई बाते ठीक थी। शक्तिपाल की विधवा पत्नी और भाबी दिल्ली आकर गोपाल से मिली। गोपाल ने दोनो महिलाओ को पहचान लिया। उसने अपनी भाबी से तो बाते की परन्तु विधवा पत्नी से कोई बात नही की। उसने कहा, "मैने इससे पाच हजार रुपये मागे थे, पर इसने देने से इन्कार कर दिया और कहा कि दुकान से जाकर लो। जब मैं दुकान पर गया, तो छोटे भाई ने गोली मार कर मेरी हत्या कर दी।" शक्तिपाल की विधवा पत्नी ने इस बात को सही बतलाया।

फिर गोपाल को मथुरा ले गये। वहा उसने अपने पिछले जन्म से सम्बन्धित अपना घर, अपने रहने का कमरा, अपने सम्बन्धियो व मित्रों को बिना हिचकिचाहट के पहचान लिया। उसने दुकान पर जाकर वह स्थान भी बतलाया, जहाँ शक्तिपाल को गोली मारी गयी थी और उस घटना का पूरा विवरण भी बतलाया, जो सब का सब बिलकुल ठीक था।

(५) सन् १९५४ में बरेली के एक अध्यापक श्री इस्मतुल्लाह

अंसारी के यहा एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम करीमउल्लाह रक्खा गया। जब वह बालक पाच वर्ष का था, तो ईद के शुभ अवसर पर उसके पिता उसको साथ लेकर अपने एक मित्र श्री इकराम अली से मिलने के लिये गये। उस मकान पर पहुंचते ही उस बालक को अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी। उसने कहा कि पिछले जन्म मे वह इकराम अली का पुत्र मोहम्मद फ़ारूक था। उसने अपने पूर्व जन्म की पत्नी श्रीमती फातिमा बेगम और घर के सब सामान तथा अन्य व्यक्तियो को पहचान लिया। उसने फ़ातिमा बेगम को कई गुप्त बातें बतलाई, जो सिर्फ मोहम्मद फारूक और और फातिमा बेगम ही जानते थे। उसने एक बन्दूक और अपने भाई के पास पाकिस्तान मे अपने द्वारा भेजे गये पाच हजार रुपये का रहस्य भी बतलाया उसने यह भी बतलाया कि जब वह मरा था, तब बैंक मे उसके तीन हजार रुपये थे। श्रीमती फातिमा बेगम को विश्वास हो गया कि उसके मृत पति मोहम्मद फारूक ने ही इस बालक के रूप मे पुनर्जन्म लिया है। श्रीमती फातिमा बेगम ने प्यार मे उस बालक को अपनी गोद मे बैठाना चाहा परन्तु वह बालक उसकी गोद में नही बैठा और कहा "तुम मेरी बीबी हो। मै अपनी कुर्सी पर बैठूगा।"

(६) गाव खेड़ी अलीपुर मे कलीराम जाट के यहा एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम वीरसिह रक्खा गया जब वह बालक साढ़े तीन वर्ष का था तो वह कहने लगा, "मैं शिकारपुर का रहने वाला सोमदत्त हू और मेरे पिता का नाम लक्ष्मीचन्द है।" लक्ष्मीचन्द ये बातें सुनकर २४-४-१९५१ का खेडी गये। खेड़ी शिकारपुर से पाच कोस की दूरी पर है। लक्ष्मीचन्द को देखते ही वीरसिह उनसे चिपट गया और उनको पिता-पिता पुकारने लगा। फिर वीरसिह को शिकारपुर ले गये। गाव के पास पहुचते ही लड़का कहने लगा, "हमारा गांव शिकारपुर आ गया।" रास्ते मे उसने लक्ष्मीचन्द के जगल और कुए को देख कर कहा, "ये हमारे है।" वह बालक स्वय ही लक्ष्मीचन्द के मकान पर पहुच गया और वहा पर अपने पिछले जन्म की मा, बहिनो व भाइयो को पहचान लिया। उस बालक ने कहा कि मर कर वह नौ वर्ष तक पीपल के पेड़ पर प्रेत बनकर रहा था और उसने उन नौ वर्षो की भी कई घटनाएँ बतलाई। जब उसको वापिस खेड़ी गाव ले गये, तो उसने वहा पर खाना नही खाया और कहने लगा, "मै ब्राह्मण हू। जाट के घर का कच्चा खाना और हाडी का दूध नही पिऊंगा।" अंत में तंग आकर उस बालक का लक्ष्मीचन्द के यहा शिकारपुर भेज दिया गया। लड़का अधिकतर अपने पूर्वजन्म के माता-पिता के पास रहता था और वे भी उसको अपने पुत्र के समान ही प्यार करते व पढ़ाते थे। श्री लक्ष्मीचन्द

नें बतलाया कि १९४७ के लगभग उनका साढ़े तीन वर्ष का लड़का सोमदत्त मर गया था।

(७) ज़िला रोहतक के परवांपुर नामक ग्राम में चञ्चल कुमारी नाम की एक बालिका है। उसको अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी है। उसने बताया, "पिछले जन्म में मैं पानीपत में एक स्कूल में अध्यापक थी। मेरा नाम कृष्णलाल था और मेरे पिता का नाम रामप्यारे नागपाल था। मेरी सगाई हो गई थी, परन्तु विवाह नहीं हुआ था। २५ वर्ष की आयु में पेट के दर्द के कारण मेरी मृत्यु हो गई थी। मुझे अपनी माता और अपने भाइयों की भी याद है।" चचल कुमारी ने बतलाया, "वहां से मरकर मैं गाय हुई। यह गाय शाहदरा, ज़िला लाहौर के एक मुस्लिम परिवार के पास रही। वह गाय बहुत कम दूध देती थी, इसलिए एक दिन उसके मालिक ने गाय को इतना मारा कि उसकी मृत्यु हो गयी। गाय की योनि से मरने के बाद मैने गाव परवापुर मे जन्म लिया है।"

चचल कुमारी को पानीपत ले गये, जहां पर उसने स्कूल के भवन और अपने पिछले जन्म के मकान को भी पहचान लिया। उस मकान के पड़ोसियो ने भी बतलाया कि कुछ साल पहले इस मकान में एक स्कूल के अध्यापक की पेट दर्द के कारण मृत्यु हो गई थी। उम अध्यापक का परिवार अब पानीपत छोड़कर रोजगार के लिये किसी दूसरी जगह चला गया है।

(८) जिला मुजफ्फरनगर के गाव रसूलपुर जाटान में श्री राजारामसिंह जाट के सुपुत्र चौधरी गिरधारी सिंह जाट के यहा एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम जसबीर रक्खा गया। जब जसबीर तीन वर्ष चार महीने का था, तब चेचक के कारण उस बालक की मृत्यु हो गयी। वह बालक रात के समय मरा था, इसलिये उसका दाह सस्कार अगले दिन करने का निश्चय हुआ।

ज़िला मुजफ्फरनगर के ही एक दूसरे ग्राम बहेडी के निकट रोहाना मिल में चौधरी शंकरलाल त्यागी का एक लड़का था, जिसका नाम शोभाराम त्यागी था। उस समय उसकी आयु २३-२४ वर्ष की थी। वह विवाहित था और उसके एक लडका और दो लड़कियां थी। एक बार शोभाराम त्यागी एक रथ को स्वय हाकता हुआ एक बारात के साथ जा रहा था कि अचानक ही वह रथ से गिर पडा। रथ का पहिया उसकी गरदन पर से उतर गया, जिससे उसकी नाक और मुह से रक्त बहने लगा। अन्ततः रात को ग्यारह बजे उसकी मृत्यु हो गई और उसका दाह-संस्कार कर दिया गया। शोभा राम त्यागी की मृत्यु उसी रात हुई थी जिस रात रसूलपुर जाटान में चौधरी गिरधारी सिंह का बालक चेचक के रोग से मरा था।

सुबह जब उस बालक जसवीर के शव को जंगल में दबाने के लिये ले जाने लगे तो उसमें जीवन का संचार हो गया। परन्तु उस बालक के शरीर में अपनी आत्मा नही थी, अपितु शोभाराम त्यागी की आत्मा आ गयी थी। उसे अपने पिछले जन्म (शोभाराम त्यागी) के सम्बन्ध की सब बातें याद थी। उस जसवीर के छोटे से शरीर में अपनी २४ वर्ष के पुरुष की आत्मा को प्रविष्ट देखकर और एक त्यागी ब्राह्मण से जाट के घर आया हुआ देखकर और अपने पिछले जन्म के सम्बन्धी, स्त्री, पुत्र, पुत्री सब को छूटा देखकर उसे बहुत दुःख हो रहा था। वह कहने लगा, "मैं ब्राह्मण हूं और तुम जाट हो। मैं तुम्हारे यहा का भोजन नही करूंगा।" उसकी जिद देखकर उसके भोजन के लिये एक ब्राह्मणी का प्रबन्ध किया गया, जो बहुत समय तक उसका भोजन बनाती रही।

इस घटना के चार वर्ष बाद की बात है। जसवीर की मा राजकली जाटनी उसे अपने साथ लेकर अपने पिता के घर जा रही थी। रास्ते मे वह स्थान पडता था, जहा पर शोभाराम की रथ के नीचे गिर कर मृत्यु हुई थी। वहां से दो रास्ते जाते थे—एक गाव बहेडी को दूसरा गाव परई को। उस स्थान पर पहुंचकर जसवीर ने अपनी मा से कहा, "जब मैं शोभाराम था तो इस स्थान पर रथ से गिरकर मेरी मृत्यु हो गयी थी। हमारे घर का रास्ता (बहेडी की ओर संकेत करते हुए) उधर है।" मा ने उसकी बात अनसुनी कर दी और अपने पिता के ग्राम परई चली गयी।

मार्च १९५८ की बात है, बहेडी निवासी श्री जगन्नाथ प्रसाद जो केन (Cane) कोआपरेटिव सोसाइटी में कामदार थे, किसी कार्यवश ग्राम रसूलपुर जाटान गये। वहा पर जसवीर अन्य बच्चों के साथ खेल रहा था। जसवीर ने तुरन्त ही जगन्नाथ प्रसाद को पहचान लिया और उनका नाम लेकर पुकारा। जगन्नाथ प्रसाद को एक अनजान बालक द्वारा अपना नाम लेकर पुकारने से बहुत आश्चर्य हुआ। जसवीर ने उनको सारी बाते बतायी कि कैसे शोभाराम की मृत्यु हुई और कैसे उसकी आत्मा जसवीर के मृत शरीर में आ गयी।

श्री जगन्नाथप्रसाद ने अपने गाव बहेडी पहुंचकर शोभाराम के सम्बन्धियो को सारी घटना सुनाई। शोभाराम के सम्बन्धी ग्राम रसूलपुर जाटान गये। जसवीर ने उन सभी सम्बन्धियो को पहचान लिया। उसने शोभाराम के सम्बन्ध की पिछली सब बाते ठीक-ठीक बतलाई। बालक को ग्राम बहेडी ले गये, जहा पर उसने अपने सम्बन्धियों को, अपने घर को और बहुत सी वस्तुओ को पहचान लिया। अब जसवीर दोनों जगह रहता था—कभी अपने पहले जन्म के घर अपने बाल बच्चो में बहेडी चला जाता था तो कभी रसूलपुर जाटान में आ जाता था।

(९) कुछ वर्ष हुए समाचार पत्रों में हरियाणा प्रदेश के जींद शहर में जन्मीं दो लड़कियों के विषय में समाचार आया था। बडी बहिन की आयु उस समय सात-आठ साल की थी पिछले जन्म में भी वे दोनों सगी बहिनें थीं। पिछले जन्म में जो वडी बहिन थी, उसका नाम पूनम था। उसका विवाह भिवानी में एक एम० ए० बी० टी० अध्यापक के साथ हुआ था और उसके दो लडके भी थे।

पिछले जन्म की छोटी बहिन का नाम सुमन था और मृत्यु के समय वह एफ० ए० में पढ़ती थी। परीक्षा से आठ दस दिन पहले वह बीमार हो गयी थी और उसी बीमारी में उसकी मृत्यु हो गयी थी। सुमन ने अब जींद में बडी बहिन के रूप मे पुनर्जन्म लिया है। वह कहती है, "पिछले जन्म में हम पाँच बहिनें और चार भाई थे। एक भाई का नाम अश्वनी था और एक का टीटू। हमारे पिता इर्विन हस्पताल में डाक्टर थे। हमारी मा स्कूल में पढाती थी।" इन लडकियो की माता ने बतलाया कि बडी लड़की बिना किसी शिक्षा के पुस्तकें पढ लेती है। उसे हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू का जन्म-जात ज्ञान है। एक बार जब वह अपने बडे भाई के साथ कालेज की प्रयोग-शाला में गयी तो उसने वहा की सभी वस्तुओं के नाम बतलाने आरम्भ कर दिये, जिससे सबको बहुत आश्चर्य हुआ।

जिस समय पूर्व-जन्म की बडी बहिन पूनम ने इस जन्म की छोटी बहिन के रूप में पुनर्जन्म लिया तो इस लडकी ने उसको तुरन्त ही पहचान लिया और रोते हुए उससे कहने लगी, "पूनम तू दोनों बच्चों तथा जीजा जी को किस के सहारे छोड आयी है।"

वह लडकी कहती है कि उसने लाल किला, बिरला मन्दिर, कुतुब-मीनार आदि सब देखे हुए है। वह कहती है कि उसने सारे भारत वर्ष के सभी बड़े-बडे नगरों को देख लिया है। अमृतसर, शिमला, डलहौजी श्रीनगर आदि नगरों तथा वहां के मशहूर स्थानों से भी वह परिचित है।

जब दोनों लडकियां अकेली होती है, तो अपने पूर्वजन्म की बातें करती रहती हैं।

(१०) हैदराबाद नगर में एक बालक था। उसके पिता हैदराबाद के एक बैंक में कार्य करते थे। उनका नाम कृष्णा रावला था। उनका व उनके परिवार का संस्कृत भाषा से कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। परन्तु वह बालक धाराप्रवाह संस्कृत बोलता था और छन्द रचना करता था। वह ऐसी भाषा लिखता था, जो अत्यन्त प्राचीन काल में प्रचलित रही होगी। उस भाषा को पढने में अभी सफलता नही मिली है।

ऐसा अनुमान है कि किसी महान् संस्कृत कवि का उस बालक के रूप में पुनर्जन्म हुआ है।

(११) भरतपुर जिले के कस्बे भुसावर में एक तीन वर्ष की बच्ची ने अपने परिवार वालो और नगरवासियो को आश्चर्य में डाल दिया है। लडकी को अपने पूर्वजन्म की बातें उस समय याद आ गयी, जब उसके पिता उसको नहलाने के लिए एक कुए पर ले गये। लड़की ने वह कुआ देखकर वहां पर नहाने को मना कर दिया और कहने लगी कि पहले वह इसी कुए में गिर कर मर गयी थी। लडकी ने अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियों के नाम और रहने की जगह बतलाई। उस स्थान पर ले जाने पर उस लडकी ने अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियो को पहचान लिया और अपने पिछले जन्म की बहुत सी बातें बतलायी जो सब ठीक थी। उस परिवार वालों ने बतलाया कि पच्चीस वर्ष पूर्व उनकी एक १४ वर्षीय लडकी उस कुए मे गिर कर मर गयी थी। उस बालिका को बीच के इक्कीस-बाईस वर्ष की कुछ याद नही है।

(१२) मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में (Inspector of Schools) के कार्यालय मे काम करने वाले श्री मनोहरलाल मिश्र के यहा एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम स्वर्णलता रक्खा गया। जब स्वर्णलता तीन-चार वर्ष की थी, तब एक दिन मनोहरलाल मिश्र अपने परिवार के साथ एक ट्रक में जबलपुर से पन्ना लौट रहे थे। जब ट्रक कटनी के पास पहुंचा, तो वह बालिका ट्रक को बायी ओर मोडने और घर चलने के लिये कहने लगी और अपने पिता से बोली, "आप बस स्टैण्ड की गन्दी चाय नही पियें। मेरे घर चले जो पास मे ही है। वही बढ़िया दूध की चाय पिलाऊंगी।" उस समय उसके परिवार वालो ने उसकी बात पर ध्यान नही दिया। कुछ समय बाद एक दिन स्वर्णलता किसी विचित्र भाषा में गाना गाने लगी। बाद मे पता चला कि यह बंगला मिश्रित असमी भाषा है।

स्वर्णलता ने बताया—"पिछले जन्म मे कटनी के झर्रा टिकुरिया मोहल्ले में मेरा जन्म हुआ था। उस समय मेरा नाम बिया था। मेरे चार भाई और दो बहिनें थी। मेरा विवाह मेहर के चिन्तामणि पाण्डे के साथ हुआ था। मेरे दो लडके और एक लडकी थी। जब मैं ३९-४० वर्ष की थी तो गले की तकलीफ के कारण मेरी मृत्यु हो गयी थी। मेरा एक जन्म सिलहट में हुआ था। उस समय मेरा नाम कमलेश था। मेरे पिता का नाम रमेश था। उनके पास मोटर भी थी और मै मोटर में बैठकर स्कूल जाया करती थी। ९-१० वर्ष की आयु में एक मोटर दुर्घटना में मेरी मृत्यु हो गयी थी।"

बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने और स्वर्णलता के पिछले जन्म के सम्बन्धियों अर्थात् भाई हरिप्रसाद पाठक, पति चिन्तामणि पाण्डे, पुत्र मुरली आदि ने काफ़ी जांच पड़ताल की और स्वर्णलता की सब बातें ठीक पाई गयीं। उसने कटनी जाकर अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियों व अपने घर की बहुत सी वस्तुओं को पहचान लिया।

(१३) बरेली के श्री छदम्मीलाल सक्सेना के पुत्र का नाम सुनील दत्त है। वह सन् १९५९ में पैदा हुआ था। उसको अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी है। वह कहता है, "मैं बदायूं का सेठ श्री कृष्ण हूं। मैंने बदायूं में अपने नाम से एक इण्टर कालिज स्थापित किया था। हृदय की गति रुक जाने से मेरी मृत्यु हो गयी थी। उस लड़के को बदायू ले जाया गया, जहाँ उसने अपने पिछले जन्म के नाम से स्थापित किये हुए कालिज और अपने समय के प्रिंसिपल श्री एस० डी० पाठक को पहचान लिया। उसने अपने पूर्व जन्म के सम्बन्धियों और परिचितों को भी पहचान लिया।

(१४) बलरामपुर के एक कम्पाउण्डर की एक तीन वर्षीय कन्या ने अपने पूर्व जन्म का हाल बतलाया है। वह कहती है, "पिछले जन्म में मैं छितौनी में एक मुसलमान महिला थी। मेरे कई बच्चे थे। अपनी सास से मेरी लडाई रहती थी मुझ घर से निकाल दिया गया था और मेरे पति ने दूसरा विवाह कर लिया था।"

लडकी को छितौनी ले जाया गया, जहां पर उसने अपने पिछले जन्म के घर और घर की बहुत सी वस्तुओं एवं उस जन्म के सम्बन्धियों को पहचान लिया। उसकी बताई हुई सब बातें ठीक निकलीं।

(१५) हरदोई के निकट बशियारपुर ग्राम के श्री सूरजबख्श सिंह की साढ़े पांच वर्ष की बालिका अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत बोलती है। उसने जनता को रामायण और गीता के कई श्लोक सुनाये तथा कीर्तन किया। यह बालिका कहती है, "मेरा एक जन्म मथुरा में, एक काशी में और एक अयोध्या में हो चुका है। इन जन्मों में मैं ब्राह्मण परिवारों में ही पैदा हुई थी।" लड़की जब चार वर्ष की थी, तभी से वह अंग्रेजी गुनगुनाने लगी थी। वह हर प्रश्न का उत्तर अधिकतर कविता में ही देती थी।

(१६) कोटा के निकट अन्ता तहसील के खजूरना ग्राम के एक स्वर्णकार की आठ वर्षीय कन्या को अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी है। उस बालिका का नाम सोना है। एक दिन वह कन्या गांव के किनारे खेल रही थी कि साइकिल पर जाते हुए एक युवक को रोककर पूछ बैठी, "रमेश मुझे नहीं पहचानते। मैं सांगोद के मोहन की पत्नी हूं। श्याम मेरा बेटा है।" रमेश सांगोद का रहने वाला है और कार्यवश अन्ता जाते हुए खजूरना

ग्राम से गुजर रहा था। जब रमेश वापस सांगोद पहुंचा तो उसने अपने मित्र मोहन को यह बात बतलायी। मोहन ब्राह्मण है। उनके पुत्र का नाम श्याम है। लगभग दस वर्ष पूर्व उनकी १८ वर्षीय पत्नी का सर्पदंश से देहांत हो गया था।

मोहन खजूरना गया। जब वह वहां पहुंचा, तो लडकी अपने पिता के पास खेल रही थी। मोहन को देखते ही वह सकोचवश पीठ फेर कर बैठ गयी और अपने पिता से अनुरोध किया कि श्याम के पिता आये है, इनके लिये सिगरेट मगा दे।

मोहन ने सोना से अपने और अपने कुटुम्ब के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न किये और उसने सब प्रश्नो का ठीक-ठीक उत्तर दिया।

सोना को सागोद ले जाया गया। वहां पर उसने अपने पूर्व जन्म के सम्बन्धियो और अन्य वस्तुओ को ठीक-ठीक पहचान लिया। उसने अपने पूर्व जन्म के माता-पिता व भाई बहनों के सम्बन्ध में भी ठीक-ठीक बतलाया और पूर्व जन्म की अनेको दिलचस्प घटनाएं भी सुनाईं।

(१७) गाजियाबाद के आय-कर अधिकारी श्री बृजबिहारीलाल सिंहल का पुत्र सुभाष अपने पूर्व जन्म की बाते बतलाता है। एक दिन सुभाष व उसके भाई में कैरम बोर्ड को लेकर झगडा हो गया। उसी समय उसको अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी। उसने कैरम बोर्ड को फेकते हुए कहा—"मैं कोई गरीब थोडे हूं। लखनऊ में मेरे नब्बे हजार रुपये दबे हुए रक्खे है। एक नही हजार कैरम बोर्ड मगा लूगा।" उसी दिन से उसने अपने पूर्व जन्म की बाते बतानी शुरू कर दी। वह कहता है, "मैं लखनऊ में एक अमीर मुसलमान था। मैंने आय-कर बचाने के लिए घर के लोगो से छिपा कर घर में नब्बे हजार रुपये दबा रक्खे थे और अपनी पत्नी बीबी शफिया खातून के नाम से स्टेट बैंक मे खाता खोल रक्खा था।"

जाँच करने पर उसकी बहुत सी बातें ठीक निकली।

(१८) मैनपुरी में एका नामक एक कस्बा है। यहां पर ठाकुर विजयसिंह चौहान रहते थे। उनके पत्नी और एक पुत्री थी। पुत्री का विवाह हो चुका था। सन १९५६ में अतिसार की बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।

जिला मैनपुरी में ही जसरऊ नामक एक गाँव है, जो मैनपुरी से एटा जाने वाली सडक पर चार मील चलने पर सड़क से दो मील हट कर है। वहां पर श्री रामसनेही शर्मा नामक बढई के घर एक बालक का जन्म हुआ, जिनका नाम वीरेन्द्रकुमार रक्खा गया। यह बालक विजयसिंह चौहान

की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुआ था। जब वह बालक तीन वर्ष का हुआ, तो वह अपने पिछले जन्म की बातें बतलाने लगा, परन्तु उसकी बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। एक दिन जसरऊ गाँव में एक साधु आया। उस बालक ने उस साधु से कहा, "तुम्हारा नाम रघुनाथ है और मैं तुम्हारा बहनोई विजयसिंह चौहान हू।" साधु ने बालक से पिछले जन्म की बहुत सी बातें पूछी और बालक ने सब बातो का बिलकुल ठीक उत्तर दिया। साधु को विश्वास हो गया कि उसके बहनोई विजयसिंह चौहान का ही इस बालक के रूप में पुनर्जन्म हुआ है। साधु ने एका कस्बे में जाकर अपनी बहिन (विजयसिंह चौहान की विधवा पत्नी) को ये बातें बतलाई। तब विजयसिंह चौहान की विधवा पत्नी और उसकी लडकी जसरऊ आकर उस बालक से मिली। उस बालक से बातें करके उनको भी यह विश्वास हो गया कि इस बालक के रूप में विजयसिह चौहान का ही पुनर्जन्म हुआ है।

(१९) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक "हिन्दुस्तान" के २९ अक्तूबर से ४ नवम्बर १९७८ वाले अंक में एक लड़के का विवरण दिया गया है। उसका नाम जगन्नाथ है और उसके पिता का नाम नाथू जी है। वह ग्राम बरेडी, तहसील नरसिंह गढ, जिला राजगढ (ब्यावरा) मध्य प्रदेश का निवासी है। वह बालक तथा उसके परिवार का कोई भी व्यक्ति कभी स्कूल नही गया। परन्तु उस बालक को अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। थोडी-थोडी उर्दू भी उसको आती है। वह हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी शब्द बहुत आसानी से बतला देता है। वह इन भाषाओं को पढ भी लेता है और लिख भी लेता है। बहुत-से प्रबुद्ध व्यक्तियों ने उस लडके को देखा है और उसकी परीक्षा ली है। इन भाषाओं के अतिरिक्त उस बालक को और कोई ज्ञान नही है।

इस बालक का वर्णन पढ़कर यही अनुमान होता है कि वह अपने किसी पूर्व जन्म में इन भाषाओं का विद्वान् रहा होगा, जिसकी स्मृति उसको इस जन्म में हो आयी है।

(२०) उत्तर प्रदेश के मैनपुरी नगर में पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र नाम के वैद्य जी रहते हैं। सन १९६९ में उनके यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम मधु रक्खा गया। जब मधु चार वर्ष की हुई, तब वह कहने लगी कि पिछले जन्म में वह कंकरिया नामक स्थान में एक हरिजन स्त्री थी। उसके पति का नाम ललई था। उसके पुत्र का नाम इन्दर और पुत्री का नाम बसन्ती था। उसका पति बहुत शराब पीता था और वह उसको शराब पीने से रोकती थी। रामनवमी के दिन वह शराब पीकर

घर आया। जब उसने अपने पति से शराब पीने के कारण झगड़ा किया, तो उसके पति ने उसे झाड़ू से बहुत मारा। वह क्रोधित होकर रेल के नीचे कटकर मर गयी। उसके पेट पर रेल का पहिया फिर गया था। (मधु भी अपने पेट पर हाथ फेर कर ठंडी आह भरा करती थी।) मधु को कंकरिया भी ले जाया गया जहां पर उसने अपने पिछले जन्म का घर और अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियों को तुरन्त पहचान लिया। इस घटना की अनेकों प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने जाच की और इसे सत्य पाया। यह घटना पत्रों-पत्रिकाओं में भी छप चुकी है।

(२१) उत्तर प्रदेश के पीलीभीत जिले में पूरनपुर नाम की एक तहसील है। पूरनपुर के गणेशगज मोहल्ले मे ठाकुरद्वारे के पास श्री देवीचरण गुप्ता के यहा सन १९७३ में एक कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम सोना रक्खा गया। जब वह कन्या ढाई वर्ष की हुई, तब उसको अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी। वह कहने लगी कि वह पीलीभीत की रहने वाली है। उसके पाच लडके-लडकियां हैं। वहा पर उसकी कोठी और बगीचा है। वह कोठी उसने स्वयं ही खडे होकर बनवाई थी। एक बार सोना अपनी माताजी और बडी बहन के साथ पीलीभीत गयी। वहा पर उसने अपने पिछले जन्म के पति, पुत्र-पुत्रियों व अन्य सम्बन्धियों को तुरन्त ही पहचान लिया। यह घटना उत्तर-प्रदेश के कई समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है तथा पीलीभीत व पूरनपुर के हजारों व्यक्ति इस घटना को जानते हैं और इसकी सच्चाई पर विश्वास करते है।

(२२) उत्तर प्रदेश के मुज़फ्फरनगर से पन्द्रह किलोमीटर दक्षिण की ओर जौहरा नामक गांव है जो मंसूरपुर शुगर मिल्स से लगभग दो किलो मीटर दूर है। यहा के निवासी श्री श्यामसिंह जाट के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम कुलदीप रक्खा गया। जब कुलदीप ने बोलना शुरू किया तब वह अपने माता पिता से कहने लगा, "तुम मेरे मां बाप नही हो। मेरे माता-पिता तो बेलडा में रहते है। मेरे पिता का नाम चौधरी धूमसिंह और माता का नाम बसकरी है। बेलडा में मेरा बडा-सा मकान है, मेरी पत्नी है, जिसका नाम अतरकली है और मेरे चार बच्चे हैं। मेरा नाम रामपाल है।" एक दिन कुलदीप अपने घर के बाहर खेल रहा था, तब उसने एक व्यक्ति को शुगर मिल्स की तरफ़ जाते देखा। उसने बताया कि ये तो मेरे गांव बेलड़ा के डाक्टर जय नन्दन पंडित हैं। कुलदीप के चाचा अमरसिंह ने उस व्यक्ति को रोक कर उससे उसका नाम व पता पूछा, तो कुलदीप की बात को ठीक पाया। 'रामपाल' ने कुलदीप के रूप में जौहरा में पुनर्जन्म लिया है—यह समाचार बेलड़ा भी पहुंच गया। वहां से रामपाल के कई सम्बन्धी जौहरा आये। कुलदीप ने उन सबको पहचान लिया और उनको

बहुत-सी पुरानी बात बताईं। फिर कुलदीप को बेलड़ा ले गये। वहां पर उसने अपने पिछले जन्म के मकान और पिछले जन्म के सम्बन्धियों व मित्रों को पहचान लिया। कुलदीप ने यह भी बतलाया कि उसने पहले एक हरिजन के घर में जन्म लिया था, वहा उसकी दो मास की आयु में ही मृत्यु हो गयी थी। उसके बाद उसने जौहरा में श्यामसिंह के घर जन्म लिया। सन् १९८० में कुलदीप की आयु पांच-छः वर्ष की थी।

(२३) नागपुर में रमापति हुद्दार नाम के सज्जन रहते हैं। उनके एक पुत्री है जिसका नाम उत्तरा है। वे वहां पर युनिवर्सिटी में मराठी की व्याख्याता है। वे केवल मराठी और अंग्रेजी जानती है। कुछ वर्षों से उनको दौरे (Fits) पड़ने शुरू हो गये हैं। इन दौरों के समय वे उत्तरा नहीं रहती, अपितु शारदा नाम की एक अन्य महिला का व्यक्तित्व उन पर हावी हो जाता है। इन दौरों के समय उनका व्यवहार भी बदल जाता है और वे केवल बगला भाषा ही बोलती हैं। शुरू मे इन दौरो की अवधि कुछ मिनिट की ही होती थी, परन्तु अब तो यह अवधि कभी-कभी पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक की हो जाती है। दौरो के समय वे जो बातें बताती है, उनका साराश इस प्रकार है :–

बहुत समय हुआ सप्तग्राम नामक गाव में शारदा नाम की एक युवती रहती थी। उसके पिता का नाम बृजनाथ चट्टोपाध्याय था जो एक प्रसिद्ध मन्दिर के पुजारी थे। उसके दो छोटे भाई थे, जिनके नाम सोमनाथ और यतीन्द्रनाथ थे। उसके पति का नाम विश्वनाथ था जो वनस्पति-विशेषज्ञ थे। बाईस वर्ष की आयु में सर्पदश से उस युवती की मृत्यु हो गयी थी।

इन तथ्यों की सत्यता की जांच की गयी और उनको ठीक पाया गया।

यह नही कहा जा सकता कि इन दौरों की अवधि में उस शारदा का प्रेत इस उत्तरा को अपने प्रभाव मे ले लेता है या शारदा का ही उत्तरा के रूप में पुनर्जन्म हुआ है और उस अन्तराल में उसको अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो जाती है।

(२४) २५ अक्तूबर १९७८ को हरदोई (उत्तर प्रदेश) के जिला चिकित्सालय के डाक्टर विनय सक्सेना ने भगवती नाम की एक नर्स के साथ मिलकर अपनी २४ वर्षीय पत्नी श्रीमती सुधा की हत्या कर दी। भेद खुल जाने पर डाक्टर विनय सक्सेना पर मुकदमा चला और उसको मृत्यु-दण्ड सुनाया गया। अपील करने पर उसे मृत्यु-दण्ड के बजाय आजन्म क़ैद की सजा हो गयी। डाक्टर सक्सेना आजकल (सन १९८३ मे) लखनऊ की जेल में है।

उत्तर प्रदेश के ज़िला उन्नाव के बेनेगाव मे १५ नवम्बर १९७९ को इन्द्रबहादुर सिह के यहां एक कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम मीनू रक्खा गया। नवम्बर १९८२ मे जब मीनू तीन वर्ष की थी उसको अपने पूर्व-जन्म की स्मृति हो आयी। उसने बतलाया कि पिछले जन्म में वह हरदोई के डा० विनय सक्सेना की पत्नी सुधा थी। उसने अपने पिछले जन्म की और भी बहुत सी बाते बतलाईं। मीनू को उसके पिछले जन्म के माता-पिता के घर कानपुर मे प्रेमनगर मे ले जाया गया। वहा पर उसने अपने पिछले जन्म के माता-पिता व अन्य सम्बन्धियो को पहचान लिया। सबको यह विश्वास है श्रीमती सुधा का ही मीनू के रूप मे पुनर्जन्म हुआ है।

(२५) बिहार प्रदेश के बेगूसराय टाउनशिप मे श्री विजय शकर लाल बरौनी थरमल पावर स्टेशन में रासायनिक सहायक है। जनवरी १९७५ मे उनके यहा एक कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम कनक रक्खा गया। जब वह बोलने लगी तो उसने बतलाया कि पूर्वजन्म मे वह पूनम थी। उसके पिताजी श्री एच० के० सहाय बरौनी थरमल पावर स्टेशन मे बडे इंजीनियर थे। उसका परिवार पटना के मीठापुर मोहल्ले का रहने वाला है। जनवरी १९७४ मे घुटने मे कैंसर हो जाने के कारण पूनम की मृत्यु हो गयी थी उस समय वह बी० ए० के अन्तिम वर्ष में पढ़ती थी। कनक के रूप में पूनम के पुनर्जन्म का समाचार सुनकर उसके पूर्व जन्म की (पूनम की) माता, बडे भाई व अन्य सम्बन्धी उसको देखने के लिये आये। उससे बातें करके सबको यह विश्वास हो गया कि कनक के रूप में ही पूनम का यह पुनर्जन्म हुआ है।

(२६) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक हिन्दुस्तान के ११-१७ मार्च १९८४ के अक मे पूर्वजन्म-स्मृति की एक घटना प्रकाशित हुई है। हरियाणा प्रदेश (भारत) के फ़रीदाबाद ज़िले की पलवल तहसील के 'अल्लिका' नामक ग्राम मे १९७३ की दिवाली को एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम देवीसिह रक्खा गया। उसके पिता का नाम श्यामलाल और माता का नाम गिरजा है। जब उस बालक को ग्यारहवा वर्ष चल रहा था तब उसको अपने पिछले जन्मों की स्मृति हो आयी। उसने बतलाया कि पिछले जन्म मे वह पीपलवाला उर्फ़ हुलवाना नामक ग्राम मे रहता था। यह ग्राम उत्तर प्रदेश (भारत) के मथुरा जिले की छाता तहसील में है। उस समय उस का नाम श्रीचन्द था। उस जन्म मे उसके पिता का नाम नत्थी सिह और माता का नाम रामकली था। उस जन्म में उसकी शादी हो चुकी थी और उसके एक पुत्र भी था। पच्चीस वर्ष की आयु मे श्रीचन्द की हत्या कर दी गयी थी। उस जन्म के उसके माता-पिता, पत्नी व पुत्र अभी (सन् ८४ मे) जीवित है।

अगले जन्म में वह प्रेत बना और वह अपने पिछले जन्म के हत्यारों को परेशान करता रहा।

उसके पश्चात उसका अगला जन्म मथुरा जिले के बरसाना क्षेत्र में हुआ था, परन्तु दो वर्ष की अल्पायु में उसकी मृत्यु हो गयी थी। इस बालक को इस जन्म के माता पिता के नाम भी मालूम हैं और वे अब भी जीवित हैं। इसके पश्चात उसका अब जन्म हुआ है। अपने पिछले जन्मों से सम्बन्धित बहुत से व्यक्तियो व स्थानो को उसने ठीक-ठीक पहचान लिया है। उन व्यक्तियों ने भी उसकी बतलायी हुई बातों की पुष्टि की है।

बंगलौर [कर्नाटक राज्य—भारतवर्ष] मे (National Institute of Mental health and Neuro Sciences) नामक एक संस्था है। इस सस्था मे डाक्टर श्रीमती सतवन्त पसरीचा सन् १९७३ से पूर्वजन्म स्मृति की घटनाओ पर खोज कर रही है। उन्होने भारत में चटी चालीस से अधिक पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाओं का बहुत बारीकी से अध्ययन किया है। उन्होंने सम्बन्धित व्यक्तियों व उनके रिश्तेदारों के अतिरिक्त म्युनिसिपल कमेटियो और चिकित्सालयों के रिकार्ड की भी जांच की है और उन घटनाओ को बिल्कुल सत्य पाया है।

एक घटना में एक महिला ने अपनी सास की हत्या करा दी थी। सास का पास के ही गाव में कन्या के रूप में ही पुनर्जन्म हुआ और उसका नाम सुनीता शर्मा रक्खा गया। सुनीता के सीधे हाथ व सीने पर जन्म से ही कुछ निशान थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि ये निशान ठीक उन्ही स्थानों पर थे जहा पर पिछले जन्म में उसकी हत्या के समय उसको चाकू से घाव हुए थे। सुनीता को अब भी चाकू से बहुत डर लगता है। जब भी वह अपने पिछले जन्म की पुत्र-वधु को देखती है, उसे बुखार हो जाता है।

एक अन्य घटना में कृष्णा नामक एक नौ वर्ष की कन्या की मार्च १९६५ में पैर फिसलकर कुए में गिरने से मृत्यु हो गयी थी। उसका अपने गाव से चार मील दूर दूसरे गांव में कन्या के रूप में ही पुनर्जन्म हुआ। जब वह ढाई वर्ष की थी, तभी से वह अपने पुनर्जन्म की बातें बताने लगी थी। अब भी उसको कुए से बहुत डर लगता है।

ऐसी भी कई घटनाए वैज्ञानिकों के सामने आई हैं जिनमें किसी मृत व्यक्ति की आत्मा किसी जीवित व्यक्ति के शरीर में आ जाती है, और उस जीवित व्यक्ति को अपने प्रभाव में कर लेती है। उस समय वह जीवित व्यक्ति उस मृत व्यक्ति के समान ही व्यवहार करने और बोलने चालने लगता है। वह ऐसी भाषाएं बोलने लगता है तथा ऐसी बातें करने लगता है जो उसने इस जन्म में कभी सीखी भी नहीं थीं।

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में ही हम एक और तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहते है। आजकल अमरीका में पुराने रोगियों का उपचार करने के लिये एक नयी पद्धति—मानस चिकित्सा—का खुलकर प्रयोग हो रहा है। इस पद्धति को हिप्नोटिक एज-रिग्रेशन कहते है। यह जानने के लिये कि रोग की जड में कोई मानसिक ग्रन्थि [Complex] कारण-भूत तो नही है, रोगी को हिप्नोटिज्म द्वारा 'ट्रास'—गाढ़ी नीद—जैसी अवस्था में सुलाया जाता है [वस्तुतः रोगी सोया हुआ नहीं होता] और फिर उसके भूतकाल की स्मृतिया जागृत की जाती हैं। रोगी की स्मृति को वर्तमान काल से दस साल पहले, पन्द्रह साल पहले और इसी प्रकार बचपन तक की अवस्था तक ले जाया जाता है, और रोगी से उस काल से सम्बन्धित बातें पूछी जाती है। ऐसी पूछताछ करते समय अनेक रोगी ऐसी बाते भी बताने लगे जो उनके इस जीवन मे नही घटी थी। बहुत खोजबीन के बाद पता चला कि उन रोगियो की स्मृति अपने पूर्व जन्मो तक चली जाती है, और वे अपने पूर्व जन्म की बाते बतलाने लगते हैं। जब रोगी अपने इस जन्म की अथवा पूर्व जन्म की बाते बता रहा होता है, तो उसका स्वर तथा उसके हाव-भाव आदि उसी अवस्था के अनुरूप ही व्यक्त होते हैं। जैसे, बचपन का प्रसंग हो तो रोगी बालको जैसी तोतली बोली और स्वर में बोलने लगता है तथा कोई दु:ख का प्रसंग हो तो रोगी वेदना पूर्ण स्वर मे बोलता है। ऐसा मालूम होता है कि ये प्रसंग किसी निपुण अभिनेता द्वारा अभिनीत हो रहे हो।

इस सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डाक्टर और वैज्ञानिक श्री एलेक्ज़ेण्डर केनन, जिन्होने एक हजार तीन सौ से अधिक रोगियो पर ये प्रयोग किये थे, अपनी पुस्तक "The power within" के पृष्ठ १७०-१७१ पर लिखते है:—

"वर्षों से मैं पुनर्जन्म के सिद्धान्त से भड़कता था, और उसे गलत सिद्ध करने का प्रयत्न करता था। "ट्रांस" मे रहे हुए मेरे रोगी जब ऐसी बाते करते जो उनके इस जन्म मे नही घटी थी तब मैं उनसे कहता कि वे मूर्खतापूर्ण बकवास कर रहे हैं। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया एक के बाद दूसरे रोगी ऐसी ही बातें कहने लगे। आजतक मैं एक हजार से अधिक केसो की परीक्षा कर चुका हू और अब मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि पुनर्जन्म एक वास्तविकता है। एक हजार से अधिक केसों में से प्रत्येक केस में इस जीवन से पहले सौ वर्ष से लेकर ईसवी सन पूर्व दो, तीन तथा उससे भी अधिक हजार वर्ष पहले इस पृथ्वी पर जन्म लेने की बात ज्ञात हुई।"

इसी पुस्तक के पृष्ठ १८८ पर वे लिखते हैं—

"पाठक यह देख सकेंगे कि मैंने यह केवल कल्पना के बल पर ही नहीं, अपितु कड़ी परीक्षा और ठोस प्रमाणों के आधार पर ही कहा है। अभी तक जांचे गये एक हजार तीन सौ केसों से एक प्रकार के ही ठोस, उत्साहवर्द्धक और विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इन प्रमाणों की कट्टर भौतिकवादी और शंकाशील व्यक्ति भी उपेक्षा नहीं कर सकते।"

पुस्तक के विस्तार के भय से हमने यहां पर पुनर्जन्म की कुछ ही घटनाओ का उल्लेख किया है। जिन पाठकों को इस सम्बन्ध में रुचि हो और जो इस प्रकार की अन्य घटनाओं का अध्ययन करना चाहते हों, वे मासिक पत्र "कल्याण" के "परलोक और पुनर्जन्म" विशेषाक का अवलोकन कर सकते हैं, जो जनवरी १९६९ में प्रकाशित हुआ था। इस विशेषांक में पूर्वजन्म-स्मृति की बहुत सी घटनाओं का उल्लेख है और इस विषय पर प्रकाशित भारतीय व विदेशी साहित्य की पर्याप्त जानकारी दी गयी है। इसके अतिरिक्त समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में भी यदाकदा पूर्व जन्म-स्मृति की घटनाएं प्रकाशित होती रहती हैं।

इन पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये घटनाए केवल भारत में और केवल पुनर्जन्म में आस्था रखने वाले परिवारो में ही नही, अपितु ऐसे देशो, समाजो, और परिवारो में भी हुई हैं, जो पुनर्जन्म में विश्वास तो क्या, इस विषय मे कुछ जानते भी नही थे। इन घटनाओ के प्रचार करने में उनसे सम्बन्धित व्यक्तियो की न तो कोई व्यक्तिगत रुचि थी और न कोई व्यक्तिगत स्वार्थ ही था। ऐसी परिस्थितियों में इन घटनाओं को झुठलाने का कोई कारण नही है।

इस सम्बन्ध में कुछ शकाएं उठनी स्वाभाविक हैं, जिनका हम समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।

सभी व्यक्तियों को पूर्वजन्म की स्मृति क्यों नहीं होती ?

एक शंका यह उठती है कि जब सभी प्राणियों का पुनर्जन्म होता है तो सभी व्यक्तियों को अपने पूर्व जन्म की स्मृति क्यो नही होती ?

इसके उत्तर में निवेदन है कि हम इस जीवन में भी देखते हैं कि सभी व्यक्तियों की स्मृति एक-जैसी नही होती। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं कि जिनको वर्षों पहले की बातें भी याद रहती हैं, जबकि कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनको कुछ समय पहले की बात भी याद नहीं रहती। एक ही व्यक्ति के जीवन में ऐसा होता है कि जब उसको वर्षों पहले घटी कुछ विशेष घटनाएं तो जीवन भर याद रहती हैं, परन्तु दो-चार दिन पहले की

साधारण-सी बातें उसे याद नहीं रहतीं। कई बार ऐसा होता है कि हमें कोई वस्तु रख कर भूल जाते है और फिर पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी हमको उस वस्तु के रखने के स्थान की याद नही आती। बहुधा ऐसा भी होता है कि हम अपने जीवन में घटी कोई घटना, किसी परिचय प्राप्त व्यक्ति तथा किसी देखे हुए स्थान को बिलकुल भूल जाते है। परन्तु जब हम संयोगवश वैसी घटना, उस व्यक्ति तथा उस स्थान को दुबारा देखते हैं, तो उस पुरानी घटना, उस व्यक्ति तथा उस स्थान से सम्बन्धित सारी बातें हमें याद आ जाती है और कभी-कभी याद नहीं भी आती। ये ही तथ्य पूर्व जन्म स्मृति के सम्बन्ध मे भी ठीक उतरते है। इस जन्म में जब व्यक्ति अपने पूर्व जन्म से सम्बन्धित किसी घटना, व्यक्ति तथा स्थान को देखते है, तो कभी-कभी उनको अपने पूर्व जन्म की स्मृति हो जाती है।

एक बात और है, इस विश्व मे अनन्त प्राणी हैं। इसमें अनगिनत ग्रह व नक्षत्र है। आधुनिक वैज्ञानिको का विचार है कि इस सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता कि इस पृथ्वी के अरिरिक्त और भी ऐसे अनेको नक्षत्र हो सकते है जहा पर जीवन हो। इन सबको मिला कर देखा जाये, तो इस पृथ्वी के मनुष्यो की सख्या तो इस विश्व के समस्त प्राणियों की सख्या मे समुद्र की तुलना में पानी की एक बूद के बराबर भी नही है। इसी प्रकार हमारी जानी हुई पृथ्वी इस विश्व की तुलना में एक बिन्दु के बराबर भी नही है। यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार इस विश्व के प्रत्येक क्षेत्र मे और प्रत्येक योनि मे भ्रमण करती रहती है। यह आत्मा मनुष्य का शरीर छोडकर अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप पशु-पक्षी, कीट-पतग आदि का शरीर भी धारण करती है। ऐसा तो बहुत कम होता है कि कोई मनुष्य मर कर फिर मनुष्य योनि मे ही उत्पन्न हो और फिर मनुष्य योनि मे उत्पन्न होने पर भी यह आवश्यक नही कि वह उसी स्थान और उसी वातावरण मे जन्म ले, जहा पर वह अपने पिछले जन्म में था। इसलिये जब तक इतनी अनुकूल परिस्थितिया नही मिलती, तब तक पूर्व जन्म की स्मृति होना कठिन ही होता है। इसी कारण से प्रत्येक व्यक्ति को अपने पूर्वजन्म की स्मृति नही होती। पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाओं में अधिकतर घटनाएं ऐसी ही है कि जब वह बालक अपने पूर्वजन्म से सम्बन्धित किसी व्यक्ति, स्थान या किसी घटना को देखता है, तभी उसको पूर्वजन्म की स्मृति हो आती है।

पूर्व जन्म के सस्कार

यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने पूर्वजन्मों की स्मृति नहीं होती, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति पर अपने पूर्वजन्मों के संस्कारो का प्रभाव अवश्य रहता है। इसी कारण से विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न रुचियां और

विभिन्न विचार होते हैं। विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न वस्तुओं से विशेष लगाव होता है। विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न वस्तुओं से डर लगता है, जैसे किसी को आग से डर लगता है, किसी को पानी से। इसी प्रकार किसी को मोटर में बैठने से डर लगता है, किसी को हवाई जहाज में बैठने से। बहुधा ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति के सम्पर्क में हम पहली बार आते है, तो हमारे मन में कुछ ऐसा अपनत्व का भाव उठता है जैसे कि यह व्यक्ति हमारा बहुत दिनो का जाना पहचाना है और हम उससे बहुत जल्दी घुल मिल जाते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि किसी व्यक्ति को देखते ही हमारे मन में घृणा व क्रोध की भावनाए जागृत हो जाती है और हम उससे दूर-दूर रहना चाहते है। आपने ऐसे सगे भाईयों को भी देखा होगा, जो एक दूसरे पर जान देते है और ऐसे भाईयों को भी देखा होगा, जो एक दूसरे के रक्त के प्यासे होते है। आपने ऐसे व्यक्तियो को भी देखा होगा जो अपने माता-पिता की प्राणपन से सेवा करते है तथा ऐसे व्यक्तियो के सम्बन्ध में भी सुना होगा, जो अपने माता-पिता की हत्या कर डालते है। आपने ऐसी महिलाओ को भी देखा होगा, जो अपने पतियों पर जान छिड़-कती हैं और ऐसी स्त्रियो के सम्बन्ध में भी सुना होगा, जो अपने पतियो की जान भी ले लेती है। इस ससार में ऐसे व्यक्ति भी है, जो दूसरों के तनिक से दुःख से भी दुःखित हो जाते है और यहा ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो पशु-पक्षी तो क्या मनुष्यो तक को अमानुषिक कष्ट पहुचाने और उनको गाजर-मूली की तरह काट डालने मे भी नही हिचकिचाते। इस ससार में ऐसे व्यक्ति भी है, जो पैसे दो पैसे तक के लिये अपनी नीयत खराब कर लेते है और ऐसे व्यक्ति भी है जो करोड़ो के धन को भी लात मार देते है। अन्ततः इन सब विषमताओ का कारण क्या है ? उत्तर स्पष्ट है कि इनका कारण उनके पूर्वजन्मो के सस्कार ही है, जो उनकी भावनाओ पर अपना प्रभाव डालते रहते है।

कुछ व्यक्तियो की मुखाकृतियाँ विशेष पशु-पक्षियो की मुखाकृतियों से मिलती हुई लगती है। इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों के स्वभाव विशेष पशु-पक्षियों के स्वभाव से मिलते हुए लगते हैं। ऐसे व्यक्तियों को देखते ही हमारे मन मे यह भाव आता है कि यह व्यक्ति पिछले जन्म में अमुक पशु या अमुक पक्षी रहा होगा जिसके संस्कार अभी तक इस व्यक्ति में बाकी हैं।

इसी प्रकार पूर्व जन्म के संस्कारों का प्रभाव केवल मनुष्यों में ही नहीं, अपितु तनिक बारीकी से देखने पर पशु-पक्षियों में भी देख सकते हैं। कुछ गायें तो ऐसी सरल स्वभाव की होती हैं कि एक छोटा बच्चा भी उनके साथ खेलता रहता है और दिन में जितनी बार चाहें उनका दूध निकाला जा सकता है , जबकि कुछ गायें ऐसे दुष्ट स्वभाव की होती हैं कि वे बड़े-बड़े

व्यक्तियो को भी मारने को दौड़ती है । इसी प्रकार हम कुत्ते, बैल, भैंस, हाथी, घोड़े आदि पशुओं मे भी स्वभाव की भिन्नता देख सकते है ।

इसी प्रकार विभिन्न पशु-पक्षियो का भाग्य भी भिन्न-भिन्न होता है । एक कुत्ता मोटरो मे घूमता है, वातानुकूलित कमरों मे रहता है, बढ़िया से बढ़िया भोजन करता है, जरा सी तबियत खराब हुई कि तुरन्त ही डाक्टर उपस्थित हो जाता है । जबकि एक अन्य कुत्ता भूखा, प्यासा, लंगड़ा, खाज से पीड़ित होकर सड़को पर घिसटता रहता है और बच्चे उसको पत्थर मारते रहते है, जिससे कि वह चैन से कही बैठ भी नही सकता । एक घोड़ा है, उसको सुबह-शाम मालिश की जाती है उसे अच्छे साफ-सुथरे स्थान में रक्खा जाता है, और सुबह-शाम उसको घुमाया जाता है, अच्छे-से-अच्छा पौष्टिक भोजन खाने को दिया जाता है, जबकि एक दूसरा घोड़ा भूख से अधमरा हो रहा है, शरीर पर घाव हो रहे हैं, पैर मे तकलीफ़ होने से लगड़ा कर चल रहा है, तपती धूप में सड़क पर बोझ खीच रहा है, पसीने से लथपथ हो रहा है, फिर भी कोचवान उस पर चाबुक बरसाता रहता है । इसी प्रकार हम दूसरे पशु-पक्षियो के सम्बन्ध मे भी ऐसी विषमताएं देख सकते है ।

यहा हम कुछ पशुओ के सम्बन्ध मे कुछ तथ्य दे रहे है ।

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक "रवि भारत" के १५ जनवरी, १९७२ के अक मे एक हाथी का वर्णन दिया हुआ है । तमिलनाडु प्रदेश के रामनाथपुरम के पश्चिमी घाटो मे चन्दुरागिरि पहाड़ी के शिखर पर शकर जी का देवालय है । वहा पर एक दाँत वाला एक हाथी नित्य आकर शिवलिंग को अपना शीश नवाता था और अपनी सूड के द्वारा भक्ति-भाव प्रकट करता था । इस हाथी ने कभी भी किसी व्यक्ति पर आक्रमण नही किया । यदि कोई व्यक्ति उसके पास जाता था, तो वह हाथी वहा से निकल जाता था । जनवरी, १९७१ में इस देवालय में ही इस हाथी की मृत्यु हो गयी । इस देवालय मे, स्मृति के रूप मे, उस हाथी के दांत की स्थापना की गयी है ।

दिल्ली से ही प्रकाशित होने वाले दैनिक "नवभारत टाइम्स" के २५-४-६५ के अक में कुछ कुत्तो का वर्णन है । नदिया जिले के कृष्णगंज थाने के अन्तर्गत दुर्गापुर गांव में एक वृद्ध कुत्ता बड़ी निष्ठा व भक्ति से एकादशी का व्रत रखता था । एकादशी के दिन वह कुछ खाता-पीता नहीं था तथा सोलह दण्ड उपवास रखता था । उपवास समाप्त करके वह अपना प्रिय खाद्य मांस भी नही खाता था । कई प्रमुख व्यक्तियों ने कई बार इस तथ्य की जांच की थी और इसे सत्य पाया था ।

गोहाटी के एक सरकारी अधिकारी के पास एक कुत्ता था। वह प्रति पूर्णिमा, अमावस्या व एकादशी को उपवास रखता था।

बस्तर के पास एक भैरव मन्दिर में प्रतिदिन आरती व पूजन के समय एक काला कुत्ता आकर उसमें सम्मिलित होता था। वह कुत्ता भैरव की प्रतिमा के सन्मुख लगभग एक घण्टे तक आंखें बन्द करके खडा होता था। उसके पश्चात् सात बार परिक्रमा करता था तब वह कुछ खाता-पीता था। यह उसका प्रतिदिन का नियम था।

देहरादून के तपोवन आश्रम में काले पानी निवासी ठाकुर रामसिंह के पास एक ऐसा विचित्र कुत्ता था, जो प्रति एकादशी को व्रत रखता था। सुप्रसिद्ध आर्य सन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती ने इस कुत्ते की जांच की थी। वह कुत्ता मांस बिलकुल नहीं खाता था। अब इस कुत्ते की मृत्यु हो गयी है।

कतिपय अन्य पशुओं के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के वर्णन हमें यदाकदा सुनने, पढने व देखने को मिल जाते हैं।

इन सब तथ्यो से यही प्रमाणित होता है कि पूर्व जन्मों के संस्कार केवल मनुष्यो में ही नही, पशु-पक्षियों में भी पाये जाते हैं। क्योंकि यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार सभी योनियों में यथा—मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि में—शरीर धारण करती रहती है और सुख-दुःख भोगती रहती है।

एक शंका यह उठती है कि जिस बालक को अपने पूर्वजन्म की स्मृति होती है, वह यही कहता है कि पिछले जन्म में वह मनुष्य ही था। यह कोई नहीं कहता कि पिछले जन्मो में वह पशु या पक्षी था।

इसका उत्तर यह है कि मनुष्य-योनि के अतिरिक्त और योनियों में ज्ञान बहुत कम होता है, इसीलिये मनुष्य के अतिरिक्त पशु व पक्षी की योनि की स्मृति होने की सम्भावना बहुत कम होती है। ऊपर लिखी हुई पूर्वजन्म स्मृति की घटनाओं में एक बालिका ने यह स्वीकार किया है कि वह पहले एक पुरुष अध्यापक थी, उसके बाद उसने पाकिस्तान में गाय के रूप में जन्म लिया और गाय की योनि से मर कर वह अब यहां पैदा हुई है। ऊपर लिखी हुई घटनाओं में कई ऐसी भी घटनाएं हैं, जिनमें पिछले जन्म में मृत्यु के समय में और इस जन्म में पैदा होने के समय में कई-कई साल का अन्तर है। इन व्यक्तियों को अपने इस बीच के समय के सम्बन्ध में बिलकुल याद नहीं है। बहुत सम्भव है कि इस बीच के समय में वे ऐसी ही किसी पशु पक्षी की योनि में रहे हों, जहां पर ज्ञान बहुत कम होता है और इसी-

लिये इन व्यक्तियों को उन योनियों के सम्बन्ध में कुछ भी याद नही रहा हो।

एक शंका यह उठती है कि पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाएं अभी क्यों होने लगी हैं ? अब से पचास साठ वर्ष पहले तो इस सम्बन्ध में कभी सुनते भी नहीं थे।

इस सम्बन्ध में निवेदन है कि पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाएं तो पहले भी होती थी, परन्तु पहले समाचार पत्रों तथा आवागमन एवं प्रचार के साधनो की कमी होने से वे घटनाएं स्थानीय घटनाए बन कर ही रह जाती थी। परन्तु अब प्रचार के साधन बहुत बढ गये है और बहुत से चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक भी इस विषय में रुचि लेने लगे है और देश-विदेशो मे इस सम्बन्ध में खोज हो रही है, इसीलिये आजकल ऐसी घटनाए जल्दी ही प्रकाश में आ जाती है और उनका शीघ्रता से प्रचार हो जाता है।

अक्तूबर, सन् १९७२ में अमरीका के वर्जीनिया विश्वविद्यालय के नाडियो और मानसिक रोगो के प्राध्यापक डाक्टर इयान स्टीवेन्सन (Dr. Ian Stevenson) पूर्वजन्म स्मृति की घटनाओ की जाँच के सम्बन्ध में भारत आए थे। भारत की यह उनकी आठवी यात्रा थी। वह भारत मे पर्वजन्म स्मृति की लगभग १७० घटनाओ का अध्ययन कर चुके हैं। भारत के अतिरिक्त उन्होंने ब्राजील, बर्मा, अलास्का, थाईलैण्ड, लेबनान, तुर्की, सीरिया, लंका, अमरीका तथा यूरोप के अन्य देशो की भी यात्राए की है और वहाँ पर हुई पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाओ का बारीकी से अध्ययन किया है। वे अब तक लगभग १२०० से अधिक घटनाओ की जाच कर चुके है और उनको पुनर्जन्म में पूर्ण विश्वास है। उन्होने अपने अध्ययन और अनुसन्धान से जो तथ्य पाये हैं, वे इस प्रकार हैं--

(१) उन्होंने कई ऐसे व्यक्तियों को देखा है, जिनके इस जन्म में भी वही रोग है, जो उनको पिछले जन्म में थे।

(२) उन्होने कई ऐसे व्यक्तियों को देखा है, जिनके शरीर पर इस जन्म में मस्से, दाग व अन्य विशेष चिह्न ठीक उसी जगह पर है, जिस जगह पर उन्हें पिछले जन्म में चाकू, गोली या कोई अन्य बड़ी चोट लगी थी।

(३) पूर्वजन्म की स्मृति अधिकांश में बालकों में ही पायी जाती है। क्योंकि जैसे-जैसे ये बालक बडे होते जाते है, वे पूर्वजन्म की बातें भूलते जाते हैं। भारत में ऐसे बालकों को न तो छिपाया जाता है और न उनको हतोत्साहित ही किया जाता है, जबकि अन्य देशों में ऐसे बालकों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है अपितु उनको हतोत्साहित किया जाता है।

(४) जितनी पूर्वजन्म-स्मृति की घटनाएं प्रकाश में आई हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे व्यक्तियों की हैं जो अपने पिछले जन्म में किसी की हिंसा के शिकार हुए थे या जिन्होंने आत्महत्या की थी अथवा जो किसी दुर्घटना के शिकार हुए थे। कदाचित् इस प्रकार से मृत्यु होने से उन व्यक्तियों की भावनाएं इतनी अधिक तीव्र हो जाती होगी कि वे अपने वर्तमान जन्म में भी पिछले जन्म की घटनाओ को नही भूलते।

(५) ऐसा देखा गया है कि जिस व्यक्ति की पिछले जन्म में पानी में डूबने से मृत्यु हुई थी, वह इस जन्म में पानी से डरता है। जिसकी पिछले जन्म में गोली लगने से मृत्यु हुई थी, वह इस जन्म में बन्दूक, तोप व पटाखों की आवाजों और बादलों की कड़क से डरता है।

(६) जिन बालकों को पिछले जन्म की स्मृति हो जाती है, उनका रुझान अपने पिछले जन्म के परिवारों की ओर अधिक रहता है।

(७) पूर्वजन्म-स्मृति की अधिकांश घटनाओं में पिछले जन्म में हुई मृत्यु के समय में और इस जन्म में उत्पन्न होने के समय मे ३ से ५ साल का अन्तर देखा गया है।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये हमने ये कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये है। इसी सिद्धान्त की पुष्टि के लिये हम कुछ और तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं।

कुछ विशिष्ट बालकों व व्यक्तियों का परिचय

इसी सम्बन्ध में पाठकों की जानकारी के लिये यहा हम कुछ विशिष्ट बालको व व्यक्तियो का परिचय दे रहे हैं।

(१) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र "वीर अर्जुन" के २५ अप्रैल १९७१ के अंक में लिखा है—

स्काटलैंड में सन् १५६० में एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम जेम्स क्रिसटन रक्खा गया। उस बालक ने छोटी आयु में ही अरबी, ग्रीक, यहूदी, फ्लेमिस आदि बारह भाषाएं पढ ली थी। बीस वर्ष का होने पर वह विज्ञान के सभी अंगों का ज्ञाता हो गया था। वह लेख, कहानी व कविताएं भी लिखता था और कई प्रकार के वाद्य-यन्त्र भी बजा लेता था। तलवार चलाने में भी वह बहुत प्रवीण था। अन्तत: एक युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई थी।

(२) इटली में गियोवानी गलाती नाम का एक बालक था। वह रात के अंधेरे में साफ-साफ़ देख सकता था। कितना ही अंधियारा क्यों न हो, वह पुस्तक पढ लेता था। अप्रैल, १९२८ में वह अमरीका जाने लगा, परन्तु स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से उसको जाने नहीं दिया गया।

(३) फ्रान्स के एक गांव में लुईक कार्डक नाम का बालक था। वह छह महीने की आयु में ही बाइबिल पढकर सुनाने लगा था। चार वर्ष की आयु में वह अंग्रेजी, जर्मनी, फ्रान्सीसी एवं यूरोप की अनेक भाषाएं बोलने लगा था। छह वर्ष की आयु में वह गणित, इतिहास व भूगोल में बड़े-बड़े प्रोफेसरों को भी मात करने लगा था। सात वर्ष की आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

(४) जीन फिलिप बैराटियर नाम का चार वर्ष का बालक तीन भाषाएं जानता था। चौदह वर्ष की अल्पायु में ही उसको Ph D. की उपाधि मिल गई थी। उसकी स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि वर्षों पहले की छोटी-सी-छोटी बात भी उसे पूरी तरह याद रहती थी। उन्नीस वर्ष की अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

(५) फ्रान्स के ब्लेइस पास्कल नाम के बालक ने बारह वर्ष की आयु में ही ध्वनिशास्त्र पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखा था। उसकी मृत्यु १९ वर्ष की आयु में हो गई थी।

(६) आस्ट्रेलिया का एक तीन वर्षीय बालक अंग्रेजी व फ्रेंच भाषाओं का अच्छा ज्ञाता था। उसका नाम जोनी था। तीन वर्ष की अवस्था में ही उसको स्कूल में पढने बैठा दिया गया था। उस समय वह आठ वर्ष की उम्र के छात्रो की पुस्तके पढने लगा था। एक बार उसने ब्लैक बोर्ड पर लिखे हुए एक कठिन शब्द को जोर से पढा, तो क्रोधित होकर उसके अध्यापक ने उसके पिता को पत्र लिखा—"मुझे कक्षा में शोर-गुल मचाकर लड़को का ध्यान आकर्षित करना पसन्द नही, जैसा कि आपका पुत्र करता है। तीन वर्ष का बालक दस वर्ष के बालको की पढाई नही कर सकता।" अन्त में उसे दस वर्ष की उम्र के बालकों के साथ बैठाया गया। उसकी आयु बारह वर्ष से कम होने के कारण उसको हाई स्कूल में नही भेजा जा सकता था।

(७) पण्डित सुखलाल जी संघवी ने अपनी पुस्तक "दर्शन और चिन्तन" में लिखा है—

प्रकाश पर खोज करने वाले डाक्टर यंग दो वर्ष की आयु में ही पुस्तक को बहुत अच्छी तरह पढ लेते थे। चार वर्ष की आयु मे वे दो बार बाइबिल पढ़ चुके थे। सात वर्ष की अवस्था में उन्होने गणित पढ़ना आरम्भ किया और तेरह वर्ष की अवस्था में उन्होंने लैटिन, ग्रीक, हिब्रू, फ्रेंच, इटालियन आदि भाषाएं सीख ली थी।

(८) सर विलियम रोवन है मिल्ट ने तीन वर्ष की उम्र में हिब्रू भाषा सीखना आरम्भ किया था और सात वर्ष की अवस्था में उस भाषा में

इतने निपुण हो गये थे कि डबलिन के ट्रीनिटि कालेज के एक फ़ैलो को स्वीकार करना पडा कि कालेज के फैलो पद के प्राथियों में भी उनके बराबर ज्ञान नहीं है। तेरह वर्ष की अवस्था में उन्होंने तेरह भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

(९) अंग्रेजी भाषा के पत्र 'SPAN' के नवम्बर १९७० के अंक में प्रसिद्ध वायलिन वादक यहूदी मेनुहीन (Yahudi Manuhin) के सम्बन्ध में लिखा है कि उन्होंने सात वर्ष की उम्र में वायोलिन बजाने में दक्षता प्राप्त कर ली थी। तीन वर्ष की उम्र से ही उनकी रुचि वायोलिन की ओर हो गयी थी। पाच वर्ष की उम्र में उन्होंने वायोलिन बजाना सीखना आरम्भ किया था और सात वर्ष की अवस्था में सैन फ्रांसिस्को आरकेस्ट्रा के साथ वायोलिन बजाना आरम्भ कर दिया था। ग्यारह वर्ष की अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते वे यूरोप के बहुत से देशों की राजधानियों मे ख्याति प्राप्त कर चुके थे।

(१०) जर्मनी में कार्ल बिट नाम का एक बालक था। उसने नौ वर्ष की उम्र में ही लिपजिग विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया था। चौदह वर्ष की अवस्था में उसने Ph. D. की उपाधि भी प्राप्त कर ली थी। सोलह वर्ष की आयु में उसने कानून में भी डाक्टरेट ले ली थी और तभी वह बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्यापक बन गया था।

(११) पश्चिम जर्मनी में विश्वविद्यालय का सबसे कम आयु का छात्र एल्मर एडर है। यह बालक गणित व भौतिकी शास्त्र में बड़े-बड़ो के कान काटता है। सारे जर्मनी में एल्मर एडर की असाधारण प्रतिभा और विलक्षण बुद्धि की चर्चा होती रहती है। वह विश्वविद्यालय के बड़े लड़कों के साथ बैठता है। प्रोफेसर आइन्सटीन का सापेक्षवाद का सिद्धान्त, जो बड़े विद्यार्थियों के लिये टेढी खीर है, एल्मर के लिये बच्चों का खेल है। छह साल की अवस्था में ही उसने अपने पिता से स्टैनोग्राफ़ी भी सीख ली थी।

(१२) ब्लेज पास्कल नामक युवक ने १६ वर्ष की अवस्था में ज्यामिति पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखली थी और १९ वर्ष की उम्र में ज़ोड़ लगाने वाली मशीन (Adding Machine) का आविष्कार कर लिया था।

(१३) अलबर्ट आइन्सटीन ने १५ वर्ष की अवस्था में ही यूक्लिड, न्यूटन और स्पिनोला के सिद्धान्तों में पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था और २६ वर्ष की उम्र में सापेक्षतावाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था।

(१४) श्री शंकराचार्य ने १६ वर्ष की अवस्था में भारतवर्ष के अनेकों पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था।

(१५) सन्त ज्ञानेश्वर ने १२ वर्ष की अवस्था में ही "ज्ञानेश्वरी" लिख ली थी, जिसका धर्म चिन्तन में अनुपम स्थान है।

(१६) भारतवर्ष के श्री ईश्वरचन्द विद्यासागर को कौन नहीं जानता ? वे बाल्यकाल से ही असाधारण प्रतिभा के धनी थे।

(१७) कवीन्द्र रवीन्द्र ने १६ वर्ष की अवस्था मे ही "पदावलि" लिखकर बगाल मे तलहका मचा दिया था।

(१८) भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू ने १३ वर्ष की अवस्था में ही १३०० पक्तियो की एक कविता लिख ली थी।

(१९) पूना के भावे हाई स्कूल की नवीं कक्षा मे तेरह वर्ष का सुहास बहुलकर नाम का एक छात्र पढता था। वह बालक चार वर्ष की अवस्था में ही रेखाचित्र बनाने लगा था। इसको १९६४ मे आयोजित शकर चित्र प्रतियोगिता मे अपने रगीन चित्रो के लिए पुरस्कार मिल चुका है। पढाई तथा खेलकूद मे भी वह पर्याप्त रुचि लेता है। उसको कई सस्थाओ द्वारा सम्मानित किया जा चुका है।

(२०) भारतवर्ष के प्रसिद्ध बालगायको मास्टर मदन तथा मास्टर मनहर बर्वे को कौन नही जानता ? उन्होने पाच-छ वर्ष की आयु से ही बहुत अच्छी प्रकार से गाना प्रारम्भ कर दिया था। मास्टर मदन की साढे पन्द्रह वर्ष की आयु मे ही मृत्यु हो गयी थी।

(२१) 'पराग' नामक पत्रिका के जौलाई, १९७४ के अक में वर्षा नाम की ८ वर्ष की एक बालिका का परिचय दिया है जो अनेको बार कत्थक, मणिपुरी, राजस्थानी, भरतनाट्यम्, भागडा, मालवी, बुदेलखडी नृत्य मच पर प्रस्तुत कर चुकी है।

(२२) १८ अप्रैल, १९३१ की बात है ढाका निवासी श्री सोमेशचद बसु को एक सौ अंकों की एक संख्या को एक अन्य संख्या से गुणा करने को कहा गया। श्री बसु ने उन अकों को कुछ समय के लिए देखा और आंख मीच कर बैठ गए। साढे बावन मिनटो के पश्चात् उन्होंने उस प्रश्न का उत्तर लिख दिया जो बिलकुल ठीक था।

लंदन निवासी सिविल इन्जीनियर श्री जी० पी० बिडर अपने बचपन से ही और वियना विश्वविद्यालय के छात्र श्री हैस एवरस्टाक भी ऐसे ही प्रतिभा-सम्पन्न थे।

(२३) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र "नव-भारत टाइम्स" के २९-७-६७ के अक में भारत की श्रीमती शकुन्तला देवी नामक एक महिला का वर्णन है। गणित में उनकी विलक्षण प्रतिभा है

और वह विश्व भ्रमण करके समस्त विश्व में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन भी कर चुकी हैं। वह दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह अंकों वाली संख्याओं का गुणा, भाग, वर्गमूल कुछ ही सैकिण्डों में बतला देती हैं। वह तीन वर्ष की उम्र से ही गणित के प्रश्नों का उत्तर देती आ रही हैं। वह स्वयं यह नहीं जानतीं कि उनको यह प्रतिभा कैसे प्राप्त हुई? वह किसी भी तारीख का वार बता सकती हैं। कई स्थानों पर "इलैक्ट्रिक ब्रेन" रख कर उनसे प्रश्न किये गये और उन्होंने "इलैक्ट्रिक ब्रेन" के बताने से पहले ही अपना उत्तर बता दिया। उन्होंने किसी स्कूल में गणित की शिक्षा प्राप्त नहीं की। बहुत से विदेशी विद्वानों को भी उनकी विलक्षण बुद्धि पर आश्चर्य होता है। इस लेखक ने २७-१२-७२ को दिल्ली के टेलीविजन पर उनका प्रदर्शन देखा था।

(२४) इसी "नवभारत टाइम्स" के १६ सितम्बर १९७० के अंक में लिखा है—कलकत्ते के रहने वाले सुव्रत नाम के एक बालक की आठ वर्ष की अवस्था में ही एक दुर्घटना में मृत्यु हो गयी थी। इतनी अल्पायु में ही वह बालक चित्र बनाया करता था और कविता किया करता था। खेल-कूद व संगीत में भी वह चतुर था।

(२५) इसी "नवभारत टाइम्स" के २६-६-५६ के अंक में लखनऊ के श्री राजाराम उपाध्याय का वर्णन प्रकाशित हुआ है। वे लखनऊ के काल्विन ताल्लुकेदार कालिज में एक अध्यापक थे। उन्होंने भी बड़ी आश्चर्यजनक प्रतिभा पाई थी। उनको किसी रास्ते या बाजार में चार-पांच मील तक ले जाइये और फिर उनसे पूछ लीजिये कि सडक के दोनों ओर क्या-क्या है? वे बारीकी से प्रत्येक बात ठीक-ठीक बता देते थे।

एक बार परमाणु बम की बारीकियों पर भाषण देकर उन्होंने बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को आश्चर्य में डाल दिया था। इसी प्रकार एक बार एक रूसी प्रतिनिधि लखनऊ आया, तो उसके सामने वे धडल्ले से रूसी भाषा बोलने लगे, जिससे सभी को बहुत आश्चर्य हुआ।

आप विश्व की किसी भी भाषा की किसी भी विषय की कोई भी पुस्तक उन्हे दे दीजिए। कुछ ही मिनटों में वे उस पुस्तक को उलट-पलट कर देख लेते थे। फिर आप उस पुस्तक में लिखी किसी भी बात को उनसे पूछ लें, वे एकदम सही उत्तर देते थे।

वह किसी भी विषय पर किसी भी तरह के प्रश्न का उत्तर तुरन्त दे देते थे।

उन्होंने राजनीति में एम० ए० तक शिक्षा पाई थी और वे बीस-बीस घण्टे तक लिखते-पढ़ते रहते थे।

वे सिगरेट नहीं पीते थे, परन्तु सिगरेट को देखकर वे तुरन्त बतला देते थे कि वह सिगरेट किस ब्राड की है, कहां की बनी हुई है और उसका तम्बाकू किस किस्म का है।

वे शराब नही पीते थे, परन्तु शराब को सूघकर बतला देते थे कि वह शराब कौन से ब्रान्ड की है, किस वस्तु की बनी हुई है और कितनी पुरानी है।

इसी प्रकार वे मांस नही खाते थे, परन्तु मांस को देखकर बतला देते थे कि वह मास किस पशु का है, वह पशु कितनी देर पहले काटा गया था और उसमें क्या-क्या गुण व अवगुण है।

उन्होने विवाह नहीं किया था और न कभी कोई महिला उनके सम्पर्क में ही आई थी। लेकिन वैवाहिक जीवन की प्रत्येक बात को वे अच्छी तरह समझते थे और यौन विषयों पर घन्टों तक भाषण दे सकते थे।

उनकी स्मरण शक्ति भी बहुत तेज थी। वे बीस साल पुरानी बात भी नही भूलते थे। वे चलते-फिरते विश्व कोष की भाति थे और कौन सी घटना, किस वर्ष, किस तारीख को घटी थी वे तुरन्त बता देते थे। लखनऊ के बहुत से वकील उनसे सलाह लेने आते थे।

(२६) "नवभारत टाइम्स" के ही ७-८-५६ के अंक मे लिखा है—
"मुरादाबाद की नगर पालिका मे श्री एस० एन० शर्मा नाम के सज्जन कार्य करते है। उनकी सात वर्षीय कन्या का नाम कल्पना है। वह वैदिक साहित्य के साठ ग्रन्थो में से कही से किसी भी पाठ को सकेत मात्र से अनायास ही सुना देती है। वह संस्कृत के श्लोक बिलकुल शुद्ध सुनाती है। वह बाल्मीकि-रामायण के श्लोक तथा तुलसीकृत रामचरित मानस की चौपाई भी बहुत सुरीले स्वर में सुनाती है। उसे हठयोग की अनेक जटिल क्रियाएँ आती है। उसे सगीत के राग, लय, स्वर आदि का पूरा ज्ञान है। शास्त्रीय संगीत के सूक्ष्मतर भेदो को भी वह गाकर सुनाती है। वह विभिन्न प्रकार के नृत्य भी जानती है। ये सब विद्याए उसे कभी भी सिखाई नही गयी। उसको यह प्रतिभा जन्म से ही मिली है।"

(३०) "नवभारत टाइम्स" के ही पहली जनवरी, १६७० के अंक में लिखा है—

आन्ध्र प्रदेश के पुट्टी पार्थी नामक छोटे से गाँव में सन् १६२६ में एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम सत्यनारायण राजू रक्खा गया। उस बालक को पुराण, वेद, गीता, रामायण, भागवत आदि ग्रन्थ बचपन से ही कण्ठस्थ याद थे। २३ मई, १६४० को उस बालक ने अपने मित्रों को

फल-फूल बांटे, जो हवा में हाथ हिलाने मात्र से ही उसके हाथ में आ जाते थे। एक व्यक्ति ने कुतूहलवश पूछा, "क्या तुम भगवान के रूप हो?" बालक ने उत्तर दिया, "मैं साईं बाबा हूं। मैंने तुम सबके दुःख दूर करने के लिये जन्म लिया है। तुम अपने हृदय को पवित्र करो, उसमें मेरा निवास होगा। प्रत्येक बृहस्पतिवार को साईं बाबा की पूजा किया करो।"

इस घटना के थोड़े दिन बाद ही उस बालक ने कहा—"मैं यह सब माया और भ्रमजाल छोड़कर जा रहा हूं। मेरा कोई घर, परिवार व गांव नही है। सारा संसार मेरा घर है। मैं पूर्व जन्म की तरह अपने भक्तों के उद्धार के लिये ही आया हू।"

घर से चले जाने के बाद सन् १९५० में अपने जन्म-स्थान से थोड़ी दूर उन्होने "प्रशान्ति निलयम" नाम से अपना आश्रम बना लिया और वे साईं बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गए। प्रतिदिन देश व विदेशो से सैकड़ों की सख्या मे स्त्री व पुरुष उनके दर्शन के लिए आते है। किसी को भी इस तथ्य में सन्देह नही है कि वह शिरडी के साईं बाबा का दूसरा जन्म है। क्योंकि उनके सारे कार्य व चमत्कार शिरडी के साईं बाबा की तरह ही है। उनमें रोग दूर करने की अद्भुत क्षमता है। उन्होंने कितनी ही अचूक दवाइयों को चमत्कारी ढग से उत्पन्न कर रोगियों को ठीक किया है। उन्हे दूसरों के मनोभाव आकने, उनकी मनोदशा जाचने और उनके विचार पढ़ने में देर नही लगती। ऐसा प्रतीत होता है मानो दुनिया की हर वस्तु का, हर घटना का, हर स्थिति का और हर व्यक्ति का उन्हे पूर्व ज्ञान है। इनके सम्बन्ध में कई पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है।

(२८) नवभारत टाइम्स के ही २ जून १९७४ के अंक मे ६ वर्षीय बालक विश्वनाथ प्रभाकर आप्टे का परिचय दिया हुआ है। यह बालक डी. ए.वी. स्कूल पहाड़गज नई दिल्ली की दूसरी कक्षा में पढ़ता है। यह छोटा-सा बालक शतरंज का बहुत अच्छा खिलाड़ी है। वह इस खेल में बड़े-बड़े माने हुए खिलाड़ियो को हरा देता है।

(२९) दिल्ली से ही प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र "हिन्दुस्तान" के २-४-१९७० के अंक में लिखा है—"सूरत (गुजरात) में पण्डित श्यामाचरण रहते हैं। वे ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता हैं। उनकी एक तेरह वर्ष की कन्या है, जिसका नाम सरोजबाला है। वह कन्या गीता, महाभारत व रामायण पर बहुत सुन्दर प्रवचन करती है, जिसको हजारों स्त्री व पुरुष बहुत श्रद्धा व शान्ति से सुनते हैं। यह कन्या बहुत प्रतिभाशाली है और उसको प्रवचन करने में कभी कोई दिक्कत नहीं हुई।"

(३०) दिसम्बर १९६४ में जावरा (मध्य प्रदेश) में एक बालक का जन्म हुआ। कहते है कि जब यह बालक ढाई वर्ष का था, तभी से धार्मिक प्रवचन किया करता है।

इस लेखक ने १०-६-७२ को दिल्ली में इस बालक का प्रवचन सुना था। वह लगभग एक घण्टे तक बिना अटके और बिना झिझके बोलता रहा और उसने गीता के कई श्लोक भी सुनाये। यदि यह भी मान लिया जाये कि उसको ये प्रवचन कण्ठस्थ करा रक्खे है तो भी उसका एक घण्टे तक धारा प्रवाह बोलना उसकी विलक्षण प्रतिभा का ही सूचक है।

(३१) दिल्ली से प्रकाशित होने वाली बालको की मासिक पत्रिका "नन्दन" के जून १९७० के अक मे अरविन्द कुमार नाम के एक आठ वर्षीय बालक का वर्णन है। चार वर्ष की आयु से ही वह रामायण की चौपाइयो का बहुत ही मधुर स्वर मे पाठ करता है। उसे तीन हजार दोहे व चौपाइया याद है। उसने राजस्थान के तत्कालीन मुख्य मत्री श्री भैरोसिह शेखावत और जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री शेख अबदुल्ला के सामने रामायण का पाठ किया था। दोनो ही मुख्य मंत्री उस बालक की इस विलक्षण प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए थे।

(३२) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले "साध्य टाइम्स" के २९ फरवरी १९८० मे अक मे यह समाचार प्रकाशित हुआ है, "विश्वविख्यात भारतीय जादूगर स्वर्गीय श्री पी०सी० सरकार के जन्म-दिन पर, २३ फरवरी १९८० को जादू के खेलो की एक प्रतियोगिता आयोजित की गयी, जिसमें देश के ८६ जादूगरो ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में छ वर्षीय बालक के० बाबा को तीसरा पुरस्कार मिला।"

(३३) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र "नवभारत टाइम्स" के १३ सितम्बर १९७९ के अक मे यह समाचार प्रकाशित हुआ है, "एक नौ वर्षीय अफ़गान बालक ने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। उस बालक ने इस अल्पायु मे ही सभी माध्यमिक परीक्षायें उत्तीर्ण कर ली है और मास्को विश्वविद्यालय के प्रोद्योगिकी और गणित के कालेज में अपना नाम दर्ज कराया है। उस बालक ने पाच वर्ष की आयु में ही गणित के प्रति अपनी रुचि का प्रदर्शन किया और मात्र चार घंटों मे ही एक से एक हजार तक की गिनती सीख ली। बाद मे कुछ सप्ताह मे ही वह बीजगणित (Algebra) भी सीख गया।"

(३४) दिल्ली से प्रकाशित होने वाली बालकों की मासिक पत्रिका "नन्दन" के अगस्त १९८० के अक मे यह समाचार प्रकाशित हुआ है :—

लन्दन :—चार साल का रिचार्ड जेम्स एक चमत्कारी बालक है।

इसीलिये उसे बड़ी कठिनाई से विद्यालय में दाखिला मिला है। रिचार्ड ने दो वर्ष की आयु से ही अपने आप पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया था। चार साल का होते-होते वह बड़ी-बड़ी पुस्तके पढ़ने लगा। उसके पिताजी ने उसे विद्यालय में प्रवेश दिलाना चाहा, लेकिन उन्हे हर जगह से यही उत्तर मिला कि इस बालक की आयु कम है। यह बालक अपनी आयु वाले बालकों से बहुत अधिक जानता है। रिचार्ड रात को केवल पाच घटे सोता है।

(३५) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले "साध्य टाइम्स" के ३ अप्रैल १६८० के अंक में बनारस के श्री रामकुमार जी चौबे के ८६ वर्ष की अवस्था में निधन होने का समाचार छपा है। उन्होंने एम०ए० की बाईस डिग्रियां प्राप्त करके विश्व रिकार्ड स्थापित किया था। वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक प्रशिक्षण महा-विद्यालय मे अध्यापक रहे थे। वे काशी विद्यापीठ में भी उर्दू के अध्यापक रहे थे।

(३६) छपरा जकशन (बिहार) के पास भरत-मिलाप चौक में श्री अखौरी मुक्तेश्वर प्रसाद सिह नाम के सज्जन रहते हैं। ३० जौलाई, १६६६ को उनकी पत्नी श्रीमती अखौरी माधुरी सिन्हा ने एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम सतोष रक्खा गया। वह बालक तीन वर्ष की आयु से ही बेंजो बजाया करता है। उसने किसी से भी यह कला नहीं सीखी। वह सरस्वती के चित्र के सन्मुख बैठकर अपने आप ही अभ्यास किया करता है। वह अनेको नगरो में माने हुए कलाकारों और अनेकों प्रसिद्ध व्यक्तियों के सन्मुख अपने कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुका है।

(३७) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक "हिन्दुस्तान" के २२ जनवरी १६८४ के अक मे सहारनपुर (उत्तर प्रदेश—भारत) के एम० जी० एम० स्कूल की प्रथम कक्षा के छात्र छः वर्षीय राहुल शर्मा नामक एक बालक का वर्णन प्रकाशित हुआ है। वह बालक किसी से सीखे बग़ैर ही दो वर्ष की आयु से ही तबला बजाया करता है। कठिन से कठिन स्वर-लहरियो पर भी वह बड़ी कुशलता से संगत करता है। वह अनेकों पुरस्कार प्राप्त कर चुका है।

(३८) इंगलेंड के लार्ड मैकाले का नाम कौन नही जानता। उन्होंने इंगलेंड का इतिहास कई भागो मे लिखा है। कहा जाता है कि उन्होंने यह पूरा इतिहास लिखते समय किसी भी पुस्तक का सहारा नहीं लिया। केवल अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर ही उन्होंने पूर्ण प्रामाणिक इतिहास लिखा।

इसी प्रकार यदि हम खोज करे, तो हमें और भी बहुत से प्रतिभा-शाली बालकों व व्यक्तियों का परिचय मिल जायेगा। पत्र पत्रिकाओं में

ऐसे बालको व व्यक्तियों के वर्णन प्रायः प्रकाशित होते रहते है ।

हमने ऊपर जिन प्रतिभाशाली बालको व व्यक्तियो का वर्णन किया है, बहुत सम्भव है कि उनके वर्णन मे कुछ अतिशयोक्ति हो, परन्तु फिर भी वे साधारण बालको व व्यक्तियो से बहुत अधिक प्रतिभाशाली तो है ही। अब प्रश्न यह है कि उनमे यह प्रतिभा कहा से आयी ? तथा सभी बालक व व्यक्ति एक समान ही प्रतिभाशाली क्यो नही होते ?

कुछ व्यक्ति यह कहते है कि इन बालको को यह प्रतिभा अपने माता-पिता से मिली है, परन्तु यह ठीक नही है। यदि इन बालको और व्यक्तियो को यह प्रतिभा अपने माता-पिता से मिली होती, तो वे भी इनसे अधिक नही तो इनके समान प्रतिभा-सम्पन्न तो होते ही, परन्तु यह तथ्यो के विपरीत है। इनके माता-पिता साधारण व्यक्ति है और उनको कोई जानता भी नही है। फिर, यदि इनका यह प्रतिभा अपने माता-पिता से मिली होती तो वह प्रतिभा इनके अन्य भाई-बहिनो को भी मिलनी चाहिये थी और वे भी इनके समान ही प्रतिभाशाली होने चाहिये थे, परन्तु ऐसा भी नही है। एक बात और भी है, यदि इस कथन मे कुछ सच्चाई होती कि प्रतिभा माता-पिता से ही मिलती है, तो ससार मे यह परम्परा कभी टटती ही नही। प्रतिभा-सम्पन्न माता-पिता की सन्तान प्रतिभासम्पन्न होती और फिर परम्परा से उनकी सन्तान भी प्रतिभासम्पन्न होती, परन्तु सदैव ही ऐसा नही होता। ससार मे यदा-कदा ही ऐसा देखा जाता है कि माता-पिता और उनकी सन्तान समान रूप से प्रतिभासम्पन्न हो। यहा पर अनपढ़ माता-पिता की सन्तान बहुत विद्वान भी देखी जाती है और विद्वानो की सन्तान मूर्ख भी देखी जाती है। कला मे कोई भी रुचि न लेने वाले माता-पिता की सन्तान उच्चकोटि की कलाकार भी देखी जाती है और उच्चकोटि के कलाकारों की सन्तान कला से शून्य भी देखी जाती है। वचन के पक्के और वीर माता-पिता की सन्तान कायर व विश्वासघाती भी देखी जाती है और कायर तथा विश्वासघाती व्यक्तियो की सन्तान वीर व विश्वासपात्र भी देखी जाती है। इतिहास इस प्रकार के व्यक्तियो के उदाहरणो से भरा पड़ा है। बहुत ही सयमपूर्वक रहने वाले व्यक्तियो की सन्तान चरित्रहीन भी देखी जाती है और चरित्रहीन व्यक्तियो की सन्तान सच्चरित्र भी देखी जाती है। अधिक क्या कहे, एक ही माता-पिता की विभिन्न सन्तानें विभिन्न योग्यता, विभिन्न विचारो, विभिन्न गुणो और विभिन्न रुचियो वाली होती है।

वास्तविकता तो यह है कि सन्तान को माता-पिता से न तो प्रतिभा मिलती है और न मूर्खता। सन्तान का माता-पिता से बिल्कुल स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। यद्यपि माता-पिता के सिखलाने तथा परिवार के वातावरण का कुछ प्रभाव बालको पर अवश्य पड़ता है, परन्तु यह प्रभाव उनका

व्यक्तित्व निर्माण करने में निर्णायक नही होता।

तथ्य यही है कि किसी भी प्राणी को जो भी प्रतिभा या मूर्खता प्राप्त होती है वह उसके अपने पिछले जन्मों के अच्छे व बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है।

वर्तमान में (सन १९८०-८१ में) पश्चिमी देशो के वैज्ञानिक एक प्रयोग कर रहे हैं। उनकी नोबल-पुरस्कार से पुरस्कृत उच्चकोटि के कुछ विद्वानो के शुक्राणुओ द्वारा कुछ उच्च-प्रतिभासम्पन्न महिलाओ के कृत्रिम गर्भाधान कराने की योजना है। वे इस सम्भावना पर प्रयोग कर रहे हैं कि इस गर्भाधान के फलस्वरूप इन महिलाओ के जो बालक होगे, वे अति-प्रतिभासम्पन्न होने चाहिये। यह तो स्वाभाविक है कि इस प्रयोग के निष्कर्ष निकलने में कई वर्ष लग जायेगे। परन्तु इस लेखक का तो यही दृढ विश्वास है कि इस प्रयोग से जो बालक उत्पन्न होगे तथा उनको जो प्रतिभा प्राप्त होगी (यदि वे प्रतिभा सम्पन्न हुए तो) वह उनके अपने पिछले जन्मो के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त होगी, न कि अपने माता-पिता की योग्यता के फलस्वरूप।

इस प्रयोग के फलस्वरूप २१ अप्रैल १९८२ को एक बालिका का जन्म हो चुका है।

कुछ व्यक्ति यह कहते है कि यदि सभी व्यक्तियों को समान अवसर मिले, तो प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से उन्नति कर सकता है। परन्तु यह भी ठीक नही है। धनवानों की सन्तानो को कौन-सा अवसर तथा कौनसा साधन सुलभ नही होता ? तो क्या सभी धनवानो की सभी सन्ताने उन्नति कर लेती है ? क्या आज तक निर्धन व्यक्तियों और उनकी सन्तानो ने कोई उन्नति नही की? यदि हम खोजने चले, तो हमें एक-दो, दस-बीस ही नहीं, सैंकड़ो ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियो का परिचय मिल जायेगा, जिनके माता-पिता निर्धन व साधनहीन थे।

ससार में हम प्रतिदिन निर्धन व्यक्तियों को धनी बनते हुए भी देखते है और धनी व्यक्तियो को निर्धन होते हुए भी देखते हैं। इन तथ्यों व विषमताओ का 'समान अवसर देने' का नारा लगाने वाले इन व्यक्तियों के पास क्या उत्तर है ? तथ्य तो यह है कि ऐसी भ्रमपूर्ण बाते ऐसे ही व्यक्ति करते है जो स्वयं तो कुछ कार्य व परिश्रम नही करते, परन्तु अपनी नेता-गिरी बनाये रखने के लिये नित नये नारो का आविष्कार करते रहते हैं और वर्ग-संघर्ष कराकर अपना उल्लू सीधा करते है। ऐसे व्यक्तियों को कदाचित् ही किसी ने अपनी आजीविका उपार्जन करने के लिये कभी कोई कार्य करते देखा हो, परन्तु फिर भी वे बहुत ठाठ-बाट से अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

जो व्यक्ति यह कहते है कि अवसर मिलने पर प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से उन्नति कर सकता है, उनसे हम पूछते है कि क्या अवसर मिलने पर प्रत्येक व्यक्ति कुशल गायक, वादक, नृत्यकार, कलाकार, चित्रकार, अभिनेता, कहानी-लेखक, कवि, वैज्ञानिक, खिलाडी, पहलवान या अन्य किसी भी विषय का विशेषज्ञ बन सकता है ? आज लगभग सभी विषयों व कलाओं के विद्यालय खुले हुए है, जिनमें लाखो विद्यार्थी समान रूप से इन कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते है। परन्तु क्या वे सब एक समान ही कार्यकुशल बन जाते है ? उनमें से कितने ऐसे है जो किसी विषय व कला में विशेषज्ञ बनते है और जीवन में सफलता प्राप्त करते है ? ससार में जो इतने उच्चकोटि के वैज्ञानिक, आविष्कारक, लेखक व कलाकार आदि हुए है, क्या उन सबको आरम्भ ही से सब प्रकार की सुविधाए और अवसर प्राप्त थे, जिनके कारण उन्होने इतनी उन्नति की है? इसके विपरीत, यदि हम खोज करें तो पता चलेगा कि इनमे से अधिकतर व्यक्ति साधनहीन ही थे। उन्होंने कुछ तो अपनी जन्मजात प्रतिभा और कुछ अपनी लगन तथा सतत परिश्रम के कारण ही इतनी उन्नति की। तथ्य तो यह है कि अधिकाश मे प्रत्येक व्यक्ति मे कुछ जन्मजात रुझान होता है और उसके जीवन पर इस जन्मजात रुझान का ही विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि इस जीवन मे उनको अपनी रुझान के अनुकूल ही कुछ अवसर व साधन मिल जाते है तो वे उस क्षेत्र में विशेष उन्नति कर लेते है।

परन्तु यह जन्मजात रुझान क्या है ? इसका तर्क-सम्मत उत्तर हमें तभी मिल सकता हे, जब हम आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म मे विश्वास करे। पिछले जन्मो मे जैसी हमारी योग्यता, रुचि तथा जैसे हमारे कर्म होते है, उन्ही के अनुसार इस जन्म मे हमारी जन्मजात प्रतिभा व रुझान होता है, क्योकि पिछले जन्मो के सस्कार इस जन्म में भी हमको प्रभावित करते है। जितने दृढ ये सस्कार होते है, उनका प्रभाव भी उतना ही अधिक होता है और उतना ही अधिक ये हमारे व्यक्तित्व को बनाने में समर्थ होते है।

क्या हमारे व्यक्तित्व और भविष्य का निर्माण गुण-सूत्रो के द्वारा होता है ?

इस विषय मे एक और बात भी उल्लेखनीय है। आधुनिक जीव-विज्ञान शास्त्रियो की यह धारणा है कि किसी भी व्यक्ति में जो गुण-दोष, रोग-आरोग्य, मूर्खता तथा प्रतिभा आदि पाई जाती है तथा जैसी उस व्यक्ति की आकृति व प्रकृति होती है वह सब उसके पूर्वजो की ही देन होती है। यह आवश्यक नही कि ये सब गुण व दोष उस व्यक्ति को उसके माता-पिता से ही मिले, ये गुण व दोष वह व्यक्ति अपनी दस, बीस अथवा पचास

पीढ़ी पहले वाले किसी पूर्वज से भी प्राप्त कर सकता है और यह स्थानान्तरण गुण-सूत्रों के द्वारा होता है। इस धारणा पर वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं। अभी इस धारणा को मान्यता प्राप्त नही हुई है।

इसका अर्थ यह है कि दस, बीस अथवा पचास पीढी पहले हमारे किसी पूर्वज को कोई रोग था, तो वह रोग बीच की पीढियो को छोड़कर हमको भी हो सकता है। इसी प्रकार यदि हमारा कोई पूर्वज मूर्ख था अथवा प्रतिभा-सम्पन्न था तो वह मूर्खता तथा प्रतिभा बीच की पीढ़ियों को छोड कर हमको भी मिल सकती है। यह बात कुछ समझ में आने वाली नही है। पहली बात तो यह है कि अब से दस, बीस या पचास पीढ़ी पहले वाले पूर्वजो का ज्ञान ही किस को है कि वे पूर्वज कैसे थे, उनमे क्या-क्या गुण व दोष थे तथा उनको कौन-कौन से रोग थे? दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार हम मूर्ख, प्रतिभाशाली अथवा साधारण व्यक्ति है, उसी प्रकार हमारे दस, बीस, पचास पीढियो के पूर्वजों मे भी अवश्य ही कोई प्रतिभाशाली होगा, कोई मूर्ख होगा और कोई साधारण व्यक्ति होगा। ऐसी स्थिति में हमारी प्रतिभा अथवा मूर्खता के बीज हमारे पूर्वजों में खोजना कहा तक तर्कसगत है? तीसरी बात यह है कि हमने क्या कसूर किया था कि वह रोग तथा मूर्खता बीच की पीढ़ियों को छोड़कर हमको ही मिली। यह तो वही कथा चरितार्थ हुई कि एक भेड़िया एक बकरी के बच्चे को इसलिए खा गया कि उस बच्चे की दादी ने उस भेड़िये को गाली दी थी। यह कोई नियम तो नही हुआ, एक प्रकार की अटकलबाजी हो गई। हम पहले भी कह चुके है कि यह विश्व केवल संयोगवश (By Accidents) ही नही चल रहा है। इस विश्व का सचालन कारण व कार्य (Cause and effect) के नियम के आधार पर हो रहा है। प्रत्येक कार्य का कोई-न-कोई समुचित और तर्कसगत कारण अवश्य होता है। तथ्य तो यह है कि हमको जो रोग लगा है, वह हमारे अपने ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही लगा है। फिर, चाहे वह रोग हमने स्वयं ही ग्रहण किया हो अथवा वह हमारे किसी पूर्वज से हमारे तक आया हो। हम जैसी परिस्थितियो में, जैसे घर में और जैसे माता-पिता के यहां जन्म लेते है, वह सब हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही होता है। यदि हमने अच्छे कर्म किये है, तो उन अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हम अच्छे घर में, अच्छे माता-पिता के यहाँ और अनुकूल परिस्थितियों में जन्म लेंगे। यदि हमने बुरे कर्म किये है, तो उन बुरे कर्मों के फलस्वरूप हम बुरे घर में, बुरे माता-पिता के यहाँ और प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेगे।

यदि हम अपने पूर्वाग्रहों को छोड़कर एक बार भी इस सत्य को हृदयं-

गम कर ले, तो हमें इस विश्व की वास्तविकता का बहुत सरलता से बोध हो जायेगा।

इस प्रकार हमने पुनर्जन्म के सम्बन्ध मे कुछ प्रमाण और कुछ तथ्य प्रस्तुत किये है। यदि हम एक बार पुनर्जन्म को स्वीकार कर लेते हैं, तो हमें आत्मा और इस विश्व को भी अनादि स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि इसके अतिरिक्त हमारे सम्मुख और कोई विकल्प ही नही रह जाता। एक बात और, यदि पुनर्जन्म एक सच्चाई है तो ससार के प्रत्येक प्राणी का पुनर्जन्म होता है, चाहे कोई इसे स्वीकार करे या न करे।

●

किसी फल की गुठली की महिमा देखिये—उसे मिट्टी मे मिलाने का प्रयत्न कीजिये, वह उसी मे जडे जमा लेती है। वह मिट्टी मे से सिर उठा कर कहती है, "मुझे मिटाने के लिए तुम्हारे किये गये सारे प्रयत्न निरर्थक है। मैं तो फिर भी वही वृक्ष उगाऊगी जिस पर फूल और फल लगेगे।"

●

कौआ कही पर कोई खाद्य पदार्थ देखता है तो काव-काव करके अनेक कौओ को बुला लेता है (जिससे सभी उस खाद्य पदार्थ का सेवन कर सके)। इसके विपरीत कोई भिखारी कही कोई खाद्य पदार्थ देख लेता है तो वह किसी को नही बुलाता (जिससे वह अकेला ही उस खाद्य पदार्थ का सेवन कर सके)। कौए और भिखारी मे कौन श्रेष्ठ है? नि.सन्देह कौआ ही श्रेष्ठ है।

●

जीवन की सभी महत्त्वाकाक्षाए यदि पूरी हो जाये तो यह उतना ही बुरा है जितना यह कि जीवन की एक भी महत्त्वाकाक्षा पूरी न हो। हमेशा कोई न कोई महत्त्वाकाक्षा अधूरी तो रहनी ही चाहिये ताकि उसे पूरा करने के लिए मनुष्य जिन्दा रहना चाहे। जिसे जीते जी सब मिल जाता है, वह जीने का उद्देश्य खो बैठता है।

●

जो व्यक्ति कम खाते है और ग़म खाते है, उनको आन्तरिक तथा बाह्य पीडा नहीं होती। क्योंकि कम खाने से शरीर स्वस्थ रहता है और ग़म खाने के कारण उनका कोई शत्रु नही होता।

अद्भुत व आश्चर्यजनक जगत

कुछ व्यक्तियों की यह मान्यता है कि "जो भी हम अपनी आंखों से देखते हैं, अपने कानों से सुनते है तथा अपनी अन्य इन्द्रियो से अनुभव करते है, केवल वही सत्य व वास्तविक है, इसके विपरीत अभौतिक व अतीन्द्रिय शक्तियो तथा आत्मा के अस्तित्व व पुनर्जन्म आदि की बातें कपोल कल्पना के अतिरिक्त कुछ नही हैं। ऐसी बातो पर विश्वास करना अन्ध विश्वास ही माना जायेगा।" परन्तु तथ्य तो यह है कि ऐसा समझना इन व्यक्तियों का भ्रम ही है। वास्तविकता तो यह है कि हमारी इन्द्रियों की शक्ति बहुत ही सीमित है। अपनी इन्द्रियों के माध्यम से हम जितना ग्रहण कर पाते हैं वह तो ज्ञान के विशाल भण्डार में समुद्र की तुलना में सुई की नोक पर लगे जल के बराबर भी नही है।

आज तो वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति की अनेकों घटनाए हमारी कल्पना से भी अधिक विलक्षण और आश्चर्यजनक है। ये वैज्ञानिक यह भी स्वीकार करते हैं कि आधुनिकतम विज्ञान भी प्रकृति के अनेकों रहस्यों का स्पष्टीकरण करने में अभी तक समर्थ नही है।

हम मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति को ही लेते हैं। मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति तो बहुत ही सीमित होती है। कुछ पशु-पक्षियों की इन्द्रियां तो मनुष्य की इन्द्रियों से बहुत ही अधिक संवेदनशील और तीक्ष्ण होती है। तथ्य तो यह है कि जैसे-जैसे मनुष्य ने वैज्ञानिक क्षेत्र में उन्नति की है वह प्रकृति से दूर होता गया है और उसकी इन्द्रियो की क्षमता कम होती गयी जबकि पशु-पक्षी अब भी प्रकृति के बहुत अधिक निकट है। इस सम्बन्ध में हम कुछ उदाहरण देते है—

आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले जब लिखने की परम्परा नहीं थी उस समय मनुष्य की स्मरण-शक्ति बहुत तेज होती थी। वह प्रत्येक बात को याद रखता था, क्योंकि उसके पास स्मरणशक्ति के अतिरिक्त याद रखने का और कोई साधन नही था। अब से लगभग दो हजार वर्ष पहले तक स्मरण रखने की ही परम्परा थी। परन्तु जब से लिखने का रिवाज चला तब से मनुष्य ने अपनी स्मरण-शक्ति से काम लेना ही छोड़ दिया। उसे जो भी बात याद रखनी होती थी, वह पहले पत्थरों पर, फिर ताड़पत्रों पर, फिर कपड़ों पर और अन्त में कागज पर लिखकर रखने लगा।

ऐसा करने से उनकी स्मरण-शक्ति क्षीण होती गयी। हम आज भी देखते हैं कि जो व्यक्ति अनपढ होते है उनकी स्मरण-शक्ति पढे-लिखे व्यक्तियों से तेज होती है। इसी प्रकार जब तक छपाई की मशीने नही बनी थी मनुष्य बहुत सुन्दर अक्षर लिखते थे। परन्तु जब से पुस्तके छपने लगी, सुन्दर लेखन की कला ही समाप्त-सी हो गयी।

पशु-पक्षी प्रकृति के बहुत अधिक निकट है इसलिये इनकी इन्द्रियां मनुष्य की इन्द्रियो से अधिक तीक्ष्ण और सवेदनशील होती है। इस सम्बन्ध में हम कुछ उदाहरण देते है।

(१) जो पशु-पक्षी जगलो में रहते है वे शायद ही कभी बीमार पडते हो।

(२) रेगिस्तान में जब आधी आने वाली होती है तो ऊट चलते-चलते रुक जाते है, उस समय वे बिल्कुल भी आगे नही बढते। उनकी ऐसी दशा को देखकर काफले वाले मुसाफिर आधी आने का अनुमान लगा लेते है और अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लेते है।

(३) जब गरमी के मौसम में गरमी कम पडनी होती है तो पक्षी वृक्ष के उस भाग मे घोंसले बनाते है, जिधर धूप अधिक पडती है।

(४) बरसात आने से पहले ही चीटिया अपने अण्डो को सुरक्षित स्थान पर ले जाती है। चीटियो को इस प्रकार अपने अण्डो को ले जाते हुए देखकर अनेको व्यक्ति यह अनुमान लगा लेते है कि निकट भविष्य मे ही वर्षा होने वाली है।

(५) आंधी आने से पहले ही भेडे किसी टीले की ओट मे हो जाती है। पक्षी पृथ्वी के अधिक निकट उडने लगते है। बत्तखे व जल-मुर्गिया उडना ही बन्द कर देती है।

(६) कुछ ऐसी घटनाए भी प्रकाश मे आयी है कि पशुओ को किसी स्थान पर बमबारी होने से पहले ही वहा होने वाली बरबादी का अनुमान हो गया और वे उस स्थान से दूर चले गये तथा अन्य प्राणियो को भी इस तथ्य का आभास कराने का प्रयत्न करने लगे। किसी जंगल में आकाशीय बिजली द्वारा आग लगने से पहले ही बदर वह स्थान छोड़कर जाने लगते हैं।

(७) बहुत से ऐसे पक्षी होते हैं जो अपनी मातृभूमि में बर्फ पडने से पहले ही हजारों मील उडकर अन्यान्य सुरक्षित स्थानों में चले जाते हैं और मौसम के अनुकूल होने तक फिर अपने देश में वापिस पहुंच जाते हैं।

(८) जब किसी स्थान पर भूचाल आने वाला होता है तो कुछ पशु-

पक्षियों को इसका आभास पहले से ही हो जाता है, वे असामान्य व्यवहार करने लगते हैं और उस स्थान से दूर भाग जाने का प्रयत्न करने लगते है।

(९) सरकस के पशुओं के प्रसिद्ध रूसी प्रशिक्षक श्री ब्लादिमिर दुरोव अपने पशुओं से मूक वार्तालाप करते थे। वह अपने पशुओं का सिर अपने हाथों के बीच थाम लेते थे फिर जो कार्य भी वे अपने पशुओ से लेना चाहते थे उस क्रिया का मानचित्र अपने दिमाग मे बनाते जाते थे। पूरा मानचित्र बन जाने पर वह पशुओं को छोड देते थे और वह पशु बिल्कुल उसी प्रकार वह कार्य सम्पन्न करता था। वैज्ञानिको ने इस तथ्य की कई बार परीक्षा ली और उसे बिल्कुल ठीक पाया।

(१०) आस्ट्रेलिया के विश्व-विख्यात पक्षियों के वैज्ञानिक डा० सुर्वेल ग्रेगरी ने अनेक वर्षों के अध्ययन के पश्चात बतलाया है कि कुछ पक्षी भी महाजनो के समान लेन-देन करते हैं। वे अन्य पक्षियों को अन्न के दाने, कीडे आदि कर्ज देते हैं और फिर किश्तो मे या एक मुश्त ही अपना कर्ज तथा उसके ऊपर ब्याज भी वसूल करते है। प्रसिद्ध पक्षी-विशेषज्ञ डा० सलीम अली ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है।

(११) एक नर-तितली अपनी मादा-तितली की गंध एक मील दूर से ही पा जाती है।

(१२) कुत्ते की सूंघने की शक्ति इतनी तीव्र होती है कि वह किसी मार्ग से बारह घन्टे पहले गुजरे हुए व्यक्ति को भी सूंघ-सूघ कर ढूढ निकालता है। कुत्तों की इसी शक्ति का उपयोग पुलिस भी करती रहती है।

(१३) चमगादड जब घने अन्धकार में उडता है तो अपने मार्ग में आने वाली तनिक-सी बाधा को भी दूर से ही जान जाता है और उससे बच-कर निकल जाता है। वैज्ञानिकों ने एक कमरे में बहुत बारीक तार का टेढ़ा मेढ़ा जाल बनाकर उस कमरे मे चमगादडो को उडाया। चमगादड तारों को बिना छुए और एक दूसरे से बिना टकराये उस कमरे में उडते रहे। कहा जाता है कि चमगादड़ों की इसी शक्ति के आधार पर वैज्ञानिकों ने "राडार" का आविष्कार किया है।

जो व्यक्ति केवल अपनी इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये हुए ज्ञान को ही सत्य मानते हैं, क्या वे ऊपर दिये हुए तथ्यों को झुठला सकेंगे ?

मनुष्यों की इन्द्रियों की शक्ति कितनी सीमित होती है इस सम्बन्ध में हम कुछ और उदाहरण देते हैं—

(१) नंगी आंखों से एक व्यक्ति लगभग तीन हजार तारे देख सकता है। परन्तु यदि हम दूरवीक्षण यन्त्र (Telescope) से देखें तो हमें आकाश

में लाखों तारे दृष्टिगोचर होंगे। और अब तो अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि इस विराट विश्व में खरबो तारे हैं जो हमसे लाखों प्रकाश वर्ष दूर तक फैले हुए है।

(प्रकाश एक सैकण्ड मे लगभग १,८६,००० मील तक जा सकता है। इस प्रकार प्रकाश एक घन्टे मे १,८६,०००×६०×६० मील दूर जा सकता है। एक वर्ष मे प्रकाश जितनी दूर जाता है, उसे एक प्रकाश वर्ष कहते है।)

(२) वैज्ञानिक कहते है कि एक साधारण व्यक्ति की देखने व सुनने की शक्ति बहुत ही सीमित होती है, हमारे कान १६ से ३२००० कम्पन्न युक्त (Frequency) तरगे ही ग्रहण कर सकते है। इससे अधिक या कम कम्पन्न की तरगे हम नही सुन सकते। हमारी पृथ्वी के चारो ओर हजारों रेडियो-स्टेशनो से प्रसारित होने वाली तरंगें फैली रहती है। परन्तु हम उनको ग्रहण नही कर पाते। हमारे रेडियो अपने विशेष यन्त्रो के द्वारा उन तरंगो को ग्रहण कर ऐसी तरगों मे बदल देते हैं जिनको हम ग्रहण कर सकते है।

इसी प्रकार हमारी आखों की देखने की शक्ति भी बहुत सीमित होती है। नगी आखों से हम जितना देख पाते है, दूरवीक्षण व सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्रो की सहायता से हम उससे हजारों गुणा देख लेते है। हमारे चारों ओर टैलीविजन स्टेशनो द्वारा प्रसारित तरगे फैली हुई है परन्तु हम उन्हें देख नही पाते। हमारे टैलीविजन के यन्त्र उन तरंगो को ग्रहण करके उन्हे हमारे देखने योग्य चित्रो में बदल देते है, तभी हम टेलीविजन पर कार्यक्रम देख पाते है।

एक्स-किरणे (X-Rays) हमारी त्वचा के भीतर देख लेती है, परन्तु हमारी आखो में यह शक्ति नही है।

इण्फ्रारेड किरणों (Infrared Rays) को हमारी आंखे देख नही पाती परन्तु हमारी त्वचा उनकी गर्मी को अनुभव करती है।

यह सब कहने का हमारा तात्पर्य यही है कि यह विश्व और इसके क्रिया कलाप केवल इतने ही नही है, जितने हम अपनी इन्द्रियों से ग्रहण कर पाते है तथा जितना आधुनिक विज्ञान ने हमको बतला दिया है। इसके विपरीत यह विश्व बहुत ही अधिक विशाल और विलक्षण है और इसके अनेकों क्रिया कलाप ऐसे है जिनका रहस्य वैज्ञानिक भी अभी तक समझ नही पाये हैं।

हम यहा पर इन्द्रियातीत ज्ञान व शक्ति के कुछ उदाहरण देते हैं :—

कई योगी योग-साधना के द्वारा अपने हृदय की शुद्धि व मन की एकाग्रता बढा कर अतीन्द्रिय-शक्तियां प्राप्त कर लेते है और अपनी इच्छानुसार इन शक्तियों का उपयोग करते है। जिस प्रकार हम टार्च का प्रकाश जहां चाहें वहां फेंक सकते हैं, उसी प्रकार योगी भी अपनी इस अतीन्द्रिय शक्ति की टार्च की किरणे अपने इच्छित स्थल एवं काल पर फेंककर हजारों मील दूर की तथा भूत व भविष्य की घटनाओं को बहुत सरलता से जान लेते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी सामान्य व्यक्ति को भी भविष्य में घटने वाली किसी घटना का पूर्वाभास हो जाता है।

(१) ६ अगस्त १९४५ के दिन प्रातः नीद से जागते ही एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा "तीन महीनों में बेयोन(BAYONNE) में एक बडे धमाके के साथ दो-तीन लाख गैलन पैट्रोल जल उठेगा और अनेकों व्यक्तियों के जीवन को भी खतरा हो जायेगा। परन्तु यदि समुचित सावधानी रक्खी जाये, तो यह दुर्घटना टल सकती है।" इससे पहले उस व्यक्ति ने कभी बेयोन का नाम भी नही सुना था। अपने पुत्र से उसे ज्ञात हुआ कि बेयोन नगर न्यू जर्सी (अमरीका) में है और वहां स्टैन्डर्ड आयल कम्पनी का तेल-शोधक कारखाना है। इस कारखाने के प्रबन्धकों को भी इस पूर्वाभास की सूचना दी गयी। मालूम नही उन्होंने सावधानी बरती या नही, परन्तु ६ नवम्बर को यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

(२) ऐसी भी अनेकों घटनाएं प्रकाश में आई हैं जब किन्हीं व्यक्तियो ने किसी अज्ञात भय के कारण किसी विशेष रेल तथा वायुयान से यात्रा करने से इन्कार कर दिया और अपनी रिजर्व सीटें वैसे ही छोड दी। आश्चर्य की बात तो यह है कि वे रेलें व वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हो गये।

(३) पूना में श्री एम० वी० मीटकर नाम के एक सज्जन थे जो जीवन बीमा निगम में एक अधिकारी थे। वे अपनी मित्र-मडली में बापू साहब मीटकर के नाम से प्रसिद्ध थे। वे सैंकड़ों मील दूर घट रही घटनाओ का ब्योरेवार वर्णन कर देते थे। "ऐसोसियेटेड प्रेस आफ अमरीका" के श्री एस० जी० सतुरामन और "नेशनल हेरल्ड" के श्री रामराव जैसे अनेक गणमान्य सज्जनों ने उनकी इस शक्ति की परीक्षा ली थी और उनका बतलाया हुआ वर्णन सदैव ठीक निकला।

इनके सम्बन्ध में हिन्दी भाषा में "पूना के दत्तस्वरूप अतीन्द्रिय योगीराज श्री बापू साहब मीटकर का चरित्र" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसके मिलने का पता यह है :—कुमारी सरोज म० जोशी, मधुसुदन, ३ प्लेग्राउंड रोड, विलेपार्ले (पूर्व) बम्बई-५७।

(४) लन्दन में एक भारतीय की श्री राफ़ेल हर्स्ट नामक एक अंग्रेज

पत्रकार से मित्रता हो गयी। उस भारतीय ने उस अंग्रेज पत्रकार को बतलाया "एक दिन आप भारत जाओगे और सच्चे योगियो की खोज में सारा देश घूमोगे। अन्तत आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी।" अंग्रेज पत्रकार के पूछने पर उस भारतीय सज्जन ने बतलाया, "मुझे इस बात की अन्त.स्फुरणा हुई थी। यह अन्त स्फुरणा की शक्ति कैसे प्राप्त की जाये यह मुझे मेरे गुरु ने सिखलाया है। अब मैं अपनी अन्त स्फुरणा पर पूरा भरोसा रखकर कार्य करता हू।" समय बीतने पर यह बात सच निकली। उन श्री राफ़ेल हर्स्ट ने अपनी भारत-यात्रा का रोचक वर्णन डा० पाल ब्रन्टन (Dr Paul Brunton) के उपमान से "A Search in Secret India" नामक पुस्तक में किया है।

(५) अमरीका के उत्तरी न्यूजर्सी नगर मे एक प्रौढ महिला रहती है जिनका नाम डोरोथी एलिसन है। उनको बचपन से ही ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वे खोये हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में बतला देती है कि वह व्यक्ति इस समय कहा होगा? बतलाने से पहले उनको थोडी देर के लिए एकाग्रचित्त होना पडता है, फिर उनको ऐसा आभास होने लगता है जैसे वे उस स्थान की धुधली सी झलक देख रही है। उन्होने अनेको बार खोये हुए व्यक्तियो का अता-पता बतलाकर पुलिस की सहायता भी की है। उनके बतालाये हुए पते शत-प्रतिशत तो नही परन्तु अधिकाश मे ठीक ही निकलते है। नवम्बर १९७५ मे एक व्यक्ति की अठारह वर्षीय पुत्री गायब हो गयी थी। वह व्यक्ति सहायता के लिये उनके पास आया। उन्होने थोड़ी देर एकाग्रचित्त होने के बाद कहा, "आपकी कन्या सुरक्षित है। वह एक गदे मकान में है। उस मकान का दरवाजा लाल रग का है। उस मकान का नम्बर १०६, १८६ या १६८ है। जिस व्यक्ति के साथ लडकी गयी है उसके नाम में दो आर (R) है उस व्यक्ति का नाम हैरी भी हो सकता है। लडकी का पता २१ जनवरी १९७६ से पहले ही चल जायेगा। परन्तु आप उससे २१ जनवरी १९७६ को ही मिल सकोगे। लडकी इस समय गर्भवती है। समय आने पर ये सब बाते ठीक निकली। ऐसी सहायता के बदले मे वे महिला किसी से कुछ भी स्वीकार नही करती।

(६) अमरीका में श्री टैड नामक एक अद्भुत व्यक्ति थे। सन् १९५५ तक वे एक साधारण व्यक्ति के समान ही एक होटल में कार्य करते थे। एक दिन उनको इस प्रकार की अनुभूति हुई कि जब वे अकेले में बैठ कर किसी वस्तु के सम्बन्ध में सोचते है, तब उस वस्तु का हू-ब-हू मानचित्र उनकी आंखो के सामने आ जाता है। कई बार उनको ऐसी अनुभूति हुई कि वे दरवाजे व खिड़कियों से होते हुए किसी दूर के प्रदेश में जाते हैं और

फिर अपने द्वारा सोचे गये किसी विशेष स्थान को देखकर वे कुछ ही क्षणों में वापिस आ जाते हैं। इस प्रकार वे अपने होटल में बैठे बैठे ही दूर-दूर के प्रदेशों की यात्रा का आनन्द ले लेते हैं। वैज्ञानिकों ने उनकी इस अद्भुत शक्ति पर अनेकों प्रयोग किये और उनकी इस क्षमता को सदैव ही ठीक पाया। उनको सम्मोहन विद्या सीखने का शौक था और एक बार वे इस विद्या का अभ्यास करने के लिये एक सप्ताह तक एक कमरे में बन्द रहे। परन्तु उनके मित्रों ने उस सप्ताह के दौरान भी उन्हें बाहर घूमते हुए देखा। कई बार वैज्ञानिकों ने उनको कमरे में बन्द करके सम्मोहित किया और सम्मोहन की अवस्था में उनसे किसी विशेष स्थान का वर्णन करने के लिये कहा। वे कुछ समय पश्चात ही उस स्थान का बिल्कुल ठीक-ठीक विस्तारपूर्वक वर्णन कर देते थे। इसके साथ-साथ उनके मस्तिष्क के चारो ओर पोलर्ड के शक्तिशाली कैमरे रखकर फ़ोटो खीचे जाते तो फोटो में उस विशेष स्थान से बहुत कुछ मिलती जुलती आकृति आ जाती, जिस स्थान का वर्णन करने के लिये उनसे कहा जाता था।

(७) पुणे (भारत) के डा० पी० वी० वर्तक का दावा है कि उन्होने २७ अगस्त १९७७ को दिन के एक बजे से सवा बजे तक अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा बृहस्पति ग्रह की यात्रा की थी। उनका यह भी कहना है कि १०-८-७५ और १८-८-७६ को उन्होंने इसी प्रकार अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा मंगल ग्रह की यात्रा की थी। अपनी बृहस्पति-ग्रह की यात्रा का वर्णन उन्होने समाचार पत्रों में भी प्रकाशित कराया था जिसमें उन्होने उस ग्रह पर जो जो देखा था उसका वर्णन किया था।

उनकी बृहस्पति की यात्रा के लगभग सवा साल बाद अमरीकी अन्तरीक्षयान "वाइजर-२" बृहस्पति की ओर भेजा गया था। वाइजर-२ बृहस्पति ग्रह से लाखों किलोमीटर दूर से गुजरा था। उसकी पहली रिपोर्ट २१ दिसम्बर १९७८ को मिली थी। श्री पी० वी० वर्तक का दावा है कि बृहस्पति ग्रह को जैसा उसने पाया था, वाइजर-२ से प्राप्त सूचनाओं ने उन्ही तथ्यों की पुष्टि की थी।

हम सूक्ष्म शरीर के द्वारा दूर के स्थानों पर हो आने की एक और घटना का विवरण देते हैं। ३ अक्तूबर १८६३ को श्री विलमार्ट नाम के एक अमरीकी सज्जन पानी के जहाज से लिवरपूल से न्यूयार्क के लिए रवाना हुए। दुर्भाग्य से अगले दिन से ही भयंकर समुद्री तूफ़ान आरम्भ हो गया जो आठवें दिन रात्रि के समय कुछ शान्त हुआ। उस रात्रि को विलमार्ट अपने केबिन में आराम से सो सके। उस केबिन में एक और यात्री भी था। सुबह के समय श्री विलमार्ट ने स्वप्न में अपनी पत्नी को देखा (जो उस

समय अमरीका में थी) । उनकी पत्नी "नाइट ड्रेस" पहने हुए झिझकती हुई केबिन में आयी, उनको प्यार किया और फिर चुपचाप लौट गयी । सुबह जब श्री विलमार्ट सोकर उठे, तो उनके साथी ने कहा "आप बहुत भाग्यवान हैं कि आपके पास जहाज में भी कोई महिला इस प्रकार आ जाती है।" श्री विलमार्ट को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ क्योकि उनके साथी ने उस महिला को पूर्ण जागृत अवस्था मे देखा था, और उसका विवरण पूर्णतः उनके स्वप्न से मिलता था । जब श्री विलमार्ट अपने घर पहुचे तो उन्होंने अपनी पत्नी से इस घटना की चर्चा की । उनकी पत्नी ने बतलाया, "समुद्र में तूफान आ जाने के कारण मैं बहुत चिन्तित रहती थी । उस रात मैं आपके सम्बन्ध मे ही सोचती रही। प्रात चार बजे मुझे ऐसा लगा कि मैं आपकी खोज में निकली हूँ और समुद्र के ऊपर से होती हुई जहाज मे आपके केबिन मे पहुची हू । फिर आपको सकुशल देख और आपको प्यार करके लौट आई हू ।" श्री विलमार्ट की पत्नी ने उस समय वही कपडे पहिने हुए थे जैसे कि उन्होने स्वप्न मे देखे थे और उनके साथी ने बतलाये थे । उनकी पत्नी ने जहाज का जो विवरण दिया वह पूर्णत ठीक था यद्यपि उन्होने उस जहाज को कभी देखा भी नही था ।

(८) कानपुर में उपेन्द्र जी नामक एक सज्जन है । अभ्यास के द्वारा उनके नेत्रो मे ऐसी शक्ति आ गयी है कि वह अपनी दृष्टि गड़ाकर धातु तक को पिघला देते है । इस क्रिया को त्राटक कहते है ।

[९] श्री बलजीत सिंह जब्बल नामक युवक ने अपने दृष्टिपात के बलकर सितम्बर १९८० में एक दिये को जला दिया था । एक दिये मे एक सूखी बत्ती रख दी गयी, उस दिये में तेल या घी कुछ भी नही था, श्री बलजीत सिंह दिये को देखते रहे और कुछ ही क्षणो मे वह बत्ती जलने लगी । उन्होने लन्दन मे भी इस प्रकार का प्रदर्शन किया था ।

[१०] इजरायल के निवासी श्री यूरी गेलर, बिना छुए केवल अपने दृष्टिपात के द्वारा कीले, चाबी आदि लोहे की वस्तुओ को मोड देते है । वे भी बिना शरीर के दूसरे स्थानो की यात्रा कर आते है । एक बार उन्होंने छ. हजार मील दूर न्यूयार्क में बन्द कैमरे के केस को अपने यहा मगवा लिया था । वे छिपाकर रक्खी हुई वस्तुओं के छिपाने का स्थान भी बतला देते हैं और उन छिपाकर रक्खी वस्तुओं की अनुकृति भी बना देते है ।

(११) रूस के लेनिनग्राड नगर में एक महिला हैं जिनका नाम नाइनेल कुलागिना है । उनमें भी अद्भुत शक्ति थी । वह ध्यान के द्वारा, बिना छुए ही, वस्तुओं को सरका देती थीं । वे कुतुबनुमा की सुई को अपनी इच्छा के अनुसार घुमा देती थीं । वे बिना देखे ही ऊन के गोलों में से अपनी

पसन्द का रंग निकाल लेती थीं। वे अपनी इच्छा-शक्ति से मेंढ़कों के दिल की धड़कन बन्द कर देती थीं। एक बार एक मनोवैज्ञानिक ने चुनौती दी कि वे उसके दिल की धड़कनों में गड़बड़ी करके दिखलाएँ। उन महिला के ध्यान लगाने के दो-तीन मिनट बाद ही उस वैज्ञानिक के दिल की दशा खराब होने लगी। कही उनकी जान पर न बन जाए इसलिए वह प्रयोग बन्द कर देना पड़ा। इन प्रदर्शनो की फिल्में भी बनी हैं। उन्ही दिनो कुलागिना के पिता की मृत्यु हो गयी, जिनको वे बहुत प्यार करती थी। इस दु:खद घटना के कारण उनको कब्रिस्तान मे ही दिल का दौरा पड़ा और डाक्टरों ने उनको इस प्रकार के प्रदर्शन करने को बिलकुल मना कर दिया।

रूस मे ही मास्को में रहने वाली एक अन्य महिला विनोग्रादोवा भी इसी प्रकार ध्यान लगा कर वस्तुओ को अपनी ओर खीच लेती है।

(१२) चीन में वेह रूपांग नाम का एक बारह वर्ष का बालक है। उसको ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वह ईंटों की दीवारो के पार भी देख सकता है। वह किसी भी रोगी को देखकर यह बतला देता है कि उस रोगी के शरीर के अन्दरूनी अगों में क्या गड़बड़ी है। वह जमीन को देख-कर बतला देता है कि उसके नीचे भूमिगत पानी है या नही? वह बालक अपनी माता के आन्तरिक विचारों को भी पढ़ लेता है। वह अपनी आंखों की सहायता के बिना, कानों के द्वारा पुस्तक पढ़ सकता है अर्थात् पुस्तक उसके कान के पास रख दी जाती है और वह पुस्तक को पढ़ने लगता है। चीन मे और भी कई बालक है जो आखों से देखे बिना कानो से देख लेते हैं।

(१३) कुआलालम्पुर मे "किम" नामक एक दस वर्ष की लड़की है। वह बालिका अपने कानो से देख लेती है। उसके कान के पास पत्र-पत्रिकाएं रख दी जाती है और वह उनको मुख से सुना देती है।

(१४) दिल्ली से प्रकाशित होने वाले "सांध्य टाइम्स" के २४ मई १९८३ के अक में एक समाचार प्रकाशित हुआ है।

दक्षिण पोलैंड में कटोविस के पास सोसनोविस में जोना (Joan A. G. Ulrst) नाम की एक १३ वर्ष की लड़की रहती है। अप्रैल १९८३ में उसको अपने आप ही ऐसी शक्ति प्राप्त हो गयी कि जो भी वह सोचती है वैसा ही होने लगता है। वह सोचती है कि मेज पर रक्खे हुए बर्तन गिर जायें तो बर्तन गिर जाते हैं। वह सोचती है कि दियासलाई की तीली जल जाये तो दियासलाई की तीली जल जाती है। वह सोचती है कि पानी का नल बन्द हो जाये तो नल से पानी आना बन्द हो जाता है। यह समाचार दूर-दूर तक फैल गया। अब उसके घर के आगे लोगों की भीड़ लगी रहती

है। भीड़ को नियंत्रित करने के लिए उसके घर के आगे पुलिस तैनात है। वह लड़की भी यह चमत्कार दिखलाते-दिखलाते थक जाती है। इस लड़की के शरीर का तापमान ११३ डिग्री फैरनहाइट है। वैज्ञानिकों को समझ में नही आ रहा कि यह लड़की ऐसी असाधारण क्यो और कैसे हो गयी ?

(१५) प्रसिद्ध अमरीकी पत्रिका "लाइफ" (LIFE) में रोजा कुलेशोवा नामक रूसी महिला का वर्णन प्रकाशित हुआ है। यह महिला आँखें अच्छी प्रकार बन्द होने पर भी अपनी अगुलियो से रगों को पहचान लेती है। आखो पर पट्टी बाधे-बाधे ही रोजा कुलेशोवा, समाचार पत्रों के शीर्षक तथा बडे अक्षरो मे छपी हुई पुस्तके भी पढ लेती है। अनेको मनोवैज्ञानिको और पत्रकारो ने उनकी इस अद्‌भुत शक्ति का प्रदर्शन देखा है।

(१६) कई जादूगर अपनी आखो पर पट्टी बाधकर भरे बाजारो मे मोटर-साईकिल चला लेते है।

चमत्कारिक उपचार

सन १८७७ के लगभग अमरीका में एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम एड्गर केसी (Edger Caycee) रक्खा गया। इक्कीस वर्ष की अवस्था में वह सख्त बीमार पडा। पर्याप्त उपचार करने के पश्चात वह उस बीमारी से तो अच्छा हो गया, परन्तु उसके बोलने की शक्ति जाती रही और वह गूगा हो गया।

एक बार हिप्नोटिज्म जानने वाले एक व्यक्ति ने उसे 'ट्रास' की अवस्था मे डाल कर—सम्मोहित करके—उससे बुलवाया। परन्तु ट्रास से जागने के पश्चात् वह फिर पहले के समान गूगा ही रहा। वह हिप्नोटिज्म जानने वाला तो चला गया, परन्तु एक अन्य व्यक्ति ने, जो हिप्नोटिज्म का अभ्यास कर रहा था, सोचा, "केसी ट्रांस की अवस्था में बोल सकता है। हमे उसको ट्रास की अवस्था मे डालकर उसी से उसके न बोलने के कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिये।" उस व्यक्ति ने केसी पर प्रयोग किये। केसी ने स्कूल मे केवल नवी कक्षा तक ही अध्ययन किया था, परन्तु ट्रास की अवस्था में उसने एक डाक्टर के समान ही डाक्टरी भाषा में रोग का कारण, उसका निदान और फिर रोग का उपचार बतला दिये। उसी के अनुसार उपचार करने पर केसी बिल्कुल ठीक हो गया, और वह फिर से बोलने लगा। वह हिप्नोटिस्ट स्वय भी लम्बे समय से पेट के दर्द से पीड़ित था। उसने केसी को सम्मोहित करके उससे अपने रोग का निदान और उपचार मालूम किया और फिर उसी के अनुसार उपचार करने पर वह स्वय भी स्वस्थ हो गया। शनैः शनैः यह बात डाक्टरो तक पहुँची। वे भी

अपने उलझन भरे रोगियों का उपचार करने के लिए केसी का मार्गदर्शन लेने लगे। यह भी ज्ञात हुआ कि वह रोगी की अनुपस्थिति में भी रोग का उपचार बतला सकता है। प्रश्न करते समय केवल इतना बतलाना ही पर्याप्त था कि रोगी उस समय कहाँ है ? केसी स्वयं ट्रांस की अवस्था में जाता और फिर प्रश्न करने पर इस प्रकार अधिकारपूर्वक बोलने लगता जैसे कोई विशेषज्ञ डाक्टर एक्सरे में सारा शरीर देखकर बोल रहा हो। वह रोगी के रोग का कारण और उसके निवारण के उपाय बतलाता। इस प्रकार केसी ने लगभग तीस हजार रोगियो के सम्बन्ध मे सूचनाए दी। ये सूचनाएं आज भी सुरक्षित है और डाक्टर आज भी उनका अध्ययन करते हैं।

केसी की इस अद्भुत शक्ति के सम्बन्ध मे ओहियो (अमरीका) के श्री आर्थर लेमर्स नामक एक साधन-सम्पन्न प्रकाशक ने भी सुना। उसने सोचा जिस व्यक्ति के पास ऐसी अतीन्द्रिय शक्ति हो, क्या वह मनुष्यो की अन्य उलझनो तथा मानव जीवन का हेतु क्या है ? जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् जीवन का कोई अस्तित्व है या नही—पर प्रकाश नही डाल सकता ? श्री आर्थर लेमर्स इसी कार्य के लिए केसी के पास गये और उनको अपनी बात समझाई। केसी इस समस्या पर प्रयोग करने के लिए राजी हो गया और पहले ही प्रयत्न मे केसी ने बतलाया कि अपने पूर्व जन्म में श्री आर्थर लेमर्स एक साधु थे। इस प्रकार केसी ने व्यक्तियों के पूर्व जन्म पढ़ने प्रारम्भ कर दिये। केसी पूर्व जन्म की बातें बतलाकर यह भी बतलाता कि उस पूर्व जन्म का वर्तमान जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? जिन व्यक्तियो को केसी ने कभी देखा भी नही था, उन व्यक्तियों के स्वभाव, उनकी विशेषताओ, उनके मानसिक विकास इत्यादि के सम्बन्ध मे केसी द्वारा बतलयी गयी बाते आश्चर्यजनक रूप से सच निकलती। इस प्रकार उसने लगभग दो हजार पाच सौ व्यक्तियों के पूर्व जन्म के सम्बन्ध में बतलाया। सन् १९४५ में अड़सठ वर्ष की आयु में केसी की मृत्यु हो गयी। केसी के नाम से अमरीका मे एक सस्था भी स्थापित है और उसके सम्बन्ध मे कई पुस्तके भी प्रकाशित हो चुकी है।

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले "दैनिक नवभारत टाईम्स" के १३ जनवरी १९८२ के अंक में योगिराज हरीश जी के सम्बन्ध में एक समाचार प्रकाशित हुआ है। श्रीमती हेमलता नामक एक महिला के शरीर पर एक बड़ी गिलटी थी। योगिराज हरीश जी ने अपनी अंगुली से उस गिलटी की ओर संकेत किया, और धीरे-धीरे वह गिलटी कम होती चली गयी। इस उपचार मे लगभग एक घंटा लगा। टाटा मेमोरियल हस्पताल के डाक्टर ए० बी० घटालिया ने भी इस बात की पुष्टि की कि गिलटी बहुत कम हुा

गयी है। योगिराज ने यह प्रदर्शन मुबई मराठी पत्रकार संघ के छोटे हाल में किया था। योगिराज हरीश जी ने अहमदाबाद के छः वर्ष के एक अंधे बालक को दृष्टि भी दी है। बालक के पिता ने भी इस बात की पुष्टि की है।

दरभगा के एक होम्योपैथिक डाक्टर श्री ए० वी० साहनी एक प्रयोग कर रहे है। वे रोगी का एक बाल मगवा लेते हैं और उस बाल पर उस विशेष रोग की औषधि लगाते है। ऐसा करने से रोगी ठीक होने लगता है। इस प्रकार उन्होने अनेको रोगियो को स्वास्थ्य-लाभ कराया है। उन्होंने इस विषय पर अग्रेजी भाषा मे एक पुस्तक भी लिखी है, जिसका नाम है—(Transmission of Homeo. Durg from a Distance.)

फिलीपीन्स की राजधानी मनीला मे एक सज्जन साइकिक ओपरेशन (Cycic Operation) करते हे। इस ओपरेशन की फिल्मे गुजारती साप्ताहिक 'युवदर्शन' के सम्पादक श्री रसिक भाई के केबिन मे अनेको व्यक्तियो की उपस्थिति मे दिखलाई गयी।

एक फिल्म मे दिखलाया गया था कि ओपरेशन थियेटर की मेज पर एक महिला लेटी हुई है। कुछ डाक्टर उसके चारो ओर खडे है। दैवी शक्तियो के स्वामी, फिलीपीन्स निवासी एक सर्जन ने उस महिला के पेट पर कई बार हाथ फेरा, फिर अपनी अगुली की सहायता से पेट चीरा। वह महिला उस समय भी मुसकुरा रही थी। उस सर्जन ने पेट मे अगुली डाल कर मास का एक टुकड़ा खीच निकाला और पास मे रक्खे हुए बरतन मे फेक दिया। उसके पश्चात उस सर्जन ने महिला के पेट के चीरे को सहलाना शुरु कर दिया। कुछ ही क्षणो मे उस चीरे का नाम-निशान भी नजर नही आया। जैसे ओपरेशन हुआ ही न हो। इसी प्रकार की और फ़िल्में भी दिखलाई गयी। इनमे से एक फ़िल्म मे बम्बई की निवासिनी शिरनाज दस्तूर नामक एक पारसी महिला का ओपरेशन भी दिखाया गया था। बम्बई के सुविख्यात हृदय-विशेषज्ञ डा० के०के० दाते का कहना है कि उन्होने सितम्बर १९७३ मे साइकिक सर्जरी का अवलोकन किया था।

फ़िलीपीन्स मे ऐसे अनेक डाक्टर है जो इस प्रकार से ओपरेशन करते है। कहा जाता है कि सन १९८१ (या सन् १९८०) में वहां के एक डाक्टर को बम्बई बुलाया था और बम्बई के प्रसिद्ध "बम्बई हस्पताल" में उस डाक्टर के द्वारा ऐसे ओपरेशन किये गये थे, जिनको बहुत से डाक्टरो ने देखा था।

पश्चिम देशों के कुछ डाक्टर एक अन्य प्रयोग कर रहे है। उनकी

मान्यता है कि जो भी व्यक्ति रोगी होते हैं वे अपने ही किसी पाप के फल-स्वरूप ही रोगी होते है। यदि रोग के कारण उस पाप को दूर कर दिया जाये तो रोगी अच्छा हो जायेगा। वे रोगी को अपना मन एकाग्र करके ध्यान लगाने और अपने रोग के कारण का पता लगाने को कहते है। रोगी को शुरु-शुरु में सफलता नहीं मिलती। परन्तु कई बार एकाग्र मन से ध्यान लगाने पर उनको अपने रोग के कारण का पता चल जाता है। तब डाक्टर उस कारण को दूर करने का प्रयत्न करते है। इस पद्धति से रोग का कारण दूर होने पर रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर लेते है। इन डाक्टरो का कहना है कि इस पद्धति से उन्होने कैंसर जैसे रोगो को भी ठीक किया है।

कनाडा में मोन्ट्रियल नामक नगर में श्री ओसकर एस्टेबनी नामक सज्जन रहते है। उनके स्पर्श मे अद्भुत चमत्कार है। उनका स्पर्श पाते ही मरणासन्न रोगी स्वास्थ्य-लाभ करने लगते है। उनके स्पर्श से टूटी हुई हड्डियाँ जुड जाती हे। मनुष्यो और पशु-पक्षियो की तो बात ही क्या, वन-स्पति पर भी उनके स्पर्श का समान प्रभाव होता है। जुलाई के महीने में तीन सप्ताह के लिये वे न्यूयार्क के अल्बेंनी इलाके में आ जाते हैं और वहाँ पर रोगियो को अपने स्पर्श से लाभान्वित करते है। पहले वे एक सैनिक अधिकारी थे। उस समय वे जिन घोड़ो पर बैठते थे, वे घोडे न तो थकते थे न बीमार ही पड़ते थे। उनकी इस शक्ति का अन्य घोडों पर भी परीक्षण किया गया तो उन घोडों पर भी वही प्रभाव हुआ। यह शक्ति उनको अपने आप ही प्राप्त हो गयी है। अनेको वैज्ञानिकों ने उनकी इस अदभुत शक्ति की जाच की है और इसको बिलकुल सत्य पाया है। हां, जब कभी वे निराश, परेशान व उदास होते हैं, तो उनका स्पर्श कोई चमत्कार नहीं दिखाता।

चन्डीगढ मे श्री अमरनाथ जी शास्त्री नामक वैद्य है। (मार्च १९८३ में उनका पता यह था २७१, सैक्टर १६ ए० चन्डीगढ़) वे रोगी की नाड़ी देखकर ही रोग के निदान के साथ साथ उस रोगी के भूत व भविष्य की बहुत सी बाते भी बता देते हैं। यदि रोगी किसी कारण वश न आया हो तो रोगी के निकट के सम्बन्धी की नाड़ी देखकर ही रोगी के रोग का निदान कर देते हैं। अनेको बार तो वे रोगी के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी बातें बता देते है जिनको सुनकर आश्चर्य होता है।

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक "हिन्दुस्तान" के २८ मार्च १९८४ के अंक मे एक सज्जन का लेख "आस्था के उपचार" प्रकाशित हुआ है। उसमे उन्होंने बताया है कि एक गांव में एक सज्जन पीलिया का उप-चार करते हैं। वे बेर जैसे फलों की एक कण्ठी पीलिये के रोगी के गले में

डाल देते है । जैसे-जैसे दिन बीतते है वह कंठी नीचे लटकती जाती है और रोग घटता जाता है । जब वह कठी नाभि को छूने लगती है रोग गायब हो जाता है । इस प्रकार उन्होने अनेको रोगियो को ठीक किया है ।

उन लेखक ने एक अन्य सज्जन के सम्बन्ध मे बतलाया है । वे गर्भवती महिला के रक्तस्राव हो जाने पर उसको एक गडा (मन्त्र पढा हुआ धागा) बंधवा देते है । गडा बाधने के कुछ मिनटों के पश्चात ही रक्तस्राव बन्द हो जाता है ।

पश्चिमी देशों के कुछ पादरी प्रार्थना द्वारा रोगियो को ठीक करने का दावा करते है । वे रागी के शरीर पर हाथ रख कर प्रार्थना करते है जिससे रोगी का आराम हो जाता है ।

कहा जाता है कि दक्षिणी भारत मे अपना आश्रम बनाकर रहने वाले साई बाबा ने अपनी इच्छा शक्ति द्वारा बहुत से रोगियो को ठीक किया है ।

कुछ ज्योतिषी रोगो को चन्द्रमा, मगल, बुध आदि ग्रहो की विशेष स्थिति का बुरा फल मानते हैं । वे उन ग्रहो की शान्ति के लिये कुछ अनुष्ठान कराते है । कुछ ज्योतिषी विशेष ग्रहो की शान्ति के लिये विशेष जवाहर जैसे हीरा, मानक, नीलम आदि पहनने के लिये कहते है ।

कुछ व्यक्ति तन्त्र-मन्त्र के द्वारा रोगियो का उपचार करने का दावा करते हैं । कभी-कभी उनके द्वारा रोगी, विशेष कर बालक ठीक होते हुए भी देखे जाते है ।

मन्त्रो के द्वारा साप के काटे का इलाज भी किया जाता है। कुछ तान्त्रिक तो मन्त्रो के द्वारा उस साप को बुलवाते है, जिस साप ने व्यक्ति को काटा था, फिर वह साँप उस व्यक्ति के शरीर से जहर चूस लेता है और वह मरणासन्न व्यक्ति फिर से स्वस्थ हो जाता है ।

कुछ वर्ष पहले उत्तर प्रदेश की पुलिस मे मेवा राम नाम के एक सिपाही थे । उनको सांप के काटने की सूचना मिलने पर, जिस व्यक्ति के द्वारा सूचना मिलती थी, उसको एक चाटा मारते थे। उनके द्वारा चाटा मारते ही साँप-का-काटा व्यक्ति तुरन्त ही ठीक हो जाता था । यदि टेलीफून के द्वारा सूचना मिलती तो वे टेलीफून को चाटा मारते थे, ऐसा करते ही सांप का- काटा व्यक्ति तुरन्त ही ठीक हो जाता था ।

उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले के हाजी हुसेन बख्श ने झाड़-फूक के द्वारा हजारो साप-के-काटो का इलाज किया है ।

उज्जैन के शासकीय अभियान्त्रिक महाविद्यालय के प्रशिक्षक श्री रघुनाथ सोनी ने भी अनेकों सांप-के-काटे हुए व्यक्तियों का इलाज किया है। कहा जाता है सांप-के-काटे व्यक्ति की सूचना लेकर कोई भी व्यक्ति श्री सोनी का नाम लेकर श्री सोनी को सूचना देने चलदे तो साप-के-काटे व्यक्ति की मृत्यु नही होती। सूचना देने वाला व्यक्ति जब श्री सोनी को सूचना देता है तो वह उसकी हथेली पर या उसके गाल पर चाटा मारते हैं, और उस व्यक्ति से साप-के-काटे व्यक्ति के कान मे फूक मारने को कहते है। कान मे फूक लगने के बाद साप-का-काटा व्यक्ति धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगता है।

श्री महायोगी ठाकुर शंकरनाथ 'बाबा' [प्रिय नगर मोड़-उत्तरायन, सोदपुर २४ परगना (पश्चिम बगाल)] अपनी दिव्यदृष्टि के द्वारा संकड़ों किलोमीटर दूर की बातें जान लेते है। वे अपनी दिव्यदृष्टि से रोगियों का उपचार भी करते है।

मिस्र के पिरामिड में भी अद्भुत शक्ति है। उसके अन्दर रक्खी हुई खाद्य वस्तुए कई-कई दिनों तक ताजा रहती है। उसमें कोई शव रख दिया जाये तो वह बहुत समय तक खराब नही होता। श्रीमती सोफिया टेनब्रो नामक एक अमरीकी महिला बगलौर में रहती थी। उन्होंने अपने घर के पिछवाड़े प्लाईवुड का एक पिरामिड बनवाया हुआ था। उसमें वे नये-नये प्रयोग करती रहती थी। उनकी ८६ वर्षीय माताजी लकवे से पीड़ित थीं वे एक सप्ताह तक तीन चार घटे प्रति दिन उस पिरामिड में बैठी तो वे भली प्रकार चलने फिरने लगी। कई अन्य रोगीयो ने भी उनके पिरामिड मे बैठकर स्वास्थ्य-लाभ लिया था। अब वे अमरीका वापिस चली गयी हैं।

दूरानुभूति (TELEPATHY)

दूरानुभूति (Telepathy) को लेकर आज अमरीका और यूरोप में ही नही सोवियत सघ मे भी अनेको प्रयोग किये जा रहे है। श्री एंड्रीजा पुहारिख ने दूरानुभूति पर अनेक प्रयोग किये है और उनको "Beyond Telepathy" नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया है। उनका कहना है कि यदि हम किसी व्यक्ति को याद करते हैं तो उस व्यक्ति पर भी इसकी प्रतिक्रिया होती है। जितनी अधिक तीव्रता से हम किसी व्यक्ति को याद करेंगे उतनी ही अधिक शक्तिशाली प्रतिक्रिया उस दूसरे व्यक्ति पर होगी। इस सम्बन्ध मे पुस्तक मे निम्नलिखित घटना का वर्णन दिया है :—

अमरीका के बोस्टन नगर के दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र में वाशिंगटन

स्ट्रीट के किनारे किनारे चौदह फुट गहराई पर नल के नये पाइप डाले जा रहे थे, और "जैक सुलीवान" नामक एक मिस्त्री उन्हे टांका लगा कर (welding करके) जोड रहा था। अचानक ही उस गड्ढे की दीवारों से मिट्टी नीचे खिसक गयी और वह मिस्त्री मिट्टी मे दब गया। चौदह फुट की गहराई मे होने और मिट्टी में दबा होने के कारण उस मिस्त्री के चिल्लाने की आवाज भी कोई नहीं सुन सकता था। ऐसी निराशा की अवस्था में उसको "टामी व्हिटकर" नाम के अपने एक मित्र की याद आयी और उसके मन मे विचार आया कि केवल वह मित्र ही उसको बचा सकता है। वह अपने मित्र टामी व्हिटकर को याद करता रहा। उसका मित्र टामी व्हिटकर भी एक टाका लगाने वाला (Welder) था। और वह उस समय वहां से चार पांच मील दूर वैस्ट वुड मे मार्ग नं० १२८ पर पाइपो की Welding कर रहा था। परन्तु उन दोनो का ही एक दूसरे के कार्य करने के स्थान का पता नही था। अचानक ही टामी के मन मे यह विचार आया कि कही कुछ गडबड हो गई है। उसका मन हुआ कि वाशिंगटन स्ट्रीट पर हो रहे वैल्डिंग के काम को देखा जाये। वह अपना काम बन्द करके वाशिंगटन स्ट्रीट की ओर चल दिया। वहा जाकर उसने देखा कि एक जगह मिट्टी धस गयी है और पास मे ही Welding के काम आने वाला जैनेरेटर चल रहा है। वह स्थिति को समझ गया और तुरन्त ही गड्ढे में कूदकर मिट्टी को हटाने लगा। पहले उसे एक हाथ दिखलाई दिया। शीघ्र ही उसने मिट्टी मे दबे हुए व्यक्ति को निकाल लिया। वह व्यक्ति उसका मित्र जैक ही था। उस दिन दूरानुभूति के कारण ही जैक की जान बच पायी।

इसी पुस्तक "Beyond Telepathy" मे एक और प्रयोग भी दिया हुआ है। एक प्रयोगशाला मे कुछ व्यक्तियो को एकत्र किया। उनमें से हैरी स्टोन नामक एक व्यक्ति की आखो पर पट्टी बाध कर प्रयोगशाला के बाहर भेज दिया गया। प्रयोगशाला में उपस्थित व्यक्तियो के सामने एक वस्तु छिपा दी गयी। तब हैरी स्टोन को अन्दर बुलाया गया, उसकी आखो की पट्टी खोल दी गयी और उससे छिपायी हुई वस्तु को खोजने के लिये कहा गया। हैरी स्टोन ने कुछ क्षणो के लिए साचा और फिर एक ही प्रयत्न में छिपायी हुई वस्तु को निकाल लिया। इसका कारण यह बताया गया कि प्रयोगशाला में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति दूरानुभूति के माध्यम से वस्तु के स्थान की सूचना हैरी स्टोन तक भेजने का प्रयत्न कर रहा था और वे इसमें सफल भी हुए थे।

इस प्रकार की दूरानुभूति सामान्यतः सभी व्यक्तियों को होती रहती है। जैसे ताश खेलते समय हमारे मन में यह विचार उठता है कि हमारा साथी अमुक पत्ता चल दे तो अच्छा हो, और आप का साथी अपने आप ही वही पत्ता चल देता है। इसी प्रकार किसी दूर के स्थान पर यदि हमारे किसी प्रिय सम्बन्धी या इष्टमित्र पर किसी दिन कोई संकट आ जाता है तो उस संकट के सम्बन्ध में सर्वथा अनजान होते हुए भी हम उस दिन अपने आप ही उदास हो जाते है। परन्तु हम ऐसी बातों को मात्र संयोग समझ कर टाल देते है, या अधिक से अधिक यह कह देते हैं कि "दिल को दिल से राहत होती है।"

परामनोवैज्ञानिको की मान्यता है कि माता का अपने बालक से सूक्ष्म भावनात्मक सम्बन्ध होता है। इसको प्रमाणित करने के लिए अनेक प्रयोग किये गये है। एक प्रयोग के दौरान कई माताओं को एक बडे भवन के एक कोने मे बैठा दिया गया और उनके शिशुओं को उनसे इतनी दूर रखा गया कि न तो वे अपने शिशुओं को देख ही पाये और न उनके रोने की आवाज ही सुन पायें। डाक्टरो को परीक्षण के लिये उन शिशुओ के शरीरों से कुछ रक्त निकालना था और ऐसा करने से शिशुओं को कष्ट होता था और वे रोते भी थे। इस प्रयोग में यह देखा गया कि जिस शिशु का रक्त निकाला जाता, वह बालक रोता था उसी समय उस शिशु की माता को अपने आप ही परेशानी व बेचैनी होने लगती थी।

जनवरी १९८२ की घटना है, चौदह वर्ष की एक कन्या किसी गम्भीर बीमारी के कारण हस्पताल मे दाखिल थी। उसकी माँ उसकी बहुत सेवा करती थी और साथ ही भगवान से उसके निरोग होने की प्रार्थना भी करती रहती थी। एक दिन उस कन्या की माता भगवान से अपनी बेटी को जीवन दान देने के लिए प्रार्थना कर रही थी। तभी उसे ऐसा आभास हुआ कि उसकी पुत्री को लाल रक्त की उल्टी हुई है। वह तुरन्त ही हस्पताल गयी तो पता चला कि लडकी को उल्टी तो हुई थी परन्तु उल्टी में खून की बजाय लाल गाजर निकली थी।

भविष्य वाणियां

कुछ व्यक्ति भविष्य वाणियां भी करते हैं जो आश्चर्यजनक रूप से सच निकलती हैं।

दिल्ली के संत बाबा चरनदास ने बादशाह मुहम्मदशाह को छः महीने पहले बतला दिया था, "अरे बादशाह, पश्चिम से एक भयंकर तूफ़ान तेरी तरफ आ रहा है जो अपने साथ प्रलय का संदेश ला रहा है। तेरी

दिल्ली में हजारों रुण्ड-मुण्ड धरती पर बिखरेंगे। तेरा जीवन तो बचेगा पर वैभव नही।" और सचमुच ही छ: महीने बाद नादिरशाह की सेना ने दिल्ली का वही हाल किया जैसा कि सन बाबा चरनदास ने बतलाया था।

कुछ व्यक्ति किसी व्यक्ति के हाथो की लकीरो को देखकर उस व्यक्ति के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते है। कभी-कभी तो ये भविष्य-वाणिया शत-प्रति-शत ठीक निकलती है। हस्त रेखा विज्ञान पर सैकडो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। हमारा तो यह विश्वास है कि हस्त रेखाओ को देखकर भविष्यवाणी करना एक सच्चा विज्ञान है। परन्तु कुछ नौमिखियो और कुछ ठगो ने इसको बदनाम कर रक्खा है।

कुछ व्यक्ति विभिन्न अगों जैसे आंखें, पलकें, नाक, होंठ, माथा, ठोडी, अगुलियो आदि की आकृतिया देखकर उस व्यक्ति के चाल-चलन व स्वभाव के सम्बन्ध में बतलाते है। व्यक्ति की चाल-ढाल व खाने पीने के ढग को देखकर भी उसके स्वभाव व चालचलन का आभास मिल जाता है।

कुछ व्यक्ति किसी व्यक्ति के हस्तलेख को देखकर ही उस व्यक्ति के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी कर देते है।

जन्म-कुण्डली देखकर भविष्यवाणी करना तो बहुत ही प्रचलित है। परन्तु नौमिखियो और ठगो ने इस विद्या को भी बदनाम किया हुआ है। अनेको बार व्यक्तियो की जन्म-कुण्डलिया ही ठीक नही होती। गलत जन्म कुण्डली का फल कैसे ठीक हो सकता है?

कुछ पण्डित अपने पास भृगु सहिता होने का दावा करते है। भृगु-सहिता वह सहिता है जिसमें महर्षि भृगु ने हजारो कुण्डलियो का फल दिया हुआ है। यहाँ पर भी ठग विद्या फैली हुई है। कुछ व्यक्ति भृगु-सहिता के नाम से जनता को ठगते है। फिर भी कभी-कभी व्यक्तियों की जन्म-कुण्डलियों का फल शत-प्रति-शत सही निकलता है।

दिल्ली मे एक ज्योतिषी जी हैं जिनके पास डेढ दो सौ वर्ष पहले की बनी हुई कुण्डलिया और उन कुण्डलियो के फल है। इस लेखक ने भी अपने एक सम्बन्धी बालक की जन्म कुण्डली का फल निकलवाया था। उस जन्म कुण्डली के फल में स्पष्ट रूप से लिखा था कि इस बालक को अमुक आयु में अमुक रोग होगा जो समुचित उपचार करने पर ठीक हो जायेगा। वास्तव में उस बालक को उसी आयु मे वही रोग हुआ था। कई अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी सुना है कि उनकी जन्म-कुण्डलियो का फल भी बिल्कुल ठीक-ठीक पाया गया है।

कुछ व्यक्ति कुछ सपनों को भी भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वाभास मानते है — यदि कोई उन पर ठीक प्रकार विचार करके उनका सही अर्थ निकाल सके। यह तथ्य तो जग-प्रसिद्ध है कि अमरीका के राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास एक स्वप्न के द्वारा ही हुआ था।

मिस्र के पिरामिडो में भी भविष्यवाणी से सम्बन्धित कुछ शिलालेख हैं। मेधावी खगोल शास्त्री और इंजीनियर श्री डेविड डेविडसन ने २५ वर्षों तक इन पिरामिडो मे काम किया है और अपनी खोजो और निष्कर्षों को प्रमाणों सहित अपनी पुस्तक "दी ग्रेट पिरामिड – इट्स डिवाइन मैसेज" में लिपिबद्ध किया है। उन्होंने यह पुस्तक १९२४ में लिखी थी। पिरामिड के शिलालेखो में सन १९२४ से पहले तक के काल के सम्बन्ध में की गयी भविष्यवाणिया तो ठीक निकली ही, सन १९२४ से अब तक के काल के सम्बन्ध में की गयी भविष्यवाणिया भी सत्य निकली है। इसी कारण यह आशा है कि भविष्य के सम्बन्ध में की गयी भविष्यवाणिया भी सत्य ही निकलेगी।

हालैंड में २१ मई १९११ को एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम पीटर वान डेर हर्क रक्खा गया। जब यह बालक बडा हुआ, तो अपने पिता की तरह वह भी दीवारो को रगने का काम करने लगा। जब यह ३२ वर्ष के थे, तो एक दिन काम करते हुए तीस फुट ऊचे से नीचे सड़क पर आ गिरे। उनके सिर और कन्धे की हड्डियो में चोटें आईं और वे तीन दिन तक चिकित्सालय में बेहोश पडे रहे। होश आने पर उनको यह अनुभूति हुई कि वह किसी भी व्यक्ति के भूत व भविष्य की बातें बता सकते हैं। उन्होने चिकित्सालय में ही कई रोगियो व नर्सों आदि को उनके भूत व भविष्य के सम्बन्ध में बतलाया। भूतकाल की बातें तो ठीक थी ही, समय आने पर भविष्य की बातें भी सच प्रमाणित हुईं। धीरे धीरे उनकी ख्याति फैलने लगी। उन्होने अपना उपनाम पीटर हरकौस रख लिया। अपनी इस क्षमता के द्वारा उन्होने पुलिस की अनेक अपराधियो को पकड़ने में सहायता की। उन्होंने अपनी इस क्षमता का उपयोग कभी भी अनुचित कार्यों के लिये नहीं किया। एक बात अवश्य ही आश्चर्यजनक है, वे अन्य व्यक्तियों का भविष्य तो ठीक-ठीक बतला देते थे, परन्तु उनको अपने भविष्य के सम्बन्ध में कभी कोई अनुभूति नही हुई।

अमरीकी महिला श्रीमती जीन डिक्सन अपनी भविष्यवाणियों के लिये विश्व भर में प्रसिद्ध है। उनकी अधिकाश भविष्यवाणियां ठीक प्रमाणित हुई हैं। उन्होंने सन् १९४४ में ही अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति

श्री रुजवेल्ट की मृत्यु की भविष्यवाणी कर दी थी। इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री चर्चिल के सम्बन्ध में भी उनकी भविष्यवाणी सत्य निकली थी कि वे युद्ध के बाद प्रधानमन्त्री नही बन सकेंगे। श्री स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् जब श्री मैनेन्कोव रूस के प्रधानमन्त्री बने, तब उन्होंने कहा था कि वे दो वर्ष से भी कम समय के लिये ही प्रधान मन्त्री रह सकेंगे। श्री मैनेन्कोव के बाद श्री बुल्गानिन रूस के प्रधान मन्त्री बने थे। श्रीमती डिक्सन ने बहुत पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी कि अमुक हुलिए वाले व्यक्ति रूस के प्रधान मन्त्री बनेंगे। उन्होने यह भी भविष्यवाणी की थी कि अन्तरिक्ष-विज्ञान की दौड मे रूस अमरीका से बाजी मार लेगा, और हुआ भी ऐसा ही। राष्ट्रसंघ के भूतपूर्व महामन्त्री श्रीयुत डाग हैमर शोल्ड की मृत्यु के सम्बन्ध में भी उनकी भविष्यवाणी ठीक निकली। उन्हे अमरीकी राष्ट्रपति श्रीयुत केनेडी की हत्या होने का भी पूर्वाभास हो गया था और उन्होंने राष्ट्रपति को सावधान भी करा दिया था, परन्तु होनी हो कर ही रही।

फ्रांस के प्रोवेस नामक प्रान्त में सन् १५०३ में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम माइकेल डी नोस्ट्रेडम रक्खा गया। बडा होकर वह एक चिकित्सक बना। जब वह चालीस वर्ष का हुआ तो वह आप ही आप भविष्यवाणिया करने लगा। उसने यह भविष्यवाणिया लेटिन भाषा में कविताओं के रूप में लिखी थी। इन भविष्यवाणियो की पुस्तक के तीन सौ संस्करण प्रकाशित हो चुके है। इनकी अनेकों भविष्यवाणिया सत्य सिद्ध हो चुकी है।

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले "साध्य टाइम्स" के ३१ मार्च १९८० के अंक में श्री अर्नोल्ड क्रुम हैलर नामक भविष्यवक्ता के सम्बन्ध में वर्णन है। उनकी की हुई भविष्यवाणियो में ९० प्रतिशत से अधिक ठीक निकली हैं। २३ नवम्बर १९३५ को उन्होंने कहा था कि दूसरे महायुद्ध में हिटलर की पराजय होगी। मैक्सिको में सन् १९५८ में आये भयंकर भूचाल की भविष्यवाणी भी उन्होने पहले से ही कर दी थी। सर्वश्री स्टालिन, मार्टिन लूथर किंग और जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु की भविष्यवाणियां भी वह पहले ही कर चुके थे। सन १९६१ में पुलिस का घेरा तोड़कर अर्नोल्ड क्रुम हैलर ने अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जान एफ़० कैनेडी को एक चिट दी थी जिस पर लिखा था कि २२ नवम्बर १९६३ को आपकी मृत्यु हो जायेगी। श्री कैनेडी चिट पढ कर हंस पडे, परन्तु हुआ वही जो हैलर ने बतलाया था।

कहा जाता है कि नेपोलियन बोनापार्ट को भविष्यवाणियों में गहरी आस्था थी। इसका कारण Livres de Prophetics नामक एक पुस्तक थी जो उनके समय से २५० वर्ष पूर्व लिखी गयी थी। इस पुस्तक में अनेकों भविष्यवाणियां लिखी हुई है। इनमें ऐसी भविष्यवाणियां भी हैं जिनका सम्बन्ध नेपोलियन से था और जो बिल्कुल सच निकलीं। नेपोलियन की मृत्यु से पहले उनके चिकित्सक डाक्टर आरनाट ने बतलाया था कि कुछ सप्ताह पहले नेपोलियन ने उनसे कहा था, "हम सबका जीवन पूर्व-निर्धारित नियति के अनुसार संचालित होता है, और कोई भी व्यक्ति अपनी पूर्व-निर्धारित आयु से एक क्षण भी अधिक नहीं जी सकता।"

इन भविष्यवाणियों को देखकर कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि प्रत्येक प्राणी चाहे वह मनुष्य हो चाहे पशु-पक्षी एक निर्धारित जीवन ही व्यतीत करता है जिसमें वह अपनी ओर से कुछ भी फेर बदल नही कर सकता। परन्तु यह तथ्य नहीं है। तथ्य तो यह है कि जिस प्रकार भी कोई प्राणी जीवन व्यतीत करता है तथा सुख व दुःख भोगता है वह उसके अपने ही द्वारा पिछले जन्मों में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फल के अनुसार ही होता है। वह वर्तमान में जो अच्छे व बुरे कार्य करता है वे कार्य भी उसके वर्तमान जीवन पर अपना कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य ही डालते हैं। वास्तविकता तो यह है कि हम भविष्यवक्ताओं के द्वारा बताये हुए जीवन को नही जीते, इसके विपरीत जैसा भी हमको जीवन जीना होता है, भविष्य-वक्ता तो अपनी दिव्य दृष्टि तथा ज्ञान के द्वारा भविष्य जानकर उसे केवल लिपिबद्ध कर देता है।

श्रद्धा व विश्वास के चमत्कार

कभी-कभी व्यक्ति अपनी श्रद्धा व विश्वास के द्वारा भी कुछ ऐसे कार्य कर लेता है जिनको चमत्कार ही कहा जा सकता है।

बीकानेर के पास कतरियासर गांव में जसनाथी सम्प्रदाय के सिद्धों का अग्नि-नृत्य एक आश्चर्य में डालने वाला कृत्य है। वहा पर छः-सात फुट लम्बे, चार-पांच फुट चोड़े और दो-तीन फुट गहरे गड्ढे में जलते हुए अंगारे भरे हुए होते है और ये सिद्ध उन पर बहुत ही प्रसन्नता पूर्वक नंगे पाव नृत्य करते हैं। उन अंगारों को हाथ में लेकर उछालते हैं। अग्नि-नृत्य प्रारम्भ करने से पहले से ही नगाड़ों व मजीरों को बजाया जाता है।

उज्जैन के ताजपुर गांव में भी मार्च, १९८१ में कुछ पुरुष, महिलाएं व बालक अग्नि पर चले थे। इस समय में वहां ढोल बजते रहे थे और पुजारी मन्त्र पढ़ता रहा था।

तमिलनाडु में देवी मरीअम्मा के आगे भी व्यक्ति आग पर चलते हैं।

अग्नि पर चलते हुए व्यक्तियों के फ़ोटू भी कई बार समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में छप चुके हैं।

सिंगापुर के हिन्दू मन्दिरों मे भी कुछ भक्त अक्तूबर, १९८१ में दहकते हुए अंगारों पर चले थे।

दहकते हुए अंगारों पर चलने का अद्भुत कृत्य केवल भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी होता है।

स्पेन, बलगारिया व फिजी में रहने वाले कुछ सम्प्रदायों के व्यक्ति आत्म शुद्धि, व्याधियों के उपचार तथा दैवी-प्रकोपो से मुक्ति के लिये अग्नि पर चलते हैं।

रोम (इटली) में भी कुछ व्यक्ति दहकते हुए अगारो पर चला करते थे।

यूनान में आईया एलेनी ग्राम में संत कोंस्टेनटाइन और सत हेलन के सम्मान में कई दिन का उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव के अंतिम दिन कुछ व्यक्ति पर्याप्त समय तक दहकते हुए अंगारों पर चलते है।

फिजी द्वीपो के वितूलेवू द्वीप के आदिवासी भी आग पर चलते है।

कुछ वैज्ञानिक इस चमत्कार के कारणो का पता लगाने का प्रयत्न कर रहे है परन्तु उन्हे अभी तक इसका कोई वैज्ञानिक कारण नही मिल सका।

कुछ व्यक्तियो का कहना है कि यह चमत्कार, श्रद्धा व विश्वास के बल पर ही होता है।

बीना (मध्य प्रदेश) में सन् १९४२ में जन्मे श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन को शुरू से ही आग से खेलने का शौक है। वे शुरू से ही अंगारे हाथ में लेते और मुह में पैट्रोल भर कर आग लगाने का अभ्यास भी करने लगे। इसके साथ साथ वह अंगारों पर नाच करने का अभ्यास भी करने लगे। अब वे दस पन्द्रह मिनट तक धधकती आग पर नृत्य कर लेते हैं, यह आग चाहे पैट्रोल बहा कर जलाई गयी हो चाहे अंगारों की हो। नृत्य करते समय वह अपने हाथ उबलते हुए तेल की कढाई में डाल देते है। परन्तु उनका कुछ भी नहीं बिगडता। श्री राजेन्द्र कुमार जैन अनेको बार ये प्रदर्शन खुले स्थानों पर कर चुके हैं। उनका कहना है कि प्रदर्शन करने से पहले वह णमोकार मन्त्र (जैनधर्म का सर्वप्रमुख मन्त्र) का जाप करते है और उसमें लीन हो जाते हैं। यह नही कहा जा सकता कि उनके द्वारा किया गया यह चमत्कार मंत्र मे लीन होने का परिणाम है या उनके अभ्यास का परिणाम।

श्री लंका में कोलम्बो से लगभग एक सौ सत्तर मील दूर कटारागामा (Kataragama) नामक एक स्थान है। यहाँ पर स्कंद देवता (Lord Skanda) का मन्दिर है। श्री लंका में इस मन्दिर की बहुत मान्यता है। श्रद्धालु भक्त वहां जाते हैं और देवता से अपनी मनोकामनाएं पूरी करने के लिये प्रार्थना करते हैं। अनेकों भक्त अपनी कमर में धातु के हुक घुसड़वा कर कई कई घन्टे तक लटके रहते हैं। कुछ श्रद्धालु उन हुकों में रस्सी बांधकर स्कंद देवता का रथ खीचते हैं। अश्चर्य की बात तो यह है कि इस प्रकार धातु के हुक घुसड़वाने पर भी किसी भी भक्त को घाव नहीं होता न कोई संक्रामक रोग (Infection) ही होता है। कमर में जिस स्थान पर हुक घुसेडे जाते है वहां पर केवल छोटे-छोटे छेद रह जाते हैं। कुछ भक्त आग पर भी चलते हैं। कहा जाता है कि स्कंद देवता की कृपा से उस स्थान पर मरते हुए व्यक्ति भी फिर से स्वस्थ हो जाते हैं, खोये हुए व्यक्ति मिल जाते हैं और बहुत सी अन्य समस्याओं का समाधान हो जाता है। इस प्रकार के कार्यों को श्रद्धा व विश्वास का चमत्कार ही कहा जा सकता है।

अभिशप्त वस्तुएं

कुछ वस्तुएं अभिशप्त मानी जाती हैं। वे जिन व्यक्तियों के पास होतीं है, उनको हानि ही हानि होती रहती है। कई बार तो उन व्यक्तियों की मृत्यु भी हो जाती है और परिवार भी नष्ट हो जाते है।

ऐसी ही धारणा "होप डायमन्ड" नामक हीरे के साथ जुड़ी हुई है। ईसा की चोदहवी या पन्द्रहवी शताब्दी में यह हीरा दक्षिण भारत में कृष्ण नदी के निकटवर्ती क्षेत्र से मिला था। उसके बाद जिस-जिस व्यक्ति के पास यह हीरा रहा उसकी हानि होती रही।

तन्त्र विद्या

कुछ ऐसे व्यक्ति होते है जो तन्त्र-मन्त्र के द्वारा रोगों व विपदाओं को दूर करने का दावा करते हैं। कुछ व्यक्ति यह दावा करते हैं कि उन्होंने प्रेतों को अपने वश में कर रक्खा है और वे उनसे अपना मन चाहा कार्य करा सकते हैं।

ऐसा ही एक तान्त्रिक मोहम्मद छैल था। उसका जन्म उदयपुर (राजस्थान) जिले के आमेर नामक कस्बे में सन् १८९८ में हुआ था। अप्रैल १९४८ में वह रेल में बैठा जा रहा था कि टिकट चैकर आ गया। टिकट चैकर ने उससे टिकट दिखाने के लिये कहा। उस तान्त्रिक ने अपना हाथ ऊपर किया और उसके हाथ में रेल का टिकट आ गया। टिकट चैकर ने उसे

टिकट को पंच भी कर दिया। फिर उस तान्त्रिक ने डिब्बे के अन्दर रेल के टिकटो की बारिश-सी करा दी। टिकट-चैकर ने वे सब टिकट भी पंच कर दिये। थोड़ी देर बाद ही वे सब टिकट गायब हो गये। एक बार उस तान्त्रिक ने एक खोये हुए बालक का पता बतलाया था।

ऐसे भी कई तान्त्रिक देखे गये है जो शून्य में से भोजन की सामग्री फल, मिष्ठान आदि मगवा देते है और अन्य व्यक्ति उनका सेवन भी कर लेते हैं।

कुछ ऐसे तान्त्रिक भी होते है जो अपनी तन्त्र-विद्या के द्वारा दूसरों की जान भी ले लेते है। इस क्रिया को मूठ चलाना कहते है।

कुछ तान्त्रिक दूसरे व्यक्तियो को अपने प्रभाव में ले आते है। वे प्रभावित व्यक्ति बिलकुल विवश-से हो जाते है और जिस प्रकार तान्त्रिक कहता है वैसा ही मानने लगते हैं। यदि तान्त्रिक कहता है कि इस समय बहुत ठण्ड है तो उससे प्रभावित हुए व्यक्ति ठण्ड का अनुभव करने लगते हैं। यदि तान्त्रिक कहता है कि इस समय बहुत गर्मी है तो तान्त्रिक के प्रभाव में आये हुए व्यक्ति गर्मी का अनुभव करने लगते है। घडी में चाहे चार बजे हों, किन्तु यदि तान्त्रिक कहता है कि घडी में बारह बजे है तो उस तान्त्रिक से प्रभावित व्यक्तियों को घडी में बारह वजते हुए ही दिखायी देते है।

कुछ तान्त्रिक अपनी इस शक्ति को बुरे कार्यो के लिये भी प्रयोग करते हैं। जैसे तान्त्रिक किसी व्यक्ति को प्रभावित करके उससे रुपये, आभूषण आदि देने को कहता है। वह व्यक्ति उस तान्त्रिक को अपनी वस्तुएं देता रहता है। जब तान्त्रिक उन वस्तुओ को लेकर दूर चला जाता है, तब वह व्यक्ति उस तान्त्रिक के प्रभाव से मुक्त हो पाता है। इसी प्रकार तान्त्रिक किसी दुकान पर जाते है और दुकानदार के देखते देखते ही दुकान से सामान ले जाते हैं। परन्तु दुकानदार उन्हे ऐसा करते हुए गुमसुम सा बैठा देखता रहता है, न तो वह कुछ बोल ही पाता है, न उनको रोक ही पाता है। जब तान्त्रिक सामान लेकर दूर चला जाता है तब दुकानदार को सुध आती है। ऐसी घटनाए समाचार पत्रो मे प्रकाशित होती रहती है।

एक बार एक तान्त्रिक ने एक व्यक्ति की बाँह पर दृष्टि गड़ाई जिससे उसकी बाँह को पक्षाघात हो गया। इतना ही नही उस तान्त्रिक ने केवल अपनी दृष्टि के बल पर ही उस बाह को रस्सी की तरह मरोड दिया। उस बांह के इलाज के लिये डाक्टरों को बुलाया गया और जब डाक्टर उसकी बांह को सीधा करने का प्रयत्न करने लगे तो तान्त्रिक की दृष्टि से उनके औज़ार टूट गये। अन्त में उस तान्त्रिक ने अपनी दृष्टि के बल से ही उस बांह को एकदम ठीक कर दिया।

इन घटनाओं को चाहे तन्त्र का चमत्कार कहलें चाहे सम्मोहन विद्या का, चाहे तान्त्रिक की इच्छा शक्ति का।

कुछ तान्त्रिक यह दावा करते हैं कि वे रोगों को दूर कर सकते हैं, तथा अनिष्ट ग्रहों के प्रभावों को भी दूर कर सकते हैं। कुछ तान्त्रिक प्रेत-बाधा दूर करने का भी दावा करते हैं।

मेरठ जनपद के स्वामी बालचन्द्रानन्द नामक सत अपनी सिद्धियो व चमत्कारों के लिये बहुत प्रसिद्ध रहे है। एक बार वे एक नाई से हजामत बनवा रहे थे। नाई उनकी एक तरफ़ की दाढ़ी के बाल साफ़ कर चुका था कि उसको बहुत जोर से रोना आ गया। उन संत ने उस नाई से रोने का कारण पूछा तो वह बोला कि उसका एक मात्र पुत्र बहुत दिनों से घर से लापता है। इस समय उसी की याद आ जाने से रोना आ गया। वे सत उसी समय वहा से उठकर दुकान में बनी एक कोठरी मे चले गये और कुछ क्षणो में वापिस आकर बोले, "तू चिन्ता न कर, तेरा बेटा आज रात को ही वापिस आ जायेगा।" और वास्तव में उस नाई का बेटा उसी रात को घर वापिस आ गया। लड़के ने बतलाया कि आज दिन में एक साधु ने, जिनकी दाढी के आधे बाल साफ़ थे, मुझे रेल का टिकट देकर घर लौटने को कहा था।

संत देवरहा बाबा भी अपनी सिद्धियो के लिए प्रसिद्ध है। एक बार वे सरयू के तट पर ठहरे हुए थे, तब सारन (बिहार) जिले के गुटनी पुलिस थाने के सब-इंसपेक्टर श्री सत्यनारायण सिह सपरिवार उनके दर्शन के लिये आये। जब वे वापिस जाने लगे तो सत ने उनसे मजाक में पूछा, "बच्चा, क्या तेरी पिस्तौल ठीक है?" सब इस्पेक्टर के हा कहने पर संत ने उनसे गोलियां छोड़कर दिखलाने को कहा। सब इस्पेक्टर ने पिस्तौल का घोड़ा दबाया परन्तु गोलियाँ नही छूटीं। सत ने फिर कहा, "जरा अब गोली छोड़ो।" तब पिस्तौल का घोड़ा दबाते ही गोली छूट गयी। इस चमत्कार को देखकर सब आश्चर्य चकित रह गये। अब भी (सन् १९८३ मे) बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ व सत्ताधारी तथा बुद्धिजीवी उनका आशीर्वाद लेने के लिये उनके पास जाते रहते हैं।

सन १९८३ के आरम्भ के महीनों में कुछ समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में एक चित्र छपा था। इस चित्र में एक प्रदेश के मुख्यमंत्री इन संत का पैर अपने सिर पर रखवा कर उनका आशीर्वाद प्राप्त कर रहे थे।

राजस्थान के भोपे

राजस्थान के भोपे भी चमत्कारी उपचार करने का दावा करते है। वे सर्प-दंश का इलाज भी करते हैं। उनमें कुछ स्याने भी होते हैं जो मारण

व वशीकरण तथा अपने विपक्षी को अन्य प्रकार से हानि पहुंचाने का कार्य करते है। वे विपक्षी के स्याने के द्वारा की गयी चोट से अपने पक्ष की रक्षा भी करते है। जब उनमे अपने मान्य देवताओं व देवियो (शिव, भैरव, भवानी, काली, हनुमान, पाबूजी, तेजाजी, गोगाजी, रामदेव आदि) की छाया आ जाती है तो वे आवेश में आ जाते है उस समय वे अपने शरीर पर कांटेदार चाबुको से प्रहार करते है जिससे उनका शरीर लहुलुहान हो जाने पर भी उनको पीड़ा नही होती। वे अपनी जीभ को छेद लेते है। अपनी आंखो की पलको में सुई आर-पार निकाल लेते है।

परकाया प्रवेश

कई तान्त्रिक व योगी जब बूढे हो जाते है तो अपनी आत्मा को किसी अन्य युवा व्यक्ति के मृत शरीर मे प्रविष्ट करा देते है और फिर से युवा हो जाते हैं।

जगद्‌गुरु शकराचार्य के सम्बन्ध मे तो यह तथ्य प्रसिद्ध है कि उन्होने अपनी आत्मा एक मृत राजा के शरीर मे प्रविष्ट कराई थी और पर्याप्त समय तक उस राजा के रूप मे रहे थे। जितने समय तक उनकी आत्मा उस राजा के शरीर मे रही, उतने समय तक उनके आदेश के अनुसार उनका शरीर सुरक्षित रखा गया था। जिस कार्य के लिये उन्होने अपनी आत्मा राजा के मृत शरीर मे प्रविष्ट कराई थी, जब वह कार्य पूरा हो गया तो उनकी आत्मा अपने शरीर मे वापिस आ गयी थी।

वर्तमान मे भी ऐसी कुछ घटनाये प्रकाश में आई हैं।

श्री एल० पी० फंटेल भारतीय कमान के भूतपूर्व प्रधान सेनापति रहे है। उन्होने सन् १९३९ के आस-पास की एक घटना का वर्णन किया है। वे आसाम बर्मा की सीमा पर एक नदी के किनारे कुछ अन्य सैनिक अधिकारियो के साथ एक सैनिक योजना बनाने मे लगे थे, तभी उन्होने नदी में एक बूढे व्यक्ति को एक युवा व्यक्ति के मृत शरीर के साथ देखा। बूढ़ा व्यक्ति उस मृत देह को नदी से बाहर खीच कर ले आया और पेड़ो के एक झुरमुट के पीछे ले गया। कुछ समय पश्चात वह मृत व्यक्ति चलता हुआ दिखाई दिया। उस व्यक्ति को पकड़ कर लाया गया, तब उस व्यक्ति ने बतलाया कि वह योग जानता है और यौगिक क्रिया के द्वारा उसने अपनी आत्मा को अपने बूढ़े शरीर से निकालकर उस युवा व्यक्ति के मृत शरीर मे प्रविष्ट करा दिया है। जाच करने पर बूढ़े व्यक्ति का शव पेड़ो के झुरमुट के पीछे पड़ा मिला।

ऐसी ही एक घटना सन् १९३६ में माडलगढ़ राजस्थान के पास स्थित गुप्तेश्वर महादेव के मन्दिर मे हुई थी। उस मन्दिर के पास नित्यानन्द घोष

नाम के एक योगी एक कुटिया में रहते थे। वह योगी बहुत वृद्ध हो गये थे। तब उन्होंने अपने एक भक्त की सहायता से अपनी आत्मा एक मुसलमान जुलाहे के मृत शरीर में प्रविष्ट कराई थी। उसके पश्चात वह योगी उस स्थान से चले गये। उसके बारह वर्ष के बाद वह योगी उस भक्त को उज्जैन के अर्द्ध-कुम्भ के मेले में मिले थे।

इसी प्रकार की एक घटना का पता जम्मू नगर से भी लगा है। वहां भी एक वृद्ध योगी ने अपनी आत्मा एक मृत युवक के शरीर में प्रविष्ट कराई थी।

कहा जाता है कि हिमालय पर्वत पर बहुत से योगी रहते है जिनकी आयु सैकड़ो वर्षों की है। सभव है कि वे योगी अपने शरीर के अधिक वृद्ध हो जाने पर किसी कम आयु के शरीर में अपनी आत्मा प्रविष्ट करा लेते हों। और इस प्रकार उनकी आयु सैकड़ो वर्षों की हो गयी हो।

कुछ जादूगर भी बहुत ही आश्चर्यजनक खेल दिखलाते है। वे अपने हाथ पैर बंधवाकर सन्दूक में बन्द हो जाते है, उस सन्दूक को मजबूती से बन्द करके नदी या समुद्र में डलवा देते है। सन्दूक को पानी में डालने के एक दो मिनट के बाद ही वे सन्दूक से बाहर निकल आते है। वे किसी व्यक्ति को हवा में झुला देते है, हवा में से मनचाही वस्तु पैदा कर देते है। वे आंखो पर मोटी-मोटी पट्टिया बाधकर भरे हुए बाजारो में मोटर-साइकिल चला लेते है। इनमें से कुछ खेल हाथ की सफाई के होते है जो निरन्तर अभ्यास करते रहने से आते हैं। कुछ खेल विशेष प्रकार के बने हुए उपकरणों के प्रयोग से किये जाते है। कुछ खेलो में सम्मोहन का प्रयोग भी किया जाता है, जिसके प्रभाव से दर्शक जादूगर के प्रभाव में आ जाते है और जैसा-जैसा जादूगर कहता है उसके कहे अनुसार ही मानते जाते है।

कुछ वर्ष पहले दिल्ली से प्रकाशित होने वाले "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में "उड़ते सन्यासी" शीर्षक से एक लेखमाला प्रकाशित हुई थी जिसमें नेपाल के पहाड़ो में रहने वाले यौगियों व तान्त्रिको की सिद्धियो का बहुत ही विस्मयजनक वर्णन किया गया था।

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका "कादम्बिनी" के नवम्बर १६८१, नवम्बर १६८२ व दिसम्बर १६८२ मे तन्त्र विशेषाक प्रकाशित हुए हैं। इन विशेषांको मे भी तान्त्रिकों व योगियों की सिद्धियो का आश्चर्यजनक वर्णन दिया हुआ है। इस पत्रिका के नवम्बर १६८३ के अंक में भी कुछ ऐसे ही तथ्य दिये हुए हैं। "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" के १५ जनवरी १६८४ के अंक में भी कुछ ऐसे ही तथ्य दिये हुए हैं।

प्रेतात्माएं

कुछ व्यक्ति प्रेतों के अस्तित्व को नहीं मानते। वे इन प्रेतों को निर्बल हृदय वाले व्यक्तियो का वहम मानते हैं। इसके विपरीत बहुत से विश्वसनीय व प्रसिद्ध व्यक्तियो ने अपने अनुभवो के आधार पर प्रेतात्माओ के अस्तित्व की पुष्टि की है। भारतवर्ष में ही नही पश्चिम के विकसित देशों में भी अधिकांश व्यक्ति प्रेतों के अस्तित्व को स्वीकार करते है।

कुछ व्यक्तियो का ऐसा विश्वास है कि अमेरिका के राष्ट्रपति भवन (White House) मे प्रेत घूमते रहते है। ये प्रेत भूतपूर्व राष्ट्रपतियो व उनकी पत्नियो के है। राष्ट्रपति भवन से सम्बन्धित अनेक व्यक्तियो तथा वहाँ पर ठहरने वाले कुछ अतिथियों का कहना है कि उन्होने राष्ट्रपति अब्राहम लिकन के प्रेत को देखा है। राष्ट्रपति मैडिसन और राष्ट्रपति एडम्स की पत्नियो के प्रेत भी राष्ट्रपति भवन मे देखे गये हैं।

लदन मे "थियेटर रायल" नामक एक थियेटर है। कहा जाता है कि वहा पर प्रेत आते रहते है और अनेको व्यक्तियो ने उन प्रेतो का देखा भी है।

इगलैंड के अनेको प्राचीन महलो व किलो मे भी प्रेत घूमते देखे गये है।

कराची (पाकिस्तान) का वह भूमिखड जिस पर अमरीकी दूतावास बनाया गया है श्रापग्रस्त कहा जाता है।

इस भूमिखड मे किसी पीर की पुरानी क़ब्र है जिसकी देखभाल एक फकीर करता था। सन १९१५ के लगभग यह भूमिखड सोहराब जी रुस्तम जी पोटवाला नाम के एक सज्जन ने अपना भवन बनवाने के लिए खरीदा था। उस फ़कीर ने सोहराब जी को उस भूमिखण्ड पर अपना भवन बनवाने के लिये मना किया, परन्तु सोहराब जी ने कोई ध्यान नही दिया। कहा जाता है कि कुछ ही दिनो मे सोहराब जी और उसके तीनो पुत्रो की मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात यह भूमिखंड जिस-जिस व्यक्ति के पास रहा, उन सब की विचित्र परिस्थितियो मे मृत्यु हो गयी। सन १९५५ मे अमेरिकी सरकार ने अपना दूतावास बनाने के लिये यह भूमिखड खरीदा। दूतावास के बनकर तैय्यार होने पर सन १९६१ मे अमरीकी उपराष्ट्रपति श्री लिंडन जोनसन दूतावास का उद्घाटन करने आये, तो वहा पर उन्हे अजीब-अजीब बाते सुनाई व दिखाई दी। अन्य अमरीकियो ने भी उन्हे बतलाया कि रात को अजीब-अजीब आकृति वाले प्रेत दूतावास की छत पर घूमते देखे गये है।

ऐसी भी घटनाएं प्रकाश मे आई है जब प्रेतो ने अपने पिछले मनुष्य जन्म के समय के मित्रों व सम्बन्धियों की सहायता की है और उनका अहित

करने वाले व्यक्तियों को कष्ट भी दिया है। ऐसा वे किसी न किसी माध्यम के द्वारा ही करते है। अर्थात वे किसी व्यक्ति के शरीर पर अधिकार कर लेते हैं और वह व्यक्ति(माध्यम)उस प्रेत की इच्छानुसार कार्य करने लगता है।

इस सम्बन्ध में इटली के भूतपूर्व तानाशाह मुसोलिनी की बहुत चर्चा है। कहा जाता है कि मुसोलिनी की अरबों रुपये की बहुमूल्य सम्पत्ति का अभी तक कुछ भी पता नही चला है। जिन-जिन व्यक्तियो ने मुसोलिनी को पकड़वाने में भाग लिया तथा जिन-जिन व्यक्तियो ने उसकी सम्पत्ति को खोजने का प्रयत्न किया वे सभी रहस्यपूर्ण ढंग से मृत पाये गये।

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक "सांध्य टाइम्स" के १० मार्च १९८० के अंक मे एक समाचार प्रकाशित हुआ है, जिसका सारांश इस प्रकार है —

नागपुर में तीन भाई रहते थे। उन्होने एक उद्योग प्रारम्भ किया। बिचले भाई की योग्यता के कारण वह उद्योग निरन्तर प्रगति करता रहा। कुछ समय के पश्चात बड़े भाई ने अपना अलग उद्योग स्थापित कर लिया, लेकिन उसे सफलता नही मिली। अपने उद्योग मे हानि उठाकर बड़े भाई ने फिर से पुराने उद्योग में हिस्सेदार के रूप में आना चाहा, जिसके कारण बड़े भाई और बिचले भाई में मनोमालिन्य हो गया। अचानक बिचले भाई की मृत्यु हो गयी। बड़ा भाई इस परिस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करने लगा। बिचले भाई की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात, उसके प्रेत ने छोटे भाई की पत्नी के शरीर मे प्रवेश किया। छोटे भाई की पत्नी ने मृत भाई के समान कड़कती हुई आवाज मे चैक बुक मागी। चैक बुक मिलने पर उसने मृत भाई के हस्तलेख मे चैक में उतने रुपये लिखे जितने बैंक मे जमा थे और मृत भाई के ही हस्ताक्षर किये। बैंक से यह चैक पास भी हो गया। एक बार फिर बिचले भाई के प्रेत ने छोटे भाई के शरीर मे प्रवेश किया और चेतावनी दी कि अगर बड़े भाई ने उद्योग की हिस्सेदारी के लिये अपना नाजायज दावा नही छोड़ा तो बड़े भाई और उसके बच्चो को उसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ेगा। इस चेतावनी के क्षण भर बाद ही बड़ा भाई और उसके बच्चे पीड़ा से तड़पने लगे। जब उन्होने दावा छोड़ने का वचन दिया तभी उनको पीड़ा से मुक्ति मिली।

एक बार फिर बिचले भाई के प्रेत ने छोटी बहू के माध्यम से ही बड़े भाई से कहा कि जब तक उसका हिस्सा उसकी पत्नी को नहीं दिया जायेगा, तब तक वह बड़े भाई को चैन से नही बैठने देगा और कहा कि यदि उसने उसकी पत्नी को तंग किया तो वह उसके अधिकारों की रक्षा के लिये सदैव

तत्पर रहेगा। बिचली बहू को अपने मृत पति का कानूनी वारिस बना देने के बाद वह प्रेत फिर नही आया।

अनेको बार ऐसा भी होता है कि कुछ प्रेत अपने पिछले जन्मो के शत्रुओं को शारीरिक कष्ट देते हैं तथा उनको रोगी कर देते हैं। इसी प्रकार किसी परिवार के कपड़ों में रहस्यपूर्ण ढंग से आग लगने, किसी मकान पर पत्थर फेके जाने, किसी मकान की वस्तुओ के अस्त-व्यस्त हो जाने तथा इसी प्रकार के अन्य उपद्रव होने की घटनाएं भी हम यदा-कदा समाचार पत्रों मे पढते व सुनते रहते है। कुछ ऐसे स्याने, पीर, फकीर, तान्त्रिक आदि है जो इन उपद्रवो को शान्त करने का दावा करते है। कभी-कभी ऐसे व्यक्तियो के द्वारा ऐसे उपद्रव शान्त होते हुए भी देखे जाते है।

अनेको बार ऐसा भी देखा गया है कि कोई प्रेत किसी व्यक्ति के शरीर मे प्रवेश कर जाता है। उस समय वह व्यक्ति आवेश में आ जाता है। ऐसी अवस्था मे वह व्यक्ति उस प्रेत के पिछले जन्म वाले व्यक्ति की तरह ही बोलने लगता है। उसके हाव-भाव, उसकी आवाज उस प्रेत के पिछले जन्म वाले व्यक्ति के समान ही हो जाते है। जितनी देर तक प्रेत उस व्यक्ति के शरीर मे रहता है वह आवेशित व्यक्ति अपने असली व्यक्तित्व मे नही रहता है। कभी-कभी तो यह अवधि पर्याप्त लम्बी, कई-कई महीनो तक की हो जाती है।

राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में बालाजी नामक एक स्थान है। यह स्थान बांदीकुई स्टेशन से लगभग बीस-पच्चीस किलोमीटर दूर है। वहा पर कुछ मन्दिर बने हुए है। वहा पर प्रेतो से पीड़ित व्यक्तियो को लाया जाता है। वहा पर कुछ व्यक्तियो को इन प्रेतो के उपद्रव से मुक्त होते हुए भी देखा जाता है।

भारत के एक सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि की पत्नी बहुत समय से कैंसर के असाध्य रोग से पीड़ित थी। उन कवि के एक परम मित्र थे जिनको कवि को पत्नी भी बहुत मानती थी। मृत्यु तो अवश्यम्भावी ही थी। मृत्यु से पहले वह अपने पति के मित्र से मिलना चाहती थीं। परन्तु किसी कारण-वश कवि के मित्र उनसे मिलने नहीं आ सके। जिस दिन कवि की पत्नी का निधन हुआ उसी दिन रात्रि में कवि के मित्र को कवि की पत्नी दिखलाई दी। उन महिला के प्रेत ने कवि के मित्र से कहा "तुम नहीं आये, हम जात रहे, सोचा तुमसे मिलत जाई।" मित्र को उस समय तक उनकी मृत्यु की खबर नही थी।

उन कवि ने अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उनका श्राद्ध आदि कुछ नहीं किया था। कुछ समय के पश्चात् उनकी पत्नी के प्रेत ने प्लानचट के माध्यम से कवि के मित्र से कहलवाया "मैं वर्षों से बहुत भूखी हूं।" यह संदेश मिलने के पश्चात उन कवि ने विधि-विधान पूर्वक श्राद्ध आदि किया। उसके पश्चात् उस प्रेत ने कोई संदेश नहीं दिया।

सन् १९७२ की फ़रवरी की बात है। उन कवि के उन्ही परम मित्र की कन्या का विवाह था। कवि के कोई पुत्री नही थी। वे उस कन्या को ही अपनी पुत्री के समान मानते थे। किसी आवश्यक कार्य-वश वे विवाह में सम्मिलित नही हो सकते थे। उन्होने अपने न आने की सूचना मित्र को भी दे दी थी। विवाह के दिन से पहली रात को कवि को उनकी छत्तीस वर्ष पहले मृत पत्नी दिखलाई दी। पत्नी ने उनसे कहा "कल तुम्हारे परम मित्र की पुत्री का विवाह है और तुम यहा पड़े हो। तुम्हें तो वहां उनके साथ होना चाहिए था।" अपनी मृत पत्नी से यह सन्देश मिलने के पश्चात वह कवि तुरन्त ही वायुयान से अपने मित्र के यहां गए और ठीक समय पर पहुंच कर उन्होने सारे संस्कार अपने हाथो से कराये।

कई बार मरणासन्न व्यक्तियो को प्रेत दिखाई देते है। उस समय वे कहते है कि अमुक व्यक्ति मुझे बुला रहा है।

२८ जौलाई १९८० को उत्तर प्रदेश के किशन थाना के तरेपुरा गांव के पास पुलिस व डाकुओ की बीच हुई मुठभेड़ में दर्शन सिंह यादव नामक एक डाकू मारा गया था।

अप्रैल-मई १९८३ मे दर्शन सिह यादव का प्रेत रात को अपनी विधवा पत्नी के पास आता था और एक पीढ़ी पर बैठकर उससे सुख-दुख की बाते करता था। वह प्रेत डाकू के भेष में ही होता था और उसकी आवाज और तौर तरीके बिलकुल दर्शन सिह यादव की तरह ही होते थे। गांव के लोगो ने इस बात की छानबीन की और इसको सत्य पाया।

पश्चिमी देशो के कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि उन्होने प्रेतों की आवाजे टेप-रिकार्ड मे टेप की है और प्रेतों के फ़ोटू भी लिए है।

जरमनी के एक वैज्ञानिक का तो यहां तक कहना है कि उसने कुछ दिवंगत प्रसिद्ध व्यक्तियो के प्रेतो की आवाजे रिकार्ड की है और वे आवाजें उनकी असली आवाजो (जिस समय वे जीवित थे) के समान ही हैं।

प्रेतों की बारात

राम गंगा के पुल को पार करके मर्चुला नामक स्थान आता है। मर्चुला के आगे पहाड़ी इलाका आता है। लगभग दो घन्टे की बस

यात्रा के पश्चात दीवागढ गुजडगढ़ नामक दो चोटियां आती हैं। इन चोटियो के बीच में दिगोली नामक गांव है। उस गांव में जब कोई व्यक्ति मरने वाला होता है तो उससे आठ-दस दिन पहले कुछ प्रेत एक दुकान पर आते है। वे उस दुकान पर कुछ टोकरे आदि, एक कागज पर सामान की सूची और कुछ रुपये दे जाते है। उस कागज पर वह तारीख भी लिखी होती है जिस दिन वह सामान चाहिए। ऐसा होते ही उस गाव वाले समझ जाते है कि गाव मे अमुक तारीख को किसी व्यक्ति की मृत्यु होने वाली है। गाव के लोग दिल थाम कर उस तारीख का इन्तजार करते रहते है। नियत दिन प्रेत गाजे बाजे के साथ आते है। यदि किसी स्त्री की मृत्यु होने वाली होती है तो उनके साथ एक डोली होती है, यदि किसी पुरुष की मृत्यु होने वाली है तो उनके साथ पालकी होती है। ये प्रेत उस मकान तक जाते है जहा किसी की मृत्यु होने वाली होती है और फिर वहां से लौट पड़ते है। उसी क्षण उस मकान मे मृत्यु हो जाती है। लौटते वक्त ये प्रेत उस दुकान-दार के यहा रखा हुआ सामान उठा कर ले जाते है। गांव की सीमा के बाहर पहुचते ही ये प्रेत लोप हो जाते है। अन्य गांवों के व्यक्तियो ने भी इन प्रेतो को देखा है।

अतीत में घटी घटनाओ का वर्तमान में दिखाई देना

कभी-कभी ऐसा होता है कि भूतकाल मे घटी घटनाओ के दृष्य वर्तमान मे दिखाई दे जाते है और भूतकाल मे बोली हुई आवाजे भी वर्तमान में सुनाई दे जाती है। ये दृश्य व आवाजे किसी एक आदमी को ही या केवल उस आदमी को ही जिसकी उपस्थिति में ये घटनाए घटी हो दिखलाई व सुनाई नही देती, अपितु ये दृश्य व आवाजे उन अनेक व्यक्तियों ने देखी व सुनी है जो वास्तविक घटनाओ के समय पैदा भी नही हुए थे।

१३ फरवरी १७४८ को 'लेडी लवबोड' नामक तीन मस्तूलो वाला एक जहाज केट (इगलंड) के पूर्वी तट से आठ किलोमीटर दूर एक रेतीले टापू से टकराकर डूब गया था। यह घटना सन् १८४८, सन् १८६८ और सन् १६४८ मे बिलकुल ज्यो का त्यो दिखलाई दी।

२२ अक्तूबर १६२४ को एज हिल (नार्थपटन शायर, इगलंड) मे एक भीषण युद्ध लड़ा गया था। लगभग तीन सौ साल बाद इस युद्ध के दृश्य को बहुत से व्यक्तियो ने देखा।

बहुत से वैज्ञानिको ने इस तथ्य की पुष्टि की है। परन्तु वैज्ञानिक अभी तक इस प्रकार की घटनाओ का कोई कारण नही बता सके।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि किन्हीं लेखकों ने अपनी मृत्यु के बाद माध्यमों के द्वारा अपनी अधूरी रचनाएं पूरी करायी हैं। इस सम्बन्ध में चार्ल्स डिकेंस का नाम लिया जाता है। जब चार्ल्स डिकेंस की मृत्यु हुई उस समय वे एक उपन्यास "द मिस्ट्री आफ एडविनड्रूड" लिख रहे थे। मृत्यु के कारण उनका यह उपन्यास अधूरा ही रह गया था। श्री टी. पी. जैम्स नामक एक माध्यम के द्वारा यह उपन्यास पूरा हुआ। टी. पी. जैम्स एक अशिक्षित मैकेनिक थे।

इसी प्रकार सन् १९१३ के लगभग अमरीका की एक साधारण पढी लिखी महिला श्रीमती कुर्रान ने कई उपन्यास व कविताएं लिखी। श्रीमती कुर्रान का कहना था कि "पेशेस वर्थ" नामक व्यक्ति के प्रेत ने मुझ से ये रचनाएं लिखवाई थी। इन रचनाओ में १७वी शताब्दी के इंगलैंड का सविस्तार चित्रण किया था जब कि श्रीमती कुर्रान को उस समय के इंगलैंड के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञान नही था।

इंगलेंड के नगर ग्लूसेस्टर में रहने वाली पैट्रिशीया नामक महिला का कहना है कि जार्ज बर्नार्ड शा का प्रेत उससे कहानिया, उपन्यास तथा नाटक लिखवाता है। पैट्रिशीया की शैली और बर्नार्ड शा की शैली में कोई अन्तर प्रतीत नही होता।

हिन्दी उपन्यासकार श्रीयुत रानू का कुछ समय पहले निधन हो चुका है। उनकी पत्नी श्रीमती सरला का कहना है कि शाम को उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि रानू अपनी कुर्सी पर बैठ कर उसे लिखने के लिए बुला रहे हैं और वे आवेश की इसी अवस्था में कुर्सी पर बैठ कर लिखने लगती हैं।

श्रीमती बीजरुस न्यूयार्क की निवासिनी थीं। सन् १९३६ में वे चित्रकार बनने की आकांक्षा लेकर पेरिस आई थीं। परन्तु वे सफल नहीं हो सकी। इसी निराशा की अवस्था में एक रात उन्हे ऐसा लगा कि कोई अज्ञात शक्ति उन्हे झिझोड रही है। वह सोते हुए ही अपने स्टुडियो की ओर चल पड़ीं। स्टुडियो में जाकर उन्होंने अंधेरे में ही कागज पर ब्रुश चलाना शुरू कर दिया। कुछ देर इस प्रकार ब्रुश चला कर वह बिस्तर पर आकर सो गयी। सवेरे उन्होंने देखा कि कागज पर एक बहुत ही सुन्दर चित्र बना हुआ है। ऐसा कई बार हुआ जिससे उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। तभी उनको एक ऐसी महिला का पता चला जो किसी वस्तु को छूकर व देखकर उस वस्तु के सम्बन्ध में अनजानी बातें बता सकती थी। श्रीमती बीजरुस को उस स्त्री के द्वारा पता चला कि ये चित्र स्पेन के चित्रकार गोया के प्रेत ने उसके माध्यम से बनाये हैं।

इंगलैंड की राजधानी लन्दन में रहने वाली श्रीमती रोजमेरी ब्राउन का कहना है कि उनको बहुत से मृत संगीतकारों की आत्माएं संगीत सिखाती हैं। श्रीमती रोजमेरी ब्राउन ने सैकड़ों संगीत-धुनें तैयार की है जो एक अति कुशल संगीतकार के लिए भी बहुत कठिन है।

प्रेतों द्वारा उपचार

श्री सी० डब्लू० लेडवीटर ने दो पुस्तके लिखी है, "दी इनविजिबल हैल्पर" तथा "दी अदर साइड आफ डैथ।" इन पुस्तकों मे उन्होने बताया है कि कुछ मृत डाक्टर, जो अपने मनुष्य जीवन में विशेष दयालु व परोपकारी रहे थे, किन्ही जीवित व्यक्तियों के माध्यम से रोगियों का उपचार करते हैं। ये माध्यम भी दयालु व परोपकारी ही होते है। ऐसे ही व्यक्ति इंगलैंड के श्री हैरी एडवर्ड थे। वे रोगी पर अपने मन को केन्द्रित करके रोगी के नीरोग होने की कामना करते थे। वह रोगी के सामने रहने व सामने न रहने पर दोनो ही दशा में उपचार करते थे। उनका जन्म २६ मई १८६३ को हुआ था। ४२ वर्ष की आयु में उन्होने इस प्रकार का उपचार करना शुरू किया। ४१ वर्ष तक उन्होंने विश्वभर के लाखों रोगियो को जटिल से जटिल तथा असाध्य रोगों से मुक्त किया। ६ दिसम्बर १६७६ को ८३ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हो गई। भारत में भी बहुत से रोगियो को उनके उपचार से स्वास्थ्य-लाभ हुआ है। उनकी मृत्यु के पश्चात अभी भी इस पद्धति मे रोगियो का उपचार हो रहा है। उनकी संस्था का पता है Mr. Ray Branch, The Harry Edward Sanctuary, Burrow Lea Shere Guilford, Surrey, England

भारत में भी डा० रामाकान्त कैनी, (बम्बई होसपिटल, न्यू मैरीन लाइन्स, बम्बई—२०) इसी पद्धति से उपचार करते है। उनके द्वारा भी हजारों व्यक्ति स्वास्थ्य-लाभ कर चुके हैं।

इनके अतिरिक्त भारत में कुछ अन्य व्यक्ति भी रोगियों को इसी प्रकार स्वास्थ्य-लाभ करा रहे है।

पश्चिमी बंगाल के कामदेवपुर नामक गांव में सूर्यमैती नामक एक वृद्ध व्यक्ति है। उस पर प्रत्येक मंगल व शनिवार को पीर गोराचन्द्र का प्रेत आता है। उस समय वह वृद्ध रोगियो को उनके रोगों के उपचार के लिए औषधि बतलाता है। इस प्रकार से अनेक असाध्य रोगी ठीक हुए है। अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति भी उस स्थान पर हो आये हैं और वे इस बात को ठीक बतलाते है।

प्रभा मण्डल

प्राचीन काल के विचारकों का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति का प्रभा-मण्डल होता है। यह प्रभा-मण्डल नंगी आंखों से देखा नहीं जा सकता। प्राचीन काल से ही कलाकार देवी-देवताओं की मूर्तियों व चित्रों के सिर के पीछे प्रभा-मण्डल बनाते रहे हैं। आधुनिक विचारों के बहुत से व्यक्ति प्रभा-मण्डल के अस्तित्व को केवल कल्पना ही मानते हैं। परन्तु गवर्नमेन्ट जनरल हस्पताल, मदरास के Institute of Neorology के डाक्टर पी० नरेन्द्रन और उनके साथियों ने प्रभा-मण्डल के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया है। उन्होंने एक उपकरण बनाया है जिससे प्रभा-मण्डल का चित्र उतारा जा सकता है। उन्होंने इसको KIRLIAN PHOTOGRAPHY का नाम दिया है। इससे पहले भी सन् १६३४ के आस-पास रूस के Kirlian Brothers ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया था। उसके पश्चात् सन् १६५० मे सन्त थोमस हस्पताल, लन्दन के Shri W. J. Kilner ने भी इस दिशा में प्रयत्न किये थे।

मदरास के डा० पी० नरेन्द्रन ने जो उपकरण बनाया है उससे प्रभा-मण्डल का चित्र लेने में तीन मिनट का समय लगता है और केवल २० पैसे व्यय आता है। वे अभी तक अंगुलियों के छोरो (Finger-tips) के प्रभा-मण्डल के चित्र लेने में सफल हुए हैं। परन्तु उनका विश्वास है कि वे शीघ्र ही सारे शरीर के प्रभा-मण्डल के चित्र लेने में सफल हो जायेंगे। अपने अध्ययन से वे निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुचे हैं—

प्रत्येक व्यक्ति का तथा प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना प्रभा-मण्डल होता है। ये प्रभा-मण्डल बिलकुल भिन्न-भिन्न होते है। स्वस्थ व रोगी, जीवित व मृत व्यक्तियो के प्रभा-मण्डलों में बहुत अन्तर होता है। ये प्रभा-मण्डल लाल, हरे, पीले, नीले, गहरे नीले रंग के होते हैं। इन प्रभा-मण्डलों को देखकर यह बताया जा सकता है कि प्रभा-मण्डल का चित्र लेते समय उस व्यक्ति की मन-स्थिति कैसी थी, अर्थात् वह क्रोधित था या शान्त-चित्त। प्रभा-मण्डल के चित्र को देखकर यह भी बताया जा सकता है कि उस व्यक्ति को क्या रोग है, और भविष्य में क्या रोग होने की सम्भावना है। एक बार एक साधु के प्रभा-मण्डल का चित्र लिया गया। उस साधु का प्रभा-मण्डल बहुत ही चमकदार, गहरा व सुन्दर था।

हम एक तथ्य और स्पष्ट कर दें। हमने इस अध्याय में तान्त्रिकों की विशेष शक्तियों का उल्लेख किया है। कुछ तान्त्रिक अपने को बहुत अधिक शक्ति-सम्पन्न कहते हैं। वे दूसरों की भलाई करने, उनके रोग दूर करने, उनके बिगड़े कामों को बनाने, उनके अनिष्ट ग्रहों के प्रभावों को दूर

करने, उनके शत्रुओं से उनकी रक्षा करने, तथा उनके शत्रुओं को हानि पहुंचाने आदि का दावा करते हैं। कभी-कभी उनके ये दावे सत्य होते हुए भी देखे जाते हैं।

परन्तु हमारा तो यही दृढ विश्वास है कि किसी भी व्यक्ति को जो भी सुख व दुख, सफलता व असफलता, लाभ व हानि मिलते है, वे उनके अपने ही अच्छे व बुरे भाग्य के फलस्वरूप ही मिलते है। इन तान्त्रिको द्वारा किये हुए अनुष्ठान आदि तो केवल निमित्त मात्र ही होते है। यदि किसी व्यक्ति के भाग्य में दु ख मिलना है तो वह इन तान्त्रिकों से लाख अनुष्ठान व पूजा आदि करा ले, उसे दु:ख अवश्य ही मिलेगा। यदि इन तान्त्रिको में वास्तव में ही इतनी शक्ति होती कि वे जिसका चाहे बुरा करदें और जिसका चाहें भला कर दें तो यह पृथ्वी आज की पृथ्वी से बिल्कुल ही भिन्न हुई होती। यहां पर तो इन तान्त्रिको का ही राज्य होता। सत्ताधारी और धनवान व्यक्ति इन तान्त्रिको के बल पर सदैव सत्ताधारी और धनवान ही बने रहते। परन्तु ऐसा कभी नही होता। इन सत्ताधारियो और धनवानो के द्वारा इन तान्त्रिकों के माध्यम से नित प्रति यज्ञ, हवन व अनुष्ठान कराये जाते हैं फिर भी इन व्यक्तियो को कभी-कभी ही सफलता मिलती है। (वास्तव में सफलता तभी मिलती है जब उनका भाग्य अच्छा होता है।) इन तान्त्रिको के द्वारा इन सत्ताधारियो व धनवानो के पक्ष मे अनुष्ठान व पूजा आदि कराये जाने पर भी सत्ताधारियो को पदच्युत होते हुए और धनवानो को निर्धन होते हुए भी देखा जाता है। तथ्य तो यह है कि अधिकांश तान्त्रिक पैसा कमाने के लिए ही दूसरो के लिये अनुष्ठान, व पूजा आदि करते है तथा उनको गण्डे व तावीज़ आदि बना कर देते हैं।

इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों का यह विश्वास होता है कि अमुक मन्दिर अमुक मस्जिद, अमुक दरगाह, अमुक गुरुद्वारे, अमुक गिरजाघर में जाने से, अमुक मन्त्र को अमुक संख्या में जपने से व्यक्तियों की मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं। परन्तु यह भी ठीक नही है। यदि वास्तव में ही ऐसा हो जाता तो जितने व्यक्ति भी अपनी-अपनी मनोकामनाएं लेकर इन स्थानों पर जाते हैं तथा मन्त्रों का जाप करते हैं, उन सभी व्यक्तियो की मनो-कामनाएं पूरी हो गयीं होती। परन्तु ऐसा भी कभी नहीं होता। लाखो व्यक्ति इन स्थानो पर जाते हैं, परन्तु मनोकामनाएं तो गिने चुने व्यक्तियों की ही पूरी होती है। यहां भी वही बात है कि जिनका भाग्य अच्छा होता है केवल उन्ही की मनोकामनाएं पूरी होती हैं। अत: हमें इस सम्बन्ध में अपने मन में किसी प्रकार का अन्ध-विश्वास नहीं रखना चाहिये।

इस अध्याय की कुछ सामग्री आदरणीय मुनि श्री अमरेन्द्र विजय जी महाराज द्वारा लिखित तथा श्री जिनदत्त सूरी मण्डल, दादावाड़ी, अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तक "विज्ञान और अध्यात्म" से ली गयी है तथा कुछ सामग्री विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से ली गयी है। अतः हम उन सब के आभारी हैं।

इस अध्याय में तथा पृष्ठ ६१ पर दिये हुए अध्याय "क्या हमारी इस पृथ्वी से परे भी जीवन है?" में हमने जो भी वर्णन किया है, वह सब विवरण प्रसिद्ध, लोकप्रिय और विश्वसनीय समाचार पत्रों व पत्रिकाओं से लिया गया है। पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे विवरण प्रकाशित होते रहते हैं। यदि इन सभी विवरणों का संकलन किया जाये तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन सकता है। हमने विस्तार में न जाने के कारण कुछ ही विवरणो का उल्लेख किया है। यह हमारा विषय भी नही है। हम यह भी नही कहते कि जो भी विवरण हमने दिये हैं वे शत-प्रति-शत ठीक ही हैं और उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। हमारा अभिप्राय किसी प्रकार का अन्ध-विश्वास फैलाना भी नही है। इसके विपरीत हम तो अन्ध-विश्वास के शत-प्रति-शत विरुद्ध हैं। ये सब विवरण देने का हमारा तात्पर्य केवल इस तथ्य की पुष्टि करना है कि भौतिक शक्तियों के अतिरिक्त कुछ अभौतिक व अर्द्ध-भौतिक शक्तियों का अस्तित्व भी अवश्य है, जिनको हम अनदेखा नहीं कर सकते। हमारा मुख्य तात्पर्य तो इनके माध्यम से आत्मा के अस्तित्व व पुनर्जन्म की पुष्टि करना ही है।

●

शास्त्रों को जानते हुए भी जो लोक व्यवहार को नहीं जानता वह मूर्ख के समान है। —चाणक्य

●

जिसके हृदय में सार नहीं है, उसको उपदेश देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। जैसे कि मलयाचल के संसर्ग से बांस चन्दन नहीं बन सकते। —चाणक्य

●

सिखाने वाले आचार्य की कला उच्च कोटि के विद्यार्थी में प्रतिष्ठित होकर विशेष गुणवती होती है, जैसे समुद्र की सीपी में पड़ा बादल का जल मोती बन जाता है।

कर्म-सिद्धान्त

हम "सुखपूर्वक जीवित रहने" का लक्ष्य लेकर चले थे। प्रश्न ये उठते है कि भविष्य मे सुखपूर्वक जीने में हमारे मार्ग में कौन सी बाधाएं आती है? ये बाधाएं क्यो आती है? और हम इन बाधाओं को कैसे दूर कर सकते है?

हमने इस संसार की विषमताओं का उल्लेख करते हुए पिछले पृष्ठों में बताया था कि हमको जो सुख व दुःख मिलते रहते हैं वे हमको सहज ही मिलते रहते है। अनेको बार सुख पाने के अथक प्रयत्न करने के बावजूद भी हमको सुख नहीं मिल पाता और कभी-कभी बिना विशेष प्रयत्न किये ही हमको अनायास ही सुख मिल जाता है। इसी प्रकार कभी-कभी दुःखों को दूर करने के हमारे सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं और कभी-कभी बिना कोई विशेष प्रयत्न किये ही हमारे दु.ख दूर हो जाते हैं। बहुधा ऐसा भी देखने में आता है कि समान प्रयत्न और समान परिश्रम का भिन्न-भिन्न व्यक्तियो को भिन्न-भिन्न फल मिलता है। अन्तत. इन सब विषमताओं के कारण क्या है? वास्तविकता तो यह है कि न तो ये सब विषमताएं अकारण ही घटित हो रही है, और न यह विश्व ही बिना किसी नियम के ही चल रहा है। तथ्य तो यह है कि ये सब विषमताएं हमारे अपने ही द्वारा भूतकाल मे किये हुए कर्मों की फल हैं। हमे जो भी सुख व दु.ख अकारण ही मिलते हुए प्रतीत होते है, वे भी अकारण ही नही मिल रहे हैं। यदि हम गम्भीरता पूर्वक विचार करे, तो हमें पता चलेगा कि भूतकाल में किये हुए अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हमको सुख मिलता है और इसी प्रकार भूतकाल मे किये हुए बुरे कर्मों के फलस्वरूप हमको दुःख मिलता है, चाहे वर्तमान में हमने ऐसे कोई अच्छे व बुरे कार्य न भी किये हों, जिनका फल हमें इस रूप से मिलता। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अन्य प्राणी हमको सुख व दु.ख दे रहा है। परन्तु ऐसे अवसरों पर भी हमको यही विश्वास रखना चाहिये कि ये सुख व दु ख तो हमको अपने ही द्वारा भूतकाल में किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही मिल रहे है; दूसरे प्राणी जो हमको सुख व दुःख देते हुए जान पडते हैं, वे तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति हमें शस्त्र से घायल कर देता है, तो हम उस शस्त्र को नहीं अपितु शस्त्र मारने वाले व्यक्ति को ही दोषी ठहराते हैं; ठीक इसी प्रकार हमें

यहां पर भी समझना चाहिये कि दुःख देने में निमित्त बनने वाले प्राणी तो शस्त्र के समान हीं निर्दोष हैं। वास्तव में दोष तो हमारे अपने ही बुरे कर्मों का है अथवा अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो हम स्वयं ही दोषी हैं। ऐसा विश्वास करके हमें दुःख देने वाले प्राणी के प्रति द्वेष और सुख देने वाले प्राणी के प्रति राग कभी नहीं करना चाहिये। इस प्रकार यदि हम अपने को मिलने वाले सुखों व दुःखों को, अपने ही अच्छे व बुरे कर्मों के फल जानकर दूसरे प्राणियों से राग-द्वेष किये बिना, समतापूर्वक भोग लें तो हमारे पुराने कर्म तो अपना फल देकर शनैः-शनैः हमारी आत्मा से अलग होते ही रहेंगे, हमारे नये-नये कर्मों के संचय होने की सम्भावना भी बहुत कम हो जायेगी। यदि हम अपनी ऐसी ही भावनाएं और अपना ऐसा ही व्यवहार रक्खेंगे तो धीरे-धीरे हमारी आत्मा पवित्र होती जायेगी। इसके विपरीत यदि हम दूसरे प्राणियों को हमको सुख व दुःख देने वाला समझकर उनसे राग व द्वेष करते रहेंगे, तो हम नये-नये कर्मों का संचय करते रहेंगे और उनके फल-स्वरूप हमको भविष्य में फिर दुःख मिलते रहेंगे। इस प्रकार इस कर्म-शृंखला का कभी अन्त नहीं होगा और जिस प्रकार यह अनादि काल से चली आ रही है, उसी प्रकार अनन्त काल तक चलती रहेगी।

कर्म क्या हैं? और वे हमारी आत्मा की ओर किस प्रकार आकृष्ट होते हैं?

हमारी भावनाओं व विचारों के अनुसार कर्मों का हमारी आत्मा की ओर आकर्षित होना और फिर आत्मा के साथ उनका सम्बन्ध होना तथा समय आने पर अपना फल देकर कर्मों का हमारी आत्मा से अलग हो जाना, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे भौतिक पदार्थों के उदाहरण देकर पूरी तरह समझाया नहीं जा सकता। फिर भी कुछ उदाहरण देकर हम इसे यथा-संभव स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

वैज्ञानिक किसी भी द्रव्य के छोटे-से-छोटे टुकड़े को स्कन्ध (Molecule) कहते हैं। इस स्कन्ध में मूल द्रव्य के समस्त गुण होते हैं। यदि हम इस स्कन्ध के भी टुकड़े कर दें तो उसमें मूल द्रव्य के गुण नहीं रहते। ये स्कन्ध कितने छोटे होते हैं, इसकी कल्पना निम्नलिखित उदाहरण से की जा सकती है :—

जर्मन प्रोफ़ेसर एण्ड्रैड (Andrade) ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि आधी छटांक जल में जल के स्कन्धों की संख्या इतनी अधिक होती है कि यदि तीन अरब व्यक्ति एक सैकिंड में पांच की गति से बिना रुके दिन रात उनको गिनते रहें तो उनको गिनने में चालीस लाख वर्ष लगेंगे।

फिर यह जल का स्कन्ध भी संसार का सबसे छोटा पदार्थ नहीं होता। जल का एक स्कन्ध भी दो हाइड्रोजन और एक आक्सीजन के परमाणुओ से मिलकर बना है। इसी प्रकार अन्य द्रव्यों के स्कन्धों में भी विभिन्न प्रकार के परमाणुओं की भिन्न-भिन्न संख्या पाई जाती है। यहां तक कि किसी द्रव्य के स्कन्ध में परमाणुओ की संख्या सौ से भी अधिक होती है। वैज्ञानिको ने इन परमाणुओ के भी टुकडे किये है और बतलाया है कि यह परमाणु भी प्रोटोन (Proton) और इलैक्ट्रोन (Electron) नामक द्रव्यो से बने है। एक परमाणु मे कई-कई प्रोटोन और इलैक्ट्रोन होते हैं। प्रोटोन बीच में स्थित रहते है और उन प्रोटोन के चारों ओर भिन्न-भिन्न सख्या मे इलैक्ट्रोन बहुत ही तीव्र गति से चक्कर काटते रहते है। इन चक्कर काटते हुए इलैक्ट्रोनों के बीच में भी पर्याप्त दूरी होती है। तात्पर्य यह है कि एक परमाणु भी खोखला होता है। इसी मान्यता के आधार पर आज कल एटमबम और हाइड्रोजन बम (Atom Bomb, Hydrogen Bomb) बन रहे है। और इसी मान्यता के आधार पर वैज्ञानिक कोयले को हीरे में तथा पारे को सोने में बदलने में सफल हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समार के छोटे-से-छोटे पदार्थ जो वैज्ञानिको ने खोज निकाले हैं, वे इलैक्ट्रोन और प्रोटोन है। (अब तो वैज्ञानिकों ने इनसे भी सूक्ष्म द्रव्यों को खोज निकाला है।) वैज्ञानिक कहते हैं कि बिजली के तारो में जो विद्युत धारा (Electric Current) का प्रवाह होता है, वह वास्तव में अरबो की संख्या में इलैक्ट्रोनों का बहुत ही तीव्र गति से चलना ही है।

हमने ऊपर जो गणित बतलाया है, वह केवल इलैक्ट्रोन और प्रोटोन का परिमाण दिखलाने के लिये ही बतलाया है। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इनकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

कार्मण नामक पुद्गल (Matter) इन इलैक्ट्रोन व प्रोटोन से भी बहुत छोटा होता है और यह पुद्गल सारे विश्व में भरा हुआ है। जब भी हमारे मन मे अच्छे व बुरे विचार आते हैं तभी वह कार्मण नामक पुद्गल वर्गणाएं हमारी ओर खिंचती हैं और हमारी आत्मा पर इनका आवरण-सा बनता रहता है। हमारी विभिन्न भावनाओं और विभिन्न विचारों के अनुरूप ही विभिन्न प्रकार की कार्मण नामक पुद्गलों की वर्गणाएं हमारी आत्मा की ओर कैसे आकृष्ट होती हैं, यह समझने के लिये हम एक उदाहरण देते है।

आज हमारी पृथ्वी पर सैंकडों रेडियो-स्टेशन हैं और उनसे निकली हुई रेडियो-तरंगें सारी पृथ्वी पर फैलती रहती हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी

पसन्द का प्रोग्राम सुनना चाहता है तो वह रेडियो खोलकर उसके यन्त्र घुमाता है। इस प्रकार यंत्रों के घुमाने से जिस रेडियो स्टेशन का कार्यक्रम वह व्यक्ति सुनना चाहता है उसी रेडियो-स्टेशन की तरंगें उसके रेडियो में आती हैं, शेष तरंगें नहीं आतीं। कुछ इसी प्रकार से हमारे विभिन्न विचारो और विभिन्न भावनाओं के अनुसार ही विशेष-विशेष कार्मण-वर्गणाए प्रत्येक क्षण हमारी आत्मा की ओर आकृष्ट होती रहती है और हमारी आत्मा के ऊपर एक प्रकार का कार्मण-वर्गणाओं का आवरण बनता रहता है। प्रति समय कुछ कार्मण-वर्गणाएं अपना फल देकर इस आवरण से अलग होती रहती है और प्रति समय ही हमारी भावनाओं के अनुसार नई-नई कार्मण-वर्गणाएं आकर इस आवरण में मिलती रहती है। इस प्रकार यह कर्मों का आवरण अनादि-काल से ही प्रत्येक प्राणी की आत्मा के साथ लगा हुआ है और भविष्य में तब तक लगा रहेगा जब तक वह प्राणी स्वयं ही अपने पुरुषार्थ से इस कर्मों के आवरण को अपनी आत्मा से अलग नहीं कर देता।

यहां एक प्रश्न यह उठता है कि इन जड़ कार्मण वर्गणाओं में चेतन प्राणी को सुख व दुःख देने की शक्ति कैसे उत्पन्न हो जाती है? इसके उत्तर में हम एक उदाहरण देते हैं।

वैज्ञानिक एक लोहे के टुकड़े के चारों ओर एक धातु का तार लपेट कर उस तार में विद्युत-प्रवाह (Electric-current) छोड़ते हैं। ऐसा करते ही वह लोहे का टुकड़ा चुम्बक (Electro-magnet) बन जाता है। वैज्ञानिक इस यन्त्र से अनेकों कार्य ले लेते हैं। परन्तु जैसे ही उस तार में विद्युत प्रवाह बन्द कर देते हैं, उसी क्षण उस लोहे के चुम्बक की शक्ति समाप्त हो जाती है और वह लोहे का टुकडा केवल लोहा ही रह जाता है। फिर वह अपेक्षित कार्य नहीं कर पाता। कुछ इसी प्रकार जब हमारी आत्मा में राग-द्वेष आदि की भावनाएं उठती हैं, तो इन भावनाओं के फल-स्वरूप आत्मा के आस-पास की कार्मण-वर्गणाएं आत्मा की ओर आकृष्ट होती हैं और उनमें, आत्मा की भावनाओं के अनुसार सुख-दुःख देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। परन्तु जब वे कार्मण-वर्गणाए आत्मा को अपना फल दे चुकती हैं, अथवा आत्मा ही तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपने भावो को अत्यन्त निर्मल कर लेती है, तो इन कार्मण-वर्गणाओ की सुख-दुख देने की शक्ति क्षीण होती जाती है और ये आत्मा के ऊपर चढ़े कर्मों के आवरण से अलग होती जाती हैं।

यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि एक ही प्रकार के कार्मण पर-

माणु अच्छा व बुरा फल देने की शक्ति कैसे प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हम एक उदाहरण देते है।

हम एक ही भूमिखड पर नीम, आम, अमरूद, नारंगी आदि के बीज बो देते हैं। उस भूमिखण्ड पर सभी परिस्थितियां एक जैसी ही है अर्थात वहा की मिट्टी एक सी है, वहां की जलवायु एक सी है, वहां वर्षा भी एक सी होती है, वहा सूरज की किरणे भी एक-सी पड़ती है। इतना सब एक जैसा होने पर भी जैसा-जैसा बीज होता है, वैसा-वैसा ही वृक्ष उगता है और उन सब के रूप-रग, आकृति, गुण, प्रकृति व स्वाद आदि भी भिन्न-भिन्न तरह के बीजो के अनुसार भिन्न-भिन्न होते है। इसी प्रकार जैसी हमारी अच्छी या बुरी भावनाए होती हे, उन्ही के अनुसार हमारी आत्मा की ओर आकृष्ट होने वाले कार्मण परमाणुओ मे अच्छा व बुरा फल देने की शक्ति पडती रहती है।

कर्मों के आत्मा के साथ लगे कर्मों के आवरण से एकमेक हो जाने और फिर आत्मा के, सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा कर्मों के उस आवरण से अलग हो जाने को हम इस प्रकार समझ सकते है :—

जैसे हम शुद्ध पानी मे नमक डालदे, तो वह नमक उस पानी मे घुल-मिल जाता है। परन्तु हम विशेष रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा नमक को अलग करके पानी को फिर से शुद्ध कर सकते है। इसी प्रकार हमारे भावो के अनुसार आकर्षित हुई कार्मण-वर्गणाएं आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों के आवरण के साथ एकमेक हो जाती है और फिर या तो अपनी अवधि आने पर अपना फल देकर इस आवरण से अलग होती रहती है या हमारे तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा बिना फल दिये हुए ही वे उस आवरण से अलग हो जाती है।

जिस समय सोना खान में से निकलता है उस मे अन्य विजातीय द्रव्यो का मिश्रण होता है। ये विजातीय द्रव्य अनादि काल से सोने के साथ लगे हुए होते है और उस सोने के रूप-रग को विकृत किये रहते है। परन्तु जब हम विशेष रासायनिक प्रक्रियाओ द्वारा सोने को शोधते है, तब हम शुद्ध सोना, उसकी पूर्ण चमक-दमक व रूप-रंग के साथ प्राप्त कर लेते हैं।

कुछ इसी प्रकार से कर्म अनादिकाल से हमारी आत्मा के ऊपर एक आवरण-सा बनाए हुए है, परन्तु हम सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपनी आत्मा के साथ लगे कर्मों के आवरण को अलग करके अपनी आत्मा को अत्यन्त निर्मल कर सकते हैं।

हमें यहां पर यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिये कि एक बार अत्यन्त निर्मल हो जाने पर यह आत्मा फिर कभी भी मलिन नही हो सकती।

क्योंकि उस समय प्राणी के हिंसा, राग, द्वेष आदि भावों का, जो आत्मा के मलिन होने में निमित्त कारण हैं, नितान्त अभाव हो जाता है।

जब किसी कर्म के अपने फल देने का समय आता है, तब उस कर्म के फल के अनुसार ही यह आत्मा भिन्न-भिन्न योनियों में शरीर धारण करती रहती है। उन कर्मों के फल के अनुसार ही जीव को सुख व दुःख देने के कारण भी अपने आप इकट्ठे होते रहते हैं। ये सब प्रक्रियाएं स्वाभाविक रूप से स्वतः हो होती रहती है और इनका संचालन करने के लिये किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नही होती।

इस प्रकार हमने कर्मों के आगमन और उनके फल देने की प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डाला है। अब, प्रश्न यह है कि इन कर्मों के आगमन को कैसे रोका जाये, जिससे हम इस विश्व में नये-नये शरीर धारण करने व सुख दु.ख पाने के चक्कर से छूट सकें। इस प्रश्न पर हम अगले पृष्ठो मे यथा स्थान विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

●

शुभ-कर्म करने से सुख और पाप कर्म करने से दु.ख मिलता है। अपना किया हुआ कर्म सर्वत्र फल देता है। बिना किये हुए कर्म का फल कही नहीं भोगा जाता। —वेद व्यास

●

जब मनुष्य प्राणीमात्र के प्रति अमंगल की भावना नहीं करने की स्थिति में पहुंच जाता है, तब वह समदृष्टि हो जाता है। उस स्थिति में उसके लिए सभी दिशायें सुखमय हो जाती हैं। —वेद व्यास

●

जो व्यक्ति कोई ऐसा कार्य सम्पन्न कर लेता है जिससे जनसाधारण की निरन्तर भलाई होती रहे, तो उस मनुष्य को मृत्यु भी नहीं मार सकती। उसकी याद युगों युगों तक जन साधारण के मस्तिष्क में बनी रहेगी।

कर्म-सिद्धान्त : कर्मों का संचय

पिछले अध्याय में हमने आत्मा की ओर कर्मों के आकृष्ट होने, उनके सचय होने और समय आने पर अपना फल देकर आत्मा से कर्मों के अलग हो जाने की प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डाला था। अब हम इस सम्बन्ध में कुछ और विचार करेंगे।

हमारी भावनाओं के अनुसार ही हमारी आत्मा की ओर कर्म आकृष्ट होते है

हमारी आत्मा की ओर कर्मों के आकृष्ट होने और उनके सचय होने का हमारी भावनाओ से बहुत गहरा सम्बन्ध है। जैसी हमारी भावनाएं होगी, उन्ही के अनुसार कर्मों का आगमन और संचय होगा तथा उन्ही के अनुसार उन कर्मों मे फल देने की शक्ति पडेगी।

इस सम्बन्ध में हम कुछ उदाहरण देते है।

(१) कुछ व्यक्ति फल खाने के लिये एक वृक्ष के निकट जाते है। उनमे से एक व्यक्ति अधिक-से-अधिक फल प्राप्त करने के लिये उस वृक्ष को जड से ही काटने लगता है, दूसरा व्यक्ति उस वृक्ष के एक बड़े टहने को काटने लगता है, तीसरा व्यक्ति उस वृक्ष की एक डाल को काटने लगता है; चौथा व्यक्ति उस वृक्ष पर चढकर कच्चे-पक्के सब प्रकार के फल तोड़ कर इकट्ठे करने लगता है; पाँचवा व्यक्ति वृक्ष पर चढकर केवल पके हुए फल ही तोडता है और छठा व्यक्ति वृक्ष के नीचे पडे हुए उन फलों को इकट्ठे करने लगता है जो अपने आप ही पक कर वृक्ष से टूट कर गिर गये थे। आप इन व्यक्तियों की भावनाओ पर विचार करेंगे, तो आपको पता चलेगा कि फल तो सभी व्यक्ति सेवन करना चाहते है और वे लगभग समान मात्रा मे ही फलो का सेवन करेंगे, परन्तु उन सब व्यक्तियो की भावनाएं व तृष्णाएं अलग अलग हैं। सब से पहले व्यक्ति की तृष्णा बहुत अधिक है, और सबसे अन्तिम व्यक्ति की तृष्णा बहुत कम। इसी प्रकार पहले व्यक्ति की भावनाएं बहुत तीव्र है और अन्तिम व्यक्ति की भावनाएं बहुत कोमल। इन सब व्यक्तियों ने वृक्ष से फल प्राप्त करने का कार्य किया है। उस कार्य के फलस्वरूप कर्मों का जो संचय होगा, वह इनमें से प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अपनी तृष्णाओ व भावनाओं के अनुसार ही होगा। पहले व्यक्ति के बहुत

अधिक कर्मों का संचय होगा और अन्तिम व्यक्ति के बहुत कम कर्मों का संचय होगा।

(२) एक मरुस्थल है, वहां पर रेत की आंधियां चल रही हैं। वहां रेत में हम चार लाठियां खड़ी कर देते है। पहली लाठी बिल्कुल सूखी व साफ़ है, दूसरी लाठी को हम पानी से गीला कर देते हैं, तीसरी लाठी पर हम तेल मल देते है और चौथी लाठी पर हम सरेश (चिपकने वाला पदार्थ) लगा देते हैं। चारों लाठियां एक जैसे ही वातावरण में पास-पास खड़ी हैं, परन्तु उन पर रेत का जमाव अलग-अलग होगा। पहली लाठी पर रेत बिल्कुल नही जमेगी। (हाँ, कुछ बहुत ही बारीक रेत उस पर अवश्य बैठ जायेगी जो जरा-सा झटका देने या कपडा फेर देने से साफ हो जायेगी।) जिस लाठी को पानी से भिगोया था, उस पर कुछ अधिक रेत जमेगी। तेल से भीगी हुई लाठी पर और भी अधिक रेत जमेगी। किन्तु जिस लाठी पर सरेश लगाया गया था, उस पर सबसे अधिक रेत जमेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक से ही वातावरण में खड़ी हुई भिन्न-भिन्न लाठियों पर, उन पर लगाये गये पदार्थों के अनुसार, रेत का जमाव भिन्न-भिन्न होगा। कुछ इसी प्रकार से हमारी तीव्र व कोमल भावनाए भी क्रमशः अधिक व कम कर्मों के संचय करने मे कारण होती है।

(३) कुछ व्यक्ति एक उपवन में से जा रहे हैं। उपवन में भिन्न-भिन्न प्रकार के फूल खिल रहे हैं, जिनसे भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगन्ध आ रही है। उन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति इन फूलों पर बिना विशेष ध्यान दिये अपने रास्ते चला जाता है। दूसरा व्यक्ति सोचता है कि कैसा सुन्दर दृश्य है, कैसी मन मोहक सुगन्ध आरही है। तीसरा व्यक्ति कुछ रुक-रुक कर भिन्न-भिन्न फूलों को सूघता है और प्रसन्न होता हुआ चला जाता है। चौथा व्यक्ति उपवन में से कुछ फूल तोड़ लेता है और उनको सूघता हुआ चला जाता है। पांचवां व्यक्ति बार-बार फूलों को तोड़ता है। इस प्रकार एक ही समय मे एक ही प्रकार के वातावरण मे विभिन्न व्यक्तियो की विभिन्न भावनाएं और विभिन्न प्रतिक्रियाएं होती हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के, उसकी अपनी-अपनी भावनाओ व प्रतिक्रियाओं के अनुसार ही कर्मों का संचय होता है।

(४) दो व्यक्ति सड़क पर चले जा रहे हे। अनजाने में ही उनकी एक साइकिल वाले से टक्कर हो जाती है और वे गिर पड़ते हे। एक व्यक्ति तो सोचता है कि साइकिल वाले की मेरे से कोई शत्रुता तो थी नही जो वह जान-बूझकर मुझको गिराता, अनजाने में ही ऐसा हो गया है, इस प्रकार सोचकर वह व्यक्ति अपने रास्ते चला जाता है। परन्तु दूसरा व्यक्ति

साइकिल वाले से झगड़ने और मारपीट करने लगता है। इस प्रकार हम देखते है कि एक ही घटना की दो व्यक्तियो पर भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया होती है। उन व्यक्तियो की अपनी-अपनी भावनाओ और प्रतिक्रियाओं के अनुसार ही उनके कर्मो का सचय होगा।

(५) एक स्थान पर दो व्यक्ति आपस मे झगड़ रहे है। उनको झगड़ते हुए देखकर वहा पर और भी कई व्यक्ति इकट्ठे हो जाते है। उन देखने वाले व्यक्तियो मे से कोई तो उनको और लड़ने के लिये प्रोत्साहित करता है, कोई व्यक्ति उनसे झगड़ने को मना करता है, कोई व्यक्ति उन दोनो को एक दूसरे से अलग कर देता है, कोई व्यक्ति उनके लगी चोटो को सहलाकर उनको अलग-अलग रास्तो पर भेज देता है, जिससे कि वे फिर से न झगड़ पड़े। यहा पर आपने देखा कि एक ही घटना को देखकर विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार का व्यवहार करते है। और इन देखने वाले व्यक्तियो की अपनी-अपनी भावनाओं व अपने-अपने व्यवहार के अनुसार ही उनके कर्मों का सचय होता है।

(६) एक स्थान पर कुछ व्यक्ति बैठे हुए है। कुछ दूरी से एक सुन्दर युवती उन्ही की ओर आ रही होती है। उनमे से एक व्यक्ति की दृष्टि अचानक ही उस युवती की ओर उठ जाती है, परन्तु तभी वह उधर से अपनी दृष्टि हटाकर फिर अपने कार्य मे लग जाता है। दूसरा व्यक्ति उस युवती को तब तक देखता है, जब तक कि वह उसके पास से निकल नही जाती। तीसरा व्यक्ति मन में सोचता है, ओह, कितनी सुन्दर युवती है! ऐसी युवती को तो देखते ही रहना चाहिये। चौथा व्यक्ति सोचता है कि यदि यह युवती उसकी पत्नी होती, तो कितनी अच्छी बात होती। पाचवा व्यक्ति सोचता है कि अगर यहा पर कोई अन्य व्यक्ति नही होता, तो वह इस युवती को बलपूर्वक उठा कर ले जाता।

अब आप तनिक विचारिये, पाचो व्यक्तियो मे से किसी ने भी कोई भी शारीरिक क्रिया नही की, परन्तु उस युवती को देखते ही पहले व्यक्ति के अतिरिक्त सबके मन मे भिन्न-भिन्न भावनाए उत्पन्न हुई। पहला व्यक्ति बिलकुल निलिप्त रहा, उसके कर्मों का सचय बिलकुल भी नही हुआ। परन्तु बाकी चारो व्यक्तियो ने अपनी-अपनी भावनाओ के अनुसार ही कर्मों का सचय किया।

हम एक बार फिर स्पष्ट कर दें कि हम जो भी सुख व दुःख भोग रहे है, वे हम अपनी स्वयं की ही भावनाओ के फलस्वरूप होने वाले कर्मों के सचय के कारण ही भोग रहे है। सर्वप्रथम हमारे हृदय मे कोई अच्छा व बुरा कार्य करने की भावना उठती है, तत्पश्चात् हम अपनी वाणी

तथा शरीर से उस भावना को कार्यान्वित करते हैं। अपने हृदय में भावना उठे बिना हम कोई भी कार्य नहीं करते। हमारी भावनाएं कार्यान्वित हों या न हों और उनसे किसी अन्य प्राणी को दुःख व सुख पहुंचे या न पहुंचे, परन्तु हमारे तो अपनी अच्छी व बुरी भावनाओं के अनुसार कर्मों का संचय हो जाता है। यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है, अतः इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कुछ और उदाहरण देते हैं।

(७) एक शल्य चिकित्सक एक रोगी की शल्य-क्रिया कर रहा है। चिकित्सक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान व अभ्यास है। वह बहुत सावधानीपूर्वक अपना कार्य कर रहा है और उसकी यही भावना है कि रोगी स्वस्थ हो जाये। इतना सब होने पर भी रोगी की मृत्यु हो जाती है। साधारण रूप से देखने पर शल्य-क्रिया के कारण रोगी को कष्ट होने व उसकी मृत्यु हो जाने से यह कार्य बुरा दिखाई देता है, परन्तु इसमें बुराई नाम मात्र को भी नहीं है, क्योंकि चिकित्सक का उद्देश्य रोगी को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचाना नहीं था, वरन् उसको स्वस्थ करना ही था। ऐसी दशा में न तो कोई व्यक्ति उस चिकित्सक को दोषी ठहराता है और न उसके प्रति किसी के मन में कोई कटुता ही आती है।

(८) इसी प्रकार किसी व्यक्ति को फोड़ा हो रहा है। चिकित्सक उस फोड़े को चीरा लगाता है, जिसके कारण उस व्यक्ति को पीड़ा होती है। परन्तु फिर भी, चिकित्सक के इस पीड़ा पहुचाने वाले कार्य को हम बुरा नहीं कहते, क्योंकि उसकी भावना तो उस फोड़े को ठीक करने की ही है, रोगी को कष्ट पहुचाने की नहीं।

(९) इसी प्रकार माता-पिता तथा गुरु आदि बालकों को सन्मार्ग पर लाने के लिए दण्ड देते हैं। एक न्यायाधीश अपराधियों को दण्ड देता है। यद्यपि दण्ड के कारण उन बालकों को और उन अपराधियों को मानसिक व शारीरिक कष्ट पहुंचता है, परन्तु फिर भी माता-पिता, गुरु व न्यायाधीश दोषी नहीं होते, क्योंकि उनके मन में उन बालकों व अपराधियों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है, अपितु वे तो उनकी भलाई ही चाहते हैं।

(१०) एक व्यक्ति शस्त्र से हम पर वार करता है। उसका उद्देश्य हमें कष्ट पहुंचाना है। हम उसके वार से घायल हों या न हों, वह व्यक्ति तो दोषी ही है; क्योंकि उसके मन में हमारे प्रति दुर्भावना ही थी। अतः वह बुरे कर्मों का संचय करता है।

(११) एक मछियारा दिन भर नदी में जाल डाले बैठा रहता है,

परन्तु उसके जाल में एक भी मछली नहीं आती। इसी प्रकार एक शिकारी दिन भर शिकार की तलाश मे मारा-मारा फिरता है, परन्तु कोई भी शिकार उसके हाथ नहीं लगता। यद्यपि उस मछियारे तथा उस शिकारी के कार्य से किसी भी प्राणी को कोई भी कष्ट नही पहुचा, परन्तु अपनी-अपनी दुर्भावनाओं के कारण वे व्यक्ति हिंसक ही कहलाते है और अपनी इन्ही दुर्भावनाओ के कारण उनके बुरे कर्मों का संचय होता रहता है।

इसके विपरीत एक किसान खेत में हल चलाता है, जिसके कारण अनेको कीडो-मकोडो की हत्या होती रहती है। उन हत्याओ के बावजूद भी उस किसान को कोई हिंसक नही कहता, क्योंकि उसका उद्देश्य कीड़ों-मकोडो को मारना नही है, अपितु अनाज उत्पन्न करना है। उन कीडों-मकोड़ो की हत्या से उस किसान का कोई स्वार्थ भी सिद्ध नही होता। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि अपना कार्य करते हुए वह कीड़ो-मकोड़ों की रक्षा करने की जितनी अधिक सावधानी बरतेगा, उस किसान को हिंसा का दोष उतना ही कम लगेगा।

(१२) एक व्यक्ति असावधानी से भागता हुआ जा रहा है। उसको इस बात की चिन्ता नही है कि उसके पैरो के नीचे आकर कीड़े-मकोड़े मर जायेंगे। चाहे उसके पैरो से किसी जीव को कष्ट पहुचे या नही पहुंचे, परन्तु उस व्यक्ति के बुरे कर्मों का सचय होगा, क्योंकि वह दूसरे जीवो के कष्टो की चिन्ता किये बिना और परिणाम को सोचे बिना असावधानी से भाग रहा है।

एक व्यक्ति है जो सड़क पर देख-देख कर सावधानीपूर्वक चल रहा है, जिससे कि उसके पैर के नीचे आकर किसी कीड़े-मकोड़े को कोई कष्ट नही पहुचे। इतनी सावधानीपूर्वक चलते हुए भी यदि उसके पैर के नीचे आकर किसी कीड़े-मकोड़े को कोई कष्ट पहुच जाता है, तो भी उस व्यक्ति के बुरे कर्मों का सचय नही होगा, क्योंकि उसकी भावना कीड़ो-मकोड़ों की रक्षा करने की थी और तदनुसार अपनी ओर से वह पर्याप्त सावधानी भी बरत रहा था।

(१३) कभी-कभी हम ऐसे कार्य करते रहते हैं कि जिनके करने मे हमारी भावना दूसरों को कष्ट पहुचाने की तो नही होती, परन्तु जिनके परिणाम दूसरे जीवों के लिए कष्टदायक होते हैं; जैसे कि खाद्य पदार्थों मे मिलावट करना, बढ़िया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना आदि। ऐसे कार्य करते हुए यद्यपि हमारी भावना किसी को कष्ट पहुचाने की नही होती और हमारा लक्ष्य केवल धन उपार्जन करना ही होता है, परन्तु इन कार्यों के परिणाम सदैव खराब ही निकलते है। परिणाम को सोचे

बिना, अविवेकपूर्वक हम जो भी कार्य करते हैं, उनके फलस्वरूप हमारे बुरे कर्मों का ही संचय होता है। फिर यहां पर तो ऐसे अनैतिक कार्यों के परिणाम दूसरों के लिए निश्चित रूप से कष्टदायक ही होते हैं, तो हमारे बुरे कर्मों का संचय क्यों नहीं होगा? लौकिक नियमों के अनुसार भी ऐसे कार्य अपराध की श्रेणी में ही आते हैं।

(१४) यदि कोई वकील जान-बूझकर झूठे व्यक्ति का पक्ष लेता है, तो अन्याय की पैरवी करने के कारण उसकी भावनाएं भी अपवित्र हो जाती हैं और इन बुरी भावनाओं के फलस्वरूप वह वकील भी बुरे कर्मों का ही संचय करता है। यही बात हमें किसी न्यायाधीश द्वारा रिश्वत लेकर या सिफारिश मान कर अन्याय का पक्ष लेने के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए।

(१५) एक वेश्या अथवा एक ठग किसी व्यक्ति को विभिन्न प्रकार से फुसलाते हैं और उसको प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। देखने में उनका कार्य सुखद प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी यह कार्य बुरा है; क्योंकि उनका अभिप्राय किसी-न-किसी प्रकार उस धनी व्यक्ति के धन का अपहरण करना है। इसलिये उस वेश्या तथा ठग के द्वारा सुखद लगने वाला कार्य किये जाने पर भी उनके बुरे कर्मों का ही संचय होता है।

(१६) एक निर्धन व्यक्ति है। वह निर्धनता के कारण आधा भूखा तथा आधा नंगा रहता है, और इस प्रकार भूख तथा सर्दी-गर्मी की पीड़ा सहता है। वह अपने से अधिक भाग्यशाली व्यक्तियों को देखकर उनसे ईर्ष्या व द्वेष करता रहता है और उसकी हर समय यही लालसा रहती है कि सारे संसार का धन उसे ही मिल जाये। दूसरी ओर एक साधु है, उसे सुस्वाद भोजन भी उपलब्ध है और अच्छे वस्त्र भी। परन्तु फिर भी वह जब-तब उपवास करता है और परिग्रह को कम से कम करता जाता है। यद्यपि भूख तथा सर्दी व गर्मी की पीड़ा वह भी सहन करता है परन्तु वह इस पीड़ा से दुःख नहीं मानता, अपितु भौतिक सुखों के साधनो का अधिक-से-अधिक त्याग करने में प्रसन्नता व सुख ही मानता है। आप इन दोनों व्यक्तियों की दशा पर विचार करें। दोनों ही व्यक्ति भूख, सर्दी व गर्मी के कष्ट सहन करते हैं, परन्तु पहले व्यक्ति को, उसकी ईर्ष्या, द्वेष व तृष्णा की भावनाओं के कारण बुरे कर्मों का संचय होता है, जबकि दूसरे व्यक्ति के, त्याग की भावना के कारण, उसी के द्वारा पूर्व में किये गये कर्म नष्ट होते रहते हैं। भविष्य के लिये भी उसके अच्छे कर्मों का संचय होता रहता है।

(१७) दो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को नदी में बहते हुए देखते हैं। उनमें से एक व्यक्ति के मन में विचार आता है कि नदी में कूद कर इस व्यक्ति को बचा लूं; जबकि दूसरे व्यक्ति के मन में विचार आता है कि यह तो डूब ही रहा है, मैं नदी में कूद कर इसके कपड़े ही क्यों न उतार लूं? यहां पर दोनों व्यक्तियों के मन में नदी में कूदने को विचार आया, परन्तु उन दोनों के अभिप्रायो में आकाश व पाताल का अन्तर है। पहले व्यक्ति के, उसके अच्छे विचारो के कारण अच्छे कर्मों का संचय होगा, जबकि दूसरे व्यक्ति के, उसके बुरे विचारों के कारण बुरे कर्मों का सचय होगा।

(१८) एक व्यक्ति किसी व्यक्ति को बचाने के लिए जलते हुए मकान में घुसता है। एक अन्य व्यक्ति चोरी करने के लिए उस जलते हुए मकान में घुसता है। यद्यपि दोनों व्यक्तियों ने एक जैसा ही कार्य किया है; परन्तु दोनो के अभिप्राय भिन्न-भिन्न होने के कारण, पहले व्यक्ति के अच्छे कर्मों का संचय होगा, जबकि दूसरे व्यक्ति के बुरे कर्मों का संचय होगा।

(१९) एक व्यापारी अपना माल बेचता है। वह सोचता है कि ग्राहक के पास जाकर वह वस्तु अपेक्षित कार्य करे या न करे, उसे उससे क्या? उसका माल तो बिक ही गया। कोई-कोई व्यापारी तो यहां तक सोचते हैं कि यह वस्तु जल्दी खराब हो जाये, तो अच्छा होगा क्योंकि ऐसा होने से यह ग्राहक उस वस्तु को फिर से खरीदने आयेगा और इस प्रकार उसका माल अधिक बिकेगा।

एक दूसरा व्यापारी भी अपना माल बेचता है, परन्तु उसका यही प्रयत्न रहता है कि ग्राहक को अच्छे स्तर की वस्तु दे जो बहुत समय तक ग्राहक के काम आये और ग्राहक ने जो धन खर्चा है उसको अपने धन का पूरा लाभ मिले।

इन दोनों व्यापारियो की भावनाओं में आकाश व पाताल का अंतर है। पहला व्यापारी अपनी बुरी भावनाओं के कारण बुरे कर्मों का संचय करता है, जबकि दूसरा व्यापारी अपनी अच्छी भावनाओं के कारण अच्छे कर्मों का संचय करता है।

(२०) किसी स्थान पर भूकम्प आ जाता है या ऐसी ही कोई अन्य दुर्घटना हो जाती है। कुछ व्यक्ति वहां पर सहायता करने के लिये जाते हैं। एक व्यक्ति पीड़ित व्यक्तियों को एक-एक या दो-दो रुपये बाँटकर आ जाता है। दूसरा व्यक्ति उन पीड़ितों के लिये भोजन बनवाकर ले जाता है और

जो व्यक्ति भूखे होते हैं, उनको भोजन देकर आ जाता है। तीसरा व्यक्ति कुछ दवाइयां ले जाता है और जिस व्यक्ति को जैसी दवाई की आवश्यकता होती है, उसको वैसी दवाई दे देता है। चौथा व्यक्ति उन पीडितों के पास जाता है। उनसे बहुत सहानुभूतिपूर्वक उनके कष्टों के सम्बन्ध से पूछता है। उनको आश्वासन देता है, उनका साहस बढ़ाता है। भूखों को वह अपने हाथ से भोजन कराता है। जिनके चोट लगी हुई हैं, उनके घावों की मरहम पट्टी करता है तथा उनकी अन्य प्रकार से सेवा-शुश्रूषा करता है।

आप इन चारों व्यक्तियों की भावनाओं की तुलना करें, तो आप पायेंगे कि पहले व्यक्ति से लगाकर चौथे व्यक्ति की भावनाएं अधिकाधिक कोमल होती गयी है। इन व्यक्तियो के, अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार ही अच्छे कर्मों का संचय होगा।

(२१) कुछ व्यक्ति एक स्थान की सफ़ाई करते हैं। उस स्थान पर अनेकों चींटियां व अन्य कीडे-मकोडे भी फिर रहे हैं। एक व्यक्ति सफाई करते समय भागते हुए कीडों-मकोडो को भी झाडू से मारता रहता है तथा पानी से बहाता रहता है। दूसरा व्यक्ति दूर भागने वाले कीडे-मकोडों को छोड़ देता है और उसके आगे जो कीड़े-मकोडे आते हैं, उन्हें ही पानी से से बहाता रहता है। तीसरा व्यक्ति पहले मुलायम झाड़ू से कीड़ो-मकोड़ों को दूर कर देता है, और फिर पानी से सफाई करता है। चौथा व्यक्ति कीड़ों-मकोडों को मुलायम झाड़ू से एक कागज पर इकट्ठा करके उनको किसी सुरक्षित स्थान पर रख देता है, फिर उस स्थान की सफाई करता है।

इन चारों व्यक्तियों में से पहले व्यक्ति की भावनाएं बहुत तीव्र हैं, दूसरे व्यक्ति की उससे कम तीव्र, तीसरे व्यक्ति की भावनाएं कोमल हैं और चौथे व्यक्ति की अधिक कोमल हैं। ये चारों व्यक्ति अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार ही बुरे व अच्छे कर्मों का संचय करेंगे।

(२२) एक व्यक्ति अपने घर की सफ़ाई के लिये कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करता है। एक दुकानदार कीटनाशक दवाइयों को बेचता है। एक फ़ैक्टरी वाला कीटनाशक दवाइयों का उत्पादन करता है। एक अनुसन्धान कर्त्ता नई-नई प्रकार की और अधिक-से-अधिक शक्ति की कीटनाशक दवाइयों का आविष्कार करने में लगा रहता है।

आप इन चारों व्यक्तियों की भावनाओं की तुलना करें। पहला व्यक्ति केवल अपने ही लिये इन कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करता है। दुकानदार यह चाहता है कि अधिक-से-अधिक व्यक्ति इन दवाइयों का प्रयोग करें, जिससे उसकी बिक्री बढ़े और उसको अधिक आय हो। फ़ैक्टरी वाला

अधिक-से-अधिक शक्ति की दवाइयों का अधिक-से-अधिक मात्रा में उत्पादन करता है। अपनी बिक्री बढाने के लिये वह पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन देता है। अनुसन्धान-कर्त्ता के सारे प्रयत्न इसी बात में लगे रहते हैं कि अधिक-से-अधिक शक्ति की दवाइयों का आविष्कार करे, जिससे अधिक-से-अधिक कीडे-मकोडे मर सकें। इन चारों व्यक्तियो की भावनाएं क्रमशः तीव्र से तीव्रतम होती गयी है तथा इनको अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार ही बुरे कर्मों का संचय होगा।

यदि कोई सज्जन कहने लगे कि तीनो व्यक्ति अर्थात् दुकानदार, उत्पादन-कर्त्ता तथा अनुसन्धान-कर्त्ता, मनुष्य मात्र की भलाई के लिये यह कार्य कर रहे है, तो उन सज्जन का यह कहना ठीक नही होगा। वे तीनो व्यक्ति मनुष्य मात्र की भलाई के लिये नही, अपितु अपने-अपने स्वार्थ व आर्थिक लाभ के लिये पाप का कार्य कर रहे है। उनका मुख्य लक्ष्य तो धन कमाना ही है। उनकी सदैव यही भावना रहती है कि ऐसे कार्य करे, जिससे उनको अधिक-से-अधिक लाभ हो।

यदि कोई सज्जन कहने लगें कि यदि कीटनाशक दवाइयां नही बनायी जायेगी तो ये कीडे-मकोडे बहुत अधिक बढ जायेंगे, जिससे मनुष्यो के स्वास्थ्य को हानि पहुंचेगी। इसके उत्तर में निवेदन है कि यदि हम इस प्रकार के कुतर्कों के आधार पर ऐसे हत्याकांडों का औचित्य सिद्ध करने लगेंगे, तो फिर तो इस विश्व में कोई भी कार्य बुरा नहीं रह जायेगा। इस प्रकार के कुतर्कों के आधार पर मांसाहार, मदिरापान, चोरी, व्यभिचार, बेईमानी आदि सभी बुरे कार्यों का औचित्य सिद्ध करने लग जायेंगे; जैसे-मनुष्य मात्र को पेट भरने के लिये मांसाहार आवश्यक है, शक्ति, स्फूर्ति के लिये मदिरापान आवश्यक है, अमीरों का धन लूटकर गरीबों में बांटना जन-साधारण की भलाई के लिए आवश्यक है। हमें ऐसे कुतर्कों से बचना चाहिये। हमें ऐसा वातावरण और ऐसी सफाई रखनी चाहिए, जिससे कीडे-मकोडो के उत्पन्न होने और उनके बढने की सम्भावना कम-से-कम रहे। हमें यह भी नही भूलना चाहिए कि इन कीडों-मकोडों में भी हमारी तरह ही जान है। इनको भी हमारे समान ही सुख व दुःख का अनुभव होता है। हमें यह भी सोचना चाहिए कि यदि हम इन कीड़ों-मकोड़ों के दृष्टिकोण से विचार करें, तो इस हत्याकांड के समर्थन में हम क्या उत्तर देंगे?

(२३) एक व्यक्ति सडक पर केले खाता जा रहा है और केलों के के छिलकों को लापरवाही से सड़क पर फेंकता जा रहा है। उसको इस बात की परवाह नहीं है कि इन केलों के छिलकों के कारण सड़क पर चलने

वाले व्यक्ति फिसल सकते हैं और उनके चोट लग सकती है। एक व्यक्ति सड़क पर पड़े केलों के छिलकों को देखकर सोचता है कि किसी व्यक्ति का अनजाने में केलों के छिलकों पर पैर फिसल सकता है और फिसल जाने से उसके चोट लग सकती है। यह विचार कर वह व्यक्ति उन छिलकों को उठाकर ऐसी जगह रख देता है जहां पर किसी के पैर पड़ने की सम्भावना न हो।

यद्यपि पहले व्यक्ति के मन में यह भावना नही है कि इन छिलकों से किसी व्यक्ति को कष्ट हो, वह तो केवल लापरवाही से ही छिलके फेंक देता है, परन्तु फिर भी उसके बुरे कर्मों का ही संचय होगा, क्योंकि वह ऐसा कार्य कर रहा है, जिससे दूसरों को कष्ट पहुंचने की सम्भावना है। इसके विपरीत दूसरे व्यक्ति के, उसकी अच्छी भावनाओं के कारण, अच्छे कर्मों का संचय होगा।

(२४) एक डाकू है। उसने कई अन्य व्यक्तियों को साथ लेकर अपना एक गिरोह बनाया हुआ है। वह गिरोह डाके डालता है, लूटमार करता है तथा हत्याएं भी करता रहता है। डाके डालने, लूटमार करने तथा हत्याए करने की योजना वह डाकू सरदार स्वय बनाता है। फिर अपने साथियों को लेकर वह उन योजनाओ को क्रियान्वित करता है।

उनमें से एक साथी इन बुरे कार्यों में बढ़-चढ कर हिस्सा लेता है। वह सोचता रहता है कि यह सरदार मर जाये या पुलिस द्वारा पकड़ा जाये, तो वह इस गिरोह का सरदार बन जाये।

एक अन्य साथी बहुत अनिच्छा से इस गिरोह के साथ है। वह यह सोचता रहता है कि जैसे ही अवसर मिले, वह इस गिरोह से और ऐसे कार्यों से अलग हो जाये।

इन तीनों व्यक्तियों में से सरदार के बहुत अधिक बुरे कर्मों का संचय होगा, दूसरे व्यक्ति के उससे कुछ कम और तीसरे व्यक्ति के, और भी कम बुरे कर्मों का संचय होगा।

इस प्रकार अज्ञान व असंयम के कारण हमारे मन में भिन्न-भिन्न भावनाएं उठती रहती हैं और उन भावनाओं के अनुसार ही हमारे कर्मों का संचय होता रहता है। जितनी अधिक तीव्र हमारी भावनाएं होंगी, उतने ही शक्तिशाली कर्मों का हमारे संचय होगा, उन्हीं के अनुसार हमको अधिक प्रभावदायक फल भोगना पड़ेगा तथा उन कर्मों को नष्ट करने के लिये भी उतनी ही अधिक साधना की आवश्यकता पड़ेगी।

अपनी भावनाओं के अनुसार कर्मों के संचय होने के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कोई व्यक्ति बुरे कार्य तो करता रहे और

कहता यह रहे कि उसकी भावनाएं बुरे कार्य करने की नहीं हैं तथा वह तो लाचारी से ही ऐसे कार्य कर रहा है, तो वह अन्य व्यक्तियों के साथ ही नहीं, स्वयं अपने साथ भी छल कर रहा है। किसी व्यक्ति की भावनाएं कुछ और हों और उसके कार्य उन भावनाओ से बिलकुल भिन्न हों—ऐसा होना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। जो व्यक्ति अपने जीवन-यापन के लिए या अन्य किसी कारण-वश अनुचित कार्य कर रहे हैं, वे यदि चाहें तो अपनी दृढ इच्छा-शक्ति और दृढ़ निश्चय के बल पर, अनुचित साधन छोड़कर, परिश्रम, ईमानदारी व समुचित साधनों के द्वारा भी अपना जीवनयापन कर सकते हैं। यह सम्भव है कि इस प्रकार अनुचित साधन छोड़ देने से प्रारम्भ में उनको कुछ कठिनाइयां आयें और उन्हें कुछ शारीरिक सुख व सुविधायें छोडनी पडे, परन्तु ऐसा करने से यदि हम भविष्य में मिलने वाले सुफल को दृष्टि में न भी लायें तो भी उनको तत्काल ही जो आन्तरिक सुख व शान्ति प्राप्त होगी, उनकी तुलना में वे कठिनाइयां कुछ भी नहीं हैं।*

अधिकांश में यही देखा गया है कि जो व्यक्ति परिश्रम, ईमानदारी व समुचित साधनों पर दृढ रहते हैं, अन्ततः सफलता उनके चरण चूमती है। अनेको दृढ-निश्चयी पुरुषों व महिलाओं ने अनुचित साधनों को न अपनाकर, समुचित साधनों पर ही दृढ रहने के कारण अनेकों कष्ट सहे है, तथा अनेकों प्रलोभनों व दबावों के बावजूद भी वे अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। बहुत समय व्यतीत जाने पर भी जनसाधारण उनके जीवन से प्ररणा प्राप्त करते रहते है।

फिर भी यदि हमारी इच्छा-शक्ति इतनी दृढ नही है और हमें अत्यधिक लाचारी में अपनी भावनाओ के प्रतिकूल कोई बुरा कार्य करना भी पड़ जाये, तो हमें उस कार्य मे लिप्त नही होना चाहिये। जिस प्रकार एक रोगी बालक कडवी औषधि पीने का विरोध करता है, उसी प्रकार हमें उस कार्य का विरोध करना चाहिये, और जितनी जल्दी हो सके उस कार्य से अलग

* हमें इस बात को भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि अनुचित साधनों का फल कभी भी अच्छा नही होता। अनुचित साधनों के प्रयोग के बाद हमें जो सफलता प्राप्त होती है और जिसे हम अनुचित साधनों का फल मान लेते हैं, वास्तव में वह सफलता हमारे द्वारा भूतकाल में किये हुए अच्छे कर्मों का ही सुफल है। यदि यह सफलता अनुचित साधनों का फल होती, तो संसार में जितने भी व्यक्ति अनुचित साधन प्रयोग में लाते हैं, वे सभी सफल हो गये होते।

हो जाना चाहिये।

हमने पिछले पृष्ठों में कई बार इस तथ्य का उल्लेख किया है, कि जैसी भी हमारी भावनाएं और हमारे कार्य होते हैं, उन्हीं के अनुसार अच्छे व बुरे कर्म हमारी आत्मा की ओर आकृष्ट होते हैं और वे आत्मा के ऊपर कर्मों का आवरण बनाते रहते हैं। यही कर्म अपनी अवधि आने पर हमें अच्छा व बुरा फल देते रहते हैं और अपना फल देकर आत्मा के ऊपर बने हुए कर्मों के आवरण से अलग होते रहते हैं। वैसे तो हमारी भावनाएं इतनी विविध प्रकार की होती हैं कि उनकी कोई गिनती नहीं हो सकती। इसलिये उन भावनाओं के फलस्वरूप जो कर्म हमारी आत्मा की ओर आकृष्ट होते हैं उनमें भी बहुत ही विविधता होती है। कर्मों की इस विविधता के कारण उनके फल भी बहुत विविध होते हैं। कर्मों के फल में इस विविधता के कारण ही इस विश्व के प्राणियों को भिन्न-भिन्न फल मिलता है और उनमें इतनी विभिन्नता होती है कि इस विश्व में दो प्राणी भी बिलकुल एक जैसे शायद ही मिल सकें। इन कर्मों में इतनी विविधता होते हुए भी विचारकों ने उन कर्मों को आठ वर्गों में विभक्त किया है।

(१) जब हम अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व की वास्तविकता की न तो स्वयं जानकारी करते है और न दूसरे प्राणियों को करने देते हैं तो हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो पहले वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हमें अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व का सच्चा ज्ञान नहीं हो पाता। (आत्मा का अस्तित्व है, आत्मा इस भौतिक शरीर से बिलकुल भिन्न एक अभौतिक द्रव्य है, आत्मा अजर व अमर है, यह आत्मा अपने कर्मों के फलस्वरूप इस विश्व में विभिन्न योनियां ग्रहण करती रहती है और सुख व दुःख भोगती रहती है, यह आत्मा अपने ही सत-प्रयत्नों से इन कर्मों को अपने से अलग करके सच्चा सुख (मुक्ति) प्राप्त कर सकती है और एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर यह आत्मा सदैव के लिए ही सच्चे सुख का भोग करती है— यही सच्चा ज्ञान है।)

(२) जब हम ऊपर लिखित सत्य का विश्वास व श्रद्धान न स्वयं करते हैं और न दूसरों को करने देते हैं तो हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है, जो दूसरे वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हमें "सत्य" का विश्वास व श्रद्धान नहीं हो पाता।

(३) जब हमारी भावनाएं दूसरे प्राणियों को शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुंचाने की होती हैं तब हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो तीसरे वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हमें शारीरिक व मानसिक कष्ट भोगने पड़ते हैं।

जब हमारी भावनाएं दूसरे प्राणियों को शारीरिक व मानसिक सुख पहुचाने की होती हैं तब हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है, जो तीसरे वर्ग मे आते है और जिनके फलस्वरूप हमें शारीरिक व मानसिक सुख प्राप्त होता है।

(४) जब हम इस ससार की वास्तविकता को न जानकर अपने मित्रों व सम्बन्धियो को ही अपना मानते रहते है और इस संसार के कार्यों में ही मन, वचन व शरीर से लिप्त रहते हैं तो हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो चौथे वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हम अपनी आत्मा के कल्याण की ओर ध्यान नही दे पाते और इस संसार में विभिन्न योनिया ग्रहण करते रहते हैं।

(५) जब हम अति-तृष्णा के वश होकर अपना सारा समय धन-संपत्ति के संचय करने तथा उसके लिये योजनाए बनाने में ही लगाते रहते हैं तो हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो पाचवें वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हम नरक गति में जन्म लेते है।

जब हम सन्तोष धारण करके थोडी सी धन-सम्पत्ति मे ही सुख व शान्ति का अनुभव करते हैं और तृष्णा के वश होकर अपना सारा समय धन का संग्रह करने में नहीं लगाते तब हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो पाचवे वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हम मनुष्य गति में जन्म लेते है।

जब हम दूसरे प्राणियों से ठगी व मायाचारी करते है तो हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो पांचवे वर्ग मे आते है और जिनके फलस्वरूप हम पशु-गति में जन्म लेते है।

(६) जब हमारे मन मे कुछ और होता है, हम कहते कुछ और है और करते कुछ और है अर्थात हमारे हृदय कुटिलता से भरे होते है तब हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो छठे वर्ग मे आते हैं और जिनके फलस्वरूप हमें बुरा शरीर प्राप्त होता है अर्थात हमें अपग शरीर प्राप्त होता है या हम बाद मे अपंग हो जाते है, हमें असन्तुलित शरीर प्राप्त होता है। हमारी हड्डियां टेढी-मेढ़ी होती है, तथा हमारे शरीर से दुर्गन्ध आती है।

जब हमारे मन में सरलता होती है, अर्थात हम जैसा सोचते है, वैसा ही कहते है और वैसा ही करते हैं, उस समय हमारी आत्मा की ओर जिन कर्मों का आगमन होता है, वे छठें वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हमें स्वस्थ, सुन्दर व सन्तुलित शरीर प्राप्त होता है।

(७) जब हम दूसरों की निन्दा करते हैं और अपनी प्रशंसा करते

हैं, जब हम दूसरों में गुण होते हुए भी उनको अनदेखा कर देते हैं और अपने में गुण न होते हुए भी, अपने में गुण होने का दिखावा करते हैं, तो हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो सातवें वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हम नीच कुल मे जन्म लेते हैं।

इसके विपरीत दूसरो की प्रशसा करने, अपनी निन्दा करने, दूसरों के गुणों को प्रकट करने और अपने गुणों को छिपाने, दूसरों के दोषों को छिपाने ओर अपने दोषों को प्रकट करने से हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो सातवे वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हम अच्छे व उच्च कुल में जन्म लेते है।

(८) जब हम दूसरों के लाभ होने में तथा उनके भोग-उपभोग की वस्तुओ को प्राप्त करने में विघ्न डालते हैं तब हमारी आत्मा की ओर ऐसे कर्मों का आगमन होता है जो आठवे वर्ग में आते हैं और जिनके फलस्वरूप हमारे कार्यों मे बाधाये पड़ती रहती है और हम असफल होते रहते है।

यहा पर हमे यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिये कि एक प्रकार की भावनाओं व कार्यों से केवल एक प्रकार के ही कर्मों का आगमन नही होता, अपितु थोडे-थोड़े अन्य प्रकार के कर्मों का आगमन भी होता है। यह उसी प्रकार होता है जैसे किसी वस्तु का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसमें मुख्य द्रव्य के अतिरिक्त थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अन्य द्रव्य भी पाये जाते है।

एक बात और, कर्मों का फल भोगते समय हमें यह समझ कर हाथ पर हाथ धर के नही बैठे रहना चाहिये कि हमें तो इन कर्मों का फल भोगना ही है, अपितु हमे सदैव ही अपनी भावनाएं व अपने कार्य अहिंसक ही रखने चाहिये और तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। ऐसा करते रहने से कर्मों के फलों की तीव्रता कम भी हो सकती है और कुछ कर्म फल दिये बगैर भी आत्मा से अलग हो सकते है।

इन कर्मों का फल केवल मनुष्यो को ही नही अपितु पशु-पक्षियों को भी भोगना पड़ता है। जैसे कुछ पशु-पक्षी जन्म से ही रोगी व अपंग होते हैं तथा कुछ बाद में भी रोगी व अपंग हो जाते है जबकि कुछ पशु-पक्षी जन्म से ही स्वस्थ होते हैं। कुछ पशु-पक्षी सुन्दर होते है तो कुछ पशु-पक्षी कुरूप होते हैं। कुछ पशु-पक्षी अच्छी नस्ल (उच्च कुल) के होते है और उनका मूल्य भी अधिक होता है। उनकी देखभाल भी बहुत अच्छी तरह की जाती है। जबकि कुछ पशु-पक्षी बुरी नस्ल (नीच कुल) के होते है और उनका मूल्य भी कम होता है। कुछ पशु-पक्षी शारीरिक सुख प्राप्त करते रहते हैं जबकि कुछ पशु-पक्षी शारीरिक कष्ट भोगते रहते हैं।

हमे इस तथ्य को कभी नहीं भूलना चाहिये कि किसी भी प्राणी को जो भी दु.ख व सुख मिलते है, वे उसको अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए बुरे व अच्छे कर्मों के फलस्वरूप ही मिलते है। किसी भी प्राणी में इतनी शक्ति नही है कि वह किसी भी अन्य प्राणी को सुख व दुःख दे सके। हां, वे अन्य प्राणियो को सुख व दुःख मिलने मे निमित्त अवश्य बन जाते हैं। परन्तु अपनी अज्ञानता के कारण वे यही समझते है कि उन्होंने अन्य प्राणियों को सुख व दु.ख पहुचाया।

"हम दूसरे प्राणियो को सुख व दु.ख दे सकते है तथा दूसरे प्राणियो ने हमको सुख व दु ख दिया"—इस अज्ञानता के फलस्वरूप उनके नये-नये कर्मो का सचय होता रहता है। इस अज्ञान व भ्रम के फलस्वरूप हम स्वय दु.ख और कष्ट उठाते है। दु.ख व क्लेश के परिणामो से सदा ही नये कर्मों का विशेष संचय होता है।

इसलिये यदि हम यह चाहते है कि हमारे यथा-सम्भव कम-से-कम कर्मों का सचय हो तो हमे ऊपर बताई गयी अज्ञानता व भ्रम का त्याग करना चाहिये तथा बुरे व अपवित्र विचारो को भी अपने हृदय मे नही आने देना चाहिये। हम कभी भी किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न दें तथा सदैव दूसरो की भलाई करने के लिये तत्पर रहे। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि हम जो भी कार्य करे, वह सहज व निर्लिप्त भाव से करे। सहज व निर्लिप्त भाव से कार्य करने से कर्मो का संचय कम होता है। परन्तु जैसे जैसे हम उस कार्य मे अधिकाधिक लिप्त होते जाते हे, हमारे कर्मों का सचय भी अधिकाधिक होता जाता है। हमारे द्वारा सचय किये हुए कर्मों का, चाहे वे अच्छे हो या बुरे, एक अणुमात्र अश भी निष्फल नही होता। उनमे फल देने की शक्ति बराबर बनी रहती है।

यह बात अलग है कि हम यह नही जान पाते कि उन कर्मों का फल हमको कब और किस रूप मे मिल जाता है। हा, ज्ञान पूर्वक किये हुए सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा कर्मो के फल देने की शक्ति कम हो जाती है और कभी-कभी नष्ट भी हो जाती है और वे कर्म हमारी आत्मा के ऊपर पड़े कर्मों के आवरण से अलग हो जाते है।



चित्त, वित्त, जीवन, यौवन सब चचल और नाशवान है। जिसकी कीर्ति स्थिर है उसी का जीवन अमर है।

कर्मफल

अधिकांश में हम देखते हैं कि हम जो भी कार्य करते हैं उनका हमको समुचित फल नहीं मिलता। कभी तो हमारे प्रयत्न बिल्कुल ही निष्फल हो जाते है, कभी हमें अपने प्रयत्नो की तुलना में थोड़ा ही फल मिलता है, और कभी-कभी अपने प्रयत्नो की तुलना में हमें अधिक फल भी मिल जाता है। हम साधारणतया देखते है कि दो व्यक्तियों को एक जैसा प्रयत्न करने पर भी, भिन्न-भिन्न फल मिलता है। अन्ततः इस विडम्बना का कारण क्या है? वास्तविकता तो यह है कि हमें जो भी फल मिलता है, वह हमारे केवल वर्तमान के प्रयत्नो का फल ही नही होता, अपितु भूतकाल मे संचित कर्मों के फल का भी उसमें योग होता है। अर्थात् हमें जो भी फल मिलता है, वह हमारे वर्तमान में किये हुए प्रयत्नो तथा भूतकाल में किये हुए कार्यों का सम्मिलित फल होता है। इसी सम्मिलित फल को कर्म-फल कहते है। यह आवश्यक नही है कि वर्तमान काल का प्रयत्न उसमें सदैव ही सम्मिलित हो, पर प्रायः ऐसा देखा जाता है।

हम सबका यह अनुभव है कि जीवन में सुख पाने के लिये बहुत-सी सामग्री व साधनों की आवश्यकता होती है, जैसे स्वस्थ शरीर, पर्याप्त धन, कुशाग्र-बुद्धि, अनुकूल व विश्वस्त मित्र, सम्बन्धी व सेवक आदि। परन्तु संसार मे एक ही व्यक्ति को ये सभी साधन व अनुकूलताएं कदाचित ही उपलब्ध होती है। एक व्यक्ति स्वस्थ है, परन्तु उसके धन का अभाव है, दूसरा व्यक्ति पर्याप्त धनी है परन्तु वह सदा रोगी रहता है। किसी के पास स्वास्थ्य भी है, धन भी है, परन्तु वह सन्तान न होने के कारण दुःखी रहता है। किसी के पास स्वास्थ्य भी है, धन भी है, सन्तान भी है, परन्तु उसकी सन्तान या तो रोगी रहती है या दुश्चरित्र निकल जाती है। किसी व्यक्ति के अन्य सब प्रकार की अनुकूलताएं हैं, परन्तु उसकी पत्नी दुष्ट स्वभाव वाली या फूहड़ है जिसके कारण घर में सदैव ही क्लेश बना रहता है। इस प्रकार हम देखते है कि संसार में लगभग प्रत्येक व्यक्ति दुःखी है, कोई किसी एक कारण से, तो कोई किसी दूसरे कारण से दुःखी रहता है। इन दुःखों (व सुखों) के लिये भूतकाल में उनके द्वारा किये गये बुरे (व अच्छे) कार्य उत्तरदायी हैं। वे कार्य उनके इस जन्म के किये हुए भी हो सकते हैं और पिछले जन्मों के किये हुए भी।

यदि हमने भूतकाल में दूसरे जीवों के रोग-शोक दूर करने के लिए कुछ प्रयत्न किये होगे, तो उन अच्छे कार्यों के फलस्वरूप हमको स्वस्थ व सुन्दर शरीर प्राप्त होगा। इसके विपरीत यदि भूतकाल में हमने दूसरे जीवो को शारीरिक कष्ट दिये होगे तो उन बुरे कार्यों के फलस्वरूप हम रोगी व कुरूप होगे।

यदि भूतकाल में हमारी विद्या के प्रति रुचि रही होगी और हमने दूसरे व्यक्तियो को विद्या प्राप्त करने मे सहायता की होगी, तो उन अच्छे कार्यों के फलस्वरूप हम विद्वान व कुशाग्र-बुद्धि बनेगे। इसके विपरीत यदि भूतकाल मे हमने दूसरे व्यक्तियो के शिक्षा प्राप्त करने में बाधा डाली होगी तो उन बुरे कार्यो के फलस्वरूप हम अनपढ व मूर्ख ही रह जायेगे।

यदि भूतकाल मे हमने दूसरे प्राणियो की भलाई की होगी और दूसरे प्राणियो को सुख पहुचाने के प्रयत्न किये होगे, तो उन अच्छे कार्यो के फलस्वरूप हमको अनुकूल और विश्वस्त मित्र व सम्बन्धी मिलेगे और हम को अपने कार्यों मे सफलता मिलती रहेगी। इसके विपरीत यदि हमने भूतकाल मे दूसरे प्राणियो को कष्ट दिये होगे, उनके साथ विश्वास-घात किया होगा तथा उनकी सफलता-प्राप्ति मे बाधाए डाली होगी तो उन बुरे कार्यों के फलस्वरूप हमको प्रतिकूल परिस्थितिया मिलती रहेगी, हमारे मित्र व सम्बन्धी हमारे साथ विश्वासघात करते रहेगे तथा हमे असफलताओ का मुह देखना पड़ेगा।

इस प्रकार (जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे बतलाया) प्रतिक्षण हम अपनी भावनाओं, विचारो व कार्यो के अनुसार नये-नये शुभ व अशुभ कर्मों का सचय करते रहते है और (जैसा कि ऊपर बताया) समय आने पर उनका अच्छा व बुरा फल भोगते रहते है। प्रतिक्षण हमारे सचय किये हुए कर्म अपना फल देकर हमारी आत्मा के ऊपर पड़े कर्मो के आवरण से अलग होते रहते है और प्रतिक्षण ही हमारी भावनाओ व विचारो के अनुसार हमारे नये-नये कर्मो का सचय होता रहता है।

एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य भी ध्यान मे रखने योग्य है। हमे एक समय मे केवल एक ही कर्म का या एक ही प्रकार के कर्मों का फल नहीं मिलता, अपितु अनेको अच्छे व बुरे कर्मों का फल एक साथ ही मिलता रहता है। जैसे :—

किन्ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हम स्वस्थ रहते है, परन्तु उसी समय किन्ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप हम निर्धन ही रहते हैं।

किन्ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हम धनवान होते है, परन्तु उसी समय किन्ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप हम रोगी रहते हैं।

किन्हीं अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हम स्वस्थ व धनवान होते हैं, परन्तु उसी समय किन्ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप हमें अपने कार्यों में असफलता ही मिलती रहती है।

किन्ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हम कुशाग्र-बुद्धि व विद्वान होते हैं परन्तु उसी समय किन्ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप हमे जीविकोपार्जन के साधन नही मिलते।

किन्हीं अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हमें, अनुकूल व विश्वस्त सेवक मिलते हैं परन्तु उसी समय किन्हीं बुरे कर्मों के फलस्वरूप हमारी सन्तान निकम्मी व चरित्रहीन निकल जाती है। (यहां यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि हमारी सन्तान हमारे बुरे कर्मों के कारण चरित्रहीन व निकम्मी नही होती, मुख्यतया तो वह उनके अपने कर्मों का ही फल है, परन्तु ऐसी सन्तान हमारे यहां उत्पन्न होती है—यह हमारे बुरे कर्मों का फल है।)

ऐसी अच्छी व बुरी परिस्थितिया हम किसी भी व्यक्ति के जीवन में देख सकते है।

मनुष्यो की तो बात ही क्या, हम इस प्रकार की परिस्थितियां पशुओं मे भी देख सकते हैं। जैसे :—

एक कुत्ता है। किन्ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप उसको कुत्ते की योनि मिली है। परन्तु उसी समय किन्ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप वह एक धनवान व्यक्ति के यहा पल रहा है, जहां पर उसको सब प्रकार की सुविधाएं प्राप्त है जो अनेकों मनुष्यों को भी उपलब्ध नही होती।

एक घोड़ा है। किन्ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप उसे घोड़े की योनि मिली है। परन्तु उसी समय किन्ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप वह एक धनवान व्यक्ति के यहां पहुंच जाता है जहां उसका जीवन बहुत आराम से व्यतीत होता है।

इसके विपरीत अपेक्षाकृत अधिक बुरे कर्मों के फल भी हम प्रतिदिन देखते रहते हैं। जैसे :—

एक कुत्ता है। उसके शरीर पर खाज हो रही है। भूखा प्यासा इधर-उधर फिर रहा है। बच्चे उसको पत्थर मारते रहते हैं, इसलिए वह कहीं पर चैन से बैठ भी नहीं सकता।

इसी प्रकार एक घोड़ा तांगे में जुता है। वह इतना दुबला पतला व निर्बल है कि उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती है। धूप के कारण पसीना बह रहा है। उसके शरीर पर घाव हो रहे हैं। फिर भी तांगे वाला उसको

तेज दौड़ाने के लिए चाबुक मार रहा है। इस प्रकार उसके कष्टों की कोई सीमा नही है।

मनुष्यो मे भी हम देखते हे कि कुछ व्यक्ति बहुत अधिक दुःखी होते हे जैसे अनेको व्यक्ति कोढ़ से पीड़ित होते है। उनके हाथ पैर गलते रहते है। उनके रहन व खाने पीने का भी कोई ठिकाना नही होता।

कुछ व्यक्ति जन्म से ही और कुछ व्यक्ति किन्ही दुर्घटनाओ के फल-स्वरूप अपंग, गूंगे, बहरे व नेत्रहीन हो जाते हे। इसके साथ-साथ निर्धनता उनके कष्टो को और भी बढ़ा देती है।

इस प्रकार हम देखते है कि इस विश्व मे प्रत्येक प्राणी अपने द्वारा भूतकाल मे किये हुए अच्छे व बुरे कार्यो का फल भोगता रहता है। कोई अपेक्षाकृत अधिक दुःखी होता है कोई अपेक्षाकृत अधिक सुखी होता है। इस विश्व मे कदाचित ही कोई ऐसा प्राणी मिले जो सब प्रकार से दुःखी हो या सब प्रकार से सुखी हो। (जिन प्राणियो ने मोक्ष प्राप्त कर लिया है केवल वही पूर्ण सुखी होते है।)

एक शंका यह उठती है कि जो व्यक्ति परिश्रम व ईमानदारी से अपना कार्य करते है, वे अधिकांश मे दुःखी ही रहते हे और जो व्यक्ति दगाबाजी व बेईमानी करते है वे मौज-मजे मे रहते है, इसका क्या कारण है?

पहली बात तो यह है कि यह कोई नियम नही है कि ईमानदार व परिश्रमी व्यक्ति सदैव दुःखी ही हो और दगाबाज व बेईमान व्यक्ति सदैव सुखी ही हो, परन्तु कभी-कभी ऐसा देखा अवश्य जाता है। जो व्यक्ति ईमानदार व परिश्रमी होते हुए भी दुखी है, वह अपनी ईमानदारी व परिश्रम के कारण दुखी नही है, अपितु अपने पिछले जन्मो मे किये हुए पापो के कारण दुःखी है, जिनका फल उसको इस जन्म मे मिल रहा है। इसी प्रकार जो व्यक्ति दगाबाज व बेईमान होते हुए भी सुखी है, वे अपनी दगाबाजी व बेईमानी के कारण सुखी नही है, अपितु अपने पिछले जन्मो के पुण्यो के कारण सुखी है, जिनका फल इनको इस जन्म मे मिल रहा है। इसका अर्थ यह कदापि नही है कि ईमानदार व परिश्रमी व्यक्ति को अपनी वर्तमान मे की जा रही ईमानदारी व परिश्रम का अच्छा फल नही मिलेगा, अथवा दगाबाज और बेईमान व्यक्ति को अपनी वर्तमान में की जा रही दगाबाजी व बेईमानी का बुरा फल नही मिलेगा। उनको अपने-अपने अच्छे व बुरे कार्यो का फल अवश्य मिलेगा। उन कार्यों का एक अणुमात्र अंश भी बिना फल दिये व्यर्थ नहीं जायेगा। परन्तु एक साधारण व्यक्ति को यह मालूम नही होता कि वह फल कब और किस रूप मे मिलेगा।

इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम कुछ उदाहरण देते हैं।

एक व्यक्ति के कुछ रुपये बैंक में जमा हैं। जब तक उस व्यक्ति के खाते में बैंक में रुपये मौजूद है, तब तक बैंक वाले उसके प्रत्येक चैक का भुगतान करेंगे, चाहे वह व्यक्ति वह रुपया अपनी आवश्यकताओं के लिये निकाल रहा हो, चाहे दूसरों की भलाई के लिए निकाल रहा हो और चाहे वह बुरे कार्यों पर व्यय करने के लिये निकाल रहा हो। बैंक को इस बात से कोई सरोकार नही है। वर्तमान में वह व्यक्ति धन उपार्जन करने के लिये कोई कार्य करे या न करे, वह अपने जमा किये हुए धन को मितव्ययता से खर्चे या फिजूलखर्ची में व्यय करे; जब तक बैंक में उसका धन बाकी है वह धन उसको उपलब्ध होता रहेगा।

इसके विपरीत, यदि उसके पास पिछला जमा किया हुआ धन न होता, तो उसको अपनी वर्तमान आय पर ही निर्वाह करना पड़ता, चाहे उस आय में वह सुखपूर्वक रहता या दुःखपूर्वक। यदि उसके ऊपर कुछ ऋण भी होता, तो उसकी वर्तमान आय का कुछ भाग या सारी ही आय पिछला ऋण चुकाने में व्यय हो जाती और वर्तमान में उसे अपनी वर्तमान आय के बावजूद और भी बुरी दशा मे रहना पड़ता।

इस उदाहरण में हम बैंक में जमा धन के स्थान पर "अपने पूर्व में किये हुए अच्छे कर्म" और ऋण के स्थान पर "अपने पूर्व मे किये हुए बुरे कर्म" लगा ले, तो हमें जीवन में अकारण ही जो सुख व दुःख मिलते हुए दिखते है, उनका कारण भलीभांति समझ मे आ जायेगा।

हम एक और उदाहरण लेते हैं। एक व्यक्ति की आय एक हजार रुपये प्रतिमास है। घर मे पत्नी है, पाच बच्चे है। पत्नी व बच्चे अधिकाश में बीमार चलते रहते है। पत्नी को घर चलाने का सलीका भी नही आता। इसलिये एक हजार रुपये की आय में उनका बहुत कठिनाई से निर्वाह हो पाता है। सदैव किसी-न-किसी वस्तु का अभाव ही रहता है, और इस प्रकार वह व्यक्ति व उसका परिवार दुखी ही रहता है।

एक दूसरा व्यक्ति है। उसकी आय पांच सौ रुपये प्रतिमास है। घर में पत्नी है और दो बच्चे है। घर के सब सदस्य स्वस्थ रहते हैं। पत्नी भी सुघड़ है। वह इन पांच सौ रुपये में घर का खर्च भी भली प्रकार चला लेती है और भविष्य के लिए कुछ बचा भी लेती है। इस प्रकार यह परिवार सुखी रहता है।

यदि हम उन दोनो व्यक्तियों की केवल वर्तमान आय को ही उनके सुखी व दुखी होने का आधार मान लें, तो पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की

अपेक्षा अधिक सुखी होना चाहिये था , परन्तु वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। इसलिए वास्तविकता से परिचित होने के लिये हमें उनकी वर्तमान आय के साथ-साथ उनकी अन्य परिस्थितियो को भी ध्यान में रखना पड़ेगा।

ठीक इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति के केवल वर्तमान में किये हुए कार्य ही उसके सुखी व दु:खी होने के कारण नही होते, अपितु उसके सुखी व दु:खी होने में उसके द्वारा भूतकाल में किये हुए कार्य भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यदि हम अपने पूर्वाग्रहो को छोड़कर इन उदाहरणो पर गम्भीरता पूर्वक और ठण्डे मस्तिष्क से विचार करे, तो हम सहज ही मे वास्तविकता को जान जायेगे और पिछले पृष्ठो (६, १० व ११) में हमने अपने प्रतिदिन के अनुभव मे आने वाली जिन विषमताओ और विडम्बनाओ का उल्लेख किया है, उनका भी तर्क सम्मत समाधान हमको मिल जायेगा। हम यह बात भली प्रकार समझ जायेगे कि—

(i) दो व्यक्तियो को एक जैसे परिश्रम का एक जैसा फल क्यो नही मिलता ?

(ii) एक व्यक्ति परिश्रम व ईमानदारी से कार्य करते रहने पर भी क्यो निर्धन व दु:खी बना रहता है जबकि दूसरा व्यक्ति बेई-मानी व आरामतलबी करते रहने पर भी क्यो धनवान व सुखी बन जाता है ?

(iii) एक व्यक्ति भरपूर परिश्रम करते रहने पर भी क्यों असफल रह जाता है जबकि एक अन्य व्यक्ति तनिक सा परिश्रम करने से ही सफलता क्यो पा लेता है ?

इन प्रश्नो का उत्तर स्पष्ट है कि पहले व्यक्ति ने पिछले जन्मों मे बुरे कार्य किये थे, जिनका कुफल वह अब भोग रहा है और दूसरे व्यक्ति ने पिछले जन्मो मे अच्छे कार्य किये थे, जिनका सुफल उसको अब मिल रहा है।

हम एक बार फिर स्पष्ट कर दें कि हम प्रति क्षण जो भी अच्छे व बुरे कार्य कर रहे है तथा हमारे मन में जो भी अच्छी व बुरी भावनाएं उत्पन्न हो रही है, उनका फल हमको अवश्य मिलेगा, उनमे से एक अणु मात्र भी व्यर्थ नही जायेगा। यह बात भिन्न है कि हम यह नहीं जान पाते कि हमारे अच्छे व बुरे कर्मों का फल हमको कब और किस रूप मे मिल जाता है ?

इस सम्बन्ध मे एक प्रश्न यह उठता है कि एक व्यक्ति पाप तो उस समय करता है जब वह शामलाल नाम का मनुष्य था और फल उसको उस

समय मिलता है जब वह देवकुमार नाम का एक बिलकुल ही नया मनुष्य होता है; यह कैसे न्याय संगत हो सकता है ?

इस सम्बन्ध में हम आत्मा का विवेचन करते समय पहले भी कह आये हैं कि आत्मा एक अनादि व अनन्त द्रव्य है। न तो यह कभी नयी उत्पन्न हुई थी और न यह कभी नष्ट ही होगी। जिसको हम जन्म व मरण कहते हैं, वह तो केवल आत्मा का एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लेना मात्र है। जिस प्रकार रंगमंच पर एक ही अभिनेता कभी राजा का रूप धारण कर लेता है और कभी भिखारी का, कभी पुरुष का वेष धारण कर लेता है तो कभी स्त्री का, ठीक इसी प्रकार ही प्रत्येक आत्मा अपने कर्मों के अनुसार नये-नये शरीर धारण करती रहती है और सुख-दुःख भोगती रहती है। वास्तव में दुःख व सुख का वेदन करने वाली आत्मा ही है, हमारा शरीर तो एक माध्यम मात्र ही है। आज कोई आत्मा अपने वर्तमान शरीर के माध्यम से कोई बुरा कार्य करती है, तो उसका फल भविष्य में वही आत्मा ही भोगेगी। हां, माध्यम वर्तमान शरीर भी हो सकता है और कोई अन्य शरीर भी। यदि कोई व्यक्ति यह तर्क करने लगे कि हरीचन्द ने अपराध उस समय किया था जब वह अमुक आयु का व्यक्ति था और अमुक प्रकार के कपड़े पहने हुए था, परन्तु अब हरीचन्द की आयु भी वह नहीं है और कपड़े भी वह दूसरे प्रकार के पहने हुए है, इसलिए अब वह उस अपराध का दण्ड नहीं पा सकता—तो क्या उस व्यक्ति का तर्क स्वीकार करके हरीचन्द को निर्दोष मान लिया जायेगा ?

एक प्रश्न यह उठता है कि जब किसी प्राणी को अपने पिछले जन्मों की कोई भी बात याद नहीं है, तो फिर उसको पिछले कार्यों का दण्ड व पुरस्कार कैसे मिल सकता है ?

यह ठीक है कि हमको अपने पिछले जन्मों की कोई भी बात याद नहीं है, परन्तु हम तो इस जन्म की भी बहुत सी बातें भूल जाते है। कुछ मनुष्य ऐसे होते है कि जिनको वर्षों पहले की बहुत सी बातें अच्छी तरह याद रहती हैं, जबकि कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो कुछ समय पहले की बातें भी भूल जाते हैं। अनेकों बार ऐसा भी होता है कि एक ही व्यक्ति को कुछ विशेष पुरानी बातें तो याद रहती हैं, परन्तु कुछ समय पहले की साधारण बातें वह भूल जाता है। किसी व्यक्ति द्वारा कोई अच्छा या बुरा कार्य करके भूल जाने से वह उस कार्य के कर्ता होने के उत्तरदायित्व से तथा उस कार्य का अच्छा व बुरा फल भोगने से बच नहीं सकता। मनुष्य भूल सकता है परन्तु प्रकृति नहीं भूल सकती। इसलिए इस प्रकार की शंका करना निराधार है।

एक प्रश्न यह उठता है कि जब कोई सर्वशक्तिमान परमेश्वर हमको हमारे कर्मों का फल नहीं देता, तो फिर हम अपने बुरे कर्मों का बुरा फल क्यों भोगना चाहेंगे ?

यह ठीक है कि कोई सर्वशक्तिमान परमेश्वर हमको हमारे कर्मों का फल नहीं देता, (और हम भी अपनी इच्छा से कोई भी कष्ट उठाना नहीं चाहेंगे) परन्तु फिर भी हम अपने कर्मों का फल भोगने से बच नहीं सकते। वह फल तो हमें प्राकृतिक रूप से अवश्य ही मिलेगा और वह हमें भोगना भी अवश्य ही पडेगा। हम प्रतिदिन देखते हैं कि नशा करने वाले व्यक्ति बड़े चाव से नशा करते है, परन्तु क्या वे लाख चाहने पर भी नशे के कुप्रभावों से बच सकते हैं ? यदि हमने नीम बोया है, तो हमको नीम ही मिलेगा। लाख चाहने पर भी न तो हम नीम पाने से बच सकते है, न नीम के बदले हम कुछ और ही प्राप्त कर सकते हैं। जैसा हम पहले भी कह चुके हैं कि मनुष्य भूल सकता है, किसी की सिफारिश मान सकता है, रिश्वत लेकर अपराध को अनदेखा कर सकता है, परन्तु प्रकृति न तो कभी भूल करती है, न सिफारिश मानती है और न रिश्वत ही लेती है। हमको हमारे अच्छे व बुरे कर्मों का—उनके एक-एक अंश का—फल अवश्य मिलता है, परन्तु हम यह नही जान पाते कि वह फल हमे किस रूप में और कब मिल जाता है।

हम पहले भी कई बार बतला आये हैं कि प्रति समय ही हमारी भावनाओं के अनुसार, कार्मण नाम के पुद्गल हमारी आत्मा की ओर आकृष्ट होते रहते है और हमारी आत्मा के ऊपर एक प्रकार का आवरण सा बनाते रहते हैं। अपना फल देने का समय आने पर ये कर्म ही हमारी आत्मा को विभिन्न योनियो मे ले जाते हैं और सुख व दुःख पहुंचाने के निमित्त इकट्ठे करते रहते हैं।

इस विषय में एक शंका यह उठ सकती है कि ये जड कर्म, चेतन व अभौतिक आत्मा पर कैसे प्रभाव डालते है ?

इसको स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं। हम जानते हैं कि औषधि, विष व मदिरा आदि पदार्थ जब तक शीशी में रहते हैं, तब तक इनका कुछ भी प्रभाव मालूम नही होता। परन्तु जैसे ही ये पदार्थ किसी जीवित प्राणी के शरीर में पहुंचते हैं, ये अपना-अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं। इनके प्रभाव से ये प्राणी भिन्न-भिन्न क्रियाएं करने लगते हैं। यदि ये पदार्थ किसी मृत शरीर में डाल दिए जाएं, तब भी ये कुछ भी प्रभाव नही दिखाते। अतः निष्कर्ष यही निकला कि ये पदार्थ आत्मा-सहित प्राणी पर ही अपना प्रभाव दिखाते हैं, परन्तु दिखाते है इस शरीर के माध्यम से ही। अतः ये जड़ कर्म प्राणियों को विभिन्न योनियों में ले जाकर उनको सुख व दुःख पहुंचाने के निमित्त इकट्ठे करते रहते हैं, इसमें कोई असम्भव बात नहीं है।

अभौतिक पदार्थ भौतिक पदार्थों पर प्रभाव डालते हैं, इस तथ्य को भली प्रकार समझाने के लिए हम अपने मन व शरीर का उदाहरण लेते हैं। मन एक बहुत ही सूक्ष्म द्रव्य है परन्तु बहुत ही सूक्ष्म होते हुए भी यह मन हमारे शरीर पर बहुत गहरा प्रभाव डालता है। जब हमारा मन प्रफुल्लित होता है, तब हम अपने आपको हल्का-फुल्का व शक्तिशाली अनुभव करते हैं और हम कठिन कार्य भी सरलता से कर लेते हैं। परन्तु जब हमारा मन किसी कारण से उदास होता है तो हमारा शरीर भी निढाल व शक्तिहीन हो जाता है और हम साधारण कार्य भी भली प्रकार नहीं कर पाते। डाक्टर और वैद्य कहते हैं कि यदि भोजन करते समय हमारा मन प्रसन्न होगा, तो वह भोजन हमारे शरीर में भली प्रकार से पचकर हमारी शक्ति बढ़ायेगा। इसके विपरीत यदि भोजन करते समय हमारा मन उदास होगा, तो वही भोजन हमारे शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न कर देगा। आधुनिक डाक्टर तो यहां तक कहते हैं कि जब हमारे मन में उलझनें व तनाव रहते है, तो मन की उन उलझनों व तनावों के कारण हम अनेकों रोगों के शिकार हो जाते हैं।

क्या हम कर्मों का फल भोगे बिना भी कर्मों को नष्ट कर सकते हैं ?

अनेकों बार इस प्रकार के प्रश्न उठते हैं—एक बार जो कर्म संचय हो गये, क्या हमको उनका फल अवश्य ही भोगना पडेगा ? क्या हम कर्मों का फल भोगे बिना भी उन कर्मों को नष्ट कर सकते है ? क्या हम कर्मों की तीव्रता को कम कर सकते हैं ? क्या हमारे वर्तमान के कार्य, हमको वर्तमान में मिलने वाले कर्मों के फल पर कुछ प्रभाव डाल सकते हैं ?

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है और इसको भली प्रकार समझने के लिए हमें पहले कुछ अन्य तथ्यों को समझना पड़ेगा।

(१) हम वर्तमान में जो भी कार्य कर रहे हैं, उनका फल हमको तुरन्त भी मिल सकता है, कुछ समय पश्चात् इसी जन्म में भी मिल सकता है और अगले जन्म में भी मिल सकता है। जिस प्रकार कुछ औषधियां तो ऐसी होती हैं जो सेवन करते ही अपना प्रभाव दिखाती हैं; जबकि कुछ औषधियां ऐसी होती हैं जो सेवन करने के कुछ समय पश्चात् अपना प्रभाव दिखाती हैं। यह रोगों की तीव्रता और उन औषधियों की शक्ति पर निर्भर करता है। इसी प्रकार, हम क्या कार्य कर रहे हैं, उस कार्य को करते समय हमारी कैसी—तीव्र या कोमल—भावनाएं हैं, आदि बातों पर यह निर्भर करता है कि उन कर्मों का फल हमको कब और कैसा मिलेगा ?

कोमल व तीव्र भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए हम यहां पर एक उदाहरण देते हैं—

हम पानी पर एक लकीर खींचते हैं। पानी पर खींची हुई लकीर क्षण भर के लिए ही दिखाई देती है और फिर हमारे कोई प्रयत्न किये बिना ही स्वतः ही मिट जाती है।

हम बालू रेत पर एक लकीर खीचते हैं। वह लकीर हमको थोड़ी देर के लिए ही दिखाई देती है। जैसे ही हवा का झोका आता है वह लकीर मिट जाती है। यदि हवा न भी चले, तो हमारे जरा से प्रयत्न से—हमारे हाथ फेरने से—ही वह लकीर मिट जाती है।

हम किसी वृक्ष की जड़ में एक दरार डाल देते है। वह काफ़ी समय तक उस पेड़ में दिखाई देती रहती है। वह दरार हमारे प्रयत्न करने से नहीं मिट सकती। उसके मिटने में दो तीन साल या और भी अधिक समय लग सकता है, जैसे-जैसे वृक्ष की जड बढ़ेगी, वैसे-वैसे ही वह दरार हलकी पड़ती जायेगी।

हम पथरीली चट्टान पर एक लकीर खोदते है। वह लकीर हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी नही मिटेगी और सैकड़ो वर्षों तक उस चट्टान पर बनी रहेगी।

इन लकीरों को मिटने में कितना समय लगता है, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि ये कितनी गहरी है और कितनी चौडी है।

जिस प्रकार हमने विभिन्न पदार्थों पर, विभिन्न गहराइयों और चौड़ाइयों को लकीरो का उदाहरण दिया, ठीक यही बात हमारी भावनाओं के सम्बन्ध में भी है। कोई कार्य करते समय हमारी भावनाए कैसी रहती हैं, उस कार्य का दूसरे प्राणियों पर क्या प्रभाव पडता है—आदि बातों पर कर्मों का तीव्र व कोमल होना निर्भर करता है। और फिर, हमारे प्रयत्नों से वे कर्म कुछ हल्के पड़ सकते है अथवा नष्ट हो सकते है या नहीं—यह उन कर्मों को कोमलता व तीव्रता तथा हमारे प्रयत्नों की शक्ति पर निर्भर करता है। यदि कोई कार्य करते समय हमारी भावनाएं बहुत तीव्र हैं, तो उस कार्य के फलस्वरूप संचित हुए कर्मों का फल हमको अवश्य ही भोगना पडेगा और प्रयत्न करने पर भी हम उस फल को भोगने से नही बच सकते। (जैसे पत्थर पर खोदी हुई लकीर, हमारे प्रयत्नो से मिट नही सकती)।

यदि कोई कार्य करते समय हमारी भावनाएं साधारण हैं, तो उस कार्य के फलस्वरूप संचित हुए कर्मों का फल पाने से, यदि हम सही दिशा में प्रयत्न करें, हम बच भी सकते हैं। (जैसे बालू रेत पर खीची हुई लकीर हम प्रयत्न करके मिटा सकते हैं।)

इसी प्रकार बहुत सावधानी व विवेक पूर्वक कार्य करते हुए और अपना मन करुणा से भरा होने पर भी यदि हमारे निमित्त से किसी प्राणी को कोई कष्ट पहुंच जाता है, तो उस कार्य के फलस्वरूप, प्रथम तो कर्म संचित ही नहीं होंगे और यदि कुछ कर्म संचित हो भी गये, तो वे हमारे प्रयत्न किये बिना ही हमारी आत्मा से अलग हो जायेंगे (जैसे पानी पर खींची हुई लकीर अपने आप ही मिटती जाती है ।)

(२) संसार में जितने भी कार्य होते है, उनके सम्पन्न होने में अधिकांश में दो कारण होते हैं :—

पहला उस पदार्थ की अन्तरंग या उसकी अपनी निजी शक्ति है, जिससे कार्य स्वयं होता है । इस कारण को उपादान कारण कहते है, और कार्य के सम्पन्न होने में यही कारण मुख्य है ।

दूसरा सहायक कारण होता है, जिसकी सहायता से कार्य किया जाता है—यह निमित्त कारण कहलाता है ।

इस प्रकार मटका बनाने में मिट्टी उपादान कारण है और कुम्हार, चाक, जल, अग्नि, धूप इत्यादि निमित्त कारण हैं । मिट्टी में मटका बनने की शक्ति है, तभी कुम्हार उस मिट्टी से मटका बना सकता है । यदि मिट्टी में मटका बनने की शक्ति या योग्यता नही होती, तो कुम्हार के लाख प्रयत्न करने पर भी मिट्टी से मटका नहीं बन सकता था । इसी प्रकार शिष्य में ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति होती है, तभी गुरु उसको शिक्षा दे सकता है । शिक्षित होने में शिष्य की योग्यता उपादान कारण है और गुरु का पढ़ाना निमित्त कारण है ।

यदि कुम्हार में मटका बनाने की शक्ति होती और वह ही मटका बनाने में मुख्य कारण होता, तो कुम्हार मिट्टी के अतिरिक्त चाहे किसी भी वस्तु का मटका बना सकता था; परन्तु ऐसा कभी नहीं होता । इसी प्रकार यदि विद्यार्थियों को शिक्षित बनाने में गुरु का पढाना ही मुख्य कारण होता, तो गुरु सभी विद्यार्थियों को एक जैसा ही शिक्षित बना सकता था । परन्तु ऐसा भी कभी नही होता । प्रत्येक विद्यार्थी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ही शिक्षा ग्रहण कर पाता है ।

हमें इन उपादान व निमित्त कारणों को भली प्रकार समझ लेना चाहिये ।

हमको जो भी सुख व दुःख मिलते हैं, वे हमको हमारे अपने ही द्वारा भूतकाल में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिलते हैं । हमें सुख व दुःख मिलने में हमारे कर्म उपादान कारण होते हैं और जिन प्राणियों

या पदार्थों के माध्यम से सुख व दु:ख मिलते हैं, वे निमित्त कारण हैं। किसी भी अन्य प्राणी व पदार्थ में इतनी शक्ति नही है कि वह हमें सुख व दु:ख दे सके। परन्तु इसमे सन्देह नही कि ये सुख व दु:ख हमको अधिकांश में किसी न किसी निमित्त के द्वारा ही मिलते हैं। उदाहरण के लिये .—

चलते-चलते केले, आम आदि के छिलके पर पैर पडने से हम फिसल जाते हैं और हमको चोट लग जाती है (यहा पर वह छिलका हमारे चोट लगने मे निमित्त कारण है)।

इसी प्रकार किसी खण्डहर के पास से गुजरते हुए हमारे ऊपर एक ईंट गिर जाती है और हमारे चोट लग जाती है (यहा पर ईंट हमारे चोट लगने में निमित्त कारण है)।

ऐसे ही हमारे गले में पडी हुई सोने की जजीर को देखकर या हमारे पास रुपया देखकर अथवा हमारे पास रुपया होने का भ्रम होने से ही कोई व्यक्ति हमको घायल करके हमारा धन छीन लेता है (यहा पर हमारे गले मे जजीर होना तथा हमारे पास धन होना और हमारा धन छीनने वाला व्यक्ति —ये सभी हमारी हानि होने व चोट लगने मे निमित्त कारण है)।

हमें अपने कर्मो के फलस्वरूप कष्ट पाना था, इसलिए हमें यह कष्ट मिला और फल का छिलका, ईंट तथा वह आक्रामक व्यक्ति निमित्त कारण बने।

यदि हमारे कर्म बहुत शक्तिशाली अर्थात् तीव्र है, तो हमें यह कष्ट अवश्य ही भोगने पडेगे। इसके विपरीत यदि हमारे कर्म शक्तिशाली नही हैं, तो थोडा-सा प्रयत्न करने पर हम इनका फल भोगने से बच भी सकते थे। जैसे –यदि हम देखकर सावधानी-पूर्वक चल रहे होते, तो फल के छिलके पर हमारा पैर नही पडता और हम चोट खाने से बच जाते।

यदि हम उस खण्डहर से बचकर चलते, तो हमारे ऊपर ईंट नही गिरती और हमें चोट नही लगती।

यदि हम अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करके चलते, तो कोई गुण्डा हम पर आक्रमण नही करता और हम शारीरिक कष्ट व आर्थिक हानि उठाने से बच जाते।

अत यह स्पष्ट है कि प्रयत्न करने पर कभी-कभी हम अपने को सुख व दु:ख देने वाले निमित्त कारणो को दूर भी कर सकते हैं। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब हमारे कर्म तीव्र न हों।

एक तथ्य हम और स्पष्ट कर दें। एक ही प्रकार के निमित्त कारणों का विभिन्न प्राणियों पर विभिन्न प्रभाव पड सकता है। जैसे कि एक व्यक्ति की मासिक आय डेढ सौ रुपये है। उसकी जेब से एक सौ रुपये गिर जाते हैं, तो इस हानि के फलस्वरूप उसको बहुत कष्ट पहुचेगा और उसको इस हानि का प्रभाव पर्याप्त समय तक सतायेगा। इसके विपरीत एक अन्य व्यक्ति की आय चार हजार रुपये प्रति मास है। यदि उसकी जेब से भी एक सौ रुपये गिर जाएं, तो उस पर इस हानि का बहुत ही थोडा प्रभाव पडेगा। इस प्रकार निमित्त तो दोनों व्यक्तियों का एक ही मिले, परन्तु उनका प्रभाव दोनों पर भिन्न-भिन्न पडा। इसका कारण यही है कि उन दोनों व्यक्तियों के उपादान कारण भिन्न-भिन्न हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सुख दुःख मिलने मे उपादान कारण अर्थात् उस प्राणी के अपने कर्म ही मुख्य है तथा निमित्त कारण गौण है।

ये हमने निमित्त कारणों के कुछ उदाहरण दिये है। दुःख तो हमें अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप मिलना था, परन्तु मिला इन निमित्तों के द्वारा। यदि हम प्रयत्न करके इन निमित्तो को इकट्ठा न होने देते, तो हम कष्ट पाने से बच सकते थे। परन्तु हमारे प्रयत्न कितने सफल होते है -यह हमारे कर्मों की तीव्रता व कोमलता पर निर्भर करता है।

कर्मों की तीव्रता व कोमलता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते है। एक लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है—कुएं से निकला खाई में गिरा अर्थात् हम एक सकट से बचने का प्रयत्न करते है, परन्तु दूसरे सकट में फस जाते है -यह तीव्र कर्मों का फल है।

कई बार ऐसा होता है कि तनिक-सा पैर फिसलने से ही हमारी हड्डी टूट जाती है और हम महीनो खाट पर पडे रहते हैं- यह भी तीव्र कर्मों का फल है। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम किसी ऐसी भयंकर दुर्घटना मे फस जाते है, जिसका परिणाम हमारी मृत्यु ही होती, परन्तु फिर भी हम पूर्णरूप से सुरक्षित बच जाते है। यह हमारे कोमल कर्मों का फल है।

जैसे कि हम पहले भी बतला चुके है, सत्कर्म करने के साथ-साथ हमें ऐसे अवसरों से भी यथा-सम्भव बचते रहना चाहिये जिनसे हमें कष्ट मिलने की सम्भावना हो। हम सब का अनुभव है कि कभी-कभी हम कोई वस्तु घर के बाहर भूल जाते हैं अथवा घर के द्वार बन्द करना भूल जाते हैं, फिर भी हमारी सब वस्तुएं सुरक्षित रहती है और हमें कोई हानि नही होती। परन्तु "जो होना होगा वह अवश्य होगा" यह तर्क देकर हमें असावधान नहीं होना चाहिये। हमें अपनी सम्पत्ति की समुचित देखभाल भी करनी

चाहिये और घर के कुण्डे-ताले भी लगाने चाहियें और हमें कोई हानि न हो, इसके लिए पूरी सावधानी रखनी चाहिये। इस प्रकार यदि हम समुचित सावधानी रक्खें, तो हम कोमल कर्मों का फल भोगने से बच सकते हैं। मान लीजिये कोई व्यक्ति क्रोधित होकर हम पर प्रहार करने आ रहा है। यदि उसके क्रोध की अवस्था में ही हम उसके सामने जायेंगे, तो हमें देखते ही उसका क्रोध और भी भड़क उठेगा और वह हमसे झगड़ा करना शुरू कर देगा। इसके विपरीत, यदि हम उस समय उस व्यक्ति के सामने न पड़े, तो हमें सामने न पाकर उसका क्रोध उस समय तो ठण्डा पड़ ही जायेगा और बहुत सम्भव है कि फिर उसको हमारे ऊपर क्रोध करने का अवसर ही नही आये। इस प्रकार प्रयत्न करने पर हम बुरे कर्मों का फल भोगने से बच भी सकते है। हां, यह प्रयत्न सदैव ही सफलीभूत होंगे, ऐसा नही कहा जा सकता। यह हमारे पूर्व मे किये हुए कर्मों की तीव्रता और हमारे वर्तमान के सत्कर्मों की शक्ति पर निर्भर है।

वास्तविकता तो यह है कि हम अल्पज्ञ हैं। न तो हमको यह ज्ञान ही है कि हमें हमारे कौन से, तीव्र अथवा कोमल, कर्मों का फल मिलने वाला है, न हमें यही ज्ञान है कि प्रयत्न करने पर हम इन कर्मों का फल भोगने से बच भी सकते हैं या नही। फिर भी, प्रयत्न करना तो हमारे अधिकार में है ही। सबसे पहली आवश्यकता तो यह है कि हम सदैव सत्कर्म ही करते रहें और अपने मन में भी कभी भी किसी को भी किसी भी प्रकार का कष्ट देने का विचार भी न आने दें। ऐसे आचरण से हमारे बुरे कर्मों के सचय होने की सम्भावना बहुत कम हो जायेगी, और हमारे अच्छे कर्मों का ही संचय होगा। दूसरे, हम अपने व्यवहार में सावधानी बरतें, और ऐसे निमित्तों को न मिलने दें, जिनसे कि हमें कष्ट मिलने की सम्भावना हो। ऐसे प्रयत्नों से बहुत सम्भव है कि हम अपने कोमल प्रकृति वाले कर्मों का फल भोगे बिना ही बच जायें।

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे वर्तमान के ऐसे कर्म, जिनका फल हमको तुरन्त ही मिलने वाला है, हमारे पुराने संचित कर्मों पर, जिनका फल हमको वर्तमान में मिलने वाला है, अवश्य ही कुछ न कुछ प्रभाव डालते हैं।

इसको स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिये एक व्यक्ति पर एक हजार रुपए का ऋण है जो उसको अभी चुकाना है। यदि उसकी वर्तमान आय दो हजार रुपया है, तो पिछला ऋण चुकाने के पश्चात् भी उसके पास एक हजार रुपए बच जाते हैं। यदि उसकी आय केवल एक हजार रुपये ही होती, तो उसकी सारी आय पिछला ऋण चुकाने

में ही व्यय हो जाती और एक हजार रुपये की आय के बावजूद भी वह इस समय खाली हाथ रह जाता। यदि उसकी आय केवल पांच सौ रुपये होती, तो वह सबकी सब आय उसका पिछला ऋण चुकाने में ही व्यय हो जाती, फिर भी उस पर ऋण बाकी रह जाता।

इस उदाहरण में हम ऋण को उन पुराने बुरे कर्मों के स्थान पर समझ सकते हैं जिनका फल हमें अभी ही मिलना है। और वर्तमान आय को हम वर्तमान के उन अच्छे कर्मों की जगह समझ सकते है जिनका फल भी हमें अभी ही मिलने वाला है।

हम एक और उदाहरण देते है – हमारे पास एक कड़वा रस है जो हमें हर हालत में पीना है। हम उसकी कडवाहट को कम करने के लिये उसमें मीठा मिलाते है। अब उस रस की कड़वाहट हमारे द्वारा मिलाये गये मीठे की मात्रा पर निर्भर करेगी। जैसे-जैसे हम उस रस में अधिक-अधिक मीठा मिलाते जायेंगे, उसकी कडवाहट कम होती जायेगी। हमारे द्वारा मिलाये गये मीठे का प्रत्येक कण अपना प्रभाव अवश्य दिखलायेगा। हम उस प्रभाव को अनुभव कर सकें या नहीं, यह बात भिन्न है। इस उदाहरण में हम रस की कडवाहट को अपने पूर्व में किये हुए ऐसे बुरे कार्यों का फल, जो हमें वर्तमान में मिलने वाला है और मीठे को अपने वर्तमान के सत्कर्मों (जिनका फल हमको तुरन्त ही मिलना है) के स्थान पर समझ सकते है।

इसके विपरीत यदि हम उस कड़वे रस में, मीठा मिलाने की बजाये, नीम की पत्तियों का रस मिलाते जाये, तब तो उसकी कड़वाहट बढती ही जायेगी। एक तो हमको पूर्व में किये हुए बुरे कर्मों का फल मिल रहा है और उसके साथ-साथ हम और भी बुरे कार्य करते जायें अथवा यू कहलें कि एक तो करेला पहले ही कड़वा था उसके साथ-साथ वह नीम पर भी चढ़ गया। ऐसी अवस्था में हमें जो कष्ट भोगने पड़ेंगे, उनका क्या कहना? हम प्रतिदिन अपने चारों ओर लूले, लंगड़े, अपंग, अपाहिज, कोढी, निर्धन व्यक्तियो को देखते ही रहते हैं, जिनके पास न पेट भरने को रोटी होती है, न तन ढकने को कपड़ा और न सिर छुपाने को छत। इसके साथ-साथ कोढ़ जैसे भयंकर और असाध्य रोगों के कारण उनकी अवस्था और भी दयनीय हो जाती है। यह उनके द्वारा पूर्व में किये हुए बहुत ही बुरे कर्मों का ही फल है।

जहां तक पिछले कर्मों के नष्ट होने की बात है इसका समाधान भी ऊपर के विवेचन से हो जाता है। यदि हमारे वर्तमान के सत्कर्म (जिनका फल हमको तुरन्त मिलना है) बहुत अधिक हैं, तो पिछले बुरे कर्मों की

तीव्रता बहुत कम हो जायेगी। हम इसको किसी भी अर्थ में ले सकते हैं हम इसे पुराने कर्मों का नष्ट होना भी कह सकते है अथवा इसे वर्तमान के सत्कर्मों का निष्फल होना भी कह सकते है।

इस तथ्य को भली प्रकार समझने के लिए हम व्यापारिक बही के हानि-लाभ खाते का उदाहरण ले सकते हैं। हम अपने खाते मे लाभ को जमा की ओर लिखते है और हानि को नाम की ओर लिखते है और फिर उनका अन्तर निकाल कर शुद्ध लाभ या हानि मालूम कर लेते है। (अच्छे व बुरे कर्मों का कोई खाता नही होता। यह तो केवल समझने के लिए उदाहरण मात्र ही है) इसी प्रकार किसी विशेष समय मे हमे सुख मिलना है या दुख, यह उस समय मिलने वाले दुखो व सुखो के अन्तर पर निर्भर करता है। अधिकाश मे ऐसा होता है कि किसी अपेक्षा से हम दुःखी होते है और किसी अपेक्षा से हम सुखी होते है, जैसे कि हमारे पास धन है, परन्तु हम रोगी होते हैं, हमारे पास धन भी है स्वास्थ्य भी है, परन्तु घर मे कलह होती रहती है, इत्यादि।

यहा यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि हम अपने किन्ही कर्मों का फल, उन कर्मो का फल देने का समय आने से पहले ही, भोगकर कर्मों को अपनी आत्मा से अलग कर सकते है। मान लीजिये किसी कर्म का फल हमको अब से दस वर्ष पश्चात मिलना है। हम प्रयत्न करके उस फल को अब भी भोग सकते हे। जिस प्रकार हम आम, केले आदि फलो को रासायनिक द्रव्यो का प्रयोग करके या उनको भट्टियो मे रखकर समय से पहले ही पका लेत हे, कुछ ऐसी ही बात हमे अपने किन्ही कर्मो का फल, समय आने से पहले ही, भोगने के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिये।

हम एक उदाहरण द्वारा इसको और अधिक स्पष्ट करते है। मान लीजिए एक व्यक्ति पर पाच सौ रुपए का ऋण है जो उसको पचास रुपए प्रति मास देकर दस महीनो मे चुकता करना है। उसकी आय डेढ सौ रुपए प्रति मास है। वह कुछ अधिक परिश्रम करके कुछ अधिक धन उपार्जन कर लेता है, और अपना खर्च घटा कर अपना जीवन कुछ अधिक कठिनाई से व्यतीत कर, अधिक रुपए बचा लेता है और इस प्रकार वह पचास रुपए के स्थान पर एक सौ रुपए प्रति मास देकर पाच महीने मे ही ऋण-मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को दस महीने मे खर्च करने के लिए दो हजार रुपए दिये गये है, वह व्यक्ति यदि चाहे तो फिजूलखर्ची करके उन रुपयो को दस महीने के स्थान पर दो-तीन महीने मे ही समाप्त कर सकता है। कुछ इसी प्रकार हम व्रत, सयम, तप, त्याग तथा ध्यान आदि के द्वारा प्रयत्न करके अपने कर्मों के फल को समय आने से पहले ही भोग कर कर्मों को नष्ट कर सकते है।

इसी प्रकार हम अपने प्रयत्नों के द्वारा उन कर्मों को बिना भोगे भी नष्ट कर सकते हैं। जैसे कि किसी दिन हमारे सत्कर्मों के फलस्वरूप हमको स्वादिष्ट भोजन उपलब्ध है, परन्तु उस दिन हम उपवास कर लेते है। इस प्रकार कर्मों ने तो अपना फल दिया, परन्तु हमने उस फल का उपभोग नही किया।

यहां पर हमें एक तथ्य और समझ लेना चाहिये। हमने अपनी इच्छा से उपवास किया और बिना खेद-खिन्न हुए आनन्दपूर्वक भूख का कष्ट सहा। यह एक प्रकार का तप है। इस तप के फलस्वरूप वह बुरा कर्म भी नष्ट हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हमको भविष्य में कभी भूखा रहना पड़ता क्योकि वह भूखे रहने का कष्ट हमने स्वेच्छा से अभी ही सह लिया है।

इस प्रकार स्वेच्छा से तथा ज्ञानपूर्वक संयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा हम भविष्य मे फल देने वाले कर्मो का फल समय से पहले ही भोग कर तथा कभी-कभी भोगे बिना भी उनको अपनी आत्मा से अलग कर सकते है।

इस प्रकार कर्मों को, उनके फल देने के समय से पूर्व ही भोगकर तथा बिना फल भोगे ही, नष्ट करने की जो हमारी आत्मा की शक्ति है, उसके कारण ही हमारा मुक्ति प्राप्त करना सम्भव होता है। यदि हमारी आत्मा में यह शक्ति नही होती अथवा कर्म अपनी अवधि से पहले ही भोग-कर या भोगे बिना ही नष्ट नही किये जा सकते होते, तो किसी भी प्राणी का मुक्ति प्राप्त करना असम्भव नही तो, बहुत कठिन अवश्य ही हो जाता।

यहां एक प्रश्न यह उठता है कि हम जो अच्छे व बुरे कार्य कर रहे हैं उनका फल हमको कितने समय पश्चात् मिलेगा ? और कितने समय तक मिलता रहेगा ?

हम यह पहले भी बता चुके है कि कोई कार्य करने के बाद उसका फल कितने समय पश्चात् मिलना प्रारम्भ होगा, इसकी कोई निश्चित अवधि नहीं है। यह उस कार्य व उस कार्य को करते समय उत्पन्न हुई हमारी भावनाओं की तीव्रता व कोमलता पर निर्भर करता है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनका फल हमको तुरन्त ही मिल जाता है; जबकि कुछ कार्य ऐसे होते है जिनका फल हमको कुछ समय पश्चात् मिलना प्रारम्भ होता है। लौकिक उदाहरण देने से यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जायेगा। मान लीजिये, कोई व्यक्ति चोरी करता हुआ पकड़ा जाता है तथा कुछ व्यक्ति उसको धमका कर मारपीट

कर छोड़ देते है। इस अवस्था में उसको अपने अपराध का दण्ड तुरन्त ही मिल गया और थोड़े समय तक ही मिला। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति उस चोर को पुलिस के पास ले जाते है। पुलिस उस अपराधी के विरुद्ध अभियोग बनाती है, उसे न्यायालय मे ले जाती है, वहां पर कुछ दिन तक उस पर मुकद्दमा चलता है, फिर न्यायाधीश उसको चार-छ. महीने के कठोर कारावास का दण्ड देता है। इस प्रक्रिया मे कुछ समय निकल जाता है और इस प्रकार अपराधी को अपने आधे घण्टे में किये गये अपराध का दण्ड दो-तीन महीने के पश्चात् मिलता है और चार-छः मास तक मिलता रहता है। कभी-कभी चोर चोरी करके भाग जाता है। वह पकड़ा भी नही जाता और इस प्रकार दण्ड पाने से बच जाता है। परन्तु हमे यह दृढ विश्वास रखना चाहिए कि लौकिक न्यायालय से दण्ड पाने से वह भले ही बच जाये, परन्तु प्रकृति उसको कभी क्षमा नही करेगी, उसको अपने अपराध का दण्ड किसी-न-किसी रूप मे अवश्य ही मिलेगा।

हम देखते है कि कभी कोई व्यक्ति उत्तेजना मे आकर किसी अन्य व्यक्ति की हत्या कर देता है। इस कुकृत्य मे उसको दस-पन्द्रह मिनट या घन्टे-दो-घण्टे का समय लगता है। परन्तु इस थोड़ी-सी अवधि मे किये गये अपराध के फलस्वरूप उसको आजीवन कारावास भोगना पड़ सकता है। इसी प्रकार हम देखते है कि कोई व्यक्ति अपनी जान जोखिम में डालकर कोई भलाई का कार्य करता है। उस कार्य मे उसको दस-पन्द्रह मिनट लगते है। परन्तु इस कार्य के लिये जो पुरस्कार उसको मिलता है, उससे वह कई वर्ष तक और कभी-कभी आयु-पर्यन्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि थोडी देर मे किये गये अच्छे व बुरे कार्यो का फल हमे काफी लम्बी अवधि तक मिलता रह सकता है।

अपने द्वारा किये हुए अच्छे व बुरे कार्यो का फल हमें कितने समय के पश्चात् मिलना शुरू होता है और कितने समय तक मिलता रहता है, इसको स्पष्ट करने के लिए हम विभिन्न वनस्पतियो का उदाहरण ले सकते है। हम विभिन्न वनस्पतियो के बीज बोते है। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार कुछ बीजों से जल्दी ही वृक्ष उग आते हं, कुछ बीजो से देर मे वृक्ष उगते हैं। कुछ वृक्ष जल्दी ही फल देने लगते है, जबकि कुछ वृक्ष देर से फल देते है। इसी प्रकार कुछ वृक्ष कुछ ही वर्ष फल देते हैं, जबकि कुछ वृक्ष अनेकों वर्षों तक फल देते रहते है। गेहूं, चना, जौ, बाजरा आदि अनाजो की बुवाई करने पर केवल एक ही फसल मिलती है। इसी प्रकार कोई अच्छा व बुरा कार्य करते समय हमारी जैसी भावनाएं होती हैं तथा ये भावनाएं कितने समय तक रहती है, उन्ही भावनाओं के अनुसार ही कर्मों में फल देने की

शक्ति पड़ती है और इसके साथ-साथ इसी बात का भी निर्णय हो जाता है कि अमुक कर्म का फल कितने समय के पश्चात् मिलना शुरू होगा और वह कितनी अवधि तक मिलता रहेगा।

व्यक्तियों की विभिन्न भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए हम और उदाहरण देते हैं। कुछ व्यक्ति मांसाहार करना चाहते हैं। एक व्यक्ति के मन में इच्छा होते ही वह बाजार का बना बनाया मास खरीद कर सेवन कर लेता है। दूसरा व्यक्ति सोचता है कि अपने घर मे बनाया हुआ मास सेवन करने में अधिक आनन्द आता है। वह व्यक्ति बाजार से मास खरीद कर घर ले जाकर उसको पकवाता है, तब वह मांस का सेवन करता है। तीसरा व्यक्ति सोचता है कि अपने हाथ से पशु को मारकर उसका मांस सेवन करने में और अधिक आनन्द आता है। वह बाजार से कोई पशु खरीदता है। घर जाकर उसका वध करके वह मांस पकाता है और तब वह मास का सेवन करता है। चोथा व्यक्ति सोचता है कि जंगल मे जाकर शिकार करके उस पशु का मास खाने में और अधिक आनन्द आता है। वह जगल मे जाता है, पशु के पीछे भाग-दौड़ करके पशु का शिकार करता है, फिर घर पर लाकर उस पशु का मांस पकाता है, तब वह मास खाता है। पाचवां व्यक्ति सोचता है कि अकेले-अकेले मासाहार करने मे क्या मजा? मांसाहार का मजा तो चार-पाच मित्रो के साथ ही आता है। वह अपने कई मित्रों को रात्रि-भोजन का निमन्त्रण देता है, और उनको अपने साथ शिकार खेलने के लिये बन में चलने के लिए कहता है। दिन भर वे पशुओं का शिकार करते हैं। फिर घर आकर उन पशुओ का मास पकाते है तब सब मिलकर रात्रि को माँसाहार करते है।

आप इन पांचों व्यक्तियों की भावनाओ की तुलना कीजिये। पहले व्यक्ति ने मासाहार करना चाहा, उसने बाजार से मास खरीद कर खा लिया और दस-पन्द्रह मिनट मे ही अपनी इच्छा पूरी कर ली, और मासाहार की तरफ़ से उसका ध्यान हट गया। दूसरे व्यक्ति को अपनी मासाहार की इच्छा पूरी करने मे और अधिक देर लगी। तीसरे और चौथे व्यक्ति को क्रमशः और भी अधिक देर लगी। पांचवा व्यक्ति तो सारा दिन ही मासाहार की इच्छा पूर्ति करने में लगा रहा। अपने साथ उसने अन्य व्यक्तियो को भी मांसाहार कराया। इस प्रकार हम देखते है कि पहले व्यक्ति से लगाकर पाँचवें व्यक्ति तक की भावनाएं अधिकाधिक तीव्र होती चली गयीं और अपनी इच्छा पूर्ति करने मे उनको क्रमशः अधिकाधिक देर लगती चली गयी, तथा इस अवधि में उनका ध्यान मांस की प्राप्ति और उसके द्वारा अपनी इच्छा की पूर्ति में ही लगा रहा। इन्हीं भावनाओं के अनुसार उनके

कर्मों का सचय होगा और उनका फल भी क्रमशः अधिकाधिक देर तक मिलेगा।

आपने ऐसे दो गुटो के सम्बन्ध में अवश्य ही सुना या पढा होगा, जिनमें अनेको वर्षों तक शत्रुता चलती रहती है। उनके मन मे सदैव यही भावना बनी रहती है कि अपने विपक्षी को किस प्रकार अधिक से अधिक हानि पहुचाई जाये। अब आप स्वय सोचिये कि जो व्यक्ति वर्षों तक अपने हृदय मे घृणा, कटुता व शत्रुता को ढोता रहे, उसके कितने अधिक बुरे कर्मों का सचय होगा और फिर उन बुरे कर्मो का फल न जाने कितने अधिक समय तक मिलता रहेगा।

हम सब का प्रतिदिन का अनुभव है कि अनेको व्यक्तियो के जीवन मे बहुत से उतार-चढ़ाव आते है। एक व्यक्ति कभी धनवान होता है, तो कभी निर्धन हो जाता है। कभी कोई व्यक्ति सफलता के उच्चतम शिखर पर होता है, तो कभी विफलता की गहरी खाई मे गिर जाता है। कभी कोई व्यक्ति स्वस्थ होता है, कभी वह सख्त बीमार हो जाता है। कोई व्यक्ति जीवन पर्यन्त दु:खो व कष्टो से घिरा रहता है, तो कोई व्यक्ति सारा जीवन हसी-खुशो से व्यतीत कर देता है। यह सब उनके कर्मों के अनुसार ही होता है। जितनी अवधि तक उन कर्मो का फल मिलना होता है, उतनी ही अवधि तक व्यक्ति धनी व निर्धन, सफल व असफल, स्वस्थ व रोगी, सुखी व दु खी रहता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कर्मो के फल देने की अवधि एक ही जन्म मे समाप्त नही हो जाती। यह अवधि इतनी लम्बी होती है कि अगले जन्म मे भी वह कर्म फल देता रहता है। पूर्व-जन्म-स्मृति (पुनर्जन्म) पर खोज करने वाले विद्वानो ने ऐसे कई व्यक्तियो की जाच की है जिनके इस जन्म मे भी वही रोग है, जो उनको पिछले जन्म मे था।

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्मों का फल भिन्न-भिन्न अवधियो तक मिलता रहता है।

ध्यान व तप

पिछले पृष्ठो मे हमने कर्मों को नष्ट करने (आत्मा से अलग करने) के सम्बन्ध मे लिखा है। इस प्रसग को हम और अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करते है। कर्मों का नष्ट होना अधिकाश में हमारे ज्ञान-पूर्वक किये गये सम्यक तप व ध्यान पर निर्भर होता है। जितने अधिक उग्र हमारे सम्यक तप व ध्यान होगे, उतने ही अधिक कर्म नष्ट हो सकेगे। इस सम्बन्ध में हम एक लौकिक उदाहरण देते है। हम पहाड की एक बहुत बड़ी शिला को तोड़ना चाहते हैं। यदि हम छैनी और हथौड़ी से यह कार्य करते हैं,

तो उस शिला को तोड़ने में हमको बहुत अधिक समय लग जायेगा। यदि हम उस पत्थर मे बारुद लगा कर उडाये तो हमें कई बार बारूद लगानी पड़ेगी और इस तरीके से पहले की अपेक्षा बहुत कम समय में वह शिला टूट जायेगी। यदि हम उस शिला पर एक बम डाल दे तो वह पत्थर कुछ ही क्षणों में साफ हो जायेगा।

उस शिला को तोडने में कितना समय लगता है—यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस शिला का पत्थर कितना अधिक कठोर अथवा कोमल है। पत्थर जितना अधिक कठोर होगा, उसके टूटने मे उतना ही अधिक समय लगेगा। तथा उस शिला का पत्थर जितना अधिक कोमल होगा, उसको तोड़ने मे उतना ही कम समय लगेगा।

इसी प्रकार हमारे सम्यक ध्यान व तप जितने अधिक उग्र होंगे, हमारे उतने ही अधिक कर्म नष्ट होगे तथा शीघ्रता से होंगे। और हमारे कर्म जितने अधिक तीव्र होगे, उनके नष्ट होने में उतना ही अधिक समय लगेगा।

कर्म दो प्रकार से नष्ट (आत्मा से अलग) होते है।

(१) अपना फल देने का समय आने पर कर्म फल देकर नष्ट होते रहते है। यह क्रिया तो अनवरत रूप से चलती रहती है। (परन्तु इस प्रकार से नष्ट होने वाले कर्मों से हमे मुक्ति प्राप्त करने मे कुछ सहायता नही मिलती।)

(२) सम्यक ध्यान व तप के द्वारा कर्मों को उनका फल देने का समय आने से पहले ही नष्ट किया जा सकता है। (इस प्रकार कर्मों को नष्ट करने से ही मुक्ति प्राप्त करना सम्भव होता है।)

कर्मों को नष्ट करने मे तप व ध्यान का विशेष महत्व है। अतः इन दोनों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

(१) भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, विषैले जन्तुओं के काटने, कांटा चुभने आदि की पीड़ा को ज्ञानपूर्वक व शान्त भाव से सहन करने से कर्म नष्ट होते है।

(२) एक दिन, दो दिन या और भी अधिक दिनों के लिये भोजन का त्याग करने से, भूख से कम भोजन करने से, रूखा-सूखा बिना मिर्च-मसालो का (परन्तु शुद्ध) भोजन सेवन करने से, कर्म नष्ट होते है।

(३) कष्ट सहने का अभ्यास करते रहने, सर्दी मे खुले मैदान में रहने और गर्मी में धूप में रहने से कर्म नष्ट होते हैं। (अपने चारों ओर

अग्नि जलाकर बैठने से सम्यक तप नही होता, अपितु ऐसा करने से तो प्राणियो की हिंसा होती है।)

(४) पूज्य व्यक्तियों की विनय करने से, निर्बल व रोगी व्यक्तियों की सेवा शुश्रूषा करने से, सत-साहित्य का स्वयं अध्ययन करने तथा दूसरे व्यक्तियो को अध्ययन कराने से कर्म नष्ट होते हैं।

ये सब क्रियाएं तप के अन्तर्गत आती है। हमको इस प्रकार का तप खेद-खिन्न हुए बिना तथा ज्ञान पूर्वक व उत्साह पूर्वक करना चाहिये। यदि ऐसा करते हुए हमारे मन मे यह भावना आ गयी कि ऐसा करने से अन्य व्यक्ति मेरा मान-सम्मान करेंगे, तो ये क्रियाए तप नही रह जायेंगी, अपितु एक प्रकार का व्यापार हो जायेगा, क्योकि हमने तप किया और बदले में मान-सम्मान चाहा।

एक बात और, यदि हमको किसी समय बिना चाहे ही लाचारी से भूखे रहना पड़ जाये, तब यह कष्ट सहना तप नही कहलायेगा। यह कष्ट तो हमारे बुरे कर्मों के फलस्वरूप मिला है। सम्यक तप तो वही है जब ये कष्ट सकल्प करके ज्ञान व उत्साह पूर्वक सहे जाये।

अपने मन को सब ओर से रोक कर एक ही विषय में स्थिर करना ध्यान कहलाता है। वास्तव मे तो ध्यान अनेक प्रकार का होता है, परन्तु विषय को सक्षिप्त करने के लिये हम यहा पर कुछ ही प्रकार के ध्यानों का वर्णन करेंगे।

(१) प्रतिक्षण दूसरो को धोखा देने, दूसरो का धन अपहरण करने, दूसरो को किसी-न-किसी प्रकार हानि व कष्ट पहुचाने तथा दूसरों की हत्या करने की योजनाएं बनाते रहना।

(२) स्वय को थोडा-सा भी कष्ट हो तो उसको बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बतलाना, प्रतिक्षण उस कष्ट की ओर ही ध्यान रखना और हाय-हाय करते रहना।

(३) प्रतिक्षण दिवा-स्वप्न देखते रहना—जैसे मैं करोडपति हो जाऊ, मेरे इतनी सख्या मे मकान व बाग-बगीचे हो जायें, मेरा मान-सम्मान बढ जाये।

(४) प्रतिक्षण दूसरे प्राणियों की भलाई के लिये शुभ संकल्प व प्रयत्न करते रहना।

(५) इस विश्व की वास्तविकता का चितवन करते रहना तथा अपने चित्त को सब ओर से रोककर अपनी आत्मा का ही ध्यान करना तथा अपनी आत्मा में ही रमण करना।

यह तो स्पष्ट है कि पहले तीन प्रकार के ध्यान बुरे कर्मों के संचय के कारण हैं, चौथे प्रकार का ध्यान अच्छे कर्मों के संचय का कारण है तथा पांचवे प्रकार का ध्यान कर्मों को नष्ट करने का कारण है तथा इसी ध्यान के द्वारा हम सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त कर सकते हैं।

कर्मफल पाने के सम्बन्ध में हम आपको एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य बतलाते हैं।

हमने पिछले पृष्ठों में डाक्टर एलेक्जेण्डर केनन के प्रयोगों के सम्बन्ध में बतलाया था कि वे किसी भी व्यक्ति को हिप्नोटिज्म द्वारा ट्रांस की अवस्था में डालकर उसकी स्मृति पिछले जन्मों तक ले जाकर उस व्यक्ति से उसके पूर्वजन्म के सम्बन्ध में पूछते थे। अपनी पुस्तक The Power Within के पृष्ठ १८० पर वे लिखते हैं, "ट्रांस की अवस्था में एक महिला से पूछा गया कि "दूसरा जन्म कहां लेना है, क्या इसकी पसन्द की जा सकती है?" महिला ने उत्तर दिया, "इस सम्बन्ध में अपनी पसन्द कोई काम नही करती। यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि हमने अपना यह जीवन और इससे पूर्व के जीवन किस प्रकार व्यतीत किये हैं और इसी तथ्य द्वारा हमारा अगला जन्म निश्चित होता है।"

इसी पुस्तक के पृष्ठ १७०-७१ पर वे लिखते हैं, "मेरे प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि किस प्रकार एक व्यक्ति अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के कारण इस जन्म में दुःख पाता है। यह कारण और कार्य के नियम द्वारा ही होता है, जिसको पूर्व के देशों में कर्मों का फल कहते है। बहुत से व्यक्ति यह नही जानते कि उनके ऊपर एक के बाद एक विपत्ति क्यों आ रही है? परन्तु पुनर्जन्म का सिद्धान्त यह बतलाता है कि ये दुःख पूर्वजन्मों के बुरे कार्यों के ही फल हैं। इसके साथ-साथ कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं कि वे चाहे कुछ भी करें, परन्तु वे सदैव सफल ही होते हैं। क्या यह पूर्वजन्मों में किये हुए अच्छे कर्मों का पुरस्कार नही है?"

इसी सम्बन्ध में Morey Bernstein ने अपनी पुस्तक "A Search for Bridey Murphy" में पृष्ठ ६३ पर लिखा है "एडगर कैसी ने विभिन्न व्यक्तियों के पूर्वजन्मों के आधार पर उनके वर्तमान के जन्म में उनकी शक्तियों, विशेषताओं, रुचियों, व्यवसायों आदि की जो भविष्य-वाणियां की थीं, वे आश्चर्यजनक रूप से सत्य सिद्ध हुई हैं।"

('विज्ञान और अध्यात्म' से साभार उद्धृत)

इसी सन्दर्भ में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक "नवभारत टाइम्स" के १४ दिसम्बर १९७४ के अंक में छपा निम्नलिखित समाचार भी तथ्यपूर्ण है:—

कोजीकोड (दक्षिण भारत) के एक ज्योतिषी मुहम्मद अशरफ ने अपनी २८ वर्ष की खोज व अध्ययन के पश्चात् बतलाया है कि स्त्रियो व पुरुषो के विवाह सम्बन्ध उनके जन्म से पूर्व ही निर्धारित हो जाते है। अनेकों विवाहित जोडो की (जिनमे हिन्दू, मुस्लिम व ईसाई आदि सभी धर्मों को मानने वाले सम्मिलित है) जन्म-पत्रियों को देखकर ही उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है। इनमें से अनेको ने विवाह-सूत्र में बंधने से पहले किसी ज्योतिषी से पूछा भी नही था।

इसी विषय पर अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है :—"Marriages are settled in heaven but they are celebrated on earth." इसका अर्थ है कि विवाह-सम्बन्ध स्वर्ग में ही निश्चित हो जाते है, (अर्थात् जन्म लेने से पहले ही) परन्तु वे पृथ्वी पर सम्पन्न होते हैं।

ये सब बतलाने का हमारा तात्पर्य यही है कि हम अपने पूर्व जन्मो में किये हुए कर्मों का फल भोगने से किसी भी प्रकार बच नही सकते। हमें उन कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पडेगा।

तथ्य तो यही है कि हम अल्पज्ञ हैं, हम कर्म व कर्म-फल की विचित्रताओ को पूरी प्रकार नही जानते। हम केवल अनुमान द्वारा तथा लौकिक उदाहरणों द्वारा ही उनको कुछ-कुछ समझ सकते हैं।

यहा पर एक शका उठती है। हम कह आये है कि किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिलता है वह उस को अपने ही कर्मों के फलस्वरूप मिलता है, कोई भी अन्य व्यक्ति उसको सुख व दुःख देने में समर्थ नही है। जो व्यक्ति उसको दुःख दे रहा है, वह तो केवल निमित्त मात्र ही है। ऐसी हालत में दुःख देने वाले व्यक्तियों के दोषी होने और उनके कर्मों के संचय होने का प्रश्न ही नही उठता।

यह ठीक है कि कोई भी प्राणी किसी भी अन्य प्राणी को सुख व दुःख देने में समर्थ नही है और किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिलते है, वे उसको अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही मिलते है, दूसरे प्राणी तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। परन्तु हमको देखना यह है कि जिस व्यक्ति के निमित्त से हमको दुःख मिल रहा है, उसकी भावनाएं कैसी हैं? हमको दुःख देने में क्या उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ है? एक न्यायाधीश एक अपराधी को दण्ड देता है। अपराधी को दण्ड देने में उस न्यायाधीश की न तो यह भावना है कि वह उस अपराधी से किसी प्रकार का बदला ले और न उस अपराधी को दण्ड देने में उसका कुछ व्यक्तिगत स्वार्थ ही है। यद्यपि न्यायाधीश द्वारा दिये गये दण्ड के फलस्वरूप उस अपराधी को मानसिक व शारीरिक कष्ट होता है, परन्तु

फिर भी न्यायाधीश को कोई दोष नहीं लगता ; क्योकि वह तो देश के नियमों के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है । यदि न्यायाधीश अपराधियों को दण्ड न दे, तो समाज व देश में अराजकता फैलेगी और अपराधियों का दुःसाहस और बढ़ जायेगा । इसके विपरीत कोई चोर हमारे धन की चोरी कर रहा है तथा कोई दुष्ट व्यक्ति हमें अन्य प्रकार से कष्ट पहुंचा रहा है, तो उस चोर व उस दुष्ट व्यक्ति की भावनाएं कैसी है ? स्पष्ट है कि वे एक न्यायाधीश के समान हमको दण्ड नही दे रहे , अपितु वे तो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये ही हमको कष्ट पहुचा रहे है । यद्यपि इन व्यक्तियों के निमित्त से हमको जो दुःख मिल रहा है वह हमारे अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही मिल रहा है, (यदि अपने कर्मों के अनुसार हमे कष्ट पाना न होता, तो ये व्यक्ति लाख चाहने पर भी हमको कष्ट नही पहुचा सकते थे) परन्तु उन व्यक्तियों की अपनी बुरी भावनाओ के कारण ही उनके बुरे कर्मों का सचय होता है, जिनका बुरा फल उन्हे अवश्य ही भोगना पड़ेगा ।

इसी सदर्भ में हम एक विचारक का उर्दू भाषा का प्रसिद्ध शेर उद्धृत कर रहे है :—

मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है,
वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है ।

यह शेर एक ऐसे विचारक का है जो एक सर्वशक्तिमान व विश्व के संचालक परमेश्वर का अस्तित्व मानते हैं । उस शेर का अर्थ यही है कि किसी भी व्यक्ति के बुरा चाहने से किसी अन्य व्यक्ति का कुछ भी बुरा नही हो सकता । इस संसार में जो कुछ भी होना है उस खुदा की इच्छानुसार ही होता है । इस सम्बन्ध में निवेदन है कि हम तो ऐसे किसी परमेश्वर के अस्तित्व को स्वीकार ही नही करते । इसलिये यदि इस शेर को इस प्रकार पढ़ा जाये तो यह हमारी विचारधारा के अनुसार बिल्कुल ठीक बैठता है :—

मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है,
वही होता है जो मुकद्दर में लिखा होता है ।

"पिछले" अर्थात् "पूर्व में किये हुए" का तात्पर्य

पिछले पृष्ठों में हम अनेक बार कह चुके है कि हमें जो भी सुख व दुःख, सफलता व असफलता मिलती है, वह हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में की हुई हमारी अच्छी व बुरी भावनाओं (अर्थात् अच्छे व बुरे कार्यों) के फलस्वरूप ही मिलती है । इस विषय को भली प्रकार समझने के लिये हमें

"पिछले" अर्थात् "पूर्व में किये हुए" शब्दों का अर्थ भली प्रकार समझ लेना चाहिये। जब हम "पिछले" अर्थात् "पूर्व में किये हुए" कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य काल की कोई सीमा रेखा खींचना नहीं है, कि अब से दस, बीस या पचास वर्ष पहले के। हमारा तात्पर्य यह भी नहीं है कि हमें इस जन्म में जो कुछ भी फल मिल रहा है, वह केवल पिछले जन्मों में किये हुए कर्मों का ही फल मिल रहा है। और इस जन्म में हमने जो कार्य किये हैं तथा अब जो कार्य कर रहे हैं, उनका फल हमको इस जन्म में नहीं, अपितु अगले जन्मों में ही मिलेगा—यह धारणा ठीक नहीं है। "पिछले" अर्थात "पूर्व में किये हुए" मे हमारा तात्पर्य यही है कि वर्तमान क्षण से पहले हमने जो भी कार्य किये है—वे कार्य हमारे इस जन्म के किये हुए भी हो सकते हैं और पिछले जन्मो के किये हुए भी—उन कार्यों के फलस्वरूप संचित कर्म अपनी-अपनी अवधि आने पर हमे अपना फल देते रहते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि हम वर्तमान में जो कार्य कर रहे है, वे भी हमें वर्तमान में सुख व दुःख देने मे उतने ही उत्तरदायी और महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं जितने कि अब मे पाच, सात, दस साल पहले के तथा पिछले जन्मों में किये हुए हमारे कार्य।

इसी प्रकार "भविष्य" से भी हमारा तात्पर्य अब से पाच, सात, दस, बीस या पचास वर्ष बाद या अगले जन्म से नहीं है, अपितु वर्तमान क्षण के पश्चात् जो भी काल है, वह सब भविष्य के अन्तर्गत ही आता है, चाहे वह इसी जन्म में थोडी देर के पश्चात् हो या साल दो साल के पश्चात् हो और फिर चाहे वह अगले जन्मो में हो।

वास्तविकता तो यह है कि पिछले किये हुए कार्यों का फल हमें अब भी मिल सकता है और भविष्य में भी। इसी प्रकार हम इस समय जो कार्य कर रहे हैं, उनका फल हमें अभी भी मिल सकता है, कुछ समय के पश्चात् इसी जन्म में भी मिल सकता है और अगले जन्मों में भी मिल सकता है। परन्तु हम अपनी अल्पज्ञता के कारण यह नही जान पाते कि वह फल हमको कब और किस रूप में मिल जाता है।

इस प्रकार हमने कर्म फल पर संक्षेप में विवेचन किया।



कष्टों और विपत्तियों से मनुष्य को शिक्षा मिलती है। जो मनुष्य साहस के साथ उनको सहन करते हैं वे अपने जीवन में विजयी होते हैं।

भाग्य और पुरुषार्थ

बहुत प्राचीन काल से ही भाग्य व पुरुषार्थ के पक्ष व विपक्ष में तर्क व वितर्क होते रहे हैं। कुछ व्यक्ति भाग्य को प्रबल मानते रहे हैं, तो कुछ पुरुषार्थ को, जबकि कुछ व्यक्ति इन दोनों के महत्त्व को समान रूप से स्वीकार करते हैं।

अन्ततः ये भाग्य व पुरुषार्थ हैं क्या ?

साधारणतया जब हम कोई कार्य सम्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं, तब यदि हमको हमारे प्रयत्नों (पुरुषार्थ) के अनुसार ही फल मिल जाता है, तब हम उसको अपने पुरुषार्थ का फल मान लेते हैं। यदि अपने प्रयत्नों की तुलना में हमको अधिक फल मिल जाता है, तो हम उसको अपने अच्छे भाग्य (सौभाग्य) का फल मान लेते है। यदि हमारे प्रयत्नों की तुलना में हमको कम फल मिलता है या बिल्कुल ही फल नहीं मिलता, तो हम उसको अपने बुरे भाग्य (दुर्भाग्य) का फल मान लेते हैं।

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि वह सुन्दर व स्वस्थ हो, उसके पास बहुत-सा धन हो, उसके पास सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से युक्त एक सुन्दर-सा मकान हो, उसका जीवन-साथी (पति/पत्नी) सुन्दर, स्वस्थ व बहुत अच्छे स्वभाव वाला हो। उसकी सन्तान स्वस्थ, सुन्दर, आज्ञाकारी, सुशील व सुयोग्य हो। उसके सम्बन्धी, मित्र व सेवक विश्वसनीय तथा सुख-दुःख में साथ देने वाले हों। उसके पास आय के समुचित साधन हों। तात्पर्य यही है कि प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि वह सब प्रकार से सुखी हो। अनेकों व्यक्ति इस प्रकार का सुख पाने के लिये यथा-शक्ति प्रयत्न भी करते हैं। परन्तु हम सब का तो यही अनुभव है कि अधिकांश व्यक्तियों को सदैव ही अपने प्रयत्नों (पुरुषार्थ) के अनुसार फल नहीं मिलता। अन्ततः इसका कारण क्या है ?

(अपने प्रयत्नों के अनुसार फल न मिलने पर कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों पर दोषारोपण करने लगते हैं कि अमुक व्यक्ति ने उनके सुख और सफलता की प्राप्ति में बाधा डाल दी। परन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। क्योंकि प्रत्येक प्राणी को अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही सुख व दुःख तथा सफलता व असफलता मिलती है। जिन व्यक्तियों के माध्यम से ये सुख व दुःख तथा सफलता व असफलता मिलती है, वे तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं।)

हम सब का यही अनुभव है कि इस संसार में अधिकाश में व्यक्तियों को अपने प्रयत्नों के अनुसार ही फल नहीं मिलता। समान प्रयत्न करने वाले दो व्यक्तियो को भी एक समान फल नही मिलता। समान वातावरण और समान परिस्थितियों का भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पडता है। हम प्रतिदिन ही ऐसे उदाहरण देखते हैं। जैसे :—

एक कक्षा में बहुत से बालक पढ़ते हैं। अध्यापक सभी बालकों को एक जैसा ही पढाते हैं। परन्तु उन बालको में से कुछ बालक अच्छे अंक प्राप्त करते हैं, कुछ बालक साधारण अंक प्राप्त करते हैं, जबकि कुछ बालक बहुत थोडे अंक ही प्राप्त कर पाते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि परिश्रम करने वाले बालक असफल ही रह जाते हैं और जो बालक अधिक परिश्रम नही करते, वे उत्तीर्ण हो जाते हैं।

समान योग्यता वाले दो डाक्टरो में से एक को तो धन व यश दोनो ही प्राप्त हो जाते हैं, जबकि दूसरा डाक्टर उतना सफल नही हो पाता। यही बात वकीलो, इजीनियरो, चारटर्ड अकाउन्टेन्टो आदि के सम्बन्ध में भी देखी जाती है।

दो व्यापारियो की एक ही स्थान पर एक जैसी ही वस्तुओ की दुकानें होती हैं। उन व्यापारियो मे से एक को तो अच्छी आय हो जाती है, जबकि दूसरा व्यापारी अपना खर्च भी कठिनाई से ही निकाल पाता है।

एक कार्यालय मे समान योग्यता वाले दो व्यक्तियों की एक साथ ही नियुक्ति होती है - उनमे से एक तो उन्नति करते-करते उस कार्यालय का प्रबन्धक बन जाता है, जबकि दूसरा व्यक्ति इतनी सफलता प्राप्त नही कर पाता।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि कम योग्यता वाला व्यक्ति तो जीवन में सफलता प्राप्त कर लेता है, जबकि अधिक योग्यता वाला व्यक्ति असफल ही रह जाता है।

कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि कोई व्यक्ति किसी अनुसन्धान में अपना सारा जीवन बिता देता है, परन्तु उसको सफलता नही मिलती, जबकि दूसरा व्यक्ति उसके परिश्रम के आधार पर थोडे से परिश्रम से ही सफलता प्राप्त कर लेता है।

यदि हम अपने चारो ओर दृष्टि डालें, तो हमको ऐसे ही अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं।

अन्ततः इन विषमताओं व विडम्बनाओं का कारण क्या है ? ये विषमताएं व विडम्बनाएं अचानक अर्थात "संयोगवश" (By accidents) ही घटित नहीं होतीं। इनके पीछे कोई-न-कोई ठोस व तर्कसम्मत कारण होता है। तथ्य तो यह है कि प्राणियों के जीवन में पायी जाने वाली इन विषमताओं और विडम्बनाओं का मुख्य कारण उनके द्वारा भूतकाल में किये हुए कार्य ही हैं। हम इन विषमताओं व विडम्बनाओं को कर्म-फल कहलें या भाग्य कहलें, बात एक ही है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये हम कुछ उदाहरण देते हैं।

एक बालक एक बडे भव्य महल में जन्म लेता है, जहां पर उसकी देख-रेख के लिये दास, दासियां, व डाक्टर आदि नियुक्त हैं, तथा उसके लिये सब प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं। एक दूसरा बालक सडक के किनारे बने हुए टूटे-फूटे झोंपडे में जन्म लेता है, जहां पर उसको उपेक्षा व अभावों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल पाता।

जो सज्जन केवल पुरुषार्थ के महत्त्व को ही स्वीकार करते हैं, उनसे हम पूछने है कि पहले वाले बालक ने कब और क्या पुरुषार्थ किया था जो उसको सब प्रकार के सुख व सुविधाय उपलब्ध हुई ? और दूसरे वाले बालक ने कब और क्या अपराध किया था जो उसे सब प्रकार के अभावों से जूझना पडा ?

इन प्रश्नों के उत्तर "संयोगवश" नही हैं। हम पहले भी कह चुके हैं कि इस विश्व में संयोगवश कुछ नही होता। यहां जो कुछ भी घटित होता है उसके पीछे कोई न कोई तर्कसम्मत व ठोस कारण होता है। यदि केवल संयोगवश ही घटनाएं घटने लगे, तो इस विश्व का कोई नियम ही न रह जाये और सर्वत्र उथल-पुथल मच जाये।

इस विषमता का स्पष्ट उत्तर यही है कि पहले वाले बालक का भाग्य बहुत अच्छा था (या यह कहलें कि उसने पिछले जन्मों में बहुत अच्छे कार्य किये थे) जिसके फलस्वरूप उसको ये सुविधायें उपलब्ध हुई। तथा दूसरे वाले बालक का भाग्य खराब था, (या यह कहलें कि उसने पिछले जन्मों में बुरे कार्य किये थे) जिसके फलस्वरूप उसको सब प्रकार के अभाव सहने पडे। तथ्य यही है कि अपने-अपने अच्छे व बुरे भाग्य के फलस्वरूप ही उनका विभिन्न परिस्थितियों में जन्म हुआ और विभिन्न परिस्थितियों में ही लालन-पालन हुआ।

एक दस-पन्द्रह वर्ष का बालक है। वह कोई भी कार्य (पुरुषार्थ) नहीं करता। फिर भी, वह एक भव्य भवन में रहता है, अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनता है, मोटरों में घूमता है, स्वादिष्ट व पौष्टिक भोजन करता

है। उसे अपने माता पिता व अपने सम्बन्धियों का भरपूर प्यार मिलता है। तात्पर्य यह है कि उसे सभी प्रकार के सुख व सुविधाएं उपलब्ध हैं।

एक दूसरा बालक है। उसकी आयु भी दस-पन्द्रह वर्ष की ही है। वह किसी होटल, कारखाने या दुकान में या किसी के घर पर नौकरी करता है। वह दिन भर में तेरह, चौदह घन्टे कठिन परिश्रम करता है, अपने स्वामी की गालियां और मार खाता रहता है, फिर भी उसको न पेट भर कर भोजन मिलता है, न तन ढकने को कपड़े और न सिर छिपाने को छत।

इन दोनो बालकों में क्या अन्तर है? पहले बालक को बिना पुरुषार्थ किये ही जीवन की सभी सुविधायें उपलब्ध है, परन्तु दूसरा बालक भरपूर पुरुषार्थ करते हुए भी जीवन की अति आवश्यक वस्तुओ से भी वञ्चित रह जाता है।

इस विषमता का क्या कारण है?

आजकल के तथाकथित समाजवादी नेता इस विषमता के लिये समाज व्यवस्था को दोषी ठहरायेंगे और निर्धनो का शोषण करने के लिये धनवानो को गालिया सुना देंगे। परन्तु तथ्य यही है कि पहले वाले बालक का भाग्य अच्छा है और दूसरे वाले बालक का भाग्य खराब है।

एक धनवान का विवाहित युवा पुत्र किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाता है। अनेको उपचार करने और लाखों रुपये व्यय करने के पश्चात् भी उसकी मृत्यु हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उस धनवान को तथा उसकी विधवा पुत्रवधु को बहुत ही अधिक मानसिक वेदना होती है और उनका सारा जीवन ही दुःख के सागर में डूब जाता है। उनके इस दुःख के लिये कौन उत्तरदायी है?

इसी प्रकार किसी परिवार के कमाऊ सदस्य की मृत्यु हो जाती है, जिसके कारण उस परिवार के ऊपर दुःखों का पहाड टूट पडता है। उस परिवार के सदस्यों पर पडे इस संकट के लिये कौन उत्तरदायी है?

हम प्रतिदिन दुर्घटनाओं के समाचार पढते है, जिनके फलस्वरूप अनेको व्यक्तियो की मृत्यु हो जाती है तथा अनेकों व्यक्ति अपंग हो जाते हैं। इन व्यक्तियों के कष्टों के लिये कौन उत्तरदायी है?

हम तो यही कहेंगे कि जैसा-जसा किसी प्राणी का भाग्य होता है उसके अनुसार ही उस प्राणी को सुख व दुःख भोगने पडते है।

इन विषमताओ के हम कुछ और उदाहरण देते है।

एक कुत्ता एक धनी व्यक्ति के पास रहता है। उसकी देख-भाल के लिये एक सेवक नियुक्त है। उसको अच्छे-से-अच्छा स्वादिष्ट व पौष्टिक भोजन मिलता है। वह सर्दियों में गरम कमरों में और गर्मियों में ठण्डे कमरों में

घूमता रहता है। वह अपनी नींद सोता है और अपनी नींद जागता है। उसकी तनिक-सी भी तबियत खराब हुई नहीं कि डॉक्टर उपस्थित हो जाता है।

एक दूसरा कुत्ता है। खाज के कारण उसके शरीर में घाव हो रहे हैं जिन पर मक्खियां बैठती रहती है। उसकी एक टांग टूटी हुई है, इसलिये वह घिसटता हुआ चलता है। बच्चे उसको देखते ही पत्थर मारने लगते हैं, इसलिये वह एक स्थान पर आराम से बैठ भी नही सकता। उसके खाने-पीने का भी कोई ठिकाना नही है।

ऐसी ही विषमताएं हम घोड़ो, ऊंटों, व अन्य पशु-पक्षियो में भी देखते हैं।

केवल पुरुषार्थ के महत्त्व को ही स्वीकार करने वाले सज्जन क्या इन विषमताओं का कारण बता सकेंगे? हमारा उत्तर तो यही है कि पहले वाले कुत्ते का भाग्य अच्छा है, जिसके कारण उसको सब प्रकार की सुविधायें मिली हुई है, जबकि दूसरे वाले कुत्ते का भाग्य खराब है, जिसके फलस्वरूप उसको इतने कष्ट झेलने पड़ रहे हैं।

हम यहाँ पर ऐसे व्यक्तियो को भी देखते है जो साधारण पशुओं से भी बुरा जीवन जो रहे है, और ऐसे पशुओं को भी देखते है जो साधारण मनुष्यो से भी बहुत अच्छा जीवन व्यतीत कर रहे है।

एक बस दुर्घटना हो जाती है। उस दुर्घटना के कारण कुछ यात्रियों की मृत्यु हो जाती है। कुछ यात्री गम्भीररूप से घायल हो जाते है, कुछ यात्रियों के साधारण चोटे लगती है, और कुछ यात्रियों का बाल भी बांका नही होता।

कहीं पर युद्ध होता है। उस युद्ध के फलस्वरूप अनेको व्यक्तियो की मृत्यु हो जाती है, अनेको व्यक्ति अपंग हो जाते है, अनेकों परिवार नष्ट हो जाते हैं; जबकि उसी युद्ध के कारण कुछ व्यक्ति समृद्धिशाली भी बन जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि एक ही घटना का विभिन्न व्यक्तियों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है।

अन्ततः इन सब विषमताओं का मूल कारण क्या है?

हमारा उत्तर तो यही है कि ये विषमताएं "संयोगवश" घटित नहीं होतीं; अपितु जैसा-जैसा किसी प्राणी का भाग्य होता है, उसी के अनुसार उस प्राणी को सुख व दुःख भोगने पड़ते है।

हम कितने निर्बल और बेबस हैं!

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि वह बहुत धनवान

हो और उसके पास सुख-सुविधाओं के सभी साधन हों। कुछ व्यक्ति अपनी इच्छा पूरी करने के लिये गम्भीरता पूर्वक तन-मन से प्रयत्न भी करते हैं। परन्तु अपने अथक प्रयत्नों के पश्चात् भी उनको समुचित फल नहीं मिल पाता।

इसी प्रकार सभी माता-पिता यही चाहते है कि वे अपने बच्चों को बहुत पढायें-लिखाये, और उनको बहुत बडा आदमी बनायें। परन्तु क्या उन सभी की आशाए पूरी हो पाती हैं ? हम निर्धनो और साधनहीन व्यक्तियों की बात जाने भी दें, अधिकांश धनवान व साधनसम्पन्न व्यक्ति भी अपनी सन्तान के सम्बन्ध में अपनी आशाये पूरी नहीं कर पाते। हम प्रति दिन साधन-सम्पन्न व्यक्तियो के पुत्रो व पुत्रियो के कुमार्गों पर चले जाने के समाचार पढते रहते है।

सभी माता-पिता यह चाहते है कि वे अपने पुत्र के लिये ऐसी वधु लायेगे जो बहुत सुन्दर और सर्व-गुण-सम्पन्न हो, जिसके पिता पर्याप्त धनी व प्रभावशाली व्यक्ति हो, जो बहुत अच्छे स्वभाव वाली हो, जो ऊचे चरित्र वाली हो, जो उनके घर की मान-मर्यादा को बढाने वाली हो जो उनकी आज्ञानुसार चलने वाली हो, जो उनका सम्मान व सेवा करने वाली हो, जो अच्छे स्वास्थ्य वाली हो, जिसकी सन्तान स्वस्थ, सुन्दर व गुणी हो, जो उनको पौत्र दे सके (सभी व्यक्ति यह चाहते है कि उनके पोती हो या न हो, कम-से-कम एक पोता तो अवश्य ही हो)। इस प्रकार इन इच्छाओ व आकाक्षाओ को कहा तक गिनाये ? परन्तु हम तो यही देखते है कि हमारी सभी इच्छाए व आकाक्षाये कदाचित् ही पूरी होती हो।

इसी प्रकार प्रत्येक माता-पिता यही चाहते है कि उनकी पुत्री को अच्छा घर व वर मिले और वह सदैव सुखी व प्रसन्न रहे। परन्तु क्या सभी की ये आशाए पूरी हो पाती है ?

हम अनेको बार देखते है कि बहुत से साधन-सम्पन्न व्यक्तियों को दाल का पानी भी कठिनाई से हजम हो पाता है, और वे अपने मन का स्वादिष्ट भोजन सेवन करने के लिये तरसते रहते है।

हम अनेको बार देखते हैं कि बहुत साधन-सम्पन्न व सत्ताधारी व्यक्ति अपने परम प्रिय सम्बन्धियों को किसी दुर्घटना तथा किसी असाध्य रोग के फलस्वरूप मृत्यु के मुख में जाते हुए देखते रहते है, परन्तु अपार शक्ति व सत्ता के स्वामी होते हुए भी वे कुछ भी कर पाने मे असमर्थ ही रहते है।

अन्ततः इस निर्बलता, इस बेबसी का कारण क्या है ?

इसके लिये हम उनके दुर्भाग्य के अतिरिक्त क्या और कोई कारण बतला सकते हैं ?

हम सब का यह भी अनुभव है कि एक ही व्यक्ति कभी तो सुखी होता है और कभी दुःखी। इसी प्रकार एक व्यक्ति कभी तो उन्नति के शिखर पर होता है, और कभी वह अवनति के अंधकार में डूब जाता है। इन तथ्यों को देखते हुए कुछ सज्जन पूछते है कि क्या भाग्य थोड़े-थोड़े समय में बदलता रहता है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है, "निसंदेह, भाग्य थोड़े-थोड़े समय में बदलता रहता है।" एक व्यापारी है, उसको किसी वर्ष अधिक लाभ होता है, तो किसी वर्ष कम, और किसी वर्ष तो हानि ही हो जाती है। यदि हम थोड़ी अवधि के हानि-लाभ पर विचार करें, तो हम पायेंगे कि किसी महीने में उस व्यापारी को अधिक लाभ होता है और किसी महीने में कम। और भी थोडी अवधि के हानि-लाभ को देखे, तो हम पायेंगे कि किसी दिन उसको अधिक लाभ होता है और किसी दिन कम। एक दिन के दौरान भी हम देखें, तो पायेंगे कि किसी घन्टे मे उस व्यापारी को अधिक लाभ हुआ और किसी घन्टे मे कम। यह तो हम सब का अनुभव है कि एक व्यापारी कभी तो दिन के अधिकाश समय में खाली बैठा रहता है और कभी एक-दो घन्टे में ही उसकी बहुत बिक्री हो जाती है। इसका अर्थ यही हुआ कि जिस समय व्यापारी का भाग्य अच्छा होता है, उसकी बिक्री अधिक हो जाती है और जिस समय उस व्यापारी का भाग्य अच्छा नही होता, उसकी बिक्री कम होती है या बिलकुल नही होती।

इसी प्रकार हम डाक्टरो, वकीलो व अन्य व्यवसाइयो के सम्बन्ध में भी अच्छे व बुरे तथा थोड़े-थोड़े समय मे बदलते हुए भाग्य का फल देख सकते है।

यहां शका यह उठती है कि यह तो व्यापारियो व व्यवसाइयो की बात हुई, किन्तु जो व्यक्ति स्थायी नौकरी करते है, उनके अच्छे व बुरे तथा बदलते हुए भाग्य के सम्बन्ध मे हमे क्या कहना है? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि अच्छे व बुरे भाग्य का फल केवल आर्थिक लाभ या हानि तक ही सीमित नही होता, अपितु अच्छे व बुरे भाग्य का फल जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। जैसे कि नौकरी करने वाले व्यक्ति का स्वयं का व उनके परिवार के सदस्यो का स्वास्थ्य कैसा रहता है? उनकी पत्नी, सन्तान व अन्य सम्बन्धी कैसे स्वभाव के हैं? उनके घर का वातावरण कैसा रहता है (क्लेश का अथवा शांति का)? कार्यालय मे उनके अपने अधिकारियो व अन्य सहकर्मियो से कैसे सम्बन्ध है? उनको पदोन्नति के अवसर मिलते है या नही? इत्यादि। जिस समय भाग्य अच्छा होता है, उस समय ये सब अनुकूल रहते है। इसके विपरीत जब भाग्य बुरा होता है, तो इनमे से सब या कुछ प्रतिकूल हो जाते है।

इस सम्बन्ध मे हम और उदाहरण देते है। एक खिलाड़ी है; कभी

तो वह बहुत अच्छा खेलता है, उस समय सब उसकी प्रशंसा करते है तथा उसको पुरस्कार मिलते हैं। इसके विपरीत कभी उसका खेल बहुत निराशा-जनक होता है (यद्यपि वह तो अच्छा खेलने का ही प्रयत्न करता है), तब सब उसकी हंसी उड़ाते हैं।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि एक राजनीतिज्ञ एक समय तो उन्नति के शिखर पर होता है। चारों ओर उसकी जय-जयकार होती रहती है। हजारों व्यक्ति उसके आगे पीछे घूमते रहते है। फिर, एक समय ऐसा भी आता है जब वह अपने पद से हटने को मजबूर हो जाता है। उस समय उसके आगे-पीछे घूमने वाले व्यक्ति ही उससे आंख बचाकर निकल जाते हैं तथा कोई उसकी खोज-खबर भी नहीं लेता और वह अवनति के अंधकार में खो जाता है।

इतिहास के विद्यार्थी जानते है कि अनेको बड़े-बड़े राजाओ महा-राजाओ का अन्त कितनी बुरी परिस्थितियों में हुआ है। भारत वष के मुगल बादशाह शाहजहां को अपने ही एक बेटे के आदेश पर अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्ष जेल में व्यतीत करने पड़े। उनके अन्य बेटों की हत्या करदी गयी। भारत के अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के बेटो व पोतो की उनकी आखों के सामने ही हत्या करदी गयी। और उनको अपना अन्तिम समय बर्मा में अंग्रेजों की जेल मे व्यतीत करना पड़ा। आज तो यह साधारण बात हो गयी है कि जब भी किसी देश का शासन बदलता है, तो पिछले शासन के अधिकारियो को, चाहे वे कितने ही उच्च पद पर हो, परेशान किया जाता है और कभी-कभी तो अपने विरोधियों की हत्या तक करा दी जाती है। इतिहास साक्षी है कि अनेको राजा-महाराजाओ की अपने भाई-बन्धुओं के द्वारा ही हत्या को गयी।

ऐसे ही बदलने हुए दिन हम अनेको विद्वानो, बुद्धिजीवियों, कला-कारो, व्यापारियों व व्यवसाइयो आदि के जीवन मे भी देखते है। (यह कोई स्थायी नियम नही है; परन्तु अनेको व्यक्तियों के जीवन में ऐसी स्थिति अवश्य ही आजाती है।)

पुरुषार्थवादी यही कहेगे कि ऐसा "संयोगवश" तथा "परिस्थितियां बदलने" के कारण हो जाता है। परन्तु यह ठीक नहीं है। "संयोगवश" के सम्बन्ध में तो हम ऊपर कह ही चुके हैं। जहां तक 'परिस्थितियां" बदलने का प्रश्न है, क्या हम पूछ सकते है कि परिस्थितिया कुछ ही व्यक्तियों के विरुद्ध क्यो बदलीं? सभी व्यक्तियों के विरुद्ध क्यों नहीं बदलीं? व्यक्ति वही है उनकी योग्यताएं व पुरुषार्थ भी लगभग वैसे ही है, फिर भी उनको असफलताएं क्यों मिली?

हमारा स्पष्ट उत्तर तो यही है कि जब उनका भाग्य अच्छा था, तब वे सफलताएं प्राप्त कर रहे थे और उन्नति के शिखर पर थे, परन्तु जब उनका भाग्य बुरा आया, तो वे असफलता के अंधकार मे विलीन हो गये।

प्राय: व्यक्तियों को यह कहते हुए सुना जाता है कि आज का दिन बहुत अच्छा बीता या यह महीना बहुत बुरा गुज़रा। यह सब थोड़ी थोड़ी देर मे बदलते हुए भाग्य के फलस्वरूप ही तो होता है।

भाग्य के महत्त्व को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम और उदाहरण देते है।

गर्मियों का मौसम है और दोपहर का समय है। चिलचिलाती धूप पड़ रही है। ऐसे समय में दो व्यक्ति हैं। एक व्यक्ति को बीस किलो-ग्राम का वजन लेकर एक किलो मीटर दूर जाना है, जबकि दूसरे व्यक्ति को चालीस किलोग्राम का वज़न लेकर दस किलो मीटर दूर जाना है। साधारणतया देखने में यही लगता है कि दूसरे वाले व्यक्ति को पहले वाले व्यक्ति से बहुत अधिक कष्ट होगा। परन्तु दूसरे व्यक्ति के पास वातानुकूलित गाड़ी है। पहला व्यक्ति बीस किलो वज़न उठाये तपती दोपहरी मे पैदल ही जा रहा है, जबकि दूसरा व्यक्ति अपनी वातानुकूलित गाड़ी में बहुत शीघ्र ही अपने स्थान पर पहुंच जाता है। उसके पास वज़न भी अधिक है और उसकी यात्रा भी लम्बी है, परन्तु उसके पास वातानुकूलित गाड़ी होने के कारण उसे तनिक भी कष्ट नही होता, यह उसके सौभाग्य का ही फल है, या यह कहल कि वातानुकूलित गाड़ी उस का सौभाग्य है।

एक अन्य उदाहरण है। दो व्यक्ति हैं। एक व्यक्ति की जेब से दस रुपये चोरी हो जाते हैं तथा दूसरे व्यक्ति की जेब से एक सौ रुपये चोरी हो जाते है। साधारणतया देखने से यही लगेगा कि दूसरे व्यक्ति को पहले व्यक्ति के अपेक्षा बहुत अधिक कष्ट होगा। परन्तु इस बात का ठीक-ठीक निर्णय करने से पहले हमें उन दोनों व्यक्तियों की "अन्य परिस्थितियों" को भी देखना होगा। पहला व्यक्ति एक साधारण मजदूर है, जिसको पांच रुपये प्रतिदिन मिलते हैं। दस रुपये चोरी हो जाने से उसकी दो दिन की कमाई की हानि हो गयी, जिससे उसे बहुत कष्ट हुआ और कई दिन आधे पेट भोजन करके ही रह जाना पड़ा, जबकि दूसरा व्यक्ति एक उद्योगपति है। उसकी हजारो रुपये प्रतिदिन की आय है। एक सौ रुपये चोरी हो जाने से उसे कुछ भी कष्ट नही हुआ। इस उदाहरण में "अन्य परिस्थितियों" को हम "भाग्य" भी कह सकते हैं।

एक निर्धन व साधन हीन व्यक्ति के लिये सभी मौसम दुखदायी होते

हैं। गर्मियो में उसे तपती दोपहरी में काम करना पड़ता है। ठण्ड के दिनों में समुचित कपडे न होने के कारण उसे ठिठुरते हुए रातें काटनी पड़ती हैं। बरसात में कीचड-पानी मे काम करना पड़ता है। यह उसके दुर्भाग्य का ही तो फल है।

परन्तु एक धनवान व साधन-सम्पन्न व्यक्ति के लिये सभी मौसम सुखदायी होते है। गर्मियो मे वह वातानुकूलित कोठी में रहता है या पहाड़ पर चला जाता है। जाडो मे गरम कमरों में रहता है। बरसात में भी वह या तो अपनी कोठी मे ही रहता है या पिकनिक मनाने चला जाता है। यह उसके सौभाग्य का फल नही तो और क्या है ?

आजकल के तथाकथित प्रगतिशील कहे जाने वाले व्यक्ति कहने को तो यही कहते है कि भाग्य कुछ नही होता, यह तो केवल झूठी तसल्ली देने का एक बहाना मात्र है, तथा यह शोषित वर्ग को ऊपर न उठने देने के लिये षडयन्त्र है। परन्तु जब स्वय उनके ऊपर कोई कष्ट आ पड़ता है या अनेकों प्रयत्न करने पर भी उनकी इच्छा के अनुकूल कोई कार्य नही होता, तब अपने मन मे वे भी यही कहते है—"दुर्भाग्य से ऐसा ही होना था, किस्मत को ऐसा ही मजूर था।"

अग्रेजी भाषा मे भी यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है :—

"As luck would have it" अर्थात भाग्य मे ऐसा ही था।

हम और उदाहरण देते है। हम देखते है कि कभी तो हम हजारो किलोमीटर की यात्रा कर आते है, परन्तु हमें जरा सी भी परेशानी नही होती और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि घर से निकलते ही हम किसी दुर्घटना में या अन्य किसी परेशानी में फंस जाते है। इसी प्रकार कभी-कभी तो हम सारी रात अकेले ही घर से बाहर घूमते रहते है, परन्तु हमारा बाल भी बाका नही होता और कभी-कभी घर से निकलते ही तथा दिन दहाड़े ही हम चोर या डाकू के शिकार हो जाते है।

अन्तत. इन विषमताओ व विडम्बनाओं का कारण क्या है ? कारण यही है कि जिस समय जैसा हमारा भाग्य होता है, उस समय हमें वैसा ही फल मिलता है।

एक बात और। हम देखते है कि किसी व्यक्ति का स्वर बहुत ही मधुर होता है और वह किसी विशेष अभ्यास व परिश्रम के बिना ही कुशल गायक बन जाता है। एक अन्य व्यक्ति है, उसका स्वर कर्कश है। वह अत्यधिक परिश्रम व अभ्यास करने पर भी सफलता प्राप्त नही कर पाता। इसी प्रकार एक अन्य व्यक्ति है, वह विशेष अभ्यास व परिश्रम के बिना ही कुशल चित्रकार बन जाता है, जबकि दूसरा व्यक्ति अत्यधिक परिश्रम व अभ्यास

करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता । यही बात हम अन्य कलाकारों के सम्बन्ध में भी देखते है । जो विचारक पुनर्जन्म को नही मानते और इस विश्व को किसी सर्वशक्तिमान कर्त्ता, हर्त्ता व पालनकर्त्ता परमेश्वर की कृति मानते हैं, वे यही कहते है कि यह प्रतिभा उस परमेश्वर की ही देन है । परन्तु प्रश्न यह उठता है कि उस परमेश्वर ने कुछ व्यक्तियों को ही यह देन किस आधार पर दी है ? उसने विभिन्न व्यक्तियों में यह भेद-भाव किस आधार पर किया है ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि या तो वह परमेश्वर एक उद्दण्ड व अन्यायी बालक के समान व्यवहार करता है जो बिना किसी समुचित कारण के ही कुछ व्यक्तियों को ही प्रतिभा बांटता रहता है या उस परमेश्वर ने उन व्यक्तियो को यह प्रतिभा उनके पिछले कार्यों के पुरस्कार के रूप में दी है (अर्थात अपने पूर्व के जन्मो में उन व्यक्तियो ने अच्छे कार्य किये थे, जिनके पुरस्कार स्वरूप उनको यह प्रतिभा दी गयी) । इसी तथ्य को हम इस प्रकार भी कह सकते है कि उनकी प्रतिभा उनके अच्छे भाग्य का फल है ।

भाग्य के लिए अग्रेजी भाषा मे FORTUNE, FATE, DESTINY LUCK आदि शब्द है, उर्दू भाषा में किस्मत, मुकद्दर, नसीब आदि शब्द है , हिन्दी भाषा मे विधि, दैव, अदृष्ट, नियति, भावी, प्रारब्ध, होनि आदि शब्द हैं । इसी प्रकार ससार के विभिन्न देशो की विभिन्न भाषाओं में ऐसे शब्द है जिनका अर्थ भाग्य है । ससार के विभिन्न देशों मे "भाग्य" के अर्थों के समान शब्दो की उत्पत्ति इसीलिये हुई, क्योकि वहा पर "भाग्य" को किसी न किसी रूप मे माना जाता होगा ।

यहां हम जीवन मे भाग्य के महत्त्व को मानने वाले कुछ मनीषियों के विचार उद्धृत कर रहे है :—

"भाग्य जिनके अनुकूल होता है, उनकी अनीति भी उनके लिये नीति बन जाती है , लेकिन भाग्यहीन के द्वारा भली प्रकार प्रयोग मे लायी गयी नीति भी दुर्नीति हो जाती है ।"

आदिकवि श्री बाल्मीकि

"होई है सोई जो राम रच राखा,
का करि तर्क बढ़ावहिं साखा ।"
"सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कही मुनिनाथ,
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ।"
"सकल पदार्थ हैं जग माहीं,
करम-हीन कुछ पावत नाहीं ।"

श्री तुलसीदास जी

"राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ,
जो रहीम भावी कबहू, होति आपने हाथ।"
श्री रहीम जी

"प्याला है, पर पी पायेंगे, है ज्ञात नही इतना हमको,
इस पार नियति ने भेजा है, असमर्थ बना कितना हमको"
"लाख पटक तू हाथ पाव, पर इससे कब कुछ होने वाला,
लिखी भाग्य मे तेरे जो बस, वही मिलेगी मधुशाला।"
श्री हरिवंश राय बच्चन

"मिलने को तो दुनिया में भला क्या नही मिलता,
किस्मत का लिखा मिलता है चाहा नहीं मिलता।"

अंग्रेजी भाषा मे भी कहावत है :—

"Man Proposes, God disposes"
अर्थात "तेरे मन कुछ और है विधना के कुछ और"
"As luck would have it"
अर्थात "भाग्य मे ऐसा ही था"

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में हम भाग्य के महत्त्व को अनदेखा नही कर सकते। परन्तु इससे हमारा तात्पर्य यह नही है कि व्यक्ति केवल भाग्य के हाथ की कठपुतली मात्र है और उसका पुरुषार्थ व्यर्थ ही है।

प्रश्न यह उठता है कि अन्तत "भाग्य" है क्या? और यह कैसे बनता है?

वास्तविकता तो यह है कि भाग्य किसी तथाकथित विधाता अथवा किसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर के द्वारा अपनी इच्छा से ही लिखा हुआ कोई अमिट लेख नही होता, जिसको प्रत्येक प्राणी को अनिवार्य रूप से भोगना ही पडता है। इसके विपरीत तथ्य तो यह है कि **हमारा भाग्य हमारे द्वारा भूतकाल मे किये हुए हमारे अपने ही पुरुषार्थ का फल है।** (भूतकाल से हमारा तात्पर्य उस काल से है जो वर्तमान क्षण से पहले व्यतीत हो चुका है, चाहे वह समय वर्तमान क्षण से कुछ ही क्षण पहले हो, चाहे घंटे-दो-घंटे, महीने-दो-महीने अथवा दस-बीस साल पहले हो या हमारे पिछले जन्मों का समय हो—यह सारा समय भूतकाल के अन्तर्गत ही आता है।) अच्छा पुरुषार्थ अच्छा भाग्य बनाता है और बुरा पुरुषार्थ बुरा भाग्य बनाता है। हमें स्वयं अपने ही द्वारा किये हुए पुरुषार्थ का ही फल मिलता है। किसी अन्य प्राणी के किये हुए पुरुषार्थ का फल हमें कभी नही मिल सकता।

भाग्य और पुरुषार्थ को हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं :—

एक व्यक्ति की आय पांच सौ रुपये प्रतिमास है। वह चार सौ रुपये प्रतिमास खर्च कर लेता है और एक सौ रुपये प्रतिमास भविष्य के लिये जमा करता रहता है। जितना उसने पुरुषार्थ किया उसका कुछ भाग तो उसने अभी भोग लिया और कुछ भविष्य के लिए बचाकर रख लिया। भविष्य में जब भी वह अपने इस बचे हुए धन (पुरुषार्थ का अभुक्त फल) का उपयोग करेगा, तब यह धन उसके अच्छे भाग्य के फल के समान प्रतीत होगा।

इसके विपरीत यदि वह व्यक्ति अपनी आय की समस्त राशि हर महीने ही खर्च कर लेता है, तो भविष्य में उसके पास अपनी आय के अतिरिक्त खर्च करने लिये कुछ भी नही रहेगा। अर्थात उसको केवल अपने उस समय के पुरुषार्थ पर ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। या इस प्रकार कहले कि न तो उसका भाग्य अच्छा है, न बुरा।

यदि वह व्यक्ति अपनी आय से अधिक खर्च कर लेता है, (यह तो स्पष्ट है कि वह किसी से ऋण लेकर ही खर्च करेगा) तो उस पर ऋण का बोझ पडेगा और यह ऋण उसको चुकाना ही पड़ेगा। ऋण चुकाने के कारण उसकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जायेगी। यह स्थिति उसके दुर्भाग्य का फल ही मानी जायेगी।

भाग्य और पुरुषार्थ को हम इस उदाहरण के द्वारा भी समझ सकते हैं। आजकल नये बनाये हुए मकानों के ऊपर पानी की टंकियां बनायी जाती हैं, जिनमें बिजली के पम्प द्वारा पानी भर लिया जाता है। नगर पालिका द्वारा दिया जा रहा पानी आये या न आये, परन्तु हमारे द्वारा टंकी में भरा हुआ पानी हमें हर समय उपलब्ध रहता है। टंकी में पानी भरना हमारे पुरुषार्थ के समान है और वह पानी हमें हर समय उपलब्ध रहना हमारे भाग्य के समान है।

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अच्छा भाग्य हमारे अच्छे पुरुषार्थ का ही फल है, अत हमें सदैव अच्छा पुरुषार्थ ही करते रहना चाहिये। परन्तु हम भाग्य के भरोसे ही नहीं बैठे रहें। यदि हमारा भाग्य अच्छा है, तो हमें उसका (अच्छे भाग्य का) अच्छा फल अवश्य ही मिलेगा। परन्तु यदि हमारा भाग्य अच्छा नही है, तो भी हमें अपने द्वारा वर्तमान में किये जा रहे अच्छे पुरुषार्थ का कुछ-न-कुछ अच्छा फल तो अवश्य ही मिलेगा। हमें यह समझ लेना चाहिये कि हमारे किये हुए पुरुषार्थ का एक अंश भी व्यर्थ नहीं जाता। हमें उसका शत-प्रति-शत फल मिलता है। परन्तु वह कब और किस रूप में मिलता है, (अल्पज्ञ होने के कारण) यह हम नहो जान पाते।

इसके साथ-साथ हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि हमें किसी भी स्थिति में भाग्य के भरोसे नही बैठे रहना चाहिये। जो व्यक्ति भाग्य के भरोसे बैठे रहते है, वे किसी आकस्मिक सहायता की प्रतीक्षा करते बैठे रहते हैं और उनके लिये अपना लक्ष्य प्राप्त करना असम्भव नहीं, तो बहुत कठिन तो अवश्य ही हो जाता है। भाग्य के आश्रय बैठे रहना तो स्वयं ही अपने विनाश को बुलावा देने जैसा ही है (क्योंकि हमें यह तो पता ही नहीं होता कि हमारे भाग्य में क्या है ?)। पुरुषार्थ करने वाली चीटी धीरे-धीरे चलती हुई भी मीलो की दूरी तय कर लेती है। परन्तु भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाला गरुड़ पक्षी (यह पक्षी बहुत तेज उड़ता है) एक पग भी आगे नही बढ पाता।

मनुष्य को छोडकर लगभग सभी प्राणियो में पुरुषार्थ की लगन देखी जा सकती है। चीटी हो या हाथी, शेर हो या बकरी, छोटा-सा कीडा हो या विशाल व्हेल मछली, सभी अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पुरुषार्थ करते देखे जा सकते है।

सौभाग्य का मधुर फल अच्छे-पुरुषार्थ के पौधे पर ही फलता है। हमें सौभाग्य का फल पाने के लिये भी पुरुषार्थ तो करना पड़ता ही है। हमारे सामने थाल में स्वादिष्ट भोजन रक्खा हुआ है, परन्तु उसका स्वाद लेने और पेट भरने के लिए हमें हाथ भी हिलाना पडेगा और मुह भी चलाना पडेगा। हमारे मकान की टकी में पानी भरा हुआ है, परन्तु उसका उपयोग करने के लिए हमें नल की टोटी तो घुमानी ही पड़ेगी। यदि हमने पुरुषार्थ नही किया तो सौभाग्य तो समय पर आकर हमारा द्वार खट-खटा कर चला जायेगा और हम कोरे के कोरे रह जायेंगे।

एक विचारक ने भाग्य और पुरुषार्थ की तुलना ताश के खेल से की है। ताश के खेल मे अच्छे या बुरे पत्ते आना हमारे भाग्य के फल के समान है, परन्तु उन पत्तो से हम किस प्रकार खेलते है यह हमारे पुरुषार्थ के समान है। एक अच्छा खिलाडी (पुरुषार्थी) बुरे पत्तों के आने के बावजूद भी जीत जाता है, जबकि एक बुरा खिलाडी (पुरुषार्थ न करने वाला व्यक्ति) अच्छे पत्ते हाथ में होने पर भी खेल मे हार जाता है।

पुरुषार्थ के समर्थन में एक उर्दू शायर ने ठीक ही लिखा है :—

'हर सहारा बेअमल के वास्ते बेकार है,
आख ही खोले न जब, कोई उजाला क्या करे।'

इसी भावना को व्यक्त करते हुए संस्कृत के दो सुभाषितों के अर्थ इस प्रकार है :—

"चलता हुआ (श्रमशील) मनुष्य ही मधु प्राप्त कर सकता है।
चलता हुआ मनुष्य ही सुस्वादु फल का आस्वादन कर सकता है।"
"जो सोता है, उसका भाग्य सो जाता है।
जो बैठता है, उसका भाग्य बैठ जाता है।
जो खडा होता है, उसका भाग्य खड़ा हो जाता है।
जो चलता है, उसका भाग्य चलता है।
इसलिये चलो, चलो और फिर चलो" (अर्थात पुरुषार्थ करो)

भारतीय मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को चतुर्विध पुरुषार्थ माना है। पुरुषार्थ के बिना न तो हम धर्म के मार्ग पर अग्रसर हो सकते है, न धन का उपार्जन ही कर सकते है। पुरुषार्थ के बिना न विषय-भोगों का सेवन ही किया जा सकता है और न मोक्ष ही प्राप्त किया जा सकता है।

जो व्यक्ति इस तथ्य को हृदयंगम कर लेता है कि हमारा अच्छा भाग्य हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए हमारे अच्छे पुरुषार्थ का फल है, वह व्यक्ति क्या कभी अच्छा पुरुषार्थ करना छोडकर भाग्य के भरोसे बैठे रह सकता है ?

हम क्या करें ?

अन्त में प्रश्न यह उठता है कि जब यह शत-प्रति-श त निश्चित नही है कि हमारे प्रयत्नों (पुरुषार्थ) का फल हमारी आशाओं व हमारे किये हुए पुरुषार्थ के अनुकूल ही मिलेगा, तो हम क्या करें?

उत्तर में निवेदन है कि सबसे पहले तो हम यह समझ ले कि हमारे पुरुषार्थ का एक तनिक-सा अंश भी व्यर्थ नही जायेगा। उसका फल हमें अवश्य ही मिलेगा। (यद्यपि अल्पज्ञ होने के कारण हम यह नही जान पाते कि वह फल कब और किस रूप में मिलेगा?) इसलिये हमें पुरुषार्थ तो करते ही रहना है।

वर्तमान में हमारा पुरुषार्थ यही होना चाहिये कि भूतकाल में किये हुए अपने अच्छे व बुरे पुरुषार्थ का फल हम समतापूर्वक भोगते रहें (बुरा फल मिलने पर हम हाय-हाय न करें और अच्छा फल मिलने पर हम गर्व न करें।)

इसके साथ-साथ हम इतना ध्यान अवश्य रक्खें कि हमारे लक्ष्य अच्छे हों और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन भी अच्छे हों। हमारे कार्यों से किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी

भी प्रकार का कष्ट मिलने की सम्भावना न हो। हम सदैव दूसरे प्राणियों की भलाई करते रहने की भावना और तदनुसार प्रयत्न करते रहें। यह भी सम्भव है कि हमारा वर्तमान का अच्छा पुरुषार्थ हमारे भूतकाल में किये हुए बुरे पुरुषार्थ के फलस्वरूप मिलने वाले बुरे फल की तीव्रता ही कुछ कम करदे।

इस प्रकार ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में भाग्य व पुरुषार्थ दोनों का ही समान महत्त्व है। परन्तु हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हमारा वर्तमान का पुरुषार्थ ही हमारे भविष्य का भाग्य निर्माता है।

अच्छा पुरुषार्थ व बुरा पुरुषार्थ

पिछले पृष्ठों में हमने अच्छे व बुरे पुरुषार्थ का उल्लेख किया है। अब हम इस विषय पर कुछ विवेचन करेंगे।

अच्छे व बुरे पुरुषार्थ का अन्तर बतलाने के लिये हम कुछ उदाहरण देते हैं :—

(१) सैनिक अपने देश व देशवासियों की रक्षा करने के लिये शत्रुओं से युद्ध करने जाते हैं। युद्ध में हर समय उनकी जान जोखिम मे रहती है। युद्ध में कुछ सैनिक मर भी जाते है और कुछ सैनिक घायल व अपंग भी हो जाते है।

दूसरी ओर चोर व डाकू चोरी करने व डाका डालने के अभिप्राय से जाते हैं। उनकी जान भी हर समय जोखिम मे रहती है। केवल चोरी करते व डाका डालते हुए ही नहीं, अपितु उनके मन में हर समय ही यह भय रहता है कि कही पुलिस उनको पकड न ले तथा कही पुलिस से उनकी मुठभेड न हो जाये।

सैनिक भी और चोर व डाकू भी सभी अपनी-अपनी जान जोखिम में डालते हैं। देखा जाये, तो ये सभी एक जैसा ही पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु सैनिक का पुरुषार्थ अच्छा पुरुषार्थ माना जाता है, जबकि चोरों व डाकुओं का पुरुषार्थ बुरा पुरुषार्थ माना जाता है। इन सबको अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार ही अच्छा व बुरा फल मिलता है। यह तो सर्वविदित ही है कि सैनिको का सर्वत्र सम्मान किया जाता है और उनको पुरस्कार दिये जाते हैं; जब कि चोरों व डाकुओ का सब जगह अपमान किया जाता है और उन्हे दण्ड दिया जाता है।

(२) एक मकान में आग लग जाती है, जिसमें कुछ आदमी भी फंस जाते है। एक व्यक्ति यह सोचकर उस जलते हुए मकान में घुसता है कि

वह मकान में फंसे हुए आदमियों को निकाल लाये। एक दूसरा व्यक्ति यह सोचकर उस मकान में घुसता है कि वहां से जो भी समान मिल सके, वह लेकर भाग जाये। दोनों व्यक्तियों ने एक जैसा ही कार्य किया है, परन्तु दोनों के अभिप्राय अलग-अलग थे। यहां पर पहले व्यक्ति का पुरुषार्थ अच्छा पुरुषार्थ माना जायेगा; जबकि दूसरे व्यक्ति का पुरुषार्थ बुरा पुरुषार्थ माना जायेगा। उन दोनों को अपने-अपने अभिप्रायों के अनुसार ही क्रमशः अच्छा व बुरा फल मिलेगा।

(३) एक व्यापारी उच्च स्तर की शुद्ध वस्तुएं बेचता है; वह लाभ भी उचित ही लेता है। उसका प्रयत्न यही रहता है कि ग्राहक को अच्छी वस्तु मिले और उसको अपने द्वारा खर्च किये गये धन का पूरा-पूरा लाभ मिले। एक दूसरा व्यापारी मिलावट करके वस्तुएं बेचता है। उसकी इच्छा यही रहती है कि ग्राहक को चाहे कैसी भी वस्तु मिले और चाहे उसके द्वारा खर्च किया गया धन व्यर्थ ही जाये, परन्तु उसको (व्यापारी को) अधिक-से-अधिक लाभ मिलता रहे। यहां पर पहले वाला व्यापारी अच्छा पुरुषार्थ करता है, जिसका उसको अच्छा फल मिलेगा; जबकि दूसरे वाला व्यापारी बुरा पुरुषार्थ करता है, जिसका उसे बुरा फल मिलेगा।

हमें यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिये कि दूसरे व्यापारी को जो लाभ इस समय मिल रहा है, वह उसके द्वारा की जा रही बेईमानी का फल नहीं है (यद्यपि देखने में यही लगता है कि इस बेईमानी के कारण उसको लाभ हो रहा है।), अपितु उसके द्वारा भूतकाल में किये गये किसी अच्छे पुरुषार्थ के फलस्वरूप ही उसको यह लाभ मिल रहा है। इस समय वह जो बुरा पुरुषार्थ कर रहा है, इसका उसको अनिवार्य रूप से बुरा फल ही मिलेगा। बुरे कार्य (बेईमानी) का फल कभी भी अच्छा नहीं मिल सकता।

कुछ व्यापारी अधिक लाभ के लालच में चोरी का माल खरीदते हैं, क्योंकि वह माल सस्ता मिल जाता है। यह भी बुरा पुरुषार्थ है। चोरी का माल खरीदने से चोरों को चोरी करने के लिये बढ़ावा मिलता है। देश के नियमों के अनुसार भी चोरी का माल खरीदना अपराध है। यदि कोई भी व्यक्ति चोरी का माल न खरीदे, तो चोरियों की घटनाएं आधी से भी कम रह जायें।

इसी प्रकार विद्यालयों के कुछ शिक्षक अपनी नियमित कक्षाओं में तो जानबूझ-कर समुचित पढ़ाई नहीं कराते और जब विद्यार्थी पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं तो वे शिक्षक उन विद्यार्थियों को ट्यूशन से पढ़ाते हैं, जिससे उनको पर्याप्त आय हो जाती है। शिक्षकों का यह व्यवहार बुरा पुरुषार्थ माना जायेगा।

इसी प्रकार सरकारी हस्पतालों के कुछ डाक्टर हस्पताल में आये रोगियो को न तो ठीक प्रकार देखते हैं, न उनसे सहानुभूति रखते हैं और न उनका ठीक प्रकार इलाज ही करते हैं। वे कुछ ऐसी स्थितियां पैदा कर देते है कि रोगी उनको प्राइवेट रूप से दिखाने को लाचार हो जाता है। उस समय वे डाक्टर रोगियों का ठीक प्रकार से इलाज करते हैं। और इस प्रकार वे पर्याप्त आय कर लेते हैं। यह भी बुरा पुरुषार्थ है।

इसी प्रकार कुछ सरकारी कर्मचारी जनता के प्रति अपना कर्तव्य नही निभाते। वे जनसाधारण को जानबूझ कर परेशान करते है जिससे उन्हे रिश्वत लेने के अवसर मिल सकें। क्योंकि जितना अधिक वे जनता को परेशान करेंगे, उनको उतनी ही अधिक रिश्वत मिलने की सम्भावना होगी। यह भी बुरा पुरुषार्थ है।

सरकारी कार्य करने वाले कुछ ठेकेदार और कुछ सरकारी अधिकारी व कर्मचारी आपस मे मिली-भगत करके खराब निर्माण करते है, मिलावटी व नकली माल तथा कभी-कभी संख्या व वजन मे कमती माल सपलाई करते है। यह भी बुरा पुरुषार्थ है।

इस प्रकार हमने बुरे पुरुषार्थ के कुछ ही उदाहरण दिये है। यदि हम अपने चारो ओर दृष्टि डाले तो हमे पग-पग पर ऐसे बहुत से उदाहरण मिल जायेंगे। इन उदाहरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्य चाहे कोई भी हो यदि उसे हम केवल अपने स्वार्थ की दृष्टि से करते है, और इस बात की चिन्ता नही करते कि हमारे इस कार्य का जनसाधारण पर, हमारे समाज पर, हमारे देश पर कितना बुरा प्रभाव पडेगा तो वह कार्य बुरा पुरुषार्थ हो जाता है। इसके विपरीत यदि हमारा अभिप्राय अच्छा है और हम निःस्वार्थ भाव से कोई कार्य करते हैं, तथा जिस कार्य का किसी पर भी बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना न हो, तो वह कार्य अच्छा पुरुषार्थ माना जायेगा।

हम एक बात और स्पष्ट करदे। आजकल कुछ व्यक्तियों की यह धारणा हो गयी है कि यदि कोई कार्य बन नही पा रहा हो, तो उस कार्य से सम्बन्धित अधिकारियों को रिश्वत देने, खिलाने-पिलाने तथा उनका अन्य प्रकार से मनोरंजन करा देने से अपना कार्य बनाया जा सकता है। वे ऐसे साधनो को भी पुरुषार्थ कहते हैं। परन्तु उनकी यह धारणा ठीक नही है। ये साधन पुरुषार्थ अवश्य है परन्तु अच्छे नहीं, अपितु बुरे पुरुषार्थ ही हैं। यदि केवल अनुचित साधनों से ही काम बन सकते होते, तो जितने भी व्यक्ति ऐसे साधनों का प्रयोग करते हैं वे सभी सफल हो जाया करते। परन्तु ऐसा बहुत ही कम होता है। वस्तुतः ऐसे अनुचित साधनों से जो

सफलता मिलती है, वह इन अनुचित साधनों का फल नहीं होती ; परन्तु उन व्यक्तियों के द्वारा भूतकाल में अपने ही द्वारा किये गये किसी अच्छे पुरुषार्थ के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है। हमें यह तथ्य सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि यदि हमारे सौभाग्य से हमें सफलता प्राप्त होनी है, तो वह समुचित साधनों से भी अवश्य ही प्राप्त होगी। इसके विपरीत यदि हमारे भाग्य में असफलता है, तो हम चाहे कितने भी अनुचित साधन प्रयोग में ले आयें, हम असफल ही रहेंगे। हां, अनुचित साधनों के प्रयोग से हम अपने पापों का बोझ अवश्य ही बढा लेंगे, जिनका बुरा फल हमें अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि यदि हमारा लक्ष्य अच्छा है, तो उस अच्छे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हम अच्छे या बुरे, कैसे भी साधन प्रयोग में लायें, कुछ अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु यह धारणा भी ठीक नहीं है। लक्ष्य (साध्य) का अच्छा होना तो आवश्यक है ही, उस लक्ष्य को प्राप्त करने के साधनों का अच्छा होना भी उतना ही आवश्यक है। मानलें, हमें निर्धनों की सहायता करने के लिये धन की आवश्यकता है। क्या यह धन हम अमीरों को लूटकर प्राप्त करें ? नहीं, इस प्रकार से धन प्राप्त करना ठीक नहीं है। इससे तो हमारा अच्छा लक्ष्य भी बुरा हो जायेगा। जिन व्यक्तियो का धन लूटा जाता है, उनके हृदयों से पूछो कि उनको कितना कष्ट होता है ? हमें परिश्रम तथा ईमानदारी से ही धन प्राप्त करना चाहिये। इसके साथ-साथ किसी के द्वारा स्वेच्छा से दिया हुआ धन भी हम स्वीकार कर सकते है। परिश्रम व ईमानदारी से प्राप्त दो रुपये का दान अनुचित साधनों से प्राप्त हजारों रुपयों के दान से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

एक विद्यार्थी है। उसका लक्ष्य परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। परीक्षा में पास होने के लिये खूब मन लगाकर पढ़ना और परिश्रम करना ही श्रेष्ठतम साधन है। परिश्रम से उस विद्यार्थी को वर्तमान में भी सफलता प्राप्त होगी और भविष्य में भी वह परिश्रम के द्वारा सफलता प्राप्त करता रहेगा। इसके विपरीत यदि परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए वह नकल करता है, निरीक्षकों को डराता व धमकाता है तथा अन्य अनुचित साधनों का प्रयोग करता है, तो उसके ऐसे साधनों को किसी भी प्रकार से उचित नहीं माना जा सकता। ऐसे साधन अपनाने पर भी प्रथम तो उसका उत्तीर्ण होना ही कठिन होगा और यदि वह उत्तीर्ण हो भी गया, तो भी भविष्य में वह कोई भला व विश्वसनीय व्यक्ति नहीं बन सकेगा और सफलता उससे दूर-दूर ही रहेगी।

यदि हम अपने अच्छे लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भी बुरे साधन अपनाने लगें, तो हजारों वर्षों से प्रतिष्ठित जीवन-मूल्यों का ह्रास हो जायेगा,

समाज का नैतिक पतन हो जायेगा और भ्रष्टाचार अपनी चरम-सीमा पर पहुंच जायेगा, जिसके बुरे परिणाम केवल कुछ व्यक्तियों को ही नहीं, अपितु समस्त देश को भुगतने पड़ेंगे। यदि हमें ऐसी परिस्थितियों से बचना है, तो यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे लक्ष्य अच्छे होने के साथ-साथ उनको प्राप्त करने के साधन भी अच्छे ही हों।

हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि झूठ की पगडण्डियों के द्वारा सत्य के लक्ष्य पर कभी नहीं पहुंचा जा सकता।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य केवल भाग्य के हाथ की कठ-पुतली मात्र नहीं है। वर्तमान में हम जो कार्य कर रहे हैं, उस पर हमारा स्वयं का नियन्त्रण है। चाहे कैसी भी परिस्थितियां हों, हम अच्छे साधन भी अपना सकते है और बुरे भी। यह हमारे ज्ञान व विवेक पर निर्भर करता है कि हम कैसे साधन अपनाते हैं। यदि दुर्भाग्य से कोई व्यक्ति निर्धन है तो भाग्य यह नहीं कहता कि वह निर्धन है तो चोरी व बेईमानी से अपना जीवन निर्वाह करे। यह तो उसके अपने ज्ञान व विवेक पर निर्भर करता है कि वह चोरी व बेईमानी के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करे या परिश्रम व ईमानदारी से कार्य करके। यदि अपने द्वारा भूतकाल में किये हुए बुरे कार्यों के फलस्वरूप उसको निर्धन ही रहना है, तो वह चाहे कितनी ही चोरी व बेईमानी करले, वह निर्धन ही रहेगा। हां, चोरी व बेईमानी करके वह अपने ऊपर बुरे कर्मों का बोझ अवश्य ही बढा लेगा, जिनके बुरे परिणाम उसको भविष्य में अनिवार्य रूप से भुगतने ही पडेंगे। इसके विपरीत यदि भूत-काल में किये हुए अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप उसे धनवान होना है, तो वह सन्तोषपूर्वक, ईमानदारी व परिश्रम से कार्य करते हुए भी धनवान हो जायेगा।

इसी प्रकार भूतकाल में किये हुए अच्छे कर्मों के फलस्वरूप यदि किसी व्यक्ति को धन प्राप्त होता है, तो भाग्य उसको यह नहीं कहता कि यह धन अच्छे कार्यों में खर्च कर या बुरे कार्यों में। यह निर्णय तो वह व्यक्ति स्वयं ही अपने ज्ञान व विवेक से करता है कि वह उस धन को किन कार्यों पर खर्च करे। वह उस धन को परोपकार में भी खर्च कर सकता है, वह उस धन को अपनी और अपने परिवार वालों की आवश्यकताओं पर भी खर्च कर सकता है, वह उस धन को मदिरापान, मांस-भक्षण, व्यभिचार तथा अन्य बुरे कार्यों पर भी खर्च कर सकता है। हां, जिन भावनाओं से और जिन कार्यों पर वह उस धन को खर्च कर रहा है, यही उसका अच्छा व बुरा पुरुषार्थ है, जिसका अच्छा व बुरा फल उसको अनिवार्य रूप से भोगना पडेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को उसके अपने द्वारा भूतकाल में किये हुए बुरे कार्यों

के फलस्वरूप ही कष्ट मिलता है। वह उस व्यक्ति के ज्ञान व विवेक पर निर्भर करता है कि वह उस कष्ट को किस प्रकार सहन करता है। वह उस कष्ट को अपने ही द्वारा किये हुए बुरे कार्यों का फल जानकर समता व धैर्य पूर्वक भी सह सकता है; वह उस कष्ट को हाय-हाय करके और शोर मचाकर भी सह सकता है तथा वह उस कष्ट को किसी अन्य व्यक्ति (जिसके निमित्त से वह कष्ट मिला है) के द्वारा दिया हुआ समझकर, उस व्यक्ति के प्रति अपने मन में दुर्भावनाएं उत्पन्न करता हुआ भी सह सकता है। कष्ट तो उसको अनिवार्य रूप से सहना पड़ेगा ही। हा, कैसी भावनाओं के साथ वह व्यक्ति यह कष्ट सहता है, यही उसका अच्छा व बुरा पुरुषार्थ है। जैसी भावनाओ के साथ वह व्यक्ति यह कष्ट सहेगा, उन्ही भावनाओं के अनुसार उसके नये कर्मों का संचय होगा, जिनका अच्छा व बुरा फल उसको भविष्य मे भोगना पड़ेगा।

पिछले जन्मो के संस्कार हम पर अपना प्रभाव डालते हैं। वे संस्कार अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। अच्छे सस्कारों वाला व्यक्ति बुरी परिस्थितियो व बुरे वातावरण मे रहता हुआ भी भला बना हुआ रहता है। इसके विपरीत बुरे सस्कारो वाला व्यक्ति अच्छी परिस्थितियों और अच्छे वातावरण में रहता हुआ भी बिगड़ जाता है। समाचार पत्रों में हम प्रति दिन पढ़ते रहते है कि खाते-पीते, अच्छे-भले घरों के पढ़े-लिखे युवक भी कुमार्ग में पड़कर, चोरी, राहजनी, मदिरापान, परस्त्रीगमन जैसे निकृष्ट कार्य करने लगते है। अत. यदि पिछले जन्मो के कुसंस्कार हमें बुरे मार्ग की ओर घसीटना चाहे, तो हमें इन कुसंस्कारों के प्रभाव से यथाशक्ति बचते रहना चाहिये और सुमार्ग पर ही दृढ़ रहने का प्रयत्न करते रहना चाहिये—यही हमारा अच्छा पुरुषार्थ होगा और ऐसे पुरुषार्थ का फल अन्ततः अच्छा ही मिलेगा।



जैसे फूल और फल किसी की प्रेरणा के बिना ही अपने-अपने समय पर वृक्षों में लग जाते हैं, उसी प्रकार पहले के किये हुए कर्म भी अपने फल योग के समय का उल्लंघन नही करते। —श्री वेद व्यास



यथा शक्ति कर्म करने पर भी यदि किसी कार्य की सिद्धि नही होती तो उस मनुष्य का पुरुषार्थ, भाग्य द्वारा बाधित होता है। इसमें उस मनुष्य को दोष नहीं देना चाहिये। —पंचतन्त्र

सच्चा सुख क्या है ?

हमने इस पुस्तक के प्रारम्भ में बतलाया था कि इस संसार का प्रत्येक प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो चाहे विशालकाय पशु-पक्षी और चाहे एक छोटे-से-छोटा कीट-पतंग, सब के सब सुख चाहते हैं। वे सब अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार सुख पाने का प्रयत्न भी करते है। वे जो भी कार्य करते हैं, उनका अन्तिम लक्ष्य सुख प्राप्त करना ही होता है।

प्रश्न यह है कि अपनी-अपनी मान्यतानुसार जिस सुख को वे सुख समझते है, क्या वास्तव में वह ही सच्चा सुख है ?

हम देखते है कि एक शराबी शराब पीने में सुख मानता है,वह शराब प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के अच्छे व बुरे कार्य करने को तत्पर रहता है। इसी प्रकार एक जुआरी जुआ खेलने में सुख मानता है, वह भी जुआ खेलने तथा उसके लिये धन प्राप्त करने के लिये हर प्रकार के अच्छे व बुरे कार्य करता है। परन्तु क्या कोई भी विवेकशील व्यक्ति जुआ खेलने और शराब पीने में सच्चा सुख मानने को तैयार होगा ? (क्योकि इनके परिणाम सदैव खराब ही निकलते है।) इसी प्रकार सभी प्राणी अपनी-अपनी मान्यतानुसार सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते है, परन्तु क्या वे सदैव ही अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप सच्चा सुख प्राप्त कर लेते हैं ? तथ्य तो यह है कि अपने प्रयत्नो के फलस्वरूप उनको कभी-कभी जो सुख प्राप्त हो जाता है, वह सच्चा सुख नही होता, वह तो केवल सुख का आभास मात्र ही होता है, जिसको वे भ्रमवश सुख समझ लेते है। अत. हमें सबसे पहले यह पता लगाना होगा कि सच्चा सुख क्या है ? और फिर यह देखना होगा कि वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?

यदि हम अपने चारो ओर के व्यक्तियो से पूछे कि सुख क्या है, तो हमें भिन्न-भिन्न उत्तर मिलेगे। एक भूखे व्यक्ति से पूछा जाये कि उसे किस प्रकार सुख मिल सकता है ? तो वह तुरन्त ही कह देगा कि भोजन करने से सुख मिल सकता है। परन्तु क्या कोई भी व्यक्ति निरन्तर भोजन करता रह सकता है ? क्या किसी हैजे या पेचिश के रोगी व्यक्ति को भोजन करा देने से उसे सुख की प्राप्ति होगी ? यदि नही, तो फिर भोजन करने में सुख कहां मिला ? तथ्य तो यह है कि भूखा व्यक्ति अपनी भूख की पीड़ा मिट जाने मे ही सुख समझता है। परन्तु यदि प्रकृति की ओर से ही कुछ ऐसा होता

कि उसे भूख ही न लगती, तो ? प्रश्न यह है कि भूख न लगने में सुख है या भूख लगने और फिर प्रयत्नपूर्वक भोजन प्राप्त करके तब अपनी भूख मिटा पाने में सुख है ? हमें इन दोनों परिस्थितियों में से एक को चुनना है कि कौन सी परिस्थिति अधिक सुखकर है ? स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति यही कहेगा कि भूख न होने में ही अपेक्षाकृत अधिक सुख होना चाहिये।

हम एक और उदाहरण लेते है। एक व्यक्ति को खाज का रोग है। वह रोगग्रस्त भाग को खुजाता है, तो उसको सुख प्राप्त होता है। एक अन्य व्यक्ति है जो स्वस्थ है, उसको खुजाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इन दोनों व्यक्तियों में से कौन अधिक सुखी है ? स्पष्ट है कि स्वस्थ व्यक्ति ही अधिक सुखी है।

इसी प्रकार एक शराबी है उसे नित्य प्रति शराब चाहिये। यदि किसी दिन उसको शराब न मिले या शराब मिलने में कुछ देर हो जाये, तो उसकी हालत बहुत बुरी हो जाती है। जब उसको शराब मिल जाती है तो वह समझता है कि उसे संसार का सबसे बड़ा सुख मिल गया। इसके विपरीत एक अन्य व्यक्ति है जिसने न कभी शराब पी है और न उसको कभी शराब पीने की आवश्यकता या इच्छा ही होती है। अब आप बतलाइये कि इन दोनो व्यक्तियों में से कौन अधिक सुखी है ? यह तो स्पष्ट है की प्रत्येक व्यक्ति यही कहेगा कि जिस व्यक्ति को शराब पीने की आवश्यकता ही नहीं है, वही अधिक सुखी है।

इसके साथ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है, कोई व्यक्ति शराब पीने का कितना ही शौकीन क्यो न हो, क्या वह निरन्तर शराब पीता रह सकता है ? थोडी सी शराब पीते ही वह मदहोश और फिर बेहोश हो जायेगा। शराब उसके स्वास्थ्य का सत्यानाश करती है और उसके पारिवारिक जीवन को भी नष्ट कर देती है। अनेकों परिवार शराब के कारण बरबाद होते देखे जा सकते हैं। अनेकों शराबी चाहते भी हैं कि वे शराब पीना छोड़ दें, परन्तु उनकी शारीरिक अवस्था ऐसी हो जाती है और उनकी इच्छा शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वे चाहते हुए भी शराब को छोड़ नहीं पाते।

किसी व्यक्ति को मिठाई का सेवन करने में सुख मिलता है। परन्तु क्या वह निरन्तर मिठाई का सेवन करते रह सकता है ? वह व्यक्ति मिठाई सेवन करने का कितना ही शौकीन क्यों न हो, कुछ मिठाई का सेवन करने के पश्चात, उससे उसकी रुचि हट जाती है। और फिर, अधिक मिठाई सेवन करने से उसे रोग भी हो जाते हैं। इन तथ्यों को देखते हुए क्या हम मिठाई को तथा अन्य ऐसे ही खाद्य पदार्थों को सुख का कारण मान सकते हैं ?

इसी प्रकार एक निःसन्तान व्यक्ति है। वह सन्तान प्राप्त होने में ही सुख मानता है। परन्तु एक अन्य व्यक्ति है, वह अपनी सन्तान के कारण दुखी है, क्योंकि उसकी सन्तान या तो निकम्मी व चरित्रहीन है या उसके प्रतिकूल चलती है अथवा सदैव रोगी रहती है। अतः वह सोचता है कि ऐसी सन्तान से तो निःसन्तान रहना ही अच्छा था। इस दूसरे व्यक्ति को देखकर हम कैसे मान लें कि सन्तान सदैव ही सुख का कारण है ?

एक विशेष वस्तु किसी एक व्यक्ति के लिए सुख का कारण हो सकती है, तो वही वस्तु किसी अन्य व्यक्ति के लिए दुख का कारण भी बन जाती है। जैसे एक पहलवान के लिए दूध व घी स्वास्थ्य-वर्द्धक होने के कारण आवश्यक हैं। परन्तु वही दूध व घी पेचिश व जिगर के रोगियों के लिए हानिकारक हैं। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक वस्तु मे सुख है। क्योकि अगर किसी विशेष वस्तु में सुख देने की क्षमता होती, तो वह वस्तु प्रत्येक व्यक्ति को और प्रत्येक परिस्थिति मे सुख ही देती। इसका अर्थ तो यह हुआ कि सुख किसी विशेष वस्तु में नहीं है अपितु हम अपनी भ्रामक मान्यता के कारण उस वस्तु विशेष में सुख मान लेते है।

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि धन सब प्रकार के सुख का कारण है। परन्तु यह उनका भ्रम है। धन से कुछ शारीरिक सुविधाओ के साधन अवश्य खरीदे जा सकते हैं, परन्तु धन से सच्चा सुख प्राप्त नही किया जा सकता। एक व्यक्ति है, जिसके पास करोड़ो रुपया है, परन्तु उसका स्वास्थ्य खराब है और उसको दाल का पानी भी कठिनाई से हजम होता है। इतना धन होने के बावजूद भी क्या वह व्यक्ति सच्चा सुखी है ? एक अन्य व्यक्ति है, उसके पास भी करोड़ों रुपया है; परन्तु उसके युवा पुत्र की मृत्यु हो जाती है और घर में विधवा बहू रह जाती है। क्या वह पिता और वह विधवा बहू करोड़ो के धन के स्वामी होते हुए भी सच्चे सुखी हैं ? यह भी सर्वविदित है कि इस धन का उपार्जन करने के लिए बहुत से व्यक्तियों को बहुत ही अपमानजनक कार्य करने पड़ते है। अनेको व्यक्ति भ्रष्टाचार व हिंसा के कार्य करते है। अनेको व्यक्तियो को ऐसे-ऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जिनसे हर समय मृत्यु हो जाने का भय रहता है। इस धन की सुरक्षा करने मे भी अनेको बार उसके स्वामियो की जान चली जाती है। इस धन के कारण ही भाई भाई के और पुत्र पिता के शत्रु हो जाते हैं और उनके प्राण लेने मे भी नही हिचकिचाते। इतिहास साक्षी है कि इस धन के कारण ही न जाने कितना रक्तपात हुआ है। इतनी विपत्तियों का कारण होते हुए भी इस धन को सुख का कारण कैसे कह सकते है ? आज अमरीका संसार

का सबसे धनी देश है। क्या वहां के सभी धनी व्यक्ति वास्तव में सुखी हैं? तथ्य तो यह है कि वहां के अधिकांश निवासी इतनी अधिक परेशानियों से घिरे रहते हैं कि उनको स्वाभाविक नींद भी नहीं आती। नींद लेने के लिये उनको औषधियो का सहारा लेना पड़ता है। संसार में नींद लाने वाली औषधियो की सब से अधिक खपत अमरीका में ही होती है। हृदय की धड़कन बन्द हो जाने के कारण सबसे अधिक मृत्युएं भी वहीं होती हैं, जो उन धनी व्यक्तियों की परेशानियों का ही परिणाम है। इस प्रकार की परेशानियों से घबराकर वहा के निवासी और विशेषतया वहा के युवक सुख व शान्ति की एक झलक पाने के लिए नये-नये साधनों की खोज में लगे रहते है। इस संसार की परेशानियों को भुलाने के लिए तथा सुख प्राप्त करने की आशा में बहुत से युवक व युवतिया नशीली वस्तुओ का सेवन करने लगे हैं। कुछ व्यक्ति योगाभ्यास की ओर झुक रहे है। कुछ व्यक्ति तथा-कथित महर्षियो और ईश्वर के अवतारों के भक्त बन रहे हैं। कुछ व्यक्ति भक्ति-मार्ग को अपना रहे है। कहने का तात्पर्य यही है कि जिधर भी वे सुख व शान्ति पाने की सम्भावना देखते है, वे उधर ही दौड़ पड़ते हैं।

इन सब वास्तविकताओं को देखते हुए हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि धन से किसी व्यक्ति की सभी इच्छाएं पूरी नही हो सकतीं। अत: धन को सच्चे सुख का कारण कैसे माना जा सकता है?

कुछ व्यक्ति शारीरिक अर्थात् इन्द्रिय-सुख को ही सच्चा सुख मानते हैं। वे इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने के लिये अच्छे व बुरे सब प्रकार के साधनों का प्रयोग करते है और ऐसा करते समय वे यह भी नही देखते कि अपने लिये इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने के कारण अन्य प्राणियो को कितना कष्ट हो रहा है। अपनी जिव्हा के तनिक से स्वाद के लिए तथा शारीरिक-शक्ति प्राप्त करने के लिये वे दूसरे प्राणियों का मांस भक्षण करते हैं, अपने शरीर को सजाने के लिए दूसरे प्राणियो की खालो और बालों का प्रयोग करते हैं, अपनी जरा-सी देर की मौज व मस्ती के लिये मदिरा व अन्य मादक द्रव्यों का सेवन करते है (मदिरा के बनाने में असंख्य सूक्ष्म प्राणियों की हत्या होती है।) अपनी आखों व कानों की तृप्ति के लिए रात-रात भर तमाशे, नाच व गाने देखते व सुनते हैं, अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए पर-स्त्री गमन व वेश्या-सेवन करते हैं और कभी-कभी तो बलात्कार जैसे घृणित कार्य तक करने में भी नही हिचकिचाते। ऐसा करने से इन व्यक्तियों की क्षण भर के लिए तृप्ति भले ही हो जाये, परन्तु उनको स्थायी व सच्चे सुख और शान्ति की प्राप्ति कभी नहीं होती। तथ्य तो यह है कि इन विषयों का पुन:-पुनः सेवन करने से उनकी विषय-वासनाएं, अग्नि में घी डालने के समान और भी अधिक बढ़ती जाती हैं। और ऐसे व्यक्तियों को अन्ततः

क्या परिणाम भुगतना पड़ता है, वह किसी से छुपा नही है। अनेकों बार तो ऐसे व्यक्तियों को देश के नियमों के अनुसार दण्ड भी भुगतना पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त इनमें से अधिकाश व्यक्ति भाति-भांति के असाध्य रोगों से ग्रस्त हो जाते है। वे जीवन भर एडियां रगड़ते रहते हैं और अन्त में तिल-तिल कर उनके प्राण निकलते हैं। इन्द्रियो के विषयों की तृप्ति करने के ऐसे दु:खद परिणाम देखकर कौन कह सकता है कि यह शारीरिक अर्थात् इन्द्रिय-सुख ही सच्चा सुख है ?

एक बात और भी विचारणीय है। यदि शारीरिक सुख ही सच्चा सुख होता, तो बहुत से व्यक्ति अपने पास पर्याप्त धन होते हुए भी और अधिक धन प्राप्त करने की लालसा मे इन शारीरिक सुखों को छोड़ कर रात-दिन पागल-से हुए नही फिरा करते।

फिर, संसार में ऐसे भी अनेक व्यक्ति हैं जो न तो धन प्राप्त करने में ही सच्चा सुख मानते है और न इन्द्रियो के विषयों की तृप्ति में ही, अपितु वे तो किसी पवित्र लक्ष्य को प्राप्त करने में ही सुख मानते है और इस पवित्र लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये वे अपने तन, मन व धन सब का बलिदान कर देते है।

हम भारत के व अन्य देशों के देश-भक्तो के जीवन पर दृष्टि डालें, तो हमको पता चलेगा कि यदि वे अपने मार्ग से हट जाते, तो उनको कौन सा शारीरिक सुख और भौतिक ऐश्वर्य उपलब्ध नही हो सकता था ? परन्तु उन्होने हर प्रकार के प्रलोभनो व शारीरिक सुखों को ठुकरा दिया और हर प्रकार के अमानवीय कष्ट सहते हुए भी अपने मार्ग से तनिक भी विचलित नही हुए, किन्तु अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिये अन्ततः उन्होने अपने प्राण भी प्रसन्नतापूर्वक न्यौछावर कर दिये।

हम एक और उदाहरण देते हैं। सेना की एक टुकड़ी किसी स्थान पर अधिकार करने के लिए भेजी जाती है। युद्ध में सैनिक घायल होते जाते हैं, परन्तु फिर भी वे आगे बढ़ते रहते है और अन्ततः वे उस स्थान पर अधिकार कर लेते हैं। सैनिको के शरीर घावो से छलनी हो रहे है; उनके घावों से रक्त बह रहा है, उन सैनिको मे खड़े होने की तो क्या, बैठे रहने की भी शक्ति नही है, फिर भी उनको उस समय जो अनुपम आत्म-संतोष प्राप्त होता है, क्या उसकी किसी भी शारीरिक सुख से तुलना की जा सकती है ?

इस प्रकार हम देखते है कि शारीरिक सुख भी सच्चा सुख नहीं है।

एक व्यक्ति अपने पुत्र को सच्चे सुख का कारण मानता है। एक अन्य व्यक्ति अपनी पत्नी को ही सच्चे सुख का कारण समझता है। परन्तु क्या वास्तव मे ये सच्चे सुख के कारण है ? यदि ये सच्चे सुख के कारण होते,

तो इनसे सदैव ही सुख मिलते रहना चाहिये था। परन्तु यदि पुत्र व पत्नी दुराचारी निकल जाएं, तो वे सुख के बजाय स्थायी दुःख के कारण बन जाते हैं। यदि हम यह भी मान लें कि किसी व्यक्ति की पत्नी व पुत्र बहुत ही अच्छे स्वभाव के है और उसकी आज्ञा के अनुसार ही व्यवहार करते हैं, तब यह भी तो शत-प्रति-शत निश्चित नही है कि उस व्यक्ति को अपने जीवन में अपने पुत्र व पत्नी का वियोग सहना ही नहीं पड़ेगा। यदि दुर्भाग्यवश ऐसा हो जाता है तो ऐसे व्यक्तियों के दुःख का क्या कहना?

इन वास्तविकताओं को दृष्टि में रखते हुए क्या कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह कह सकता है कि कोई भी लौकिक वस्तु सच्चे सुख का कारण है? वास्तव में सच्चा सुख तो वही है जिसके लिए किसी भी वाह्य वस्तु की आवश्यकता न हो, जो निरपेक्ष व स्वाधीन हो और जिसका तथा जिसके कारणों का कभी भी अभाव नही होता हो तथा जिसको किसी व्यवधान के बिना अनन्तकाल तक भोगा जा सके।

एक बात और, जिस अवस्था को हम सुख समझते हैं, क्या वह वास्तव में सुख है? यदि हम अपने चारों ओर दृष्टिपात करे और गम्भीरता पूर्वक विचार करे, तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि इस विश्व में स्थायी रूप से सच्चा सुखी तो कोई भी प्राणी नही है। हमको जो कभी-कभी थोड़े हसते-खिलते चेहरे दृष्टिगोचर हो जाते है, वे केवल कुछ समय के लिये ही ऐसे दिखाई देते है। क्या कोई भी व्यक्ति निश्चय पूर्वक कह सकता है कि ये चेहरे जीवन-पर्यंत इसी प्रकार हसते-खिलते रहेगे? इसके विपरीत प्रसन्न दिखाई देने वाले इस थोड़े से समय में भी उनके अन्तर में न जाने कितनी वेदना भरी हुई होती है, जिसको ये अपनी दिखावटी मुस्कान के आवरण में छिपाये रहते हैं। तथ्य तो यह है कि इस जीवन में कुछ समय के लिए कभी-कभी जो सुख दिखाई दे जाता है, वह वास्तविक सुख नहीं, अपितु सुख का आभास मात्र ही होता है।

इच्छाओं के अभाव में ही सच्चा सुख है

फिर वास्तव में सुख क्या है? ऊपर दिये उदाहरणों में हमने देखा कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति में ही सुख मानते हैं। परन्तु यदि उनके इच्छाएं ही न होती तो? इच्छा का तात्पर्य है—किसी वस्तु के अभाव का अनुभव करना। क्योकि जब हमको किसी वस्तु की इच्छा हो और वह वस्तु हमारे पास न हो, तभी हमको उस वस्तु का अभाव सतायेगा। अतः यदि हम यह कहें "यदि किसी व्यक्ति के कोई इच्छा ही न हो, तो वह व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सुखी होता है"—तो क्या हमारा यह कहना ठीक नहीं होगा? अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि इच्छाओं की

पूर्ति में सच्चा सुख नही, अपितु इच्छाओं के अभाव में ही सच्चा सुख है।

यह भी एक तथ्य है कि कोई व्यक्ति कितना ही धनवान व शक्तिशाली क्यों न हो, फिर भी, उसको हर समय किसी न किसी वस्तु का अभाव सताता ही रहता है और उसको हर समय कोई-न-कोई इच्छा लगी ही रहती है। अनेको इच्छायें ऐसी भी होती हैं जिनकी धन व किसी भी अन्य प्रकार के साधन से पूर्ति नही हो पाती। तात्पर्य यही है कि किसी भी व्यक्ति की सभी इच्छाएं कभी पूर्ण नहीं होती। वास्तविकता तो यह है कि हमारी इच्छाएं जितनी अधिक होगी, हम उतने ही अधिक दुखी होंगे और हमारी इच्छाएं जितनी कम होगी, हम उतने ही अधिक सुखी होंगे। इसलिये यदि हमें सच्चा सुख प्राप्त करना है, तो हमें अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओ को घटाते रहना चाहिये, क्योकि इच्छाओ व आवश्यकताओ के अभाव में ही सच्चा सुख है।

किसी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है :—

चाह गयी, चिन्ता मिटी,
मनुवा बेपरवाह,
जिसको कुछ ना चाहिये,
वह शाहों का भी शाह।

इसी सम्बन्ध मे हम एक बहुत ही उच्च कोटि के दार्शनिक के विचार उद्धृत करते है :—

जिन-जिन विषयो (इच्छाओ, आकाक्षाओ) से मनुष्य अपने मन को हटाता जाता है, उन-उन विषयो से उसकी मुक्ति होती जाती है। इस प्रकार यदि सब ओर से निवृत्ति हो जाये, तो उसे पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति आ जाने पर उसे किसी भी स्थिति मे दु.ख का लेशमात्र भी अनुभव नही होता। —'महात्मा विदुरजी'

यहा पर कुछ सज्जन यह प्रश्न उठा सकते है कि यदि व्यक्ति अपनी इच्छाओ व आवश्यकताओ को सीमित ही रहने देते तथा उनको कम करते जाते, तो आज मनुष्य ने जो उन्नति व प्रगति की है वह कैसे सभव हो पाती? जैसे-जैसे मनुष्य की इच्छाए व आवश्यकताए बढ़ती गयी, उनकी पूर्ति के लिये नये-नये साधनो की खोज होती गयी और इस प्रकार नये-नये आविष्कार अस्तित्व मे आते गये। कहा भी है—"आवश्यकताएं आविष्कार की जननी हैं।"

यह ठीक है कि मनुष्य की बढ़ती हुई इच्छाओं व आवश्यकताओं के कारण ही नये-नये आविष्कार हुए; परन्तु हमे यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि वैज्ञानिको ने जितने आविष्कार किये हैं उनमें से कोई भी निरापद नही है। इसके साथ यह प्रश्न भी उठता है कि इन आविष्कारों से

सब मिलाकर अन्ततः मनुष्य को क्या मिला ? सन् १९४५ में विज्ञान ने मनुष्य को एटम बमों का उपहार दिया, जिनके द्वारा जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नाम के दो नगर पलक झपकते ही खंडहर बना दिये गये और लाखों मनुष्यों व अन्य प्राणियों की क्षण मात्र में ही हत्या करदी गयी। जो व्यक्ति किसी प्रकार बच गये थे, वे आज तक उन बमों के प्रभाव से पीड़ित हैं और तिल-तिल कर, सिसक-सिसक कर उनके प्राण निकल रहे हैं। जिस बारूद का आविष्कार मनुष्य की सुरक्षा के लिये किया गया था उसी बारूद से करोड़ों मनुष्यों के प्राण ले लिये गये, अब भी लिये जा रहे हैं और भविष्य में भी लिये जाते रहेंगे। जिन मोटरों व वायुयानों आदि को मनुष्य की सुख सुविधा के लिये बनाया गया था, उन्हीं के द्वारा मनुष्यों पर आग व बरबादी बरसायी जाती है। इसके अतिरिक्त वायुयानों, रेलों व मोटरों की दुर्घटनाओं के फलस्वरूप भी प्रतिवर्ष लाखों व्यक्तियों की असमय में ही मृत्यु हो जाती है और उससे भी कई गुने व्यक्ति अपंग हो जाते हैं। आज वैज्ञानिको ने ऐसा बम—न्यूट्रान बम—बना लिया है कि जिस क्षेत्र पर वह बम डाला जायेगा, वहां सम्पत्ति को तो कोई हानि नहीं होगी, परन्तु उस क्षेत्र में कोई भी प्राणी—मनुष्य, पशु, पक्षी आदि—जीवित नहीं बच सकेगा। आज वैज्ञानिक ऐसे उपाय खोजने में लगे हुए हैं, जिनसे शत्रु देशों में महामारी फैलायी जा सके, वहा के समुद्रों व नदियों में कृत्रिम तूफान उत्पन्न किये जा सकें, जिनसे शत्रु-देश बरबाद हो जायें। आज विभिन्न देशों के पास इतनी अधिक संख्या में और इतने अधिक शक्तिशाली बम तैयार रक्खे हैं कि अगर उनका विस्फोट हो जाये, तो हमारी पृथ्वी जैसी कई पृथ्वियां क्षण भर में ही नष्ट हो जायें।

इसके साथ-साथ यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि जिन कारखानों में मनुष्य की आवश्यकताओं की वस्तुएं और घातक अस्त्र-शस्त्र निर्मित किये जाते हैं, उन कारखानों के धुंए व कचरे से इस पृथ्वी का वातावरण दूषित होता जा रहा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यदि प्रदूषण इसी प्रकार बढ़ता गया तो निकट भविष्य में ही एक दिन ऐसा आ जायेगा जब मनुष्य शुद्ध वायु, शुद्ध जल और शुद्ध खाद्य-पदार्थों के लिए भी तरस जायेगा। तो यह है हमारी वैज्ञानिक प्रगति व उपलब्धियों का लेखा-जोखा।

यह संसार इस शताब्दी में ही सन् १९१४ और सन् १९३९ के दो महायुद्ध देख चुका है। छोटे-मोटे युद्ध तो हर समय चलते ही रहते हैं। इन युद्धों में करोड़ों व्यक्तियों के प्राण चले गये। तथा सम्पत्ति की जो हानि हुई, उसका तो हिसाब लगाना भी असम्भव है। आज प्रत्येक देश, अपनी-अपनी

शक्ति बढाने के लिये, दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक घातक हथियार बनाने व उनका संग्रह करने का प्रयत्न कर रहा है, जिन पर खरबों रुपया व्यय किया जा रहा है। कुछ विकसित राष्ट्र तो चाहते ही यही है कि संसार में कहीं-न-कही युद्ध होते रहे और तनाव का वातावरण बना रहे, जिससे उनके द्वारा निर्मित हथियारो की बिक्री होती रहे। इस रक्तपात व बरबादी का कारण क्या है ? क्या यह मनुष्यो की बढती हुई इच्छाओ व आवश्यकताओं का ही परिणाम नही है ? यदि मनुष्य की इच्छाएं व आवश्यकताएं सीमित होतीं और वह उनको कम करता जाता, तो क्या फिर भी ये युद्ध होते ? इन्ही सब बातों को देखकर ही किसी कवि ने मनुष्य के सम्बन्ध में लिखा है :—

जान देने की बात भूल गया,
जान लेने के हुनर में ही तरक्की की है।

एक दूसरे कवि ने लिखा है :—

आदमी जिन्दगी के जंगल में,
आप अपना ही खुद शिकारी है।

एक बात और, क्या वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित किये गये सुविधाओं के साधन मनुष्य-मात्र के लिये उपलब्ध है ? यह एक निर्विवाद तथ्य है कि सुविधाओ के इतने साधनों के उपलब्ध होते हुए भी इस पृथ्वी के अधिकांश व्यक्तियों को पेट भरने को रोटी, तन ढकने को कपडा, और सिर छिपाने को एक छोटी सी छत भी उपलब्ध नहीं है। जितने भी सुविधाओं के साधन हैं, वे कुछ व्यक्तियों को ही उपलब्ध है। इस पृथ्वी पर पहले भी ऐसा ही होता रहा था, अब भी ऐसा ही हो रहा है और आगे भी ऐसा ही होता रहेगा। अर्थात् अब से पहले प्रत्येक काल मे गिनती के व्यक्तियो को ही तत्कालीन सुविधाओं के साधन उपलब्ध रहा करते थे और वे व्यक्ति ही सुखी समझे जाया करते थे। आज भी कुछ ही व्यक्तियो को आधुनिक सुविधाओं के साधन उपलब्ध हैं और वे व्यक्ति ही सुखी समझे जाते है। इसी प्रकार भविष्य में भी कुछ ही व्यक्तियों को ही उस समय के सुविधाओ के साधन उपलब्ध होते रहेंगे और वे व्यक्ति ही सुखी समझे जायेंगे। क्या इन थोड़े से व्यक्तियों को प्राप्त सुविधाओं के साधनों के कारण ही हम मनुष्य मात्र को सुखी समझ लें ? वास्तविकता तो यही है कि जिन प्राणियो ने पिछले समय में अच्छे कर्म किये थे उनको ही सुविधाओं के साधन उपलब्ध हुए और जिन प्राणियों ने पिछले समय में बुरे कर्म किये थे वे इन सुविधाओं के साधनों से वञ्चित रह गये। इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर हम यह नहीं कह सकते आज मनुष्य मात्र को सुविधाओं के साधन उपलब्ध हैं।

आज सारी पृथ्वी पर और विशेषकर भारतवर्ष में जनसंख्या को कम करने के लिये आन्दोलन चल रहा है। आज मनुष्य अन्य अनेकों वस्तुओं

का उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा है परन्तु अपनी जनसंख्या को सीमित रखने तथा घटाते रहने के प्रयत्न कर रहा है। जनसंख्या को सीमित रखने के लिए गर्भ निरोध के साधन अपनाये जा रहे हैं और बहुत से व्यक्ति तो गर्भ-पात जैसा अमानवीय कार्य (जो एक मनुष्य की हत्या के समान ही है) करने से भी नहीं हिचकिचाते। ऐसा क्यों? उत्तर यही है कि पृथ्वी पर वस्तुओं की संख्या सीमित है और चाहे कितना भी उत्पादन बढा लिया जाये फिर भी वह सीमित ही रहेगी। इसके विपरीत व्यक्ति की इच्छाएं व आवश्यकताएं असीमित हैं। व्यक्ति की बढ़ती हुई इच्छाओं व आवश्यकताओं के कारण ही जनसंख्या पर नियन्त्रण करने को कहा जा रहा है जिससे व्यक्ति की बढ़ती हुई इच्छाओं व आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। यदि व्यक्ति अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओ को सीमित रखते और उन्हें कम करते जाते, क्या तब भी ऐसे अमानवीय कार्य करने की आवश्यकता पड़ती? हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण नही किया जाये और उसे असीमित होने दिया जाये। मतभेद तो नियन्त्रण के साधनों से है। हमारे ऋषि मुनि तो संयम रखने व ब्रह्मचर्य का पालन करने पर बल देते थे। उनका तो यह कहना था कि मनुष्य को विषय सेवन तभी करना चाहिये जब उसकी सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा हो अन्यथा उसे विषय सेवन से दूर ही रहना चाहिये।

इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि हम चाहे किसी भी दृष्टिकोण से विचार करे, मनुष्य मात्र की भलाई अपनी इच्छाएं कम करने में ही है।

किसी से लगाव न रखकर तटस्थ रहने में ही सच्चा सुख है।

हम एक उदाहरण देते हैं। आपका पुत्र व्यापार करने के लिये नगर से बाहर गया हुआ है, कुछ दिन के पश्चात उसका पत्र आता है कि अमुक सौदे में दस हजार रुपये का लाभ हुआ है। पुत्र को लाभ होने का समाचार सुनकर आपको बहुत प्रसन्नता होती है। कुछ दिन के पश्चात उसका एक और पत्र आता है कि अमुक सौदे में दो हजार रुपये की हानि हुई है। हानि का समाचार पढ़कर आपको दुःख होता है। यदि आपका पुत्र दो पत्र न डाल कर केवल एक पत्र ही डालता कि कुल व्यापार में आठ हजार रुपये का लाभ हुआ है तो आपको केवल प्रसन्नता ही हुई होती। वास्तव में न तो लाभ के रुपये आपको मिले और न हानि के रुपये आपको देने पड़े; फिर भी, आप सुखी व दुखी हुए। क्यों? क्योंकि आप पुत्र को अपना समझते हैं और उसकी हानि व लाभ को भी अपना समझते हैं। यदि यही समाचार कोई अन्य व्यक्ति पढ़ता, तो क्या वह भी दुखी और सुखी होता। स्पष्ट है

कि उसको न दुख होता न सुख। इसी प्रकार यदि आप भी एक तटस्थ व्यक्ति के समान ही सोचते, तो क्या आपको भी दुःख व सुख होता ? स्पष्ट है कि यदि आप भी तटस्थ होते, तो आपको भी न दुःख होता न सुख।

हम एक और उदाहरण देते है। आप अपने मकान में बैठे हुए हैं। आपका बालक बाग में खेलने गया हुआ है। आपको किसी ने आकर बतलाया कि बाग में एक बालक के चोट लग गयी है। यह सुनते ही आप व्याकुल हो जाते हैं, क्योंकि आपका बालक भी बाग में खेलने गया हुआ है। आप दौडते हुए बाग में जाते हैं। वहा जाकर पता लगता है कि आपका बालक तो कुशलपूर्वक है और चोट किसी अन्य बालक को लगी है। तब आप चैन की सास लेते हैं। अब आप विचार कीजिये कि न तो आपको कोई हानि हुई थी और न कोई शारीरिक कष्ट ही हुआ था फिर भी आप दुःखी हुए ? इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि आपको अपने बालक से लगाव है, जो दूसरे बालकों से नही है। यदि आपके हृदय में यह लगाव नहीं होता अथवा आपको किसी बालक के चोट लगने का समाचार ही नही मिला होता, तो आपको न सुख होता न दुःख। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि किसी से ममता न रखने अर्थात् तटस्थ रहने में ही सच्चा सुख है। इसका तात्पर्य यह भी नही है कि हम किसी के दुख व सुख में भाग ही न लें; अपितु हमें दूसरों के दुःख व सुख में भाग अवश्य लेना चाहिये, उनकी यथाशक्ति सेवा व भलाई भी करनी चाहिये, परन्तु हमको किसी से भी लगाव (attachment) न रख कर तटस्थ ही रहना चाहिये।

संत कबीर भी कह गये है —

कबीरा खड़ा बाजार में सबकी मांगे खैर,
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।

किसी से भी किसी प्रकार की भी आशा-आकांक्षा न रखने में ही सच्चा सुख है

हम घर-गृहस्थी बसाते हैं, तथा नये-नये मित्र बनाते है। हम आशा करते हैं कि हमारी पत्नी/पति, पुत्र-पुत्री आदि हमारी सेवा करेंगे, जिससे हमारा जीवन सुखी होगा। इसी प्रकार हम अपने मित्रों से आशा रखते हैं कि वे दुःख-सुख में हमारा साथ देंगे। हम अपने सेवकों से यह आशा रखते हैं कि वे हमारी आज्ञा के अनुसार चलेंगे। परन्तु जब ये व्यक्ति हमारी आशा के अनुकूल व्यवहार नहीं करते, तो हमें दुःख होता है। यदि हम शुरू से ही उनसे किसी प्रकार की आशाएं व आकांक्षाएं न रक्खें, तो हमारे दुःखी होने का प्रश्न ही नही उठेगा। इसी प्रकार हम समझते हैं कि हमारे पास धन-दौलत है, अतः हमें संसार का प्रत्येक सुख उपलब्ध हो सकता

है। परन्तु धन से हमें इस प्रकार की आशा रखना भी ठीक नहीं है। प्रतिवर्ष अनेकों करोड़पति व अरबपति कैन्सर व अन्य ऐसे ही असाध्य रोगों से पीड़ित होकर असमय में ही काल के ग्रास बनते रहते हैं। वे असहनीय कष्ट भोगते रहते हैं और उनका धन उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर पाता।

वास्तविकता तो यही है कि इस विश्व का कोई भी प्राणी तथा कोई भी अन्य वस्तु हमें सुख व दुःख देने में समर्थ नहीं है। हमें जो भी सुख व दुःख मिलते हैं, वे हमारे अपने ही द्वारा संचित किये हुए कर्मों के फल-स्वरूप ही मिलते है। जो प्राणी हमें सुख व दु ख देते हुए दिखलाई देते हैं, वे तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। अत. हमें किसी भी प्राणी से सुख व दुःख प्राप्त होने की सम्भावना भी नही करनी चाहिये।

इन वास्तविकताओं को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि किसी से किसी भी प्रकार की आशा व आकाक्षा न रखना सच्चे सुख का कारण है।

बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी न होने में हो सच्चा सुख है

कुछ व्यक्ति बहुत ही अधिक महत्त्वाकांक्षी होते हैं। वे अपनी शक्ति व साधनों का आकलन किये बिना ही बडी-बडी महत्त्वाकांक्षाएं करने लगते हैं। जैसे कोई साधन-हीन व्यक्ति करोड़पति व अरबपति बनने की महत्त्वाकांक्षा करने लगे, कोई साधारण सैनिक पूरे देश का शासक बनने की महत्त्वाकांक्षा करने लगे। परन्तु जब व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षाएं पूरी नही होती, तो वे बहुत दुःखी होते हैं। अतः बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी न होना सच्चे सुख का कारण है।

यहां पर यह प्रश्न उठता है कि यदि व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी नहीं होंगे, तो इस संसार की उन्नति कैसे होगी? क्योंकि जो व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होते हैं, उन्हीं के कारण संसार प्रगति के पथ पर बढता है और विविध क्षेत्रों में उन्नति करता है। यह ठीक है कि कुछ व्यक्ति अपनी महत्त्वा-कांक्षाओं की पूर्ति करने में सफल हुए हैं और आज संसार में विविध क्षेत्रों में जो प्रगति हुई है, वह अधिकांश में इन्ही महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों के कारण ही हुई है। परन्तु हमें इस विषय पर अपने दृष्टिकोण से विचार करना है। हम "सच्चे सुख का मार्ग" खोजने निकले हैं और वह भी केवल कुछ व्यक्तियों के लिये नहीं, अपितु इस विश्व के प्रत्येक प्राणी के लिये। हमें इसी उद्देश्य को लेकर इस विषय पर विचार करना है। इतिहास साक्षी है कि जब कोई व्यक्ति अपने व अन्य देशों का शासक बनने की महत्त्वाकांक्षा करता है, तो वह संसार में तबाही व बरबादी ही बरसाता

है —सिकन्दर, नेपोलियन, हिटलर व मुसोलिनी आदि इसके उदाहरण हैं। आज भी विभिन्न देश अपना-अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप हमारी पृथ्वी बारूद का एक ऐसा विशाल भंडार बन गयी है कि एक चिंगारी ही इस पृथ्वी को तथा यहां की समस्त सभ्यता व संस्कृति को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। यह ठीक है कि इन प्रयत्नों के फलस्वरूप कुछ देश अधिक शक्तिशाली बन गये हैं, परन्तु मानव जाति को इससे क्या मिला? कोई व्यक्ति धनवान बनने की महत्त्वाकांक्षा करता है और इसके लिए प्रयत्न भी करता है, तो उसके मन में यही भावना उठती है कि संसार का सारा धन उसका ही हो जाये। इस ध्येय की पूर्ति के लिये वह बेईमानी, मायाचारी, विश्वासघात, मिलावट आदि बुरे साधन अपनाता है। कोई व्यक्ति विद्वान बनने का महत्त्वाकांक्षी है, तो उसके मन में यही भावना उठती रहती है कि संसार में कोई भी व्यक्ति उससे अधिक विद्वान न हो। आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्द्धा में व्यक्ति कभी-कभी न करने योग्य कार्य भी कर बैठते है। अतः हमें बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी नही होना चाहिये। हमें महत्त्वाकाक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये, परन्तु अन्य व्यक्तियों को कष्ट देकर नहीं, अपितु हमें उन्हे भी अपने साथ लेकर आगे बढ़ना चाहिये।

जिसके परिणाम अपने लिये व दूसरों के लिये दुःखद न हों तथा जिसके सेवन से कभी भी मन न ऊबे वही सच्चा सुख है

एक व्यक्ति को शिकार खेलने में सुख प्राप्त होता है। एक अन्य व्यक्ति मासाहार में सुख मानता है। तीसरे व्यक्ति को अपने आधीन सेवकों को बुरा-भला कहने में ही सुख मिलता है। परन्तु क्या ये कार्य वास्तविक सुख के कारण हैं? क्या दूसरे जीवों को कष्ट देकर वास्तविक सुख प्राप्त किया जा सकता है? क्या इन व्यक्तियों के इन कार्यों से घायल होने वाले व मरने वाले पशु-पक्षियों को तथा बुरा-भला सुनने वाले सेवकों को कष्ट नहीं होता? इन कार्यों के फलस्वरूप इन व्यक्तियों के भी बुरे कर्मों का संचय होता रहता है, जिनके बुरे परिणाम इन व्यक्तियों को भविष्य में भोगने पड़ेगे। इस प्रकार जिन कार्यों से दूसरे जीवों को कष्ट पहुंचता है और जिन कार्यों के फलस्वरूप स्वयं को भी भविष्य में कष्ट मिलना अवश्यम्भावी है—ऐसे कार्यों को सुख का कारण कैसे माना जा सकता है? अतः वास्तविक सुख वही है, जिसके परिणाम अपने लिये व दूसरों के लिये कभी दुःखद नहीं हों।

एक व्यक्ति को मिष्ठान्न सेवन करना सुखकर लगता है। वह पर्याप्त मात्रा में मिष्ठान्न सेवन करता है। परन्तु कुछ मिष्ठान्न सेवन

करने के पश्चात् उसका मन भर जाता है। तब वह स्वाद बदलने के लिये नमकीन पदार्थों का सेवन करता है। नमकीन पदार्थों से मन भर जाने पर फल खाने लगता है। फिर उसकी भूख मिट जाती है और उस समय उसका मन-भाता भोजन, चाहे वह कितना ही स्वादिष्ट क्यों न हो, वह उसको सेवन करने से इन्कार कर देता है। एक अन्य व्यक्ति को चल-चित्र देखना अच्छा लगता है। वह कुछ समय तक चल-चित्र देखता रहता है। यहां तक कि उसकी आंखों में दर्द होने लगता है और उसे नींद आने लगती है। उस समय चाहे कितना भी सुन्दर चल-चित्र हो, वह उसे देखने से इन्कार कर देता है। यही बात अन्य इन्द्रियों के विषयों पर भी ठीक उतरती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों को अधिक समय तक सेवन नहीं कर सकता। इसके साथ-साथ यह भी एक तथ्य है कि अधिक विषय सेवन करने से व्यक्ति रोगी हो जाते हैं; जैसे, अधिक मिष्ठान्न व गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से व्यक्तियों के पेट खराब हो जाते है; अधिक चल-चित्र देखने से व्यक्तियों के नेत्र खराब हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में हम इन्द्रियो के विषय-सेवन करने को वास्तविक सुख कैसे मान सकते है? वास्तविक सुख तो वही है, जिसके सेवन से न तो मन ही ऊबे और न जिसके परिणाम ही अपने लिये व दूसरों के लिए हानिप्रद निकलें।

अतः ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है—

— इच्छाओं की तृप्ति में नहीं, अपितु इच्छाओं को कम करते रहने अर्थात् इच्छाओं के अभाव में ही सच्चा सुख है।

— अपने माता-पिता, पति/पत्नी, सन्तान व अन्य मित्र व सम्बन्धियों तथा वाह्य वस्तुओं की तो बात ही क्या, अपने शरीर में भी लगाव न रखकर तटस्थ रहने में ही सच्चा सुख है।

— किसी से भी किसी भी प्रकार की आशा व आकांक्षा न रखने में ही सच्चा सुख है।

— बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी न होने में ही सच्चा सुख है।

— जिस सुख का उपभोग करने के परिणाम अपने लिये व दूसरे प्राणियों के लिये कभी भी दुःखदायी न निकलें, वही सच्चा सुख है।

— जिस सुख का निरन्तर उपभोग करते रहने पर कभी भी मन न ऊबे, वही सच्चा सुख है।

— जो सुख किसी भी वाह्य वस्तु के आश्रित न हो अर्थात् जो सुख निरपेक्ष व स्वाधीन हो, वही सच्चा सुख है।

— सच्चा सुख कोई भी प्राणी किसी भी अन्य प्राणी को प्रदान नहीं कर सकता।

— सच्चा सुख धन तथा किसी भी अन्य साधन से खरीदा नहीं जा सकता।

— किसी भी प्राणी को सच्चा सुख प्राप्त करने में कोई भी अन्य प्राणी बाधा नही डाल सकता।

— सच्चा सुख केवल अपने अन्तर—अपनी आत्मा—में ही प्राप्त किया जा सकता है।

जो सुख इस कसौटी पर खरा उतरता है, वही स्थायी, सच्चा व वास्तविक सुख है। और जो सुख इस कसौटी पर खरा नही उतरता, वह स्थायी व सच्चा सुख नहीं, अपितु सुख का आभास मात्र है तथा वह सुख किसी भी क्षण नष्ट हो सकता है। इसलिये हमको ऊपर बतलाये गये गुणों वाले सच्चे व स्थायी सुख को ही प्राप्त करने का मार्ग खोजना है।



संतोषरूपी अमृत से तृप्त और शान्त-चित्त वाले मनुष्यों को जो सुख, शान्ति और आनन्द मिलता है, वह धन के लोभ से इधर-उधर भागने वाले मनुष्यों को कभी नही मिल सकता। —चाणक्य नीति दर्पण



जिस प्रकार फल आने पर वृक्षो की डालियां झुक जाती हैं, उसी प्रकार समृद्धियों के आने पर सज्जन पुरुष और अधिक नम्र हो जाते है। परोपकारियों का ऐसा ही स्वभाव होता है। —श्री कालिदास जी



सफल व्यक्ति वह है जो दूसरों के द्वारा उस पर फेंके गये पत्थरों से अपने लिये मजबूत नीव बना लेता है।



काम करने में जिसे आनन्द नहीं आता, उसकी कृति में सुन्दरता कैसे आ सकती है?



किसी भी व्यक्ति का व्यवहार वह दर्पण है, जिसमें उस व्यक्ति का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।

सच्चा सुख कैसे प्राप्त हो ?

हमने अब तक आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त, कर्म-फल तथा सच्चा सुख क्या है—इन विषयों का विवेचन किया। अब हम इस स्तर (Stage) तक पहुंच गए हैं कि उन कारणों पर विचार कर सकें, जिनसे सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त होता है। अगले पृष्ठों में हम इसी विषय पर प्रकाश डालने और कुछ दिशा-संकेत देने का प्रयत्न करेंगे।

पिछले पृष्ठों मे हमने यह बतलाने का प्रयत्न किया था कि सच्चा व स्थायी सुख क्या है ? पहले हम सच्चे व स्थायी सुख की बात छोड़कर लौकिक सुख प्राप्त करने की ही बात करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई ऐसा सरल सूत्र (Clear-cut farmula) है, जिसके प्रयोग से किसी भी व्यक्ति को लौकिक सुख प्राप्त हो सकता है ?

क्या केवल धन से ही लौकिक सुख प्राप्त हो सकता है ?
क्या केवल सुन्दर व स्वस्थ होने से ही लौकिक सुख मिल सकता है?
क्या केवल माता-पिता, पति/पत्नी, पुत्र-पौत्र इत्यादि सम्बन्धियों तथा मित्रों के होने से ही लौकिक सुख प्राप्त हो सकता है ?
क्या केवल विद्वान होने से ही लौकिक सुख प्राप्त हो सकता है ?

परन्तु अपने अनुभव से तो प्रत्येक व्यक्ति यही जानता है कि इनमें से किसी भी एक कारण से लौकिक सुख प्राप्त नहीं हो पाता; क्योंकि हम देखते हैं—

— कोई व्यक्ति धन की अपेक्षा से सुखी है, तो अन्य कई अपेक्षाओं से दुःखी है; जैसे कि उसका स्वास्थ्य खराब रहता है, उसकी पत्नी व पुत्र आदि उसकी आज्ञा के अनुकूल नहीं चलते, आदि।

— किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा है तथा वह सुन्दर भी है, परन्तु अपनी आजीविका की कोई व्यवस्था न होने के कारण वह दुःखी रहता है।

— कोई व्यक्ति धनवान भी है, स्वस्थ भी है, परन्तु वह संतान न होने के कारण दुःखी रहता है।

— कोई व्यक्ति विद्वान् है, परन्तु वह समुचित आदर व सम्मान न मिलने के कारण दुःखी रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्ण सुखी तो कोई भी व्यक्ति नहीं है। हां, जिस व्यक्ति को ऊपर लिखी सभी सामग्री उपलब्ध हों और ये समस्त सामग्री उसके अनुकूल हों, वह व्यक्ति किसी सीमा तक सुखी माना जा सकता है। जैसे कि उसके पास धन भी हो, वह स्वस्थ व सुन्दर भी हो, वह विद्वान् भी हो, उसकी पत्नी, पुत्र व मित्र तथा सेवक आदि स्वस्थ व अच्छे स्वभाव के हों तथा उसकी आज्ञा के अनुकूल चलते हों, उसका समाज में समुचित आदर व सम्मान हो। परन्तु यदि हम खोजने चलें, तो ऐसा पूर्ण सुखी व्यक्ति तो लाखो में भी शायद ही कोई मिले।

फिर प्रश्न यह उठता है कि क्या हम अपने वर्तमान में किये हुए प्रयत्नो से सुख प्राप्त कर सकते है? परन्तु हम देखते है कि अधिकांश में अपने वर्तमान मे किये हुए प्रयत्नो का भी हमें समुचित फल नहीं मिलता। तो फिर ऐसे कौन से साधन हैं, जिनसे हम लौकिक सुख प्राप्त कर सकते हैं? इसका उत्तर तो यही है कि यदि हमारा भाग्य अच्छा है, तो हमें लौकिक सुख अवश्य प्राप्त होगा और हमें लौकिक सुख प्राप्त करने के लिये आवश्यक साधन भी उपलब्ध होते रहेगे। अब प्रश्न यह उठता है कि हमें अच्छा भाग्य किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? इस सम्बन्ध में हम पहले भी कह चुके है कि हमारा भाग्य हमारे अपने पुरुषार्थ से ही बनता है। अच्छे पुरुषार्थ से अच्छा भाग्य बनता है और बुरे पुरुषार्थ से बुरा भाग्य। अतः हमे लौकिक सुख प्राप्त करने के लिए अच्छा पुरुषार्थ करने का ही प्रयत्न करते रहना चाहिये। यह सम्भव है कि हमारे द्वारा किये गये अच्छे पुरुषार्थ का तुरन्त ही अच्छा फल नही मिले, परन्तु हमारा अच्छा पुरुषार्थ कभी भी व्यर्थ नही जायेगा। हमको अपने अच्छे पुरुषार्थ का फल अवश्य ही अच्छा मिलेगा, परन्तु हम यह नही जान पाते कि वह फल कब तथा किस रूप में मिलेगा। अब हम इसी सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

पिछले पृष्ठों मे हमने अपने को मिलने वाले सुख व दुःख के कारणों पर विवेचन करते हुए बतलाया था कि हमको जो भी सुख व दुःख मिलते है, वे हमको हमारे अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिलते हैं। किसी भी अन्य प्राणी मे इतनी शक्ति नही है कि वह हमको सुख व दुःख दे सके। हां, अन्य प्राणी हमको सुख व दुःख मिलने में निमित्त अवश्य ही बनते रहते है। परन्तु अपने भ्रम व अज्ञान के कारण हम उनको ही सुख व दुःख देने वाला समझ लेते हैं। जिन प्राणियों के निमित्त से हमें सुख मिलता है, हम उनसे राग (मुहब्बत) करने लगते हैं और जिन प्राणियों के निमित्त से हमको दुःख मिलता है, हम उनसे द्वेष (नफ़रत) करने लगते हैं। इन राग व द्वेष की भावनाओं के फलस्वरूप हम

नये-नये कर्मों का संचय करते रहते हैं, जिनका फल हमें भविष्य में भोगना पड़ेगा। अतः इन सांसारिक दुःखों से बचने के लिये और लौकिक सुख प्राप्त करने के लिये हमें इस वास्तविकता को भली प्रकार समझ लेना चाहिये और अपने मन में भी इन राग व द्वेष की भावनाओं को नहीं आने देना चाहिये। इन राग-द्वेष की भावनाओं से दूर रहकर ही हम कर्मों के बन्धन से बचे रहेंगे और अन्ततः सच्चा व स्थायी सुख भी प्राप्त कर सकेंगे।

हम अपने मन में भी किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट देने तथा उसका अहित करने के विचार भी न आने दें। हम अपने वचनों व कार्यों के द्वारा, प्रत्यक्ष रूप से, परोक्ष रूप से तथा असावधानी से भी किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का शारीरिक व मानसिक कष्ट न होने दें। हम मधु, मांस, अण्डे, मदिरा व अन्य मादक पदार्थों तथा अभक्ष्य व तामसिक भोजन का सेवन कभी न करें। हम कभी भी रात्रि को भोजन न करें। मांस, मदिरा व अण्डों का सेवन करने से तथा रात्रि में भोजन करने से दूसरे प्राणियों की हत्या तो होती ही है, हमारा अपना स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है। हम जुआ व शिकार कभी न खेलें। हम कभी भी किसी के धन का अपहरण तथा किसी के न्यायोचित अधिकारों का हनन न करें। हम झूठे पत्रक न बनाएं तथा किसी के साथ भी बेईमानी व विश्वासघात न करें। हम किसी को कोई वस्तु कम तोल कर व कम नाप कर न दें। हम जानबूझ कर कभी भी मिलावटी व नकली वस्तुओं का व्यापार न करें। हम किसी (मनुष्य तथा पशु) से भी उसकी शक्ति से अधिक कार्य न लें। अपने पालतू पशु-पक्षियों को भर पेट भोजन दें और उनके आराम का ध्यान रक्खें। हम किसी व्यक्ति से कोई भी काम कराएं तो उसको समुचित पारिश्रमिक दें। हम किसी भी ऐसी वस्तु का व्यापार न करें जिसका उत्पादन हिंसा के द्वारा होता हो तथा जो हिंसा करने के लिए प्रयोग में लायी जाती हो। व्यापार में हम अनुचित लाभ न लें तथा किसी की लाचारी का अनुचित लाभ न उठाएं। हम सरकार के टैक्सों की चोरी न करें। तात्पर्य यही है कि हम यथासम्भव अहिंसा का पालन करते रहें। जो व्यक्ति सच्चा अहिंसक है वह कभी भी किसी भी प्रकार का बुरा कार्य नहीं करेगा। हमें यह निश्चय पूर्वक समझ लेना चाहिये कि वास्तव में हिंसा ही हमारे अधिकांश दुःखों की जननी है। अतः हमें अपना समस्त जीवन ही अहिंसामय बनाने का निरन्तर व सतत प्रयत्न करते रहना चाहिये।

कुछ व्यक्ति यह सोच सकते हैं कि इस प्रकार का व्यवहार करने से तो हम अपनी आजीविका भी नहीं चला सकेंगे। परन्तु उनका यह सोचना ठीक नहीं है। हमें सदैव इस वास्तविकता पर विश्वास रखना चाहिये कि इस प्रकार का अहिंसक व्यवहार करते रहने से हम कभी भी संकट में नहीं

पड़ेगे। यदि हम पर कभी कोई संकट आ भी जाता है तो वह संकट हमारे अहिंसक व्यवहार का फल नहीं है, अपितु भूतकाल में अपने द्वारा किये गये किन्ही बुरे कार्यों का ही फल है। वर्तमान मे किये जा रहे अहिंसक व्यवहार का हमें सदैव अच्छा ही फल मिलेगा, चाहे वह फल हमें अभी मिले चाहे भविष्य मे। इसी सम्बन्ध में एक और तथ्य ध्यान में रखने योग्य हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार का अहिंसक व्यवहार करता है, उसका सब सम्मान करते हैं और उसका सब विश्वास करते है। यदि वह व्यापारी है तो उसका व्यापार और अधिक चलने लगता है। यदि वह वकील, डाक्टर, इंजीनियर या कोई अन्य व्यवसाय करता है तो उसमें जनसाधारण का विश्वास होने के कारण वह उस व्यवसाय में भी उन्नति करता है। यदि वह कही नौकरी करता है तो वहा भी अपने स्वामियो का विश्वास अर्जित कर लेता है, जिसके फलस्वरूप वह वहा पर भी उन्नति करता है।

यहा एक प्रश्न यह उठता है कि हमें यह कैसे पता चलेगा कि कौन सा कार्य अच्छा है और कौन-सा कार्य बुरा है? अच्छे व बुरे कार्यों का अन्तर समझने के लिए हम एक विचारक का एक सूत्र उद्धृत करते हैं—

"आत्मन. प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत।"

"दूसरों के द्वारा किया हुआ जो भी कार्य और व्यवहार आप अपने लिये अप्रिय व दुःखदायी समझते है, वह कार्य व व्यवहार आप दूसरो के प्रति भी नही करें।"

यदि आप चाहते है कि कोई भी व्यक्ति आपको मानसिक व शारीरिक कष्ट न दे तथा आपको कटुवचन न बोले, तो आप स्वय भी दूसरों को किसी प्रकार का कष्ट न दे, और उनसे कटु वचन न कहे।

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपके साथ धोखा, बेईमानी व विश्वासघात न करे, तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करें।

यदि आप चाहते है कि कोई भी व्यक्ति आपको मिलावटी व नकली वस्तुए न दे, आपको कम तोल कर व कम नाप कर न दे, आपसे अनुचित लाभ न ले तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करें।

अहिंसा के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए "तीर्थंकर महावीर और उनका अहिसा सिद्धांत" नामक पुस्तक का अवलोकन अवश्य करे। यह पुस्तक नीचे लिखे पते पर पत्र लिखकर नि.शुल्क मगवा सकते हैं।

प्रेम रेडियो एन्ड इलैक्ट्रिक मार्ट,
महालक्ष्मी मार्केट, भगीरथ पैलेस,
चांदनी चौक, दिल्ली—६

यदि आप चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति आपके धन का अपहरण न करे, तथा आपके न्यायोचित अधिकारों का हनन न करे, तो आप भी किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करे।

यदि कोई व्यक्ति आपकी महिलाओं का अपमान करता है, तब आपको बुरा लगता है। तो आपको भी चाहिये कि किसी भी महिला के प्रति ऐसा व्यवहार न करें और सभी महिलाओ को समुचित सम्मान दें।

दूसरों के प्रति व्यवहार करते समय यदि हम अपने व्यवहार को इस कसौटी पर कस लें, तो हम बहुत से बुरे कार्यों से बचे रहेगे।

हमको प्राणीमात्र के प्रति मित्रता की भावना रखनी चाहिये। अपने से अधिक गुणवानों के प्रति हमें भक्ति व प्रमोद की भावना रखनी चाहिये। पीड़ित प्राणियों के प्रति हमें करुणा की भावना रखनी चाहिये और जो हठाग्रही हैं तथा उपदेश ग्रहण नहीं करते, उनके प्रति तटस्थता की भावना रखनी चाहिये।

यहां पर एक शंका यह उठती है कि यदि किन्हीं कार्यों से उन कार्यों के करने वालो को शारीरिकि सुख मिलता हो और अन्य किसी प्राणी को कोई कष्ट भी न होता हो, तो क्या ऐसे कार्य निःसंकोच किये जा सकते हैं ?

इस शंका के उठाने वालों का संकेत युवकों व युवतियों के उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द शारीरिक सम्बन्धों की ओर है। इसके उत्तर में निवेदन है कि ऐसे सम्बन्धो को साधारणतया समस्त संसार में नहीं, तो कम-से-कम भारत जैसे देश मे तो कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसे सम्बन्धों के दूरगामी परिणाम सदैव दुखदायी ही निकलते है। ऐसे सम्बन्धों के फलस्वरूप गर्भ धारण की स्थिति में प्रायः गर्भ-पात का ही सहारा लिया जाता है, जो एक मनुष्य की हत्या के समान ही है। ऐसी स्थिति का पता चल जाने पर (देर या सवेर, पता अवश्य ही चल जाता है) सम्बन्धियो में, पड़ोसियों में तथा समाज में उस युवती की, उसके माता-पिता की तथा उसके परिवार की बहुत बदनामी व जग-हंसाई होती है और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यदि गर्भ-धारण की स्थिति न भी आये, तो भी ऐसे शारीरिक सम्बन्धों का पता चल जाने पर ही ऐसी युवती से कोई भी युवक, चाहे वह कितना ही प्रगतिशील क्यों न बनता हो, विवाह करने को तैयार नहीं होता। यदि अनजाने में विवाह हो भी जाये, तो भी विवाह के बाद ऐसे सम्बन्धों का पता चल जाने पर उस युवती का जीवन नरक तुल्य बन जाता है।

इस प्रकार के अवैध शारीरिक सम्बन्धों से अनाचार व व्यभिचार की असामाजिक प्रवृत्तियों के बढ़ने के साथ-साथ असाध्य यौनरोगों के होने की भी बहुत अधिक सम्भावना होती है, जिसके फलस्वरूप जीवन पर्यन्त

कष्ट सहने पड़ते हैं। ऐसे सम्बन्धों से जो सन्तान पैदा हो जाती है या तो उसकी हत्या कर दी जाती है या उसको जीवन भर जमाने की ठोकरें खाने के लिए सड़कों पर फेंक दिया जाता है।

पश्चिमी देशों में जहा ऐसे उन्मुक्त सम्बन्ध होना एक साधारण सी बात है और जहा पति-पत्नी में तलाक का आम रिवाज है, वहां पर पति व पत्नी में एक दूसरे के प्रति विश्वास तथा समर्पण की वैसी भावनाओं का प्रायः अभाव ही होता है, जैसी भारत में पति व पत्नी के मध्य देखी जाती हैं। वहां पर अधिकाश पतियों व पत्नियों के सम्बन्ध ऐसे ही होते हैं, जैसे कि एक स्वामी व सेवक के होते हैं। जब तक पति पत्नी की निभी, तब तक निभी और नही निभी, तो तलाक ले लिया। ऐसी परिस्थिति में पति व पत्नी दोनो के ही अपने अलग-अलग स्वार्थ होते हैं, दोनों ही अविश्वास व असुरक्षा की भावना से घिरे रहते है तथा उनके जीवन में कोई पारिवारिक भावना नही रह जाती। उनके बच्चो की दशा तो बहुत ही शोचनीय हो जाती है, उन्हे दोनो में से कोई भी अपनाने को तैयार नही होता। उन बच्चो का वही हाल होता है, जैसे, कुत्ता न घर का न घाट का। अधेड़ अवस्था आने पर अनेकों स्त्री-पुरुषो का जीवन बिल्कुल एकाकी और दयनीय हो जाता है।

इन सब वास्तविकताओ को दृष्टि में रखकर हमें अपने ऊपर संयम रखकर भारतीय आदर्शों का ही पालन करना चाहिये।

दूसरे प्राणियों को किसी भी प्रकार का कष्ट न देने अर्थात् मन वचन व कर्म के द्वारा यथासम्भव अहिंसा का पालन करते रहने के साथ-साथ हमारा यह भी कर्तव्य है कि संसार में जो प्राणी कष्ट पा रहे हैं, उनके कष्टों को अपने तन, मन, धन से यथाशक्ति दूर करने और यदि उन कष्टों को पूरी तरह से दूर न कर सके, तो उनको कम करने का प्रयत्न अवश्य करते रहना चाहिये, जैसे भूखे को भोजन खिलाना, रोगी को औषधि दिलानी तथा उसकी सेवा शुश्रूषा करनी, अनपढ़ को पढाना तथा उसकी पढाई के लिये धन से सहायता करना, कोई प्राणी किसी कारण से भयभीत तथा दुःखी हो रहा हो, तो उसको सुरक्षा व सात्वना देनी। इन कार्यों को दया करना, दान करना तथा परोपकार करना भी कहते है। यहां पर यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि हम दूसरे प्राणियों पर जो भी उपकार करें, वह निष्काम व निःस्वार्थ भावना से करें। उसमें किसी भी प्रकार का प्रतिफल पाने की भावना नही होनी चाहिये। हमारे मन में भी यह भावना कभी नहीं आनी चाहिये कि यदि मैं परोपकार करूंगा, तो अन्य व्यक्ति मेरा सम्मान करेंगे और मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यदि हमारे मन में इस प्रकार की भावना आ

गयी, तो यह परोपकार नहीं एक प्रकार का व्यापार बन जायेगा। हमने किसी की कुछ भलाई की और उसके बदले में हमने प्रतिष्ठा व सम्मान की कामना की। यदि हमको सच्चा सुख प्राप्त करना है, तो परोपकार करते समय हमारे मन में भी स्वार्थ की, अहंकार की तथा कर्तृत्व (यह कार्य मैंने किया है) की भावनाएं भी कभी नहीं आनी चाहियें। दया, दान व परोपकार करने के लिए केवल धन का होना ही आवश्यक नही है, अपितु धन के अभाव में हम अपनी अन्य शक्तियो व साधनों से भी अन्य व्यक्तियों की तथा समाज की भलाई कर सकते है। ऐसा करने से ही हम समाज के ऋण से उऋण हो सकेंगे।

यहां पर यह प्रश्न उठता है कि यह तो ठीक है कि हम अपने मन, वाणी व शरीर के द्वारा यथासम्भव अहिंसा का पालन करते रहे, परन्तु यदि कोई व्यक्ति अकारण ही हमारे प्रति हिंसा का व्यवहार करने लगे, तो ऐसी स्थिति में हम क्या करें? इसका उत्तर यह है कि अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए हम उसको क्षमा कर दें। सच्ची क्षमा तो वही है, जब हम अपने प्रति हिंसा करने वाले व्यक्ति को हृदय से क्षमा कर दें और अपने हृदय में भी उसके प्रति किसी भी प्रकार की कलुषता तथा दुर्भावना न रहने दें। इसके विपरीत हमारा हृदय तो क्रोध और बदला लेने की भावनाओं से जल रहा हो, परन्तु ऊपर से हम उस व्यक्ति को क्षमा कर दे तो यह सच्ची क्षमा नहीं होगी। यदि हम में इतनी शक्ति ही नही है कि हम उस दुःख देने वाले व्यक्ति को दण्ड दे सकें, तो अपने हृदय में दुर्भावना लिये हुए उस व्यक्ति को क्षमा करना, क्षमा नही, अपितु हमारी कायरता व विवशता होगी। और यदि हम में उसको दण्ड देने की क्षमता है, परन्तु हमारा हृदय क्रोध व दुर्भावनाओं से पूर्ण है, तो उस व्यक्ति को क्षमा करना सच्ची क्षमा नहीं, केवल क्षमा का दिखावा मात्र होगा। यदि हम अपने हृदय से क्रोध व दुर्भावनाओं को न निकाल सके, तो ये दुर्भावनाएं जन्म-जन्म तक हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगी और अनेकों जन्मों तक हमें कष्ट देती रहेंगी।

यहां यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि यदि कोई आततायी संकल्प करके, योजना बनाकर हमारे देश, हमारे समाज तथा हमारे धर्म पर आक्रमण करना चाहता है, हमारी महिलाओं का अपमान करना चाहता है, हमारे आश्रितों को कष्ट पहुंचाना चाहता है, हमारे धन का अपहरण करना चाहता है, तथा बिना कारण ही हमारा अपमान करना चाहता है, तो हमें अपनी पूरी शक्ति से उसका प्रतिरोध करना चाहिये। यदि हमने उस आततायी का प्रतिरोध नहीं किया तो उसका दुस्साहस और बढ़ जायेगा और वह और भी अधिक अत्याचार करने पर उतारू हो जायेगा। अतः हमें यथाशीघ्र और यथाशक्ति उसका प्रतिरोध करना ही चाहिये। हां, हमें इस

बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि प्रतिरोध करते समय हमसे आवश्यकता से अधिक हिंसा न हो जाये। हमे इस बात को समझ लेना चाहिये कि अत्याचार करते रहना तो पाप है ही, बिना प्रतिरोध किये किसी का अत्याचार सहते रहना उससे भी बड़ा पाप है।

हमें अपने हृदय मे किसी प्रकार के अहंकार की भावना भी नहीं आने देनी चाहिये। रूप, विद्या, गुण, धन, शक्ति व कुल की मान-मर्यादा आदि की अपेक्षा हम चाहे कितने ही उच्च क्यो न हो, हमें सदैव निरहंकारी तथा विनम्र रहना चाहिये। जिन रूप व ऐश्वर्य आदि का हम अहंकार करते हैं, वे सब चञ्चल है और उनका क्षण मात्र का भी भरोसा नही है। आज कोई व्यक्ति कितना ही रूपवान क्यो न हो, कल वह किसी रोग अथवा दुर्घटना के कारण कुरूप भी हो सकता है। ऐसे ही धन व ऐश्वर्य आदि का भी कोई भरोसा नही है। इतिहास साक्षी है कि संसार में अनेको ऐसे सम्राट् हुए हैं जिनके अन्तिम दिन बहुत ही कष्टो में व्यतीत हुए और जिनकी मृत्यु बहुत ही दयनीय दशा मे हुई। इसके प्रमाण के लिये हमें अतीत मे झाकने की आवश्यकता नही है। ईरान के शाह का उदाहरण हमारे सामने है। पहले वे पूरे ईरान के बादशाह थे, परन्तु अपने अन्तिम दिनों मे उन्हें अपना देश छोडकर, कैन्सर से पीड़ित शरीर को लिये जगह-जगह भटकना पडा और अन्ततः विदेश में ही उनकी मृत्यु हुई। इसी प्रकार स्वर्गीय श्री जुलफिकार अली भुट्टो का उदाहरण हमारे सामने है। कभी वे पाकिस्तान के प्रधान-मन्त्री (सर्वेसर्वा) थे, परन्तु अपने अन्तिम दिनो में वे जेल मे रहे और उनको फासी का दण्ड मिला। हम यह भी देखते है कि कुछ देशों में जब शासक बदलते है, तो नये शासक अपने विरोधियों को मौत के घाट उतार देते है या जेलो मे डाल देते है। इन उदाहरणों को देखते हुए क्या हमारा रूप, ऐश्वर्य व सत्ता का अहकार करना मिथ्याभिमान नही होगा? एक बात और, अहकारी व्यक्ति सब से उपेक्षा पाता है, जबकि विनम्र का सब जगह सत्कार होता है।

हमे अपने मन में तनिक सा भी कपट व मायाचार नही आने देना चाहिये। जो भावना हमारे मन मे हो, वही बात हमारी वाणी द्वारा व्यक्त हो और उसी के अनुसार हमारा व्यवहार हो। हम अधिक-से-अधिक सरल बनने का प्रयत्न करते रहे। हम चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य करते हो, हमारा आचरण सरल, प्रमाणिक और दूसरो के लिये आदर्श तथा प्रेरणादायक होना चाहिये।

हमें सदैव ऐसा सत्य बोलना चाहिये जो दूसरों को प्रिय लगने वाला तथा दूसरों की भलाई करने वाला हो। यदि माता-पिता तथा गुरुजन बालकों को सन्मार्ग पर चलाने के लिये कभी कटु वचन बोलते हैं, तो वह

भी सत्य ही कहलायेगा। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि सत्य बोलने वाले का सब आदर व विश्वास करते है। हमें ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिये जो दूसरों को अप्रिय लगे तथा जिससे दूसरों की बुराई होती हो; जैसे, किसी नेत्रहीन को अन्धा कहकर पुकारना तथा किसी बधिक को यह बतलाना कि पशु अमुक स्थान पर छिपा हुआ है। यदि सत्य बोलने से कलह और अशान्ति होती हो, तो ऐसी परिस्थिति में हमें मौन ही रहना चाहिये; क्योंकि कटु सत्य बोलने से संसार में कभी-कभी बहुत अनर्थ हो जाते हैं।

हमें तृष्णा का त्याग करके सन्तोषपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये। लोभ और तृष्णा के वश होकर व्यक्ति दूसरों का अहित करते है और न करने योग्य कार्य करने से भी नहीं हिचकिचाते। हमें अपना हृदय भी पवित्र रखना चाहिये। यदि हमारा मन अपवित्र है, तो हम अपने शरीर को चाहे कितना ही मल-मल कर साफ करलें और उस पर कितने ही सुगन्धित द्रव्य लगालें, हम अपवित्र ही रहेंगे। जिस पात्र में मल भरा हो, वह पात्र बाहर से चाहे कितना ही निर्मल व सुन्दर क्यों न हो, क्या हम उसे पवित्र कहेंगे?

हमको अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखकर संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये। जिस प्रकार किसी भी गाडी को ठीक प्रकार चलाने के लिये उसमें ब्रेक (BRAKE) होना अति आवश्यक है, उसी प्रकार जीवन ठीक प्रकार व्यतीत करने के लिये संयमपूर्वक आचरण करना बहुत आवश्यक है। संयम से (सीमा में) बहने वाली नदी तो प्राण-दायिनी होती है। परन्तु जब वही नदी अपने संयम को तोड़ देती है (उसमें बाढ़ आ जाती है), तो वही नदी प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है। हमें अपनी जिह्वा को अपने वश में रखकर अपना खान-पान भी शुद्ध व सादा रखना चाहिये, और गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से बचना चाहिये। गरिष्ठ पदार्थों का सेवन न करने से हमारा धन भी बचेगा और हम स्वस्थ भी रहेगे। संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करने से अपनी तथा समाज की दोनों की भलाई होती है। इसके विपरीत असंयमित जीवन व्यतीत करने से एक-एक इन्द्रिय के विषय भी हमारे नाश का कारण बन जाते हैं।

हमको सदैव ही किसी-न-किसी प्रकार का तप करते रहना चाहिये; जैसे कभी-कभी उपवास करते रहना, दूसरों की सेवा शुश्रूषा करते रहना तथा कुछ समय के लिये अथवा सदैव के लिये अन्य कोई व्रत ग्रहण करना। तप करते रहने से हमारे कर्म नष्ट होते हैं और हमारी मुक्ति का समय भी पास आता जाता है। यदि दुर्भाग्य से हम पर कभी कोई संकट भी आ जावे, तो ऐसे समय में भी पहले से ही संयम पालते रहने व तप का अभ्यास करते रहने के फलस्वरूप वह संकट हमको विचलित नहीं कर सकेगा। जिस प्रकार

अग्नि में तपाने से स्वर्ण शुद्ध होता है, उसी प्रकार तप करते रहने से हमारे कर्म नष्ट होते हैं और हमारी आत्मा पवित्र होती है।

हमें इस तथ्य पर पूर्ण रूप से विश्वास रखना चाहिये कि अपनी आत्मा के अतिरिक्त इस संसार की कोई भी वस्तु अपनी नही है। धन ऐश्वर्य पत्नी-पति, पुत्र, मित्र व सम्बन्धियों की तो बात ही क्या, यह शरीर भी अपना नहीं है। ऐसा विश्वास करके हमें अपने धन, ऐश्वर्य तथा पत्नी/पति पुत्र आदि तथा अपने शरीर में भी अपनी आसक्ति—लगाव (attachment) कम करते रहना चाहिये।

हमें इन्द्रियों के विषयों का यथाशक्ति त्याग कर अपनी आत्मा का ही ध्यान करना चाहिये और अपनी आत्मा में ही रमण करते रहना चाहिये। स्थूल रूप में कहे, तो हमें अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त संसार की प्रत्येक महिला को अपनी माता, बहन व पुत्री के समान समझना चाहिये। इसी प्रकार महिलाओं को भी अपने विवाहित पति के अतिरिक्त संसार के प्रत्येक पुरुष को अपने पिता, भाई व पुत्र के समान समझना चाहिये। हमें अपनी पत्नी/पति से भी एक सीमा तक ही विषय सेवन करना चाहिये और धीरे-धीरे उसे भी कम करते रहना चाहिये।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि किसी भी व्यक्ति की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। हमारी एक इच्छा पूरी होती नहीं कि चार नयी इच्छाएं और आ खडी होती हैं। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं, जिसकी सारी इच्छाएं पूरी हो गयी हों या हो सकती हों। जब हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं, तो हमें कष्ट होता है। इसलिये यदि हमें सच्चा सुख प्राप्त करना है, तो हमें अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखना चाहिये तथा अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं को कम करते रहना चाहिये। जितनी ही हमारी इन्द्रियां हमारे वश में होंगी तथा हमारी इच्छाएं व आवश्यकताएं कम होंगी, हम उतने ही अधिक स्वाधीन व सुखी होंगे। यदि हमारी इन्द्रियां हमारे वश में होंगी और हमारी इच्छाएं तथा आवश्यकताएं कम होंगी तो हमें इनकी तृप्ति के लिये भागदौड भी कम करनी पड़ेगी जिसके फलस्वरूप हिंसा भी कम होगी। अपनी आवश्यकताएं कम करते रहने से हमारे मन की चञ्चलता और दिमाग की परेशानियां भी कम होंगी और हम अपनी आत्मा की उन्नति तथा परोपकार के लिये भी अधिक समय दे सकेंगे।

हमको आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म पर पूर्णरूप से विश्वास के साथ-साथ यह भी दृढ विश्वास व श्रद्धान करना चाहिये कि हमारी आत्मा इस शरीर से बिल्कुल भिन्न एक अनादि, अकृत्रिम व अनन्त द्रव्य है। इस संसार में अनादि काल से, जन्म-मरण करते हुए शरीर तो हमने न जाने कितने धारण किये होंगे, परन्तु आत्मा हमारी वही एक ही है। इस आत्मा

का सुख ही सच्चा व वास्तविक सुख है। शरीर का सुख तो सुखाभास मात्र और देर-सबेर में नष्ट हो जाने वाला है। अतः हमें शारीरिक सुख की बजाय आत्मिक सुख प्राप्त करने का ही प्रयत्न करना चाहिये। यह तभी प्राप्त हो सकता है जब हम अपनी आत्मा को उपादेय (ग्रहण करने योग्य) और अपने शरीर सहित समस्त अन्य पदार्थों को हेय (त्यागने योग्य) समझें और तदनुसार ही अपना आचरण रक्खें।

शरीर को त्यागने योग्य समझने का अर्थ यह नहीं है कि हम आत्म-हत्या करलें, अपितु इसका तात्पर्य यही है कि हम शरीर से लगाव न रक्खें। हम इसको सजाने, संवारने व हृष्ट-पुष्ट बनाने में ही न लगे रहें। इसकी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये विषय-सेवन में ही न लगे रहें। इसके विपरीत हमें शरीर को आत्मा के सेवक के समान समझना चाहिये। जिस प्रकार हम अपने सेवक को कम-से-कम पारिश्रमिक देकर उससे अधिक-से-अधिक कार्य लेना चाहते हैं, उसी प्रकार हमें भी इस शरीर को मात्र इतनी ही सुविधायें व भोजन देना चाहिये जिससे कि यह स्वस्थ रहे और संयम, तप व परोपकार आदि करता रहे जिससे कि हमारी आत्मा का कल्याण होता रहे।

हमको अपनी आत्मा और अपने भौतिक शरीर के एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होने की वास्तविकता पर इस प्रकार से अटूट विश्वास व श्रद्धान रखना चाहिये, जैसा कि एक तीन-चार वर्ष के बालक को अपनी मां के प्यार और सुरक्षा पर होता है। उस बालक को यह ज्ञान नहीं है कि मां क्या होती है और उसका तथा मां का क्या सम्बन्ध है? परन्तु जब भी उसको भूख लगती है, उसको चोट लग जाती है या उसको भय लगता है, तो उसको मां की ही याद आती है। उसको यह अटूट विश्वास है कि मेरे सब कष्टों का इलाज मां ही है। यदि मां कभी उसको पीटती भी है, तो भी अधिकतर वह मां के पास से भागता नहीं, अपितु उसी की गोद में चढ़ने का प्रयत्न करता है—ऐसा अटूट विश्वास होता है उसे मां के प्यार पर। बिल्कुल ऐसा ही अटूट विश्वास और श्रद्धान हमें इस वास्तविकता पर होना चाहिये कि हम (हमारी आत्मा) इस भौतिक शरीर से बिल्कुल भिन्न हैं। जिस प्रकार बालक जब बड़ा हो जाता है, तो मां से अपना सम्बन्ध समझ जाता है और जान जाता है कि इसने नौ महीने मुझे अपनी कोख में रक्खा है, इसने बहुत कष्ट सहकर मुझे पाला-पोसा व बड़ा किया है और तब, यदि वह बालक सुपुत्र है, तो मां के प्रति उसकी श्रद्धा तथा मां के प्रेम पर उसका विश्वास कई गुणा बढ़ जाता है। इसी प्रकार हम शुरु में ही यह जानने के फेर में न पड़ें कि आत्मा का अस्तित्व भी है या नहीं तथा आत्मा इस भौतिक

शरीर से भिन्न क्यों है ? जैसे-जैसे हम अध्ययन, मनन व आत्म-चिंतन करते जायेंगे, वैसे-वैसे यह वास्तविकता हम पर प्रकट होती जायेगी। इस वास्तविकता पर जितना अधिक दृढ हमारा विश्वास व श्रद्धान होता जायेगा, हमारे सच्चे सुख प्राप्त करने का मार्ग भी उतना ही अधिक प्रशस्त होता जायेगा।

(यहां पर हमारा तात्पर्य किसी प्रकार की अन्ध श्रद्धा को बढ़ावा देना नही है, परन्तु एक वास्तविकता पर ही श्रद्धान कराने से है।)

हमको यह समझ लेना चाहिये कि इस शरीर की मृत्यु (आत्मा का एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना) अवश्यम्भावी है। कोई भी औषधि, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र तथा कोई भी अन्य शक्ति इस शरीर को मृत्यु से नही बचा सकती। इसलिए हमें मृत्यु से भयभीत न होकर हर समय उसका स्वागत करने के लिए तैयार रहना चाहिये।

हमको यह समझ लेना चाहिये कि जब हमारी आत्मा यह शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करेगी, तब यहां का एक अणुमात्र भी हमारे (हमारी आत्मा के) साथ नही जायेगा, चाहे इस सम्पत्ति को इकट्ठी करने में हमने कितने ही कष्ट क्यों न उठाये हों और कैसे भी बुरे कार्य क्यों न किये हों। दूसरा शरीर धारण करते समय केवल हमारे अच्छे व बुरे कर्म ही आत्मा के साथ होंगे। अत: हमको समुचित साधनों से ही धन का उपार्जन करना चाहिये और किसी भी कार्य के लिये अनुचित साधन प्रयोग में नही लाने चाहिएं।

हमको यह समझ लेना चाहिये कि इस शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करते समय, इस वर्तमान शरीर से सम्बन्धित कोई भी मित्र व सम्बन्धी, चाहे वह हमारा कितना ही प्रिय क्यों न रहा हो, हमारे (हमारी आत्मा के) साथ नही जायेगा। मित्र व सम्बन्धियों की तो बात ही क्या, यह शरीर भी हमारा केवल इसी जन्म का साथी है। इन मित्रों व सम्बन्धियों तथा इस शरीर को सुख पहुंचाने के लिए हमने चाहे कितने ही कष्ट क्यों न सहे हों और कितने ही बुरे कार्य क्यों न किये हों, फिर भी उनमें से कोई भी हमारा सच्चा साथी नहीं है। अतः केवल एक ही जन्म के साथी इन मित्रों, सम्बन्धियों तथा इस शरीर से लगाव (attachment) रखना हमारी अज्ञानता व मूर्खता ही होगी। यदि हमें सच्चा सुख प्राप्त करना है तो हमे इनको अपना न मानकर इस संसार में बिल्कुल तटस्थ भाव से ही रहना चाहिये।

हमको यह समझ लेना चाहिये कि अनादिकाल से विभिन्न योनियों में में जन्म-मरण करते हुए उन प्रत्येक शरीर के नाते से न जाने हमारे कितने सगे-सम्बन्धी व मित्र हो चुके हैं, इस जन्म में हैं और अगले जन्मों में भी

होंगे । परन्तु वे सब केवल एक जन्म के ही साथी होते हैं। एक बार वह शरीर छूटा नहीं कि सब चिरकाल के लिए बिछुड़ जाते हैं । उनको सुख पहुंचाने के लिये हम जो भी भले व बुरे कर्म करते हैं, केवल वही कर्म ही हमारे साथ रहते हैं । उन कर्मों के फलस्वरूप जो भी दुःख व सुख हम भोग चुके हैं,अब भोग रहे हैं, और भविष्य में भोगेंगे, उनको भोगने में भी हमारा कोई भी साथी न हुआ है, न है और न होगा । ये दुःख व सुख पहले भी हमने अकेले ही भोगे हैं, अब भी अकेले ही भोग रहे हैं, और भविष्य में भी अकेले ही भोगेंगे ।

यहां एक तथ्य और भी विचारणीय है । ऐसा कदाचित् ही कोई व्यक्ति हो, जिसके किसी इष्ट मित्र व प्रियजन की मृत्यु न हुई हो । अपनी मृत्यु के पश्चात् क्या वह मृत प्रियजन हमारे सुख व दुःख में हिस्सा बटाने आता है ? क्या वह आकर देखता है कि हम सुखी हैं या दुःखी ? क्या वह आकर देखता है कि हमने उसके नाम को ऊँचा किया है या उसमें बट्टा लगाया है ?

इसी प्रकार यदि आपको पुनर्जन्म पर विश्वास है, तो क्या आपको मालूम है कि पिछले जन्मों में आप किन-किन परिवारों में पैदा हुए थे ? (पूर्व-जन्म-स्मृति के कुछ अपवादों को छोड़कर)। उन परिवारों की अब क्या दशा है ? आपकी मृत्यु के पश्चात्, उन परिवारों में जो कुछ भी अच्छा या बुरा हुआ है, क्या उसका आप पर कुछ भी प्रभाव पड़ा है ?

यदि ऐसा कुछ नही होता, तो केवल कुछ वर्षों के लिये ही आपके सम्पर्क मे आने वाले इन सम्बन्धियों व मित्रों के लिये आप अपना अनन्त भविष्य क्यों खराब करते है ?

हमें यह बात समझ लेनी चाहिये कि अनादिकाल से जन्म व मरण करते हुए इस विश्व में, मोक्ष को छोड़कर, न तो ऐसा कोई भी स्थान है, जहां पर हम कभी-न-कभी पैदा न हुए हों और न मोक्ष-सुख को छोड़कर ऐसा कोई भी सुख है जो हमें कभी-न-कभी मिला न हो । फिर हम इस छोटे से जीवन में तनिक-सा शारीरिक सुख पाने के लिए दूसरे जीवों को कष्ट क्यों दें । यदि हम सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो इन सांसारिक झंझटों और इन क्षणिक सांसारिक सुखों से अपना मन हटा कर हमें अपना समस्त जीवन अहिंसामय बनाना चाहिये तथा अपना अधिक-से-अधिक समयपरोपकार और ज्ञानार्जन करने तथा संयम, तप, त्याग, ध्यान द्वारा अपनी आत्मोन्नति करने में लगाना चाहिये ।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि पूर्व में हमने जो भी अच्छे व बुरे कर्म किये हैं, उनका फल हमको अवश्य ही मिलेगा । उस पर हमारा कोई वश नहीं है । उनका फल भोगने से हम बच नहीं सकते । परन्तु हम इस बात

के लिए स्वतन्त्र व सक्षम हैं कि हम उस फल को कैसे ग्रहण करें। हम उस फल को शान्तिपूर्वक भी भोग सकते है और हाय-हाय करके भी। यदि हम उन कष्टो को शान्तिपूर्वक भोग लेंगे, तो भविष्य के लिये हमारे कर्मों का संचय नही होगा। इसके विपरीत यदि हम उन कष्टों को हाय-हाय करके भोगेंगे तो भविष्य के लिये भी हमारे कर्मों का संचय होता रहेगा। इसी प्रकार यदि पूर्व में किये हुए कर्मों के फलस्वरूप हमें कुछ सुख व सफलता मिली है, तो हमें उस पर गर्व व अहंकार न करके उसे भी विनम्रतापूर्वक और तटस्थ भाव से भोगना चाहिये। यदि हम उसमें अपना कर्तृत्व (मेरे अपने परिश्रम करने के फलस्वरूप ही मुझे यह सुख मिला है) मानेंगे और उन सुखों में लिप्त हो जायेंगे, तो भविष्य के लिये भी हमारे कर्मों का संचय होता रहेगा।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि हमें जो भी सख व दुःख मिल रहे हैं, वे हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के ही फल हैं। जो व्यक्ति हमको सुख व दुःख देते हुए दिखाई देते है, वे तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। यदि हम सुख पाने में निमित्त बनने वाले व्यक्तियों से राग (मुहब्बत) करने लगें और दुःख पाने मे निमित्त बनने वाले व्यक्तियों से द्वेष (नफरत) करने लगे, तो हम नये-नये कर्मों का संचय करते रहेंगे। इसके विपरीत यदि हम इन सुखों व दुःखों को अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए कार्यों (कर्मों) के फल समझ कर उन निमित्त बनने वाले व्यक्तियों से राग व द्वेष न करें, तो नये-नये कर्मों के संचय की सम्भावना बहुत कम हो जायेगी।

हम वर्तमान में अपनी भावनाएं बनाने और उन भावनाओं के अनुसार ही कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है। यदि हम अपनी भावनाए पवित्र रखना चाहे, अपना जीवन अहिंसामय बनाना चाहे, और दूसरो का परोपकार करना चाहे, तो संसार की कोई भी शक्ति हमे ऐसा करने से नही रोक सकती। हमारा भविष्य हमारे अपने ही हाथ में है और वह हमारी वर्तमान की भावनाओं तथा कार्यों पर निर्भर है। चाहे कैसी भी परिस्थितियां आयें, हमारे मन में भी कभी भी दूसरों का अहित व अनिष्ट करने तथा अन्य कोई भी बुरा कार्य करने की भावना भी नहीं आनी चाहिये। हमें सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हमारी भावनाएं व कार्य ऐसे हों जिनसे कि कर्मों के संचय होने की सम्भावना कम से कम हो।

हमको यह समझ लेना चाहिये कि सुख किसी भी अन्य वस्तु में नहीं है। पति-पत्नी, पुत्र, प्रिय मित्र व सम्बन्धी आदि चेतन प्राणी तथा धन ऐश्वर्य आदि अचेतन पदार्थ—इनकी तो बात ही क्या, यह हमारा शरीर भी क्षण-भंगुर है। ऐसी क्षण-भंगुर वस्तुओं में सच्चे सुख की खोज करना

रेत से तेल निकालने के समान व्यर्थ है। सच्चा सुख तो अपने अन्तर में, अपनी आत्मा में ही है। इसलिए हमें बाहर नहीं, अपने अन्तर में, अपनी आत्मा में ही सुख की खोज करनी चाहिये। यही आत्मिक सुख कभी न उबाने वाला और अनन्त काल तक प्राप्त होते रहने वाला सच्चा सुख है।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि हमारा अपना यह शरीर जिसको हम इतना सजा-संवार कर रखते हैं, जिसका पोषण करने और सजाने के लिए हम न जाने कितने अच्छे व बुरे कार्य करते हैं, महा अपवित्र है। यह केवल हाड़, मांस, रक्त, पीप, मल-मूत्र का ढेर मात्र है। इन अपवित्र वस्तुओं पर यह सुन्दर दिखने वाली चर्म मढ़ी हुई है। इस चर्म का भी कोई भरोसा नहीं कि न जाने यह कब धोखा दे जावे। मल-मूत्र से भरे हुए किसी सुन्दर बर्तन को क्या कोई पवित्र कह सकता है? इस शरीर की सार्थकता तो इसी बात में है कि इसको परोपकार तथा अपनी आत्मा की उन्नति में लगाये रहें।

हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह विश्व दुखों का घर है। यहाँ पर प्रत्येक प्राणी दुखी है। कोई किसी एक कारण से दुःखी है, तो दूसरा किसी अन्य कारण से। इस विश्व में कहीं भी सच्चा सुख नहीं है। इस संसार में हमें जो थोड़ा-बहुत सुख दिखाई देता है, वह सच्चा व स्थायी सुख नहीं, अपितु सुखाभास मात्र है। क्या कोई भी व्यक्ति विश्वासपूर्वक यह कह सकता है कि मृत्युपर्यन्त उसे कोई भी रोग, शोक व कष्ट नहीं होगा? और फिर जीवन केवल इस वर्तमान शरीर की मृत्यु तक ही तो सीमित नहीं है। प्रत्येक प्राणी के सामने उसका अनन्त भविष्य पड़ा हुआ है। क्या कोई भी व्यक्ति उस अनन्त भविष्य के विषय में भी आश्वस्त है? अधिकतर यही देखा जाता है कि अधिकांश व्यक्तियों के जीवन में कभी-न-कभी ऐसा अवसर आ ही जाता है, जब वे चारों ओर से निराशा से घिर जाते हैं और मृत्यु को ही अपने कष्टों का अन्त समझने लगते हैं। इसलिये हमें इस विश्व में लिप्त नहीं होना चाहिये, और जिस प्रकार जल में रहते हुए भी कमल जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार विश्व में रहते हुए भी हमें इस विश्व से अलिप्त (Unattached) अर्थात् तटस्थ रहते हुए अपना समय यथासम्भव परोपकार और अपनी आत्मा की उन्नति में लगाते रहना चाहिये, जिससे हम मोक्ष अर्थात् सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त कर सकें।

हमको यह समझ लेना चाहिये कि केवल मनुष्य-योनि ही वह योनि है जिसमें हम अपना कल्याण कर सकते हैं। पशु-योनि को तो हम केवल भोग योनि ही कह सकते हैं। इन पशु-योनियों में प्राणी अपने कर्मों का फल ही भोगते हैं, तथा भविष्य के लिये कुछ भी कर सकने में वे प्रायः असमर्थ

ही होते हैं । इसके विपरीत यह मनुष्य योनि कर्म-योनि है । इस योनि में हमें ज्ञान व विवेक प्राप्त है, हम अपना अच्छा व बुरा सोच व समझ सकते हैं हम अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिये भी स्वतन्त्र हैं । इस योनि में बुरे कार्य करके हम अपने पापों का बोझ बढा भी सकते हैं, और संयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट भी कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी मुक्ति (सच्चा व स्थायी सुख) प्राप्त करने के लिये प्रयत्न भी कर सकते हैं ।

यह मनुष्य-योनि बहुत अधिक सत्कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है । हमारी इस पृथ्वी पर मनुष्यों की जनसंख्या लगभग साढ़े चार अरब है, परन्तु पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों आदि की संख्या कितनी है इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता । और फिर मनुष्य-योनि मिलने पर भी इतना ज्ञान व विवेक, सम्यक-श्रद्धान, सम्यक-ज्ञान और सम्यक-चारित्र, अनुकूल परिस्थितिया तथा कार्य करने की स्वतन्त्रता आदि तो और भी अधिक कठिनाई से प्राप्त होती हैं । इतनी सब अनुकूलताए प्राप्त होने पर भी यदि हम इस मनुष्य योनि को केवल खाने-पीने व मौज और मजे में तथा दूसरो का अहित व अनिष्ट करने में ही व्यतीत कर दे, तो ससार मे हमसे अधिक मूर्ख और कौन होगा ? एक बार मनुष्य जन्म व्यर्थ गंवा देने पर न जाने कितने काल के पश्चात् फिर यह मनुष्य-जन्म प्राप्त होगा ?

यदि हमारे पास अपना जीवनयापन करने के लिये पर्याप्त साधन है और हमारे ऊपर परिवार आदि का किसी प्रकार का उत्तरदायित्व नहीं है, तो हमे यथासम्भव सांसारिक झंझटो को छोड़कर अपना समय परोपकार व अपनी आत्मोन्नति करने में लगाना चाहिये जिससे कि यह मनुष्य जन्म सार्थक हो सके । ऐसा न हो कि हम निन्यानवें के फेर में पडे रहें और मृत्यु हमारे द्वार पर आ खडी हो । उस समय पश्चात्ताप करने के सिवाय हमारे हाथ और कुछ भी नही लगेगा ।

हमको अपने विचार व व्यवहार ऐसे रखने चाहियें, जैसे कि किसी दुकान के चतुर, ईमानदार व परिश्रमी कर्मचारी के होते हैं । वह दुकान के सब कार्य करता है, लाखों रुपये का लेन-देन करता है, परन्तु उसको सदैव इस बात का ध्यान रहता है कि यह दुकान और यहां का अणुमात्र भी मेरा नही है । इसी प्रकार एक बेंक का खजाञ्ची दिन भर में लाखों रुपये का लेन-देन करता है, परन्तु उसको उन रुपयों से कभी भी लगाव नहीं होता । जिस प्रकार वह प्रातःकाल खाली हाथ आया था, उसी प्रकार सांयकाल खाली हाथ वापिस चला जाता है । वह तो सदैव इस बात की सावधानी रखता है कि उससे कोई भूल न हो जाये । इसी प्रकार हमको भी निरन्तर यही विचार करते रहना चाहिये कि इस जीवन में इस शरीर के

निमित्त से जितने भी हमारे मित्र व सगे-सम्बन्धी हैं, उनमें से कोई भी हमारा अपना नहीं है, वे सब केवल इसी जन्म के साथी हैं। इसी प्रकार यह धन-सम्पत्ति भी इसी जन्म तक है। और फिर यह भी तो भरोसा नहीं है कि ये मित्र व सगे सम्बन्धी तथा धन-सम्पत्ति इस जन्म में भी हमारा साथ देंगे या नहीं। हम अपने जीवन में अनेकों धनवानों को निर्धन होते हुए भी देखते हैं तथा अनेकों बड़े-बड़े परिवार वाले व्यक्तियों को परिवार-विहीन होते हुए भी देखते हैं। हाँ, यहां पर जो भी अच्छे व बुरे कार्य हम करते हैं, केवल वही कर्म ही जन्म-जन्म तक हमारे साथ रहेंगे और अपना अच्छा व बुरा फल हमको देते रहेंगे।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ बतलाये गये हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सब से पहला पुरुषार्थ धर्म बतलाया गया है। इसका यही अर्थ है कि हम जीवन का प्रत्येक क्षण धर्म पूर्वक ही बितायें। हम अर्थ (धन) कमाये, तो धर्म पूर्वक कमायें और काम (विषय) सेवन करे, तो धर्म पूर्वक ही करें। यदि यहा कोई प्रश्न करे कि धर्म पूर्वक धन कैसे कमाया जाता है? तो उसके उत्तर में निवेदन है कि हम व्यापार में कभी भी बेईमानी न करे। जो भी वस्तु बेचें ठीक नाप व तोल कर बेचें। वस्तुओ में किसी प्रकार की मिलावट न करें। जहां तक सम्भव हो उच्च स्तर की व प्रामाणिक वस्तुओं का ही व्यापार करें। जो वस्तु हम बेचें उसके गुण बढ़ा-चढ़ा कर न बतलायें। हम ग्राहक की मजबूरी का अनुचित लाभ न उठाये। हम अनुचित लाभ न लें। हमारा लक्ष्य यही हो कि ग्राहक को उच्च स्तर की वस्तु समुचित मूल्य पर मिले। हम कभी भी चोरी की वस्तुएं न खरीदे। हम नशीली तथा अस्वास्थ्यकर वस्तुओ का व्यापार न करें। हम मांस, अण्डे, चमड़ आदि हिंसा से उत्पादित वस्तुओं का व्यापार न करे। हम ऐसी वस्तुओं का उत्पादन व व्यापार न करें जो हिंसा करने के काम आती हो। हम प्रशासन के करों की चोरी न करें। अपने आधीन व्यक्तियों से क्षमता से अधिक कार्य न ले। उनको समुचित वेतन तथा अन्य सुविधाये देवें। यदि उनसे कभी कुछ मतभेद हो जायें, तो आपस की बात-चीत के द्वारा मतभेद दूर करलें। तथा अपने मन में भी किसी प्रकार की कलुषता तथा वैमनस्य न रक्खें।

यदि हमें नौकरी भी करनी पड़े, तो ऐसे ही स्थान पर करें, जहां पर किसी भी प्रकार की बेईमानी, मिलावट व हिंसा आदि के कार्य न करने पड़ें। हम अपने मालिक का कार्य पूरी ईमानदारी व परिश्रम से करें।

तात्पर्य यही है कि हम व्यापार करें या नौकरी करें जो भी कार्य करें, पूरी ईमानदारी व परिश्रम से करें और इस बात का ध्यान रक्खें कि उसमें किसी भी प्रकार की हिंसा न हो।

इसी प्रकार हम काम (विषय) सेवन करें तो वह भी धर्म पूर्वक ही करें। अपनी विवाहिता पत्नी/पति के अतिरिक्त अन्य सभी महिलाओं/पुरुषों को उनकी आयु के अनुसार अपनी माता, बहिन व पुत्री/पिता, भाई व पुत्र के समान समझें। अपनी विवाहिता पत्नी/पति से भी सीमा में रहकर ही विषय सेवन करें। इसी प्रकार अपनी जिव्हा, नाक, कान व आंखों के विषय सेवन करते समय भी हम संयम बरतें। अपनी जिव्हा को अपने वश में रक्खें। सादा भोजन और वह भी भूख से कुछ कम मात्रा में सेवन करें, जिससे हम स्वस्थ रह सकें। इसी प्रकार नाक, कान, व आंख का मनोरंजन करना हो, तो सीमित मात्रा में व स्वस्थ मनोरंजन ही करें, जिससे हमारी मनोवृत्ति खराब न हो।

तात्पर्य यही है कि हम जो भी कार्य करे, धर्म पूर्वक करने का प्रयत्न करते रहें।

धर्म पूर्वक धन का उपार्जन करने तथा धर्म पूर्वक ही काम-सेवन करने के फल-स्वरूप मोक्ष प्राप्त करने के लिये हमारा पुरुषार्थ बहुत सरल हो जायेगा।

हमको दूसरों के विचारों का भी आदर करना चाहिये और अपने हृदय मे भी सहनशीलता रखनी चाहिये। यदि अन्य व्यक्ति किसी विषय पर हमारे से भिन्न विचार रखते हों, तो हमें उनसे द्वेष नही रखना चाहिये, अपितु उनके विचारो को शान्ति व धैर्य पूर्वक सुनना व समझना चाहिये और अपने विचार भी उनको शान्ति से समझाने चाहिये। बहुत सम्भव है कि वे ठीक हों और हम ही भ्रम में हों।

एक बात और है। प्रत्येक वस्तु में भिन्न-भिन्न अपेक्षा से बहुत से गुण होते है। हम भ्रमवश उनमें से कुछ को एक दूसरे का विरोधी भी समझ लेते हैं, जैसे राम अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता है। इस प्रकार एक ही समय में राम पुत्र भी है और पिता भी है, परन्तु है विभिन्न अपेक्षाओं से। इसी प्रकार पांच मीटर की एक रस्सी तीन मीटर की रस्सी से लम्बी है, परन्तु वही पांच मीटर की रस्सी सात मीटर की रस्सी से छोटी भी है। इस प्रकार वह पांच मीटर की रस्सी एक ही समय में किसी अपेक्षा से लम्बी है और किसी अपेक्षा से छोटी है। यदि कोई व्यक्ति यह हठ करने लगे कि राम केवल पुत्र ही है और रस्सी केवल लम्बी ही है तो यह उसका दुराग्रह ही कहा जायेगा।

इस सम्बन्ध में एक हाथी और छः नेत्रहीनों की कहानी भी विचारणीय है। जिस नेत्रहीन ने हाथी के कान को छुआ था, वह हाथी को पंखे के समान ही मानता था। जिस नेत्रहीन ने हाथी के पांव को छुआ था,

वह उसको एक स्तम्भ के समान ही मानता था । इस प्रकार हाथी के सम्बन्ध में प्रत्येक नेत्रहीन की अपने द्वारा छुए हुए अंग के अनुसार अलग-अलग धारणा थी ; जबकि वास्तव में हाथी उन सब नेत्रहीनो की धारणाओं को एक साथ मिलाकर देखने पर ही बनता है । हमको भी यह नही भूलना चाहिये कि हम भी वस्तु को पूर्णरूप से न जानकर केवल उसके थोड़े से अंश को ही जानते हैं । इसलिये हमको अपने एक-पक्षीय ज्ञान पर गर्व न करके दूसरों के विचारों का भी समुचित आदर करना चाहिये । "जो मेरा है, वह सत्य है" इस प्रकार का दुराग्रह छोड़कर हमको कहना चाहिये कि "जो सत्य है, वह मेरा है ।"

इस सम्बन्ध में हम एक और उदाहरण देते हैं । किसी स्थल के चार फ़ोटोग्राफ़रों ने चारो कोनों से अलग-अलग फ़ोटो खीचे । जब फ़ोटो तैयार हुए, तो प्रत्येक फ़ोटो एक दूसरे से भिन्न था । चारों फ़ोटोग्राफ़र अपने-अपने फ़ोटो को ही ठीक कहते थे और दूसरों के फोटो को गलत । जबकि वस्तुस्थिति यह थी कि चारों फ़ोटो ही ठीक थे तथा चारों फ़ोटो को एक साथ देखने से उस स्थल का और भी स्पष्ट ज्ञान होता था ।

पिछले पृष्ठो में बताये अनुसार यदि हम अपनी आत्मा व इस संसार की वास्तविकता को समझकर अपना दृष्टिकोण तथा अपना आचरण भी उसके अनुरूप कर लेगे, तो हम लौकिक सुख तो प्राप्त करेगे ही अपने हृदय में भी एक अनुपम व अतीन्द्रिय सुख व शान्ति का अनुभव कर सकेंगे। तथा इस प्रकार की साधना करते रहने से एक समय अवश्य ही ऐसा आयेगा, जब हम अपनी आत्मा को अत्यन्त पवित्र करके सच्चा सुख प्राप्त कर लेंगे ।

कुछ व्यक्ति यह कह सकते है कि यदि "सच्चे सुख का मार्ग" केवल इतना-सा ही है, तो इसके लिये इतने पृष्ठ खराब करने की क्या आवश्यकता थी ? परन्तु उनका ऐसा कहना ठीक नही है । "सच्चे सुख का मार्ग" आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म तथा कर्म सिद्धान्त के अधिक-से-अधिक ज्ञान तथा उन पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धान पर आधारित है । जब तक हमें इन मूल तत्त्वों का ज्ञान तथा उन पर विश्वास नही होगा, तब तक हम सच्ची श्रद्धा और सच्चे ज्ञान पूर्वक उस सच्चे सुख के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकेंगे । तत्त्व की बात को जाने बिना यदि हम कुछ आचरण करते हैं तो वह आचरण केवल रूढ़ि बनकर रह जायेगा । जिस प्रकार हम एक बालक को गिनती व पहाड़े कण्ठस्थ करा देते हैं, परन्तु वह उनके महत्त्व को नहीं जानता, ठीक यही दशा हमारी भी होगी ।

इस सम्बन्ध में हम एक कहानी सुनाते हैं । एक सज्जन दीवाली पर पूजा कर रहे थे । एक बिल्ली बार-बार आकर पूजा में विघ्न डाल रही थी ।

उन सज्जन ने बिल्ली के पैर में रस्सी डालकर उसे घर के आँगन में बाँध दिया और इस प्रकार अपनी पूजा निर्विघ्न पूरी कर ली। कुछ दिनों बाद उन सज्जन का स्वर्गवास हो गया। जब अगली दीवाली आयी, तो उनके पुत्र ने एक बिल्ली पकड़वा मंगवायी और पूजा के समय उस बिल्ली के पैर में रस्सी डालकर उसे घर के आंगन में बँधवा दिया। किसी ने उनसे पूछा कि यह बिल्ली क्यों बाँध रक्खी है, तो उन्होंने कहा, "पिछले वर्ष हमारे पिताजी ने भी पूजा के समय इसी प्रकार एक बिल्ली बाँधी थी। शायद यह भी पूजा का कोई विधान होगा, इसीलिये हमने भी यह बिल्ली बंधवाई है।" तो यह होता है तत्त्व की बात को न जानने का फल। इसीलिये हमने मूल तत्त्व की बातें पहले बतलाई, तब सच्चे सुख का मार्ग बतलाया, जिससे कि तत्त्व की बात समझ कर, उस पर श्रद्धा, विश्वास व ज्ञानपूर्वक आचारण किया जा सके। हमें यह बात पूरी तरह समझ लेनी चाहिये कि सच्चे सुख के मार्ग में अन्ध-श्रद्धा का कोई स्थान नहीं है। सारी बातें एक खुली पुस्तक के समान हैं जिनको कोई भी पढ़ और समझ सकता है तथा परीक्षा कर सकता है।

"हमारी आत्मा इस शरीर से बिलकुल भिन्न है। हमारी आत्मा चेतन, जानने व देखने वाली, अनादि, अनन्त, नित्य, शाश्वत तथा अमर है, जबकि यह शरीर जड़ तथा नष्ट होने वाला है। हमारी आत्मा पर अनादिकाल से ही कर्मों का आवरण पड़ा हुआ है। इन कर्मों को नष्ट करके अपनी आत्मा को अत्यन्त पवित्र करने में ही हमारा कल्याण है। अपनी आत्मा को अत्यन्त पवित्र करके ही हम स्थायी व सच्चा सुख प्राप्त कर सकते हैं।" इस तथ्य पर निःशंक होकर विश्वास व श्रद्धान करना ही सम्यक श्रद्धान व सम्यक ज्ञान है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सम्यक आचरण यही है कि हम अपना व्यवहार यथाशक्ति अहिंसक रक्खे। अपने मन में भी किसी के प्रति बुरी भावनाएं न आने दे। हम इस शरीर तथा इससे सम्बंधित अन्य व्यक्तियों का पालन-पोषण अवश्य करें, परन्तु करें अहिंसक तथा समुचित साधनों के द्वारा ही। इसके साथ अपने तन, मन व वचन से निःस्वार्थ भाव से दूसरों का उपकार करते रहे तथा अपनी आत्मोन्नति का प्रयत्न करते रहें।

सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करने के साधन

हम पहले कह आये हैं कि हमारा लक्ष्य सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करना है। सच्चा व स्थायी सुख तभी प्राप्त हो सकता है, जब हम अपनी आत्मा के ऊपर पड़े हुए कर्मों का आवरण अपनी आत्मा से अलग कर दें। इस कर्मों के आवरण के हमारी आत्मा से अलग होते ही हम इस विश्व में नये-नये शरीर धारण करने तथा सुख व दुःख भोगने के चक्कर से छूट जायेंगे और मुक्ति अर्थात् सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त कर लेंगे। एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर फिर इस आत्मा को इस विश्व में लौटना नहीं पडता। तब यह आत्मा अनन्तकाल तक मुक्ति में ही रहती है और निरन्तर एक अनुपम, अपूर्व, अतीन्द्रिय सुख का उपभोग करती रहती है। हम सब का यह अनुभव है कि कोई कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने पर हमको एक प्रकार का अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त होता है और इस अतीन्द्रिय आनन्द की तुलना हम किसी भी बडे-से-बड़े शारीरिक सुख से भी नहीं कर सकते; यहां तक कि उस अतीन्द्रिय आनन्द के सम्मुख हमें किसी भी प्रकार के शारीरिक कष्ट का अनुभव भी नहीं होता। कुछ इसी प्रकार का अतीन्द्रिय आनन्द, परन्तु इससे भी अनन्त गुणा, अनन्तकाल तक मुक्ति में प्राप्त होता रहता है।

जहां तक मुक्ति प्राप्त करने के साधनों का प्रश्न है, इन पर भी विभिन्न विचारकों के विभिन्न विचार हैं। कोई कहते हैं कि सिर्फ ज्ञान प्राप्त करने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। कोई कहते हैं कि केवल भगवान की भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। कोई परोपकार को ही मुक्ति का साधन मानते हैं, जबकि चौथी विचारधारा वाले विचारकों का कहना है कि सच्ची श्रद्धा, सच्चे ज्ञान तथा सच्चे चारित्र – इन तीनों के समन्वय से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

एक उदाहरण द्वारा हम इस विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को कोई रोग हो गया है। उस रोग को नष्ट करके फिर से नीरोग व स्वस्थ होने के लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं:—

(१) उस व्यक्ति को यह विश्वास हो कि वह रोगी है।

(२) उस व्यक्ति को यह विश्वास हो कि रोगी होना उसकी प्राकृतिक अवस्था नहीं है। उसकी प्राकृतिक अवस्था तो नीरोगी व स्वस्थ है। और यदि वह ठीक प्रकार से उपचार करे तो वह नीरोग व स्वस्थ हो सकता है।

(३) उसे ऐसे चिकित्सक का पता लगाना होगा जो उसके रोग का सही निदान कर सके और फिर उस रोग का ठीक-ठीक उपचार कर सके।

(४) वह व्यक्ति उस चिकित्सक के आदेशानुसार अपथ्य का सेवन बन्द करे और उस चिकित्सक के द्वारा बतलाई गयी प्रामाणिक औषधि का उचित मात्रा में ठीक विधि से सेवन करे।

ये सब बाते ठीक प्रकार से पूरी होने पर ही वह व्यक्ति नीरोग हो सकेगा। इन बातों मे से यदि कोई ,एक बात भी पूरी नहीं होती तो वह व्यक्ति नीरोग नही हो सकेगा। अब हम इनमे से प्रत्येक बात पर अलग-अलग विचार करेंगे।

यदि उस व्यक्ति को इस बात का ही विश्वास न हो कि वह रोगी है, तब क्यो तो वह चिकित्सक के पास ही जायेगा और क्यों वह अपथ्य का त्याग करके औषधि का सेवन ही करेगा? हम यह तथ्य अपने प्रतिदिन के जीवन मे भी अनुभव करते रहते है कि जिन व्यक्तियो को अपने रोग का पता नहीं होता अथवा पता होते हुए भी जो अपने रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही चिकित्सा नही करते, उनका रोग तीव्र होता जाता है और कभी-कभी वह असाध्य भी हो जाता है। आपने पागल व्यक्तियों को देखा होगा। पागल होते हुए भी वे यही समझते हैं कि वे बिल्कुल स्वस्थ हैं और इसी कारण वे दवाई भी नही खाते। फलस्वरूप उनका रोग बढ़ता ही जाता है। इसीलिये यह आवश्यक है कि रोगी को सबसे पहले यह विश्वास होना चाहिये कि वह रोगी है।

इतना विश्वास हो जाने पर फिर उस रोगी को यह विश्वास करना होगा कि रोगी होना उसकी प्राकृतिक अवस्था नही है। उसकी प्राकृतिक अवस्था तो पूर्ण नीरोगी व स्वस्थ है। यदि वह अपथ्य का त्याग करके ठीक-ठीक उपचार करायेगा, तो उसे इस रोग से छुटकारा मिल जायेगा और वह अपनी प्राकृतिक अवस्था—नीरोगी अवस्था—प्राप्त कर लेगा। जब तक उसको फिर से अपने नीरोगी होने का विश्वास नहीं होगा, तब तक वह चिकित्सा नहीं करायेगा। मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि यदि किसी रोगी को यह विश्वास हो जाये कि वह पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा, तो उसका आधा रोग तो अपने आप ही ठीक हो जाता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि

जिन रोगियों को अपने ठीक हो जाने का विश्वास नहीं होता, उनमें से अधिकांश तो अपना उपचार ही नहीं कराते। कोई-कोई रोगी तो ऐसी अवस्था में आत्म-हत्या तक कर लेते हैं। इसलिये रोगी को समुचित चिकित्सा के द्वारा अपने नीरोग हो जाने का विश्वास होना भी बहुत आवश्यक है।

इसके पश्चात् उस रोगी को ऐसे चिकित्सक के पास जाना होगा जो उसके रोग का सही-सही निदान और उस रोग का ठीक-ठीक उपचार कर सके। यदि रोगी को अपने रोग का विशेषज्ञ चिकित्सक न मिले, तो रोगी का स्वस्थ होना असम्भव हो जाता है। हम प्रतिदिन देखते है कि तथाकथित अधकचरे चिकित्सक रोगी को ठीक करने के बजाय उसे मृत्यु के मुंह में धकेल देते है। फिर, यदि किसी व्यक्ति की आंखें खराब हैं, तो उसे आंखों के विशेषज्ञ के पास ही जाना पड़ेगा, न कि हड्डियों के विशेषज्ञ के पास। हड्डियों का विशेषज्ञ अपने विषय मे चाहे कितना ही कुशल क्यों न हो, परन्तु वह आंखों के रोग ठीक नही कर सकता। इसलिये किसी विशेष रोग के लिये हमे उसी रोग के विशेषज्ञ से ही उपचार कराना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्त में उस रोगी को उस चिकित्सक के आदेशानुसार अपथ्य का त्याग करना होगा और उस चिकित्सक के द्वारा बतलायी गयी प्रामाणिक औषधि उचित मात्रा में उचित विधि से सेवन करनी होगी, तभी वह रोगी ठीक हो सकेगा। यदि वह अपथ्य का त्याग नही करेगा, तो उसका रोग बढता ही जायेगा। फिर, चाहे कोई-सी भी औषधि सेवन करने से भी उसे कोई लाभ नही होगा ; अपितु हानि होने की ही अधिक सम्भावना रहेगी। जब वह अपने रोग के लिये बतलायी गयी विशेष तथा प्रामाणिक औषधि का सेवन करेगा, तभी वह ठीक हो सकेगा। फिर, वह विशेष औषधि भी उचित रीति से और उचित मात्रा ही में ही सेवन करनी पड़ेगी। यदि खाने की औषधि है, तो उसे खानी ही पड़ेगी, उस औषधि को शरीर पर मल लेने से उसे कोई लाभ नही होगा। इसी प्रकार यदि शरीर पर मलने की औषधि है, तो उसे शरीर पर ही मलना पड़ेगा। यदि उस औषधि को खा लिया तो लाभ के बजाय हानि की ही अधिक सम्भावना रहेगी। इसके साथ-साथ वह औषधि भी प्रामाणिक होनी चाहिये। हम प्रतिदिन देखते हैं कि अप्रामाणिक (नकली) औषधि लाभ के बजाय हानि ही अधिक करती है। फिर, उस औषधि की मात्रा भी चिकित्सक के बतलाये अनुसार होनी चाहिये। यदि उससे कम मात्रा में औषधि ली, तो वह अपना प्रभाव नहीं दिखायेगी। यदि अधिक मात्रा में औषधि ले ली, तो उससे हानि होने की ही अधिक सम्भावना है।

एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। यदि रोगी को अपने रोगी होने का ज्ञान भी हो, उसको वह विश्वास भी हो कि समुचित उपचार

करने से वह स्वस्थ हो जायेगा, वह उस रोग के विशेषज्ञ चिकित्सक को भी जानता हो और उसने चिकित्सक को दिखलाकर अपने रोग की औषधि तथा उस औषधि के सेवन का तरीका भी मालूम कर लिया हो, तो क्या केवल इतना ज्ञान होने पर ही वह रोगी ठीक हो सकेगा ? नहीं, रोग से मुक्त होने के लिये उसको औषधि का सेवन तो करना ही पड़ेगा। अतः नीरोग होने के लिये सिर्फ रोग तथा उसकी औषधि का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इस ज्ञान के साथ-साथ आचरण (अपथ्य का त्याग, औषधि का सेवन आदि) भी आवश्यक है।

हम एक और उदाहरण लेते है।

हमारे पास एक मैला वस्त्र है। हम उसको उसकी उजली व चमकीली (जिस प्रकार वह कारखाने से बनकर निकला था) अवस्था में लाना चाहते हैं। उसके लिये निम्नलिखित बाते आवश्यक है :—

(१) सबसे पहले हमको यह विश्वास करना होगा कि यह कपड़ा मैला है।

(२) फिर यह विश्वास करना होगा कि इसकी असली अवस्था तो उजली व चमकीली है (जैसा कि यह कारखाने से बनकर निकला था।) और यदि हम समुचित प्रयत्न करें, तो हम इसे पुन: इसकी असली अवस्था मे ला सकते है।

(३) फिर हमको उन साधनो का पता लगाना होगा, जिनसे हम उस वस्त्र को अपनी असली अवस्था में ला सकते है, अर्थात् हमें कौन से जल का और कौन से साबुन का और उनका किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये, जिससे यह वस्त्र पुनः अपनी असली अवस्था में आ जाये।

(४) इतना सब विश्वास और ज्ञान होने के पश्चात्, हम उस कपड़े पर उचित पानी व उचित साबुन का उचित रीति से प्रयोग करे, तभी वह कपड़ा अपनी असली अवस्था में आ सकता है।

इस प्रकार हमने विश्वास, ज्ञान व आचरण—तीन बातों की आवश्यकता पर बल दिया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिये इन तीनो ही बातों का समन्वय अति आवश्यक है। परन्तु ये तीनो बातें भी सच्ची होनी चाहिये। यदि इनमें से एक बात में भी त्रुटि रह गयी, तो हम अपना लक्ष्य प्राप्त करने में असफल ही रहेंगे। हम ऊपर दिये गये उदाहरणों को ही लेते हैं। यदि रोगी व्यक्ति विश्वास तो करे, परन्तु यह गलत विश्वास करले कि यही उसकी प्राकृतिक अवस्था है, तो वह स्वस्थ होने के लिये कोई प्रयत्न ही नहीं करेगा। क्योंकि वह तो जानता ही नहीं कि रोग वाली नहीं, अपितु स्वस्थ अवस्था ही

उसकी प्राकृतिक अवस्था है। इसी प्रकार यदि हम यह विश्वास कर लें कि मैला कपड़ा अपनी असली अवस्था में ही है, तो हम उसको साफ़ करने का प्रयत्न ही नहीं करेंगे। हमने यहाँ विश्वास तो किया, परन्तु गलत विश्वास कर लिया। इस प्रकार गलत विश्वास करना हमारे लिये अनर्थकारी सिद्ध हो जायेगा।

इसी प्रकार रोगी यह तो विश्वास करले कि वह रोगी है, परन्तु वह अपने रोग के विशेषज्ञ की बजाय किसी अन्य रोग के विशेषज्ञ या किसी अधकचरे चिकित्सक के पास चला जाये, तो वे चिकित्सक न तो उसके रोग का सही निदान ही कर सकेंगे और न ठीक-ठीक उपचार ही कर सकेंगे। ऐसे चिकित्सकों के कहे अनुसार औषधि सेवन करने से उसको हानि होने की ही अधिक सम्भावना होगी। इसी प्रकार मैला वस्त्र साफ करने की ठीक-ठीक विधि न जानने के कारण हम उस वस्त्र को पानी के बजाय तेल से धोने लगें, तो हम उसको और भी अधिक खराब कर देंगे। अतः सच्चे विश्वास के साथ-साथ हमारा ज्ञान भी सच्चा ही होना चाहिये। यदि हमने मिथ्या ज्ञान के अनुसार आचरण किया, तो हम अनर्थ कर बैठेंगे।

सच्चे विश्वास व सच्चे ज्ञान के साथ यह भी आवश्यक है कि हमारा आचरण भी सच्चा हो। चिकित्सक ने रोग का निदान भी ठीक-ठीक किया है और उस रोग की औषधि भी ठीक बतलायी है, परन्तु यदि रोगी उस औषधि को ठीक प्रकार से सेवन नहीं करता, तो लाभ के स्थान पर अपनी हानि ही कर लेगा। यदि वह खाने की औषधि को शरीर पर मल लेता है और शरीर पर मलने की औषधि को खा लेता है, तो उसके इस गलत आचरण के परिणाम का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि औषधि प्रमाणिक नहीं है, तो भी वह लाभ के बजाय हानि ही करेगी। यही बात मैले कपड़े पर भी लागू होती है।

हम एक और उदाहरण लें। मान लिया कि हमको दिल्ली से मेरठ जाना है, हमारे पास मेरठ जाने के लिये सवारी भी है, परन्तु हमको मेरठ की ओर जाने वाले मार्ग का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं है। अपने अज्ञान के कारण हम मेरठ जाने वाली सडक की बजाय मथुरा जाने वाली सड़क पर चल देते हैं; अब हम चाहे कितना ही चल लें और चाहे कितना ही परिश्रम कर लें, हम मेरठ कभी नहीं पहुंच सकेंगे। यदि हमको मेरठ जाने वाली सड़क का ज्ञान होता तो हम थोड़े-से परिश्रम से ही मेरठ पहुंच सकते थे। आपने कोल्हू का बैल देखा होगा। बेचारा सुबह से शाम तक चलता ही रहता है; परन्तु इतना परिश्रम करने के पश्चात् भी वह अपनी जगह से थोड़ा-सा भी आगे नहीं बढ़ पाता। इसी प्रकार यदि हमें तेल प्राप्त करना है, तो हमें सरसों या तिलों आदि को ही कोल्हू में पेलना पड़ेगा। इसकी

बजाय यदि हम रेत को कोल्हू में पेलने लगे तो हम चाहे कितना ही परिश्रम कर लें हम कभी भी तेल प्राप्त नही कर सकेंगे। अतः सच्चे विश्वास तथा सच्चे ज्ञान पूर्वक किया हुआ सच्चा आचरण ही कार्यकारी होता है।

इसी सन्दर्भ में हम सोने का उदाहरण भी ले सकते हैं। हमारे पास स्वर्ण-पाषाण है। हम उसको शोध कर उससे शुद्ध सोना प्राप्त करना चाहते हैं। इसके लिये भी हमको सच्चे विश्वास, सच्चे ज्ञान, और सच्चे आचरण का समन्वय करना होगा।

(१) सबसे पहले हमें यह विश्वास करना होगा कि यह पत्थर स्वर्ण-पाषाण ही है और यदि हम उसको उचित विधि से शोधें, तो हम इसमें से शुद्ध सोना प्राप्त कर सकते हैं।

(२) इसके पश्चात किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करनी होगी जो स्वर्ण-पाषाण शोधने में विशेषज्ञ हो। उससे हमें सोना शोधने की सही-सही विधि मालूम करनी होगी, कि इस कार्य के लिये कौन-कौन से रसायन और वे कितनी-कितनी मात्रा में प्रयोग किये जायें तथा उन्हें कितनी बार और कितनी तेज आग पर पकाया जाये, इत्यादि।

(३) यह ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अन्त में हमें उस विधि के अनुसार कार्य करना होगा, तभी हम शुद्ध सोना प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे विश्वास, ज्ञान व क्रिया में कहीं भी तनिक सी भी त्रुटि या कमी रह गयी, तो हम शुद्ध सोना प्राप्त करने में असफल ही रहेंगे और हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ ही चले जायेंगे। इस प्रकार हम देखते है कि साधारण सांसारिक बातों के लिये भी सच्चे विश्वास, सच्चे ज्ञान और सच्चे आचरण का समन्वय आवश्यक है।

ऊपर दिये गये उदाहरण हमारे प्रतिदिन के अनुभव में आने वाले तथ्य है, केवल उन पर ठण्डे मस्तिष्क से विचार करने की आवश्यकता है। थोड़ा-सा विचार करने पर ही हम तत्त्व की बात समझ जायेंगे।

अब हम फिर अपने लक्ष्य पर आते हैं। हमारा लक्ष्य सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये भी हमें सच्चे (सम्यक) विश्वास, सच्चे (सम्यक) ज्ञान और सच्चे (सम्यक) आचरण का समन्वय करना होगा तभी हम सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त कर सकेंगे।

(१) सब से पहले हमें यह विश्वास करना होगा कि वास्तव में तो हम दुःखी ही हैं, परन्तु भ्रमवश हमने अपने आपको सुखी मान रक्खा है। हमको जीवन में कभी-कभी सुख की जो झलक दिखाई दे जाती है, वह सच्चा व स्थायी सुख नहीं है, केवल सुखाभास है। जब तक हमको यह विश्वास न हो जाये कि भविष्य में हमें कभी भी, किसी प्रकार का भी दुःख नहीं मिलेगा, हमें कोई रोग व शोक नहीं सतायेगा, तब तक हमें इन छोटे-

छोटे अन्तरालों में क्षणिक सुख (वह भी सच्चा नहीं केवल सुखाभास) मिलते रहने का कोई अर्थ नहीं है।

(२) इसके पश्चात् हमको यह विश्वास करना होगा कि हमारी वर्तमान दुःखद अवस्था हमारी स्वाभाविक अवस्था नहीं है। हमारी स्वाभाविक अवस्था तो आकुलता-रहित निर्बाध सुखी की है, और यदि हम सही दिशा में सच्चे (सम्यक) प्रयत्न करें तो हम उस आकुलता-रहित, निर्बाध, सच्चे व स्थायी सुख की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं।

(३) इसके पश्चात् हमें ऐसे विश्वस्त महापुरुष की खोज करनी होगी जो हमारी जैसी अवस्था से ऊपर उठकर, अपने ही प्रयत्नों के द्वारा सच्चे व स्थायी सुख की अवस्था प्राप्त कर चुके हों, जो हमारे दुःखों का कारण बतला सकें तथा जो हमें स्थायी व सच्चे सुख का लक्षण और उसको प्राप्त करने का ठीक-ठीक मार्ग बतला सकें। (जो व्यक्ति स्वयं ही हमारे समान दुःखी है, जिसने सच्चे व स्थायी सुख को प्राप्त करना तो दूर, उसका कभी अनुभव भी नहीं किया है, वह हमें सच्चे सुख का मार्ग कैसे बतला सकेगा ?)

(४) उन विश्वस्त महापुरुष के द्वारा बतलाया गया सच्चा (सम्यक) ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् हमें उन महापुरुष के द्वारा बतलाये गये दुःख के कारणों को दूर करना होगा और उन्हीं महापुरुष के मार्ग-दर्शन के अनुसार सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये समुचित प्रयत्न करने होंगे।

इतना सब करने के पश्चात् ही हम सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसमें कहीं भी कोई त्रुटि रह गयी, तो हम अपने मार्ग से भटक जायेंगे और फिर हम चाहे कितना ही परिश्रम क्यों न करलें, हम अपना लक्ष्य अर्थात् सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने में असफल ही रहेंगे।

यदि हम अपनी वर्तमान अवस्था को ही सच्चे व स्थायी सुख की अवस्था समझने की भूल कर बैठे, तो हम सच्चा व स्थायी सुखी होने के लिये प्रयत्न ही क्यों करेंगे ? अथवा हम सच्चे व स्थायी सुख को ही न जान पाये, तो हम किसी दिखावटी सुख के लिये प्रयत्न करते रहेंगे। यदि हमें सच्चे व स्थायी सुख का मार्ग बतलाने वाले कोई विश्वस्त महापुरुष ही न मिले तो, सच्चे (सम्यक) ज्ञान के अभाव में हम सच्चे व स्थायी सुख की खोज में कुमार्गों पर ही भटकते रहेंगे। यदि हमारा विश्वास भी ठीक हुआ, ज्ञान भी ठीक हुआ अर्थात् सच्चे व स्थायी सुख के लक्षण और उसको प्राप्त करने के सही मार्ग का ज्ञान भी हमें हो गया, परन्तु यदि हम उस मार्ग पर चलें ही नहीं, तो फिर हम अपने लक्ष्य पर कैसे पहुंच सकेंगे ?

सम्यक-श्रद्धान,सम्यक-ज्ञान व सम्यक-चारित्र क्या हैं ?

यहां हम एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। पिछले अध्याय में हमने सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करने के लिये सच्चे (सम्यक) श्रद्धान (विश्वास), सच्चे (सम्यक) ज्ञान और सच्चे (सम्यक) चारित्र के समन्वय पर बल दिया है और इसके प्रमाण में कई उदाहरण भी दिये हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि सच्चा (सम्यक) श्रद्धान, सच्चा (सम्यक) ज्ञान व सच्चा (सम्यक) चारित्र हम किन्हें समझें? इन्हें पहचानने की कसौटी क्या है? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि हमारा लक्ष्य सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करना है। अत: हमें इन शब्दों (सच्चे श्रद्धान, सच्चे ज्ञान व सच्चे चारित्र) की परिभाषाएं इसी सन्दर्भ में खोजनी होंगी। मोटे तौर पर हम यह समझ लें कि जो श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र हमें इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होते हैं, वही हमारे लिये सच्चे श्रद्धान, सच्चे ज्ञान व सच्चे चारित्र हैं। ऐसे श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र के अतिरिक्त और कोई भी श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र, सच्चे श्रद्धान, सच्चे ज्ञान व सच्चे चारित्र नही माने जा सकते, क्योंकि वे हमारे लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक नही होते।

जिस प्रकार यदि किसी विद्यार्थी को डाक्टर बनना है, तो उसको शरीर-विज्ञान का ही अध्ययन करना पड़ेगा। शरीर-विज्ञान ही उसके लिये सच्चा (सम्यक) ज्ञान है। इसके विपरीत यदि वह धातुओ के गुणों का अध्ययन करने लगे, तो वह अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। धातुओ के गुणों का अध्ययन स्वयं में कितना ही ठीक क्यों न हो और एक धातुओं का विशेषज्ञ बनने के लिये उन गुणों का अध्ययन कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, परन्तु डाक्टर बनने का लक्ष्य रखने वाले विद्यार्थी के लिये वह निरर्थक ही है।

इसी प्रकार एक शिकारी, पशु-पक्षियों के स्वभाव व व्यवहार का कितना ही अच्छा जानकार क्यों न हो, तथा निशाना साधने में वह कितना ही निपुण क्यों न हो और शिकारियों के समाज में उसकी कितनी ही प्रतिष्ठा क्यों न हों, परन्तु जब हम एक अहिंसक के दृष्टिकोण से उस

शिकारी की परीक्षा करते हैं, तो हमें उसके समस्त विश्वास, ज्ञान व आचरण मिथ्या ही लगेंगे।

इसी प्रकार कोई व्यापारी, कोई इंजीनियर, कोई वकील, कोई कलाकार अपने-अपने व्यवसाय व कला में कितने ही ज्ञानी, निपुण व विशेषज्ञ क्यों न हों और उन्होंने चाहे कितना ही धन क्यों न उपार्जित कर लिया हो, अपनी-अपनी समाजों में उनका कितना ही आदर व सम्मान क्यों न हो, परन्तु जब हम सच्चे व स्थायी सुख की प्राप्ति के संदर्भ में विचार करते हैं, तो उन सब का ज्ञान व निपुणता अर्थहीन ही प्रमाणित होती हैं।

हमारा लक्ष्य सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करना है। अतः हमे अपनी आत्मा, अपने शरीर तथा इस विश्व का वास्तविक ज्ञान ही हमारा लक्ष्य प्राप्त करने में हमारी सहायता करेगा, इसलिये हमारे लिये यही सच्चा (सम्यक) ज्ञान होगा। हम इस वास्तविकता को समझ लें :—

(१) हमारी आत्मा हमारे इस भौतिक शरीर से बिल्कुल भिन्न है।

(२) हम (हमारी आत्मा) अनादि काल से, अपने ही द्वारा संचित कर्मों के फलस्वरूप नये-नये शरीर धारण करने और सुख-दुःख भोगने के चक्कर में पड़े हुए हैं।

(३) जब भी हम अपनी राग-द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ, हिंसा आदि की भावनाओं व तदनुसार आचरण का त्याग कर देंगे और वीतरागता, सत्य, अहिंसा, संयम, तप, त्याग, ध्यान आदि की भावनाओं व तदनुसार आचरण के द्वारा नये-नये कर्मों को संचय होने से रोक देंगे तथा जब हम तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपने संचित किये हुए कर्मों को अपनी आत्मा से अलग कर देंगे, तभी हम सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे।

इन वास्तविकताओं पर संदेह रहित होकर विश्वास करना ही सच्चा (सम्यक) श्रद्धान है। इन वास्तविकताओं का ज्ञान ही सच्चा (सम्यक) ज्ञान है और इन वास्तविकताओं के अनुकूल आचरण करना ही सच्चा (सम्यक) चारित्र है।

सच्चे श्रद्धान की आवश्यकता

यहां एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि जब हमको वास्तविकताओं का ज्ञान हो गया है, तो उन वास्तविकताओं पर श्रद्धान की क्या आवश्यकता है ? क्या इन वास्तविकताओं का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है ? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करने के लिये केवल ज्ञान और तदनुसार आचरण ही पर्याप्त नहीं होते। ज्ञान व

आचरण के साथ जब सच्चे श्रद्धान का समन्वय होता है, तभी ज्ञान, सच्चा (सम्यक) ज्ञान और चारित्र सच्चा (सम्यक) चारित्र होते हैं। सच्चे (सम्यक) श्रद्धान, सच्चे (सम्यक) ज्ञान व सच्चे (सम्यक) चारित्र के समन्वय होने पर ही सच्चा व स्थायी सुख(मुक्ति) प्राप्त हो सकता है।

इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये हम एक उदाहरण देते हैं।

एक गैर-हिन्दू विद्वान है। वह रामायण-काल का विशेषज्ञ है। उसे इस तथ्य का ज्ञान है कि श्री रामचन्द्र जी ने कब, कहां और कौन से वंश में जन्म लिया था, उन्होने क्या-क्या लोक-हितकारी कार्य किये थे, उन्हे मर्यादा-पुरुषोत्तम क्यों कहा जाता है, उनकी शासन-व्यवस्था कैसी थी, उनके समय का राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक जीवन कैसा था, आदि, आदि। दूसरी ओर एक अनपढ हिन्दू है, उसने केवल श्री रामचन्द्र जी की कथा ही सुनी है। वह उनको भगवान मानता है, उन पर अपार श्रद्धा रखता है, नित्य प्रति श्री राम-मन्दिर में दर्शन करने के लिये जाता है। उस पर तनिक-सा भी कष्ट पड़ता है, तो वह श्री राम का ही नाम जपता है। वह राम नाम को ही अपने समस्त कष्टों की अचूक औषधि मानता है।

इस उदाहरण से आपको श्रद्धान व ज्ञान का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। उन गैर-हिन्दू विद्वान को श्री रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान है, परन्तु उनको श्री रामचन्द्र जी में श्रद्धान नहीं है, जबकि उस अनपढ हिन्दू को श्री रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में बहुत थोडा-सा ज्ञान है, परन्तु उसको उनमें अपार श्रद्धान है।

श्रद्धान होने पर हमारे दृष्टिकोण और हमारे आचरण मे बहुत अन्तर आ जाता है। इसको स्पष्ट करने के लिये हम कुछ उदाहरण देते हैं।

मान लीजिये किसी दुर्घटना के फलस्वरूप किसी बालक को चोट लग जाती है। हमें इस बात का ज्ञान है कि इस बालक को चोट लग गयी है। इस चोट के कारण इस बालक को बहुत कष्ट हो रहा है। इस चोट का इस बालक पर अमुक प्रभाव पड़ेगा। इस बालक को चिकित्सालय में ले जाकर उपचार कराने से उसे आराम मिलेगा और यह कुछ दिनों में ही ठीक हो जायेगा, इत्यादि। इन सब बातों का हमें ज्ञान है, परन्तु फिर भी हमारा हृदय उस बालक के कष्ट से विह्वल नहीं होता। यदि उस बालक की बजाय इससे आधी चोट हमारे अपने बालक को लगी होती, तो चोट का पूरा ज्ञान हुए बिना ही हमारा हृदय उसके कष्ट से विह्वल हो उठता और हम तुरन्त ही अपने बालक की सहायता व उपचार के लिये प्रयत्न करने लगते।

एक माता अपनी सन्तान की देखभाल करती है, और एक सेविका भी एक बालक की देखभाल करती है। परन्तु उन दोनों की देखभाल में और उन दोनों के दृष्टिकोणों में बहुत अन्तर होता है। सेविका केवल वेतन पाने के लिये बालक की देखभाल करती है। जैसे ही उसको नौकरी से अलग कर दिया जाता है, उसका उस बालक से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसके विपरीत माता निःस्वार्थ भाव से और मातृस्नेह के वश में होकर अपनी सन्तान की देखभाल करती है। यदि कभी अभाव की स्थिति भी आ जाये तो भी उसका यही प्रयत्न रहता है कि जो कुछ भी अभाव है वह मैं सहलू, परन्तु अपनी सन्तान को किसी वस्तु का अभाव न होने दू। माता की देखभाल में जो अपनत्व व आत्मीयता होती है, सेविका की देखभाल में उसका नितान्त अभाव होता है।

आपने अधिकाश डाक्टरो के सम्बन्ध में देखा होगा कि जब वे किसी सरकारी चिकित्सालय में कार्य करते हैं, तब रोगियों के साथ उनका व्यवहार बहुत ही रूखा व अपमानजनक होता है। परन्तु जब वे अपना चिकित्सालय खोल लेते हैं, तब उनके व्यवहार में बहुत परिवर्तन हो जाता है। तब वे रोगियों से बहुत सहानुभूति और सम्मान पूर्वक व्यवहार करते हैं और उनका बहुत अच्छी तरह से उपचार व देख-भाल करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि रोगियों के प्रति उनका व्यवहार अच्छा नहीं हुआ, तो उनके पास कोई रोगी नहीं आयेगा और इस प्रकार उनके निज के हितों को हानि पहुचेगी।

सच्चा (सम्यक) श्रद्धान होने पर कुछ ऐसा ही अन्तर हमारे ज्ञान व आचरण में हो जाता है। सच्चा (सम्यक) श्रद्धान होने के पश्चात् जो आचरण होता है, उसकी बात ही कुछ और होती है। वह आचरण बहुत ही सहज भाव से होता रहता है तथा उस से किसी भी प्रकार के कष्ट तथा बोझ का अनुभव नहीं होता।

सच्चा (सम्यक) श्रद्धान होने के पश्चात हम पिछले समय के अपने आचरण को किस प्रकार देखने लगते है, इसको स्पष्ट करने के लिए हम उदाहरण देते है।

हम रात के अंधकार में किसी बगीचे से गुजर रहे होते है। वहां एक ठूंठ खड़ा हुआ होता है, जिसकी आकृति मनुष्य की आकृति से मिलती जुलती है। उसको देखकर हम सोच में पड़ जाते हैं कि न मालूम यह कोई चोर-डाकू है या कोई प्रेत है। हमें उससे भय लगता है। हम उसकी खुशामद करते हैं और उससे प्रार्थना करते है कि वह हमारा कोई अनिष्ट न करे। तभी बिजली चमकती है और हमको वास्तविकता का पता चलता है कि जिसको हम चोर-डाकू अथवा प्रेत समझ रहे थे, वह तो केवल एक

ठूंठ है। तब हमारा सारा भय दूर हो जाता है और हमको स्वयं अपने ऊपर हंसी आती है कि मैं भी कितना मूर्ख था, एक ठूठ से भय खा रहा था और और उससे सुरक्षा की प्रार्थना कर रहा था।

इसी प्रकार अंधेरे मे कोई लम्बी पतली वस्तु पड़ी हुई है। हम उसको सांप समझ लेते है, उससे भय खाते हैं और उससे बचने के लिये अनेको उपाय सोचते है। तभी प्रकाश हो जाने के कारण हमें ज्ञात होता है कि जिसको हम साप समझ कर भय खा रहे थे, वह तो केवल एक रस्सी ही है। तब हमको अपनी अज्ञानता पर हंसी आती है।

हम एक सपना देख रहे होते हैं कि कोई व्यक्ति हमको मानसिक व शारीरिक यंत्रणा दे रहा है, जिसके कारण हम बहुत दु.खी हो रहे है। हम उस व्यक्ति को बुरा भला कह रहे हैं और उसके अनिष्ट को कामना कर रहे है। तभी अचानक हमारी आंख खुल जाती है। हमें यह जानकर अपार शान्ति मिलती है कि हम जो दृश्य देख रहे थे और जिसको वास्तविकता समझ कर बहुत दुःखी हो रहे थे वह तो स्वप्न मात्र था।

हम एक व्यक्ति को अपना घनिष्ठ मित्र और अपना परोपकारी समझते है। उसका बहुत आदर करते हैं। अपनी कोई भी बात उससे नहीं छिपाते। अचानक एक दिन हमको बहुत ही विश्वस्त सूत्रों से पता चलता है कि वह व्यक्ति तो हमारे प्रतिद्वन्दी का आदमी है जो हमारे भेद लेने के लिये हमसे मित्रता का ढोंग रच रहा है। इस तथ्य का पता चलते ही उस व्यक्ति के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। हम उसको अपने प्रति-द्वन्दी के समान ही समझने लगते है और उसको अपने पास फटकने भी नही देते।

ऊपर के उदाहरण हमारे जीवन में नित्य प्रति घटते रहते है। इन उदाहरणों से भली प्रकार विदित हो जाता है कि वास्तविकता का पता चलते ही हमारे दृष्टि कोण में, हमारे विचारों में तथा हमारे व्यवहार में कितना अन्तर आ जाता है।

इसी प्रकार जब तक हमको इस वास्तविकता (हमारी आत्मा इस भौतिक शरीर से बिल्कुल भिन्न है) का पता नही चलता, तब तक हम इस भौतिक शरीर को ही अपना समझते हैं। इसकी भली प्रकार देखभाल करते हैं। इसको पुष्ट करने के लिये तामसिक भोजन व अभक्ष्य पदार्थों, मांस, मदिरा, मधु, जीवों की हत्या करके उनके अंगों से बनी औषधियों आदि का सेवन करते हैं। यह शरीर सुन्दर दिखलाई दे, इसके लिये भांति-भांति के क्रीम, पाउडर, शैम्पू, सुगन्ध आदि का प्रयोग करते हैं। (इनमें से अधिकांश वस्तुओं के बनाने में अण्डों व हिंसा से प्राप्त अन्य वस्तुओं का

प्रयोग होता है।) इस शरीर की कुरूपता ढकी रहे और हम सुन्दर व अमीर दिखलाई दें इसके लिये भांति-भांति के वस्त्र धारण करते हैं। (रेशमी वस्त्र बनाने के लिये असंख्य कीड़ो की हत्या की जाती है।) अपने लिये पशु-पक्षियों की खालों व बालों के सुन्दर-सुन्दर परिधान बनाने के लिये लाखों पशु-पक्षियों की हत्या की जाती है, यहां तक कि अधिक मुलायम खाल प्राप्त करने के लिये गर्भिणी पशुओं की हत्या करके फिर उनके गर्भ के शिशुओं की भी निर्ममता पूर्वक हत्या की जाती है। इस शरीर के लिये सुख सुविधाएं जुटाने के लिये हम धन कमाते है। धन कमाने के लिये हम अनेको प्रकार की ठगी, व बेईमानी करते है, चोरी करते है और दूसरो की हत्या कर डालते हैं। ये सब बुरे कर्म करने के पश्चात भी यह शरीर स्थिर व स्थायी नही रहता। पल-पल मृत्यु की ओर ही बढ़ता रहता है। यह शरीर अनेको रोगो से ग्रस्त रहता है। इस शरीर पर कितने ही मूल्यवान व सुगन्धित द्रव्य लगाले, इस शरीर के सम्पर्क मे आते ही कुछ समय के पश्चात् ही उनकी सुगन्ध समाप्त हो जाती है। इस शरीर को चाहे कितने ही शक्ति-वर्द्धक व स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ सेवन कराये जायें, यह उन सबका मल-मूत्र बना देता है। यह शरीर चाहे कितना ही सुन्दर हो, यदि इसमे चर्म-रोग हो जाये या अग्नि से जल जाये, तो यह देखने में भी घिनौना लगने लगता है।

इसी प्रकार अपनी सन्तान, पत्नी/पति तथा अन्य सम्बन्धियों व इष्ट मित्रों को अपने शरीर को सुख देने वाले मानकर, उनको सुखी करने के लिये हम अनेको बुरे कार्य करते हैं। परन्तु इनमें से कोई भी हमारा सच्चा साथी नही है। ये सब इसी जन्म के साथी होते है। यह जन्म समाप्त होते ही उनसे सब सम्बन्ध समाप्त हो जाते है। (हम अज्ञानवश यह समझते हैं कि हम उनको सुखी कर रहे है। परन्तु उनको सुख तो उनके अपने ही अच्छे कर्मों के फलस्वरूप ही मिलता है। हम तो केवल निमित्त-मात्र हैं।) विडम्बना तो यह है कि इन इष्ट मित्रों व सगे सम्बन्धियों के लिये इतना सब कुछ करने के पश्चात् भी इनमे से अनेकों तो हमारा अहसान भी नहीं मानते, यहां तक कि कुछ तो यही मनाते रहते है कि हमारा कुछ अनिष्ट हो जाये या हमारी मृत्यु ही हो जाये।

परन्तु जब हमें सच्चा (सम्यक) श्रद्धान हो जाता है अर्थात् हमें इस वास्तविकता पर पूर्ण विश्वास हो जाता है कि हमारी आत्मा इस भौतिक शरीर तथा इन समस्त इष्ट मित्रो व सगे सम्बन्धियों से बिल्कुल भिन्न है, तब हमारे दृष्टिकोण मे, हमारे विचारो में तथा हमारे व्यवहार मे बहुत परिवर्तन हो जाता है। हम इस शरीर को अपना सेवक समझने लगते हैं

और इसकी केवल इसलिये और इतनी ही देखभाल करते हैं, जिससे यह शरीर अधिक-से-अधिक समय तक अपने आत्म कल्याण और दूसरों के परोपकार में सहायक हो सके।

अपनी आत्मा को इस भौतिक शरीर और सगे सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रों से भिन्न समझते ही हमारे मन में एक अभूतपूर्व शान्ति व आनन्द का अनुभव होने लगता है। यह विश्व और इसके समस्त क्रिया-कलाप हमें माया के समान लगने लगते है। हमको अपनी सांसारिक उधेड़-बुन और गतिविधिया व्यर्थ-सी लगने लगती है। हमें जो भी सासारिक कार्य करना पडता है, उसे बहुत ही लाचारी से करते है, हम उसमें रुचि नही लेते।

इस शरीर को अपने से भिन्न समझ लेने पर आत्म-कल्याण के साधनो—तप, त्याग, ध्यान आदि—पहले जिनको हम बहुत कठिन और कष्टदायक समझते रहते थे, अब बहुत सरल लगने लगते हैं। इनसे हमे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नही होता, अपितु उनसे एक अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है।

सच्चा (सम्यक) श्रद्धान (अर्थात् यह आत्मा भौतिक शरीर से भिन्न है) हो जाने पर हमारे जीवन में किस प्रकार का अन्तर आ जाता है, इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम एक उदाहरण देते हैं।

एक विधवा महिला है, जिसके एक छोटा पुत्र है। उस पुत्र के कारण वह दिन भर काम में लगी रहती है। उस बालक के कारण ही वह अपने स्वास्थ्य की भी देख-भाल रखती है, क्योकि वह सोचती है कि अगर मैं बीमार पड गयी या मर गयी, तो इस बालक का क्या होगा? इसे कौन पालेगा, कौन प्यार देगा? यदि उस बालक की मृत्यु हो जाये, तो उस महिला का जीवन बिल्कुल सूना-सूना सा हो जायेगा। उसको करने के लिये कोई काम भी न रहेगा। न उसे अपने स्वास्थ्य की चिन्ता होगी, न उसे अपने खाने-पीने की ही सुध रहेगी, खाया खा लिया, नहीं खाया तो भी कोई चिन्ता नहीं। सच्चा (सम्यक) श्रद्धान हो जाने पर यही दशा हमारी हो जाती है, न हमें इस शरीर की कोई चिन्ता रहती है, और न हमारे करने के लिये कोई सांसारिक काम ही रह जाता है।

हमारा पाठको से अनुरोध है कि एक बार उस दशा की कल्पना तो करके देखें। इस शरीर और इन सांसारिक बंधनों का उत्तरदायित्व छोड़ते ही उन्हे कैसी अभूतपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। एक वैज्ञानिक को किसी महत्त्वपूर्ण खोज में सफलता प्राप्त होने पर कितना आनन्द आता है? एक माता-पिता को अपनी पुत्री के लिये अच्छा घर-वर मिलने और फिर निर्विघ्न पूर्वक उसका विवाह हो जाने पर कितना आनन्द आता है? कोई

कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने पर हमको कितना आनन्द आता है ? किसी बेरोजगार को मनचाही नौकरी मिल जाने पर उसे कितना आनन्द आता है ? वास्तव में यह आनन्द आकुलता (परेशानी) मिटने या दूसरे शब्दों में कहलें तो, उत्तरदायित्व समाप्त हो जाने के कारण ही होता है। इन छोटे-छोटे उत्तरदायित्वों से छुट्टी पा लेने पर हमें इतना आनन्द आता है, तब उस आनन्द का क्या ठिकाना जब हम अपने सिर से सारे सांसारिक उत्तरदायित्व उतार कर फेंक देते है। वे उत्तरदायित्व किसी ने हमारे ऊपर थोपे नहीं हैं। हमने स्वयं ही इन समस्त सांसारिक उत्तरदायित्वों को धारण किया हुआ है।

एक परेशान व्यक्ति यह चाहता है कि उसे नींद आ जाये, तो उसे कुछ देर को शांति मिलेगी। क्योंकि सोने के समय व्यक्ति के ऊपर कोई भी उत्तरदायित्व नहीं रहता। इसी प्रकार यदि हम जागते हुए ही इन उत्तरदायित्वो से अपने को मुक्त करलें, तब हमारे आनन्द की क्या कोई सीमा रहेगी। आप सौ-पचास नही हजार, दो हजार बार मुंह से मीठा-मीठा कहलें, क्या आपको मीठे के स्वाद का अनुभव हो सकेगा ? मीठे के स्वाद का अनुभव तो तभी आयेगा, जब आप चुटकी भर मीठा अपनी जिह्वा पर रक्खेंगे। इसी प्रकार यदि आपको सच्चे आनन्द की अनुभूति करनी है, तो थोड़ी देर के लिये ही सही, किसी एकान्त स्थान में बैठकर अपने समस्त उत्तरदायित्वों को सिर से उतर जाने की कल्पना तो करें, तभी आपको उस अभूतपूर्व और सच्चे आनन्द का अनुभव हो सकेगा।

सच्चा श्रद्धान हो जाने पर हम अपनी आत्मा को किस प्रकार महत्त्व देने लगते है—इसको स्पष्ट करने के लिये हम एक उदाहरण देते है। एक आभूषण है जिसका वजन तीन सौ ग्राम है। वह बहुत सुन्दर बना हुआ है। एक सामान्य व्यक्ति यही कहता है कि यह आभूषण बहुत सुन्दर है और इसका वजन तीन सौ ग्राम है। इसको पाकर मेरी पत्नी बहुत प्रसन्न हो जायेगी। परन्तु एक जौहरी न तो उस आभूषण की सुन्दरता को महत्त्व देता है और न उस आभूषण के वजन को। उस जौहरी की दृष्टि तो इस बात पर है कि इस आभूषण में शुद्ध सोना कितना है। उसकी दृष्टि उस आभूषण के शुद्ध सोने पर ही रहती है। इसी प्रकार जब हमें सच्चा (सम्यक) श्रद्धान हो जाता है, तब हम यह नहीं देखते कि किसी प्राणी का शरीर सुन्दर है या कुरूप है, शरीर भारी है या हल्का है, स्वस्थ है या रोगी है, वह मूल्यवान वस्त्र व आभूषण पहने है या साधारण वस्त्र। हमारी दृष्टि तो केवल उस शरीर में अवस्थित आत्मा की ओर ही रहती है और हम उसके कल्याण के विषय में ही चिन्तन करते रहते हैं।

हमने पिछले पृष्ठों में बतलाया है कि जब तक हमको सच्चा (सम्यक) श्रद्धान नहीं होता, तब तक जो भी हमारा ज्ञान है, वह मिथ्या ज्ञान ही होता है, सच्चा (सम्यक) ज्ञान नहीं होता। इस तथ्य पर यह शंका उठ सकती है कि वही ज्ञान जो हमें पहले से है वह मिथ्या ज्ञान क्यों है और सच्चा (सम्यक) श्रद्धान हो जाने पर वही ज्ञान सच्चा (सम्यक) ज्ञान कैसे हो जाता है? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि सच्चा (सम्यक) श्रद्धान हो जाने पर हमारे दृष्टिकोण मे बहुत अन्तर पड़ जाता है और हम अपने नये दृष्टि-कोण के माध्यम से ही अपने वर्तमान ज्ञान को कसौटी पर कसते है। जो ज्ञान हमारे नये दृष्टिकोण की कसौटी पर खरा उतरता है, वही ज्ञान सच्चा (सम्यक) ज्ञान कहलाता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये हम उदाहरण देते है :—

आपने पागल व्यक्तियों को देखा होगा। वे व्यक्ति अपने को पागल नही समझते, अपितु वे तो अपने को सामान्य व्यक्ति से भी अधिक चतुर समझते है। वे अधिकाश में तो बहकी-बहकी बातें ही करते है, परन्तु कभी-कभी ठीक-ठीक बाते भी करने लगते है। जैसे कभी तो वे अपनी पत्नी को पहचानते ही नही, कभी उसको मां कह देते है तथा कभी उसे बहन कहने लगते है और कभी-कभी उसको पत्नी ही कहते हैं। परन्तु जब वे ठीक बाते भी करते है तब भी कोई विद्वान् व्यक्ति उनकी बातों को प्रमा-णिक नही मानते, क्योंकि उनका मस्तिष्क ठीक न होने के कारण उनकी बातो पर भरोसा नही किया जा सकता। जब उनका पागलपन ठीक हो जाता है तभी उनकी बातों को सच्ची व प्रमाणिक माना जाता है।

इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति शराब के नशे में होता है, उस समय वह अधिकांश में बहकी-बहकी बातें ही करता है। परन्तु कभी-कभी वह ठीक बात भी करता है। परन्तु नशे मे होने के कारण उसकी ठीक-ठीक बातों को भी कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। जब उस व्यक्ति का नशा उतर जाता है और वह सामान्य अवस्था मे आ जाता है, तभी उसकी बातों को महत्त्व दिया जाता है।

इसी प्रकार जब तक हमको सच्चा (सम्यक) श्रद्धान नहीं होता (अर्थात् हम अपनी आत्मा को अपने भौतिक शरीर से भिन्न नहीं समझते) तब तक हमारी अवस्था भी एक पागल व्यक्ति तथा नशे में धुत्त एक शराबी के समान ही होती है। उस समय तक हमारा ज्ञान संशय वाला ज्ञान होता है। हम निशंक होकर और दृढ़ता पूर्वक यह नहीं कह सकते कि अमुक बात ठीक है या नही। अतः उस समय का हमारा ज्ञान, चाहे वह ठीक ही क्यों न हो, सच्चा (सम्यक) ज्ञान नहीं कहलाता। परन्तु जब हमें सच्चा (सम्यक)

श्रद्धान (हम अपनी आत्मा को अपने भौतिक शरीर से भिन्न समझने लगते हैं) हो जाता है, तब हमें जो ज्ञान होता है, वही सच्चा (सम्यक) ज्ञान कहलाता है, क्योंकि वह ज्ञान हमारे नये दृष्टिकोण पर आधारित होता है।

यही बात आचरण के सम्बन्ध में है। हम प्रतिदिन पूजा पाठ व अन्य क्रिया काण्ड करते रहते हैं, परन्तु हमें यह ज्ञान नही होता कि इनका महत्त्व क्या है। अतः हमारी सारी क्रियाए एक दिखावा बन कर रह जाती है। जिस प्रकार कोल्हू का बैल सुबह से शाम तक चलता रहता है, परन्तु अपने स्थान से तनिक भी आगे नही बढ़ पाता, ठीक यही दशा हमारी होती है। जब तक हमको सच्चा (सम्यक) श्रद्धान नही हो जाता, हमारी सारी क्रियाएं इस भौतिक शरीर तथा इस शरीर से सम्बन्धित सगे सम्बन्धियों व इष्ट मित्रो को सुख पहुचाने के लिये ही होती है। परन्तु सच्चा (सम्यक) श्रद्धान होने के पश्चात् हम ऐसे क्रिया कलापो को छोड़ने लगते है और अपनी आत्मा के कल्याण का ही ध्यान रखने लगते हे। अतः उसी समय हमारा आचरण, सच्चा (सम्यक) आचरण कहलाता है।

क्या केवल ईश्वर-भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है ?

हमने पिछले पृष्ठों में बताया था कि सच्चे (सम्यक) श्रद्धान, सच्चे (सम्यक) ज्ञान और सच्चे (सम्यक) चारित्र का समन्वय होने पर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु कुछ विचारक यह कहते है कि केवल उस सर्व-शक्तिमान परमेश्वर की भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु यह बात तर्क की कसौटी पर खरी नही उतरती। सबसे पहले तो हमे इस बात का ही निश्चय नहीं है कि उन विचारको की मान्यता के अनुसार, कोई सर्व-शक्तिमान परमेश्वर है भी या नही। (इस सम्बन्ध मे हम पिछले पृष्ठों मे विवेचन कर आये है।) यदि वास्तव मे ही कोई तथाकथित सर्वशक्ति-मान परमेश्वर नही है तो हमारी सारी भक्ति, रेत मे से तेल निकालने के प्रयत्नों के समान, व्यर्थ ही जायेगी। हाँ, भक्ति से एक लाभ अवश्य होता है। जितने समय के लिये कोई व्यक्ति भक्ति करता है, उतने समय के लिये उस के विचारों में कुछ पवित्रता अवश्य आ जाती है। मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारे तथा गिरजाघर के अन्दर जाकर अधिकाश व्यक्ति अपने मन से बुरे विचारों को दूर ही रखने का प्रयत्न करते है। व अपने अवगुणो को दूर करने और सद्गुणो को ग्रहण करने की बात सोचते रहते है। इसलिये उतने समय के लिये न तो उनके मन मे कोई बुरी भावना ही आती है और न उनसे कोई बुरा कार्य ही होता है। ऐसा करने से उनके शुभ कर्मों का संचय होता है, जिनका उनको अच्छा फल मिलता है।

परन्तु हम देखते हैं कि आजकल भक्ति का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। अधिकांश व्यक्ति सच्ची, निःस्वार्थ व निष्काम भक्ति को भूल गये हैं। अधिकाश मे व्यक्ति उन्ही मन्दिरों, मस्जिदों, मजारों, गुरुद्वारों व गिरजाघरों आदि मे जाते हैं, तथा उन्हीं देवी-देवताओं, पीर-पैगम्बरों को पूजते है जिनके द्वारा उनको अपनी मनोकामना पूर्ण होने की आशा होती है। वे एक प्रकार का सौदा करते है कि हमारा अमुक कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो जायेगा तो हम यहां पर अमुक वस्तु भेंट करेंगे। कभी-कभी यह भेंट पेशगी भी दे दी जाती है। तथ्य तो यह है कि यह भक्ति नहीं, अपितु भक्ति का ढ़ोंग मात्र है। इस प्रकार की तथाकथित भक्ति से हम अच्छे कर्मों के बजाय बुरे कर्मों का ही संचय करते है और इस प्रकार की भक्ति के फलस्वरूप हम मुक्ति प्राप्त करने की बजाय संसार-चक्र में ही अधिकाधिक फंसते जाते है। बहुत से व्यक्तियो ने तो भक्ति के भजन गाना अपना व्यवसाय ही बना लिया है। जिन भक्ति के भजन गाने के बदले में हम रुपये वसूल कर लेते है, क्या वह सच्ची भक्ति मानी जायेगी ?

यहां एक प्रश्न यह उठता है कि इन विशेष मन्दिरो, मस्जिदों दरगाहो, गुरुद्वारो, गिरजाघरो तथा उन देवी-देवताओ व पीर-पैगम्बरो आदि मे कुछ तो विशेषता होगी ही जो इनकी इतनी अधिक मान्यता हो गयी ?

यह ठीक है कि कुछ धार्मिक स्थानो तथा देवी-देवताओ आदि की मान्यता बहुत अधिक है, परन्तु यह इनके मानने वालों की भौतिक पदार्थों की आकाक्षाओ और उनके अन्ध-विश्वास के ही कारण है। यदि केवल इन स्थानों पर जाने से और इन देवी-देवताओ आदि को पूजने से ही व्यक्तियों की मनोकामनाएं पूर्ण हो सकती होतीं तो, जितने भी व्यक्ति वहां जाते हैं, उन सभी की मनोकामनाए पूर्ण हो जानी चाहियें थी। परन्तु ऐसा कभी नहीं होता। वहा पर हजारों-लाखो व्यक्ति जाते हैं परन्तु मनोकामनाए केवल कुछ व्यक्तियों की ही पूर्ण होती है। वास्तविकता तो यह है कि जिस सुफल को ये व्यक्ति इन धार्मिक स्थानो में जाने तथा देवी-देवताओ के दर्शन का परिणाम मान बैठते है, वे सुफल उन व्यक्तियो के स्वयं अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे कार्यों के ही परिणाम है। अर्थात् जिन व्यक्तियों का भाग्य अच्छा होता है उनकी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती है और जिन व्यक्तियों का भाग्य अच्छा नहीं होता उनकी मनोकामनाएं, अनेकों बार वहां जाने पर भी, पूर्ण नही होती।

यदि हमको भक्ति करनी ही है तो हमको निःस्वार्थ व निष्काम भावनाओ से अपने आदर्श देव के गुणो का स्मरण करना चाहिये और उनके

पद-चिह्नों पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे कि हम भी उन्हीं के समान अपनी आत्मा को उन्नत व पवित्र कर सकें।

हमें केवल भौतिक सुख प्राप्त करने लिये ही भक्ति नहीं करनी चाहिये। जिस प्रकार अनाज उत्पन्न करने पर हमको भूसा अपने आप ही मिल जाता है, उसी प्रकार सच्ची, निष्काम व निस्वार्थ भक्ति करने से हमारी आत्मा तो पवित्र होती ही है, भौतिक सुख भी हमें बिना प्रयास के ही प्राप्त हो जाते हैं।

हम यहां एक बार फिर वतला दे कि किसी भी तथाकथित सर्वशक्तिमान परमेश्वर, देवी-देवता व पीर-पैगम्बर आदि में इतनी शक्ति नहीं है कि वे हमको सुख दे सकें। सुख तो हमें अपने ही द्वारा किये हुए अच्छे कार्यों के फलस्वरूप ही मिल सकता है।

एक बात और भी है। ऐसे भी बहुत से व्यक्ति है जो दिन-रात तो अच्छे व बुरे कार्य करते रहते हैं, परन्तु प्रतिदिन एक बार या दो बार भगवान के मन्दिर में हो आते है, कुछ भक्ति कर लेते है तथा अपनी हैसियत के अनुसार मन्दिर में चढ़ावा भी चढ़ा देते है। वे समझते हैं कि ऐसा करने से उनके दिन भर के किये हुए पाप धुल जाते हैं। इनमें से कुछ व्यक्ति व्यापार में हर प्रकार की दगाबाजी व बेईमानी करते है। वस्तुओं में मिलावट करते है, नकली वस्तुए बनाकर उनको असली कहकर बेचते हैं तथा अनुचित लाभ कमाते हैं। इसी प्रकार इनमें से कुछ व्यक्ति व्यापार तो नही करते परन्तु अन्य प्रकार के भ्रष्ट तरीके अपनाकर धन-वैभव इकट्ठा करते रहते हैं। ये व्यक्ति कहते हैं कि व्यापार व दुनियादारी अपनी जगह है और नैतिकता व सदाचार अपनी जगह। इन दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु यह केवल उनका भ्रम ही है। यदि हम वास्तव मे ही सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो हमे अपना प्रत्येक क्षण सदाचार व नैतिकता पूर्वक व्यतीत करना चाहिये। दिन भर में की हुई अनैतिकता को हम थोड़ी देर मन्दिर में आकर कुछ देर के लिये भक्ति करके और मन्दिर में चढ़ावा चढ़ा कर धो नहीं सकते। इस प्रकार के दिखावे से तो हमारे बुरे कर्मों का ही संचय होगा, जिनका बुरा फल हमें भविष्य में भोगना पड़ेगा। इस प्रकार के आचरण से हमारे परिचित व्यक्ति भी, चाहे वे मुंह से कुछ नहीं कहें, अपने मन में तो हमें ढोंगी ही समझते हैं। अतः हमें इस प्रकार की थोड़ी सी देर की भक्ति के स्थान पर अपना प्रत्येक क्षण सदाचार व नैतिकता पूर्वक ही व्यतीत करना चाहिये। इसी में हमारी अपनी व अन्य सबकी भलाई है।

क्या ज्ञान प्राप्त हो जाने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है ?

कुछ विचारकों की यह मान्यता है कि केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने से ही हमें मुक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु यह भी ठीक नही है। हमें अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व का वास्तविक ज्ञान भी हो गया, परन्तु जब तक हम उसके अनुसार आचरण नही करेंगे, तब तक कैसे तो हमारे पुराने कर्मों का आवरण हमारी आत्मा से अलग होगा और कैसे भविष्य मे नये-नये कर्मा का हमारी आत्मा स बधन रुकेगा ?

इस सम्बन्ध मे हम एक उदाहरण देते है। एक रोगी है। उसको इस बात का ज्ञान है कि उसका अमुक रोग है तथा अमुक औषधि, अमुक अनुपात से सेवन करने स उसका राग दूर हो सकता है। परन्तु क्या केवल इतना ज्ञान होने से ही उसका राग दूर हो सकेगा ? निरोग होने के लिये तो उसे ठीक औषधि का ठाक अनुपात स सेवन करना ही पड़ेगा, तभी उसका रोग दूर हा सकेगा। इसी प्रकार हमे दिल्ली से मथुरा जाना है। हमे दिल्ली से मथुरा जाने वाले मार्ग का ज्ञान भी है। परन्तु क्या केवल मार्ग का ज्ञान हा जाने से ही हम मथुरा पहुच जायेगे ? अपितु हम उस मार्ग पर चलेंगे तभी हम दर या सवेर मथुरा पहुच सकेंगे।

इस प्रकार हम देखते है कि आचरण किये बिना केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने से ही हमे मुक्ति प्राप्त नही हो सकती।

क्या परोपकार से मुक्ति प्राप्त हो सकती है ?

कुछ सज्जन यह कहते है कि केवल परोपकार करने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। किन्तु वे व्यक्ति भी भ्रम मे ही है। हमको केवल परोपकार करने से ही मुक्ति प्राप्त नही हो सकती। हमारे ऐसा कहने का तात्पर्य यह नही है कि "क्योकि परोपकार करने से मुक्ति प्राप्त नही होती, इसलिये हमे परोपकार नही करना चाहिये"। इसके विपरीत हम तो यह कहते है कि परोपकार करना बहुत अच्छा है और हमे सदैव ही परोपकार करते रहना चाहिये। परन्तु जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं—परोपकार निष्काम व नि:स्वार्थ भावना से किया जाना चाहिये। परोपकार करने पर हमारे मन में अहकार की भावना, कर्तृत्व की भावना (मैं उपकार करने वाला हूं) या बदले मे मान-सम्मान पाने की भावना, या हम जिस का उपकार करें, उससे किसी प्रकार का प्रतिफल पाने की भावना भी कतई नही आनी चाहिये। दया-भावना से, नि:स्वार्थ-भावना से तथा कर्तव्य समझकर किया हुआ परोपकार ही सच्चा परोपकार है।

हम यहां पर एक तथ्य और स्पष्ट कर देना चाहते हैं। हम पहले

भी कई बार बतला चुके हैं कि हमारी आत्मा के ऊपर अच्छे व बुरे कर्मों का आवरणपड़ा हुआ है और यह कर्मों का आवरण ही हमें इस विश्व में विभिन्न योनियों में नये-नये शरीर धारण करने व सुख और दुःख देने के लिये उत्तरदायी है। जब तक यह कर्मों का आवरण हमारी आत्मा से बिल्कुल अलग नहीं हो जाता और हमारी आत्मा अत्यन्त निर्मल नहीं हो जाती, तब तक हमको मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। हम चाहे अच्छे कार्य करें या बुरे कार्य, अपनी भावनाओं के अनुसार ही हमारे अच्छे व बुरे कर्मों का संचय होता रहता है और हम इन कर्मों के बंधन में बंधते रहते हैं। जिस प्रकार किसी पक्षी को सोने के पिंजरे में बंद रक्खें या लोहे के पिंजरे में, वह दोनों अवस्थाओं में बन्दी ही रहेगा। इसी प्रकार आग चाहे चन्दन की लकडी की हो, चाहे अन्य साधारण लकडी की, दोनों प्रकार की आग में हाथ डालने से हाथ के जलने का डर होता है। ऐसे ही हथकडी चाहे लोहे की बनी हुई हो, चाहे सोने की बनी हुई, दोनों प्रकार की हथकड़ी बांधने का ही काम करेंगी। कुछ इसी प्रकार अच्छे व बुरे कर्मों को भी बन्धन समझना चाहिये। दोनों ही प्रकार के कर्म इस विश्व में भ्रमण कराने वाले ही हैं। अन्तर इतना ही है कि बुरे कर्म हमें दुख देते रहते हैं। और अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हमें सांसारिक सुख प्राप्त होता रहता है। इसलिये मुक्ति प्राप्त करने के लिये हमें बुरे कार्यों के साथ-साथ अच्छे कार्यों को भी छोड़ना पड़ता है। (इसीलिये हमने कहा था कि परोपकार करने से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।) इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम बुरे कार्य करना छोड़ें या न छोडें, अच्छे कार्य करना तो छोड ही दें। इसके विपरीत हमें बुरे कार्य तो तुरन्त ही छोड देने चाहियें। हम मनसा, वाचा, तथा कर्मणा पूर्ण अहिंसक बनने की साधना करते रहें। जब तक हमारा जीवन पूर्ण अहिंसामय न हो जाये, तब तक यथासम्भव हम अच्छे कार्य व परोपकार निष्काम व निःस्वार्थ भावना से ही करें। निष्काम व निःस्वार्थ भावना से किये हुए अच्छे कार्यों से कर्मों के संचय होने की सम्भावना बहुत कम हो जायेगी। जब हम पूर्ण रूप से निष्काम व निःस्वार्थ हो जायेंगे तब हमसे सहज-भाव से ही, कर्तृत्व की भावना के बिना ही अच्छे कार्य होने लगेंगे। इस प्रकार के कार्यों से हमारे किसी भी प्रकार के कर्मों के संचय होने की सम्भावना बिल्कुल ही नहीं रहेगी।

"अच्छे कार्यों से कर्मों का संचय होता है, और मुक्ति प्राप्त करने में बाधा पड़ती है," ऐसा कहकर जो सज्जन अच्छे कार्य करने का निषेध करते हैं, वे अपने अनुयायियों को उलटे मार्ग पर ले जाते हैं। बुरे कार्य तो हमसे छूटे नहीं, मन में हमारे दुर्भावनाएं आती रहें और अच्छे कार्य

करना हम छोड दें, यह बात कैसे तर्क-सम्मत मानी जा सकती है ? यह बात ठीक है कि अच्छे कार्य हमें मुक्ति प्राप्त नहीं कराते, परन्तु यह भी सत्य है कि अच्छे कार्यों से हमें मुक्ति प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलती है। हमने पिछले जन्मों में जो अच्छे कार्य किये थे, उनके फलस्वरूप ही हमको मनुष्य जन्म मिला है, ज्ञान व विवेक मिला है, अपनी आत्मा का कल्याण कर सकने वाली बातें सुनने व समझने का सुअवसर मिला है। आज हमें ऐसी सुविधाएं व साधन मिले हैं कि हम चाहें तो मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकें। यदि पिछले जन्मों में हमने अच्छे कार्य न किये होते तो क्या ये सब सुविधायें व साधन मिलने सम्भव थे ? यदि वर्तमान में भी हम अच्छे कार्य करेंगे, तो भविष्य में भी हमें ऐसी ही सुविधायें व साधन उपलब्ध होते रहेंगे, जिससे कि हम अपने लक्ष्य की ओर सुगमता से व शीघ्रता से बढ सकेंगे। जिस प्रकार नदी को पार करने के लिये नाव हमारी सहायता करती है, और छत पर जाने के लिये सीढी हमारी सहायता करती है, परन्तु नदी के पार पहुंच जाने पर नाव की और छत के ऊपर पहुंच जाने पर सीढी की कोई आवश्यकता नहीं रहती, इसी प्रकार मुक्ति प्राप्त करने के लिये हमारे द्वारा किये हुए अच्छे कार्य हमारी सहायता करते हैं। परन्तु जब हम अपनी साधना के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच जायेंगे तो अच्छे कार्य भी हमसे स्वयमेव ही छूट जायेंगे। वास्तविकता तो यह है कि वह अवस्था अपने आप ही ऐसी होती है कि जब करने को कुछ रहता ही नहीं है। अतः सर्वोच्च अवस्था तक पहुंचने से पहले हमें अच्छे कार्य करते रहने चाहियें। जितने अधिक निष्काम व निःस्वार्थ भाव से हम ये अच्छे कार्य करेंगे, कर्मों के संचय होने की सम्भावना उतनी ही कम होती जायेगी।

कुछ सज्जन मुक्ति के अस्तित्व और उसके स्वरूप के विषय में, जैसा कि हमने पिछले पृष्ठों में बतलाया है, शंका करते हैं। उनसे हमारा निवेदन है कि यदि हम थोडी देर के लिये यह मान भी लें कि किसी भी प्राणी को इस विश्व में कभी मुक्ति नहीं मिलती तथा इस जन्म से पहले और इस जन्म के पश्चात किसी भी प्राणी का कोई अस्तित्व ही नहीं होता, तो ऐसी दशा में भी हमारे सामने दो परिस्थितियां तो रह ही जाती हैं, (जिनको प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन देखता है) पहली अपेक्षाकृत अधिक सुख की और दूसरी अपेक्षाकृत अधिक दुःख की। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति अधिक सुख की परिस्थितियों में रहना ही पसन्द करेगा। अब तनिक गम्भीरतापूर्वक विचार करके देखिये कि यह अपेक्षाकृत अधिक सुख की अवस्था हमारे किन कार्यों की परिणाम है। स्पष्ट है कि सुख की अवस्था हमारे बुरे कार्यों की परिणाम तो कतई नहीं हो सकती। अतः इसमें संदेह नहीं कि यह अवस्था तो हमारी राग-द्वेष-विहीन (वीतरागता की) भावनाओं, हमारे

अहिंसक आचरण और हमारे अच्छे कार्यों की परिणाम ही हो सकती है। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि मोक्ष (मुक्ति) जैसे किसी स्थान का अस्तित्व हो अथवा न हो, हमारी वीतरागतापूर्ण भावनाओं, हमारे अहिंसक आचरण और हमारे अच्छे कार्यों का परिणाम सदैव आनन्ददायक ही निकलेगा। इसलिये हमें अपनी भावनाएं व आचरण वीतरागतापूर्ण व अहिंसक रखना ही श्रेयस्कर है।

●

सोना, चांदी, हीरा, मोती, धन, सम्पत्ति, राज्य-वैभव तो प्राप्त करना सुलभ है, परन्तु सच्चे-ज्ञान की प्राप्ति होना दुर्लभ है। अतः निरन्तर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति का ही प्रयत्न करते रहो।

●

तेरा शरीर जीर्ण होता जा रहा है, तेरे केश पक कर श्वेत हो चले है, तेरे शरीर की समस्त शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतएव तू क्षण भर के लिये भी प्रमाद मत कर और अपनी आत्मा का कल्याण कर ले।

●

सिर का मुण्डन करा लेने से कोई श्रमण नहीं हो जाता, ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता, वन में रहने से कोई मुनि नहीं हो जाता और कुश-चीवर धारण करने से कोई तापस नही हो जाता।

अपितु

समता धारण करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण होता है, ज्ञान का उपार्जन करने से मुनि होता है और तप करने से तापस होता है।

●

समर्थ व्यक्तियों के लिए अधिक बोझा क्या? पुरुषार्थी व्यक्तियों के लिये दूरी क्या? विद्वानों के लिये विदेश क्या? प्रिय बोलने वालों के लिये पराया कौन?

पंच तन्त्र

●

अन्य इन्द्रियों को जीतने वाले मनुष्य ने जब तक रसना-इन्द्रिय अर्थात् स्वाद को नहीं जीत लिया, तब तक उसे जितेन्द्रिय नहीं कह सकते।

श्री वेद व्यास जी

इष्टदेव कौन ?

यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि हमारा इष्टदेव कौन हो सकता है ? इस पृथ्वी के अधिकांश व्यक्ति किसी-न-किसी को अपना इष्टदेव मानते हैं। अतः हम अपना इष्टदेव किसे मानें ?

इस सम्बन्ध में निवेदन है कि साधारणतया व्यक्ति उनको ही अपना इष्टदेव मानते हैं जिनसे वे अपनी मनोकामना पूर्ण होने की सम्भावना देखते हैं। यदि कोई व्यक्ति पहलवान बनना चाहता है तो वह किसी बडे पहलवान को अपना गुरू बनायेगा, उसकी सेवा करेगा, उससे कुश्ती के दांव पेंचों की शिक्षा लेगा और पहलवान बनने के लिये अपने उस गुरू के द्वारा सिखलाये गये दांव-पेंचों का अभ्यास करेगा। किसी व्यक्ति को जुआ खेलने में रुचि है, तो वह किसी पक्के जुआरी का शिष्य बनेगा, उसकी सेवा करेगा, और उससे हाथ की सफाई (हथकण्डे) सीखेगा। यदि किसी व्यक्ति को धनवान बनना है, तो वह किसी धनवान व्यक्ति को अपना आदर्श बनायेगा, उसकी सेवा शुश्रूषा करेगा और उसके पद-चिह्नों पर चलेगा।

परन्तु हम सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने का लक्ष्य लेकर चले हैं। अत हमें किन्ही ऐसे महापुरुष की खोज करनी होगी, जिन्होंने हमारी जैसी साधारण स्थिति से ऊपर उठकर सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त किया हो। (सच्चे व स्थायी सुख की परिभाषा हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं।) हमें ऐसे ही महापुरुष को अपना आदर्श बनाना होगा और उन्ही के पद-चिह्नों पर चलना होगा। उनके पद-चिह्नों पर चलकर ही हम सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। ऐसे महापुरुष की बजाय यदि हमने किसी अन्य व्यक्ति को अपना आदर्श बना लिया, तो हम कभी भी सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त नहीं कर सकेंगे। क्योंकि जिस व्यक्ति ने स्वयं ही सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त नही किया है, जो स्वयं ही इस विश्व में सुख व दुःख भोगने के चक्कर में पड़ा हुआ है, वह हमें सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये मार्ग-निर्देश कैसे कर सकता है ? हमारे ज्ञान व विवेक की परीक्षा तो इसी बात में है कि हम अपने लक्ष्य के अनुसार ही सच्चे इष्टदेव का चुनाव कर सकें।

इस सम्बन्ध में एक विचारक का निम्नलिखित श्लोक इष्टदेव के चुनाव करने में हमारा मार्ग-निर्देश करने में बहुत सहायक हो सकता है।

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभू भृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ।।

अर्थ — जो मोक्ष-मार्ग के नेता है, जिन्होंने कर्मरूपी पर्वतों को नष्ट कर दिया है, जिन्होंने विश्व के समस्त तत्त्वों को जान लिया है, उनको मैं उनके गुणो की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूं ।

इस श्लोक के पहले चरण में उन विचारक ने मोक्षमार्ग के नेता की ओर संकेत किया है । उन विचारक ने न तो उस व्यक्ति की ओर संकेत किया है जो मोक्षमार्ग का उपदेशक है और न उस प्राणी की ओर संकेत किया है जो सदैव से मोक्ष में ही स्थित है (यदि ऐसा कोई प्राणी हो तो) क्योंकि जो उपदेशक है वह केवल उपदेश देता है, यह आवश्यक नही कि वह स्वयं भी उस उपदेश पर चले । इसीलिये यह कहावत प्रचलित है "पर उपदेश कुशल बहुतेरे' । फिर, जो प्राणी सदैव से ही मोक्ष मे स्थित है, उससे हम जैसे साधारण व्यक्ति कैसे शिक्षा ग्रहण कर सकते है और कैसे उसके पद चिह्नो पर चल सकते हैं ? किन्तु नेता वह व्यक्ति होता है जो हम जैसा ही साधारण व्यक्ति होता है, परन्तु वह स्वयं आगे चलता है, हर प्रकार के सुख-दु.ख मे समता भाव धारण कर पूर्ण वीतरागता के द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त करता है और इस प्रकार पीछे आने वालों के लिये मार्ग दिखा जाता है । हमे ऐसे ही नेता को अपना मार्ग-दर्शक बनाना है, जिसने हमारी जैसी ही साधारण स्थिति से ऊपर उठ कर स्वयं अपने हो प्रयत्नो के द्वारा मोक्ष प्राप्त किया हो । हम भी उसी नेता के पद-चिह्नों पर चलकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

इस श्लोक के दूसरे चरण में उन विचारक ने उन महापुरुष की ओर संकेत किया है, जिन्होंने कर्म रूपी पर्वतों को नष्ट कर दिया है । यहां पर भी उन विचारक ने न तो उस व्यक्ति की ओर संकेत किया है, जिसकी आत्मा के साथ कर्मों का आवरण लगा हुआ है और न उस मुक्तात्मा का नाम-निर्देश किया है जो सदैव से ही कर्मों के आवरण से बिल्कुल मुक्त है । हम पहले भी बतला चुके है कि प्रत्येक प्राणी की आत्मा के साथ अनादिकाल से अच्छे व बुरे कर्मों का आवरण लगा हुआ है और जब तक यह प्राणी कर्मों के इस आवरण को अपनी आत्मा से अलग नहीं कर देता, वह उन कर्मों के फलस्वरूप विश्व में नये-नये शरीर धारण करता रहेगा और सुख व दु:ख भोगता रहेगा । अतः मोक्ष प्राप्त करने के लिये हमें अपनी आत्मा से इन कर्मों को अलग करना आवश्यक है । ये कर्म प्रत्येक प्राणी के अपने ही सम्यक प्रयत्नों से अलग हो सकते हैं । किसी भी प्राणी में इतनी शक्ति नहीं

है कि वह किसी अन्य प्राणी के कर्मों को उस प्राणी से अलग कर सके। इसीलिये उन विचारक ने उन महापुरुष की ओर संकेत किया है जो पहले हमारे समान ही कर्मों से लिप्त थे, परन्तु जिन्होने स्वयं अपने ही सत-पुरुषार्थ से अपने समस्त कर्मों को अपने से अलग करके अपनी आत्मा को अत्यन्त निर्मल कर लिया है।

इस श्लोक के तीसरे चरण में उन विचारक ने उन महापुरुष की ओर संकेत किया है, जिन्होने इस विश्व के समस्त चेतन व अचेतन पदार्थों की भूत, वर्तमान व भविष्य तीनो काल की समस्त अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहा पर भी उन विचारक ने न तो उस व्यक्ति की ओर संकेत किया है, जिसके ज्ञान में कुछ कमी है और न उस प्राणी की ओर संकेत किया है जो सदैव से ही पूर्ण ज्ञानी है। क्योकि जिसके स्वय के ज्ञान में ही कमी है वह दूसरो को सच्चा तथा सम्पूर्ण ज्ञान कैसे दे सकेगा और उसका ज्ञान अपूर्ण होने के कारण, उसके ज्ञान को प्रमाणिक कैसे माना जा सकेगा? तथा जो प्राणी सदैव से ही पूर्ण ज्ञानी है, उससे हम कैसे तो मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकेंगे और कैसे उसके पद-चिह्नों पर चल सकेंगे? प्रत्येक आत्मा स्वभाव से ही सर्वज्ञ (सम्पूर्ण ज्ञान वाली) होती है, परन्तु उसके ऊपर कर्मों का आवरण पड़ा होने से उसका पूर्ण ज्ञान-गुण प्रकट नही हो पाता। जितना-जितना यह कर्मों का आवरण हलका होता जाता है आत्मा का ज्ञान गुण अधिकाधिक प्रकट होता जाता है। अत जिस महापुरुष ने सम्पूर्ण कर्मों को अपनी आत्मा से अलग कर दिया है, वही महापुरुष पूर्ण ज्ञानी हो सकता है और जो पूर्ण ज्ञानी होता है, उसी का बतलाया हुआ ज्ञान ही प्रामाणिक माना जाता है।

यहा पर हम एक तथ्य और स्पष्ट करदें। ऊपर के श्लोक के तीन चरणो में जिन महापुरुष की ओर संकेत किया गया है, वह एक ही व्यक्ति है, न कि तीन अलग-अलग व्यक्ति।

इस श्लोक के चौथे व अन्तिम चरण मे उन विचारक ने कहा है कि मैं उन महापुरुष की, जो मोक्ष-मार्ग के नेता है, जिन्होने अपने समस्त कर्मों को नष्ट कर दिया है, जिन्होने इस विश्व के तीनो कालो के समस्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है—वन्दना करता हू। परन्तु वन्दना क्यो करता हू? मैं किसी भौतिक सुख व ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा से नही, अपितु उनके गुणों को (जो मेरे भीतर छिपे है) मैं भी अपने मे प्रकट कर सकू, इसलिये मैं उन महापुरुष की वन्दना करता हू। वे महापुरुष मुझे अपने गुण प्रदान नही करेंगे, वे गुण तो मुझे अपने प्रयत्नो से ही, उनके पद चिह्नों पर चलकर प्रकट करने होंगे।

इन्हीं विचारों को एक अन्य विद्वान् ने इस प्रकार व्यक्त किया है:—

जिनने राग-द्वेष, कामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया,
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उनको स्वाधीन कहो,
भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उन्ही में लीन रहो।

अर्थात् जिन्होंने अपने राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि समस्त विकारों पर विजय प्राप्त करली है, जिन्होने इस विश्व को सम्पूर्ण रूप में जान लिया है, जिन्होने नि.स्वार्थ भाव से समस्त प्राणियों को मोक्ष-मार्ग का उपदेश दिया है, उन्हें बुद्ध, महावीर, जिनेन्द्र, हरि, हर, ब्रह्मा या स्वाधीन आदि किसी भो नाम से पुकारें, उन्ही महापुरुष के गुणों में मेरा चित्त भक्ति-भाव पूर्वक लगा रहे।

अतः हमे ऐसे ही महापुरुष को अपना आदर्श—अपना इष्टदेव—मानना होगा, जिनके पद-चिह्नों पर चलकर हम भी मोक्ष अर्थात् सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त कर सकें।

इष्टदेव के सम्बन्ध में हम पाठकों की दृष्टि मे एक और तथ्य भी लाना चाहते है। ऊपर हमने जिन दो विद्वानों के मन्तव्य दिये हैं, उन दोनो ने इष्टदेव के रूप मे किसी विशेष प्राणी या किसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर की ओर सकेत नही किया है। यदि उनकी दृष्टि किसी विशेष प्राणी या तथाकथित किसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर की ओर होती, तो वे केवल यही कहते कि हमको उस विशेष प्राणी अथवा उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की भक्ति करनी चाहिये। इसके विपरीत उन्होने ऐसे महापुरुषों की ओर संकेत किया है जो उपर्युक्त गुणों से विभूषित हों। जिन किन्ही भी प्राणियों में ये गुण विद्यमान हैं वे सभी महापुरुष वन्दनीय हैं। ऐसे महापुरुष एक नहीं अनेकों हो सकते है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि हम प्रयत्न करे, तो हम भी अपने में उक्त गुण उत्पन्न कर सकते है और हम भी उन्ही महापुरुषों की श्रेणी में बैठने के अधिकारी हो सकते हैं। वास्तविकता तो यह है कि जिन गुणों का इन विद्वानो ने उल्लेख किया है, वे गुण तो प्रत्येक आत्मा में प्राकृतिक रूप से विद्यमान हैं, परन्तु उन गुणों पर कर्मों का आवरण पडा हुआ होने के कारण वे गुण पूर्ण रूप से व्यक्त नही हो पाते। जब हम प्रयत्न करके उस कर्म रूपी आवरण को अपनी आत्मा से अलग कर देंगे, तो वे गुण पूर्ण रूप से व्यक्त हो जायेगे और हम भी उन्हीं महापुरुषों की श्रेणी में अपना स्थान बना लेंगे।

इष्टदेव की भक्ति क्यों ?

यहां पर एक शंका यह उठती है कि जब इष्टदेव निर्विकार व कृत-कृत्य होने के कारण हमारी पूजा व भक्ति से प्रसन्न नही होते और हमारे द्वारा निन्दा करने से अप्रसन्न नही होते तथा वे न तो किसी को वरदान ही देते हैं और न किसी को श्राप ही, तब उन इष्टदेव की पूजा व भक्ति क्यों की जाये ?

इसके उत्तर मे निवेदन है, कि यह ठीक है कि इष्टदेव हमें कुछ लाभ व हानि नही पहुचाते, परन्तु सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये हम उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त करते है । उनके गुणो का स्मरण करने से हमे अपने आत्मिक गुणो की अनुभूति होती है, जिसके कारण हम में यह विश्वास दृढ होता है कि उनके द्वारा दिखलाये गये मार्ग पर चलने से हम भी उन जैसा ही पद प्राप्त कर सकते है । ऐसा श्रद्धान होने पर हमारे हृदय में उनके प्रति बहुमान उत्पन्न होता है और हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने लगते है । यह बहुमान व कृतज्ञता-ज्ञापन ही पूजा व भक्ति का रूप ले लेती है ।

अनेक बार ऐसा होता है कि किन्ही चेतन प्राणियो के द्वारा उनके न चाहते हुए और उनको विदित न होते हुए भी, हमारा उपकार हो जाता है । इसी प्रकार अचेतन पदार्थों (बेजान वस्तुओ) से भी हमारा उपकार हो जाता है । इसको स्पष्ट करने के लिये हम कुछ उदाहरण देते है ।

हम घर से कोई वस्तु, मान लीजिये एक पुस्तक, लेकर चलते है। रास्ते में हम कई स्थानो पर रुकते है । एक स्थान पर पुस्तक रखकर हम भूल जाते है और बिना पुस्तक लिये ही आगे बढ जाते है। कुछ दूर जाने पर हम एक व्यक्ति को देखते है, जिनके हाथ मे एक पुस्तक होती है । उस पुस्तक को देखते ही हमे अपनी पुस्तक की याद आ जाती है कि हम घर से एक पुस्तक लेकर चले थे और वह रास्ते में कही भूल आये है। हम याद करने का प्रयत्न करते है कि घर से चलकर हम कहा-कहा रुके थे और पुस्तक कहा पर छूट जाने की सम्भावना हो सकती है। फिर वहा पहुचकर हम अपनी पुस्तक ले आते है । हम मन ही मन में उस व्यक्ति की पुस्तक का बहुत उपकार मानते है कि उस पुस्तक के कारण हमें अपनी पुस्तक की याद आ गयी और भूली हुई हमारी पुस्तक मिल गयी । अब आप ही सोचिये कि वह पुस्तक बेजान वस्तु होने के कारण उसके मन में हमारे प्रति उपकार करने की इच्छा करने का तो प्रश्न ही नही उठता, फिर भी उस पुस्तक के कारण हमारा उपकार हो ही गया।

हम एक वेश्या का या कोई अन्य अश्लील चित्र देखते हैं तो हमारे मन

में बुरे व कुत्सित विचार उठने लगते हैं। हम अपनी माता का चित्र देखते हैं, तो हमारे मन में सम्मान के भाव उठने लगते है। हम अपने देश पर बलिदान हो जाने वाले वीरो के चित्र देखते हैं, तो हमारे मन में देश-भक्ति के भाव उठने लगते है और हम सोचते हैं कि उनकी तरह हम भी देश पर बलिदान हो जाये। जो व्यक्ति मूर्ति-पूजा मे श्रद्धान नही रखते, वे भी अपने सम्प्रदाय के महापुरुषो के चित्रो का तथा अन्य धार्मिक चित्रो व प्रतीको का बहुत सम्मान करते है। अब आप ही सोचिये कि ये चित्र कहने को तो बेजान कागज ही है, परन्तु भिन्न-भिन्न चित्रो को देखकर हमारे मन मे भिन्न-भिन्न भावनाए उठने लगती है।

हम यदा-कदा समाचार पत्रो मे पढ़ते है कि अमुक अभिनेत्री/सुन्दर महिला के लिये अमुक युवक पागल-सा हुआ फिर रहा है। वह अपना घर बार छोडकर उस महिला के नगर मे आ गया है और उसके मकान के बाहर चक्कर लगाता रहता है। अब आप ही बतलाइये कि न तो उस महिला ने यह चाहा था और न उसने कहा ही था कि कोई व्यक्ति उसके लिये अपनी ऐसी दशा बनाले। परन्तु फिर भी, उस महिला के कारण उस युवक की ऐसी दशा हो गयी।

हम और उदाहरण लेते है। एक छोटा-सा शेर का बच्चा अपनी मां से बिछुड कर बकरियो के बच्चों में आ मिला। वह उन बकरियो के बच्चो के साथ ही रहने लगा और उन्ही की आदतें सीखने लगा। जब वह कुछ बड़ा हुआ, तो उसने एक शेर को देखा। शेर को देखकर उसके साथ के बकरियो के बच्चे भागने लगे और वह भी उनके साथ ही भाग गया। एक दिन वह एक तालाब से जल पी रहा था कि उसकी दृष्टि अपने मुख पर पड़ गयी। उसने देखा कि उसकी आकृति तो बकरी की तरह नही अपितु शेर की तरह है। उस दिन से उसको अपनी वास्तविकता का ज्ञान हो गया। और अवसर पाते ही वह शेरों के पास चला गया और शेरों के साथ ही रहने लगा। अब आप ही सोचिये कि शेर ने उसको उसकी वास्तविकता तो नही बतलाई थी, फिर भी शेर को देखकर उसको अपनी वास्तविकता का ज्ञान हो गया।

इसी प्रकार अपने इष्टदेव के गुणों का स्मरण करने से तथा उनके गुणो को दर्शाते हुए उनके चित्रों व प्रतिमाओ को देखने से हमे भी अपनी आत्मा के गुणो का बोध होता है और हमें यह दृढ श्रद्धान हो जाता है कि यदि हम भी समुचित पुरुषार्थ करें, तो हम भी उनकी तरह ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

हम एक और उदाहरण देते हैं। गर्मी का मौसम है और दोपहर का

समय। हम मरुस्थल में चल रहे है। उस समय तेज़ धूप पड रही है और गरम हवाए चल रही है। गर्मी के कारण हमारा बुरा हाल है। ऐसे समय में हमें एक बड़ा तथा घनी छाया वाला वृक्ष दिखाई देता है। हम तुरन्त उस वृक्ष के नीचे जाते है और बहुत आराम का अनुभव करते हैं। हम सोचते है कि इस वृक्ष ने हमें आराम दिया। अब आप विचार करें कि न तो उस वृक्ष ने हमारे लिये छाया की व्यवस्था ही की और न वृक्ष ने हमें अपने पास बुलाया ही, फिर भी उस वृक्ष को हम आराम देने वाला मानते हैं। इसी प्रकार अपने सच्चे इष्टदेव के सामने अथवा उनके चित्र, उनकी प्रतिमा तथा उनके किसी प्रतीक के सामने हमे बहुत शान्ति प्राप्त होती है। इसीलिये हम कहते है कि इष्टदेव ने हमे शान्ति प्रदान की।

इसी आशय को बल देती हुई एक अग्रेजी कविता की दो पक्तिया हम यहा उद्धृत करते है :—

The lives of great men remind us,
That we can also make our lives sublime

अर्थात् महापुरुषो के जीवन चरित्र हमको यह स्मरण कराते है कि हम भी अपना जीवन श्रेष्ठ बना सकते है।

हम एक बार फिर पाठको का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाना चाहते है कि इष्टदेव न तो किसी को वरदान ही देते है और न किसी को श्राप ही। अत उनकी भक्ति करके उनसे किसी भी प्रकार के लौकिक लाभ की आशा रखना बालू-मिट्टी मे से तेल निकालने के समान ही व्यर्थ है। हा, ऐसी आशा करने से हम बुरे कर्मों का संचय अवश्य ही कर लेते है। एक सच्चा साधक उन इष्टदेव से अपने लिये किसी भी प्रकार के सासारिक सुख प्रदान करने तथा अपने शत्रुओ का अनिष्ट कर देने की प्रार्थना नही करता। वह साधक तो केवल उन इष्टदेव के गुणो का स्मरण करके उनसे अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिये मार्ग दर्शन प्राप्त करता है। हा, इतना अवश्य है कि जो व्यक्ति मन, वचन व शरीर की चचलता को त्याग कर एकाग्रचित्त से उन इष्टदेव के गुणो का स्मरण करता है और अपने मे उन गुणो को विकसित करने की भावना करता है, उस सच्चे साधक के कुछ बुरे कर्म अवश्य ही नष्ट हो जाते है और उसके अच्छे कर्मों का सचय होता है।

हम यहा पर इस तथ्य को फिर स्पष्ट करदें कि कोई भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर या कोई भी अन्य शक्ति किसी भी प्राणी को मुक्ति प्रदान नही कर सकती। जिस प्रकार किसी रोगी को निरोग होने के लिये स्वय ही कुपथ्य का त्याग और औषधि का सेवन करना पडता है तथा जिस प्रकार किसी व्यक्ति को हृष्ट-पुष्ट बनने के लिये स्वय ही व्यायाम करना व पौष्टिक भोजन का सेवन करना पड़ता है, उसी प्रकार मुक्ति प्राप्त करने के लिये प्रत्येक प्राणी को स्वय ही पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

प्राणियों को सुख व दुःख कौन देता है ?

पिछले पृष्ठों में हम अनेक बार यह कह आये हैं कि किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिलते है, वे उस प्राणी को अपने द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिलते है। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। इस विषय का ठीक-ठीक समाधान ही हमारे भविष्य के क्रिया-कलाप का आधार होगा। अतः इस विषय पर विस्तृत विवेचन आवश्यक है। क्योकि सत्य व वास्तविकता का ज्ञान हो जाने तथा उस पर दृढ विश्वास हो जाने पर हमारे पिछले दृष्टिकोण और नये दृष्टिकोण में बहुत अन्तर आ जाता है, जिसके फलस्वरूप हम सच्चे सुख के मार्ग पर अधिक दृढतापूर्वक अग्रसर हो सकते है।

हमे सुख व दुःख कौन देता है? इस प्रश्न के तीन उत्तर हो सकते हैं।

(१) जो विचारक किसी तथाकथित सर्वशक्तिमान परमेश्वर, अल्लाह व गाड (God) को इस विश्व का कर्त्ता, पालनकर्त्ता व हर्त्ता मानते है, वे यही कहते है कि इस विश्व मे उस परमेश्वर, अल्लाह व गाड (God) की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नही हिल सकता। इस मान्यता के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिलते है वे उस परमेश्वर, अल्लाह व God की इच्छानुसार ही मिलते है, अर्थात् वह परमेश्वर, अल्लाह व God ही सुख व दुःख देने वाले है।

(२) जिन प्राणियों के द्वारा सुख व दुःख दिया जा रहा है वही वास्तव में सुख व दुःख देने वाले है।

(३) इन दोनों विचारो के विपरीत हमारा तो यही दृढ़ विश्वास है कि किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिलते है वे उसके अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिलते हैं। जिन प्राणियो के द्वारा ये सुख व दुःख दिये जाते हैं वे तो निमित्त मात्र ही होते है।

अब हम इन तीनों सम्भावनाओं पर विचार करेंगे।

इन सम्भावनाओ पर विचार करने से पहले हमें अपने पाठकों के सम्मुख एक प्रश्न रखना है।

यह विश्व किसी नियम व कायदे से चल रहा है या बिना किसी नियम व क़ायदे के ही ?

यदि इस विश्व का कोई नियम ही नही है तब तो हमें कुछ कहनां ही नही है। क्योकि जहां पर कोई नियम व कायदा नही होता वहां पर तो 'तर्क' की बात करना ही व्यर्थ है वहा तो केवल जंगल का नियम ही लागू होता है, जैसे कि हम आम बोयें और पैदा हो जाये आलू तथा अपराध कोई करे और दण्ड किसी अन्य को मिले। (यदि इस विश्व का कोई नियम नही होता तो यह विश्व अनादि–काल से इस प्रकार व्यवस्थित रूप में चलता नही आता।)

इसके विपरीत यदि यह विश्व किन्ही नियमो व कायदो के अनुसार चल रहा है तो यह नियम यही हो सकना है कि "प्रत्येक कार्य (घटना) का कोई न कोई समुचित कारण होता है तथा जो जैसा करेगा उसको वैसा ही फल मिलेगा, अर्थात् जो प्राणी अच्छा कार्य करता है उसको उस अच्छे कार्य के फलस्वरूप पुरस्कार (सुख) मिलेगा और जो प्राणी बुरा कार्य करता है उसको उस बुरे कार्य के फलस्वरूप दण्ड (दु ख) मिलेगा।"

ऐसी स्थिति मे ऊपर दिये हुए सम्भावित उत्तरो पर विचार किया जा सकता है।

पहली सम्भावना पर विवेचन

अब हम पहली सम्भावना (अर्थात् परमेश्वर, अल्लाह व GOD ही सुख व दु ख देने वाले है) पर विचार करते है।

इस सम्बन्ध मे पहली शका तो यही उठती है कि इस विश्व मे किसी तथाकथित सर्व शक्तिमान परमेश्वर का अस्तित्व भी है या नही? (इस विषय पर हम पिछले पृष्ठो मे पर्याप्त विवेचन कर चुके हैं।)

यदि हम यह मान ले कि किसी तथाकथित सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अस्तित्व है तो भी इस सम्भावना के सम्बन्ध मे यह प्रश्न उठता है कि परमेश्वर, अल्लाह व COD किसी भी प्राणी को सुख व दुःख क्यो देते है?

इस सम्भावना को मानने वाले विचारक दो प्रकार की मान्यता वाले होते है। पहले तो वे, जो पुनर्जन्म को मानते है, और दूसरे वे जो पुनर्जन्म को नही मानते। जो विचारक पुनर्जन्म को मानते हैं वे यह कहते है कि जिन प्राणियो ने पिछले जन्मो मे अच्छे कार्य किये थे उनको परमेश्वर सुख देता है और जिन प्राणियो ने पिछले जन्मो मे बुरे कार्य किये थे उनको परमेश्वर दु ख देता है। इस मान्यता से यह शका उठती है कि जब सुख व दु ख तो प्राणियो को अपने ही किये हुए कार्यो के फलस्वरूप ही मिला, तो परमेश्वर ने इसमे क्या किया? यदि उनके किये हुये कार्यों को दृष्टि में न रख कर परमेश्वर अपनी इच्छा से ही प्राणियो को सुख व दुःख देता, तभी यह माना जा सकता था कि परमेश्वर ही सुख व दुःख देने वाला है।

एक शंका यह उठती है कि जब परमेश्वर की इच्छा से ही सारे कार्य होते है, तो विभिन्न प्राणी जो भी अच्छे व बुरे कार्य करते है, वे परमेश्वर की इच्छा के अनुसार ही करते हैं, तो उन प्राणियों को उन अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप सुख व दुःख क्यों दिये जाते है ? प्रत्येक देश के शासक अपराधियो को दण्ड देने के लिये पुलिस, जेलर, वार्डन आदि नियुक्त करते हैं। ये व्यक्ति अपराधियो को शारीरिक व मानसिक कष्ट देते है। क्योंकि ये कष्ट देश के नियमो के अनुसार और न्यायाधीश के आदेश पर दिये जाते है इसलिए देश के शासक इन कष्ट देने वालो (पुलिस, जेलर, वार्डन आदि) को अपराधी नही मानते अपितु उनको वेतन व अन्य सुविधाये देते है। तब जो व्यक्ति परमेश्वर की इच्छा के अनुसार ही बुरे कार्य करते हैं तथा दूसरे प्राणियो को दु:ख देते है, उन व्यक्तियों को परमेश्वर अपराधी मानकर दु.ख क्यो देता है ? यह तो सरासर अन्याय हुआ जिसके लिये कोई भी व्यक्ति उस परमेश्वर को न्यायशील व विवेकशील नही कहेगा।

परमेश्वर, अल्लाह व GOD को ही सुख व दुःख देने वाले मानने वाले दूसरी प्रकार के विचारक वे है जो पुनर्जन्म को नही मानते। वे कहते हैं कि अल्लाह व GOD विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न परिस्थितियो में रख कर, उनको सुख व दु.ख देकर उनकी परीक्षा लेते रहते है। इस सम्बन्ध में एक शका यह उठती है वह अल्लाह व GOD विभिन्न प्राणियो मे यह भेद भाव क्यो और किस आधार पर करते हैं ? उन अल्लाह व GOD ने जिन व्यक्तियो को अच्छे स्वभाव का व धनवान बनाया है, वे बुरे कार्य कम ही करेंगे और जिन व्यक्तियो को उन अल्लाह व GOD ने निर्धन व बुरे स्वभाव का बनाया है वे अधिकांश मे बुरे कार्य ही करेंगे। और फिर जब सारे अच्छे व बुरे कार्य उन अल्लाह व GOD की इच्छानुसार ही होते हैं तो बुरे कार्य करने वालों को अपराधी मानकर उनको दण्ड (दु.ख) क्यों दिये जाते है ? यह कहा का न्याय है ? एक बात और, बड़ी आयु के व्यक्तियों के लिए हम एक बार यह भी मान लें कि वे अल्लाह व GOD उनकी परीक्षा लेने के लिये उनको दुःख देते है, परन्तु जो दुधमुंहे बालक जन्म से ही रोगी, अपंग, निर्धन व अनाथ होते है और दुःख पाते रहते हैं उनको ये कष्ट कौन सी परीक्षा लेने के लिये दिये जाते है ?

इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह सम्भावना कि परमेश्वर, अल्लाह व GOD ही प्राणियो को सुख व दुःख देते है तर्क संगत व न्याय संगत नहीं है।

दूसरी सम्भावना पर विवेचन

हम सबका यह अनुभव है कि कभी-कभी तो हमें दूसरे प्राणियों के

द्वारा दिये हुए सुख व दुःख मिल जाते हैं। और कभी-कभी हमें दूसरे प्राणियों के द्वारा दिये बिना ही, अपने आप ही सुख व दुःख मिलते रहते है।

हमारे माता-पिता व हमारे हितैषी हमारी हर प्रकार से भलाई करने व हमें सुख देने के लिए प्रयत्न करते रहते है जिसके फलस्वरूप हमें सुख मिलता है।

कोई व्यक्ति जानबूझ कर योजना बनाकर हमे शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुचाता है, कोई चोर हमारे धन की चोरी कर लेता है। ऐसे कार्यों के फलस्वरूप हमे दु ख मिलता है।

ये हमे दूसरे प्राणियो के द्वारा सुख व दुःख दिये जाने के उदाहरण है।

हमे कही से गडा हुआ धन मिल जाता है। कभी-कभी अचानक ही हमे व्यापार मे अतिरिक्त लाभ हो जाता है। इस धन लाभ के कारण हमे बहुत प्रसन्नता होती है और हम सुख का अनुभव करते है।

कभी-कभी चलते-चलते हमारा पैर फिसल जाता है अर्थात् हम अचानक ही घट जाने वाली किसी दुर्घटना मे फस जाते है जिसके फलस्वरूप हम घायल हो जाते है और हमे दु ख पहुचता है।

ये हमे अपने आप ही मिल जाने वाले सुख व दुःख के उदाहरण है।

प्रश्न यह है कि किसी प्राणी के द्वारा दिये बिना ही हमे ये सुख व दु.ख क्यो मिले ? क्या हमे ये सुख व दु ख किसी समुचित कारण के बिना ही मिल गये या ये सुख व दु.ख हमारे किन्ही अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिले है ? यदि हमे ये सुख व दु.ख किन्ही समुचित कारणो के बिना हो मिल गये, तब तो इस विश्व का कोई नियम ही नही रहा। इसके विपरीत यदि इस विश्व के कोई नियम व कायदे है तो ये सुख व दु.ख हमारे अपने द्वारा किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिले है। यद्यपि हमे अधिकाश मे इस तथ्य का ज्ञान नही होता कि इनमे से कौन सा सुख हमारे कौन से अच्छे कार्य का फल है और कौन सा दुःख हमारे कौन से बुरे कार्य का फल है। (बहुत सम्भव है कि ये अच्छे व बुरे कार्य हमने पिछले जन्मो मे किये हो जिनकी हमें अब याद नही है।) जब अनायास ही मिल जाने वाले इन सुखो व दु.खो को हम अपने द्वारा पूर्व मे किये गये अच्छे व बुरे कार्यो का फल मानते है तो जो सुख व दुःख हमें अन्य प्राणियो के निमित्त से मिलते रहते है, उन्हे भी हम अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कर्मो का फल क्यो न माने ?

एक बात और, क्या किसी व्यक्ति के द्वारा किसी अन्य प्राणी के लिये बुरा सोचने तथा उस प्राणी के प्रति बुरा करने से ही उस

प्राणी का निश्चित रूप से बुरा हो जाता है ? यदि ऐसा हो जाया करता तो आज हमारी पृथ्वी की दशा कुछ और ही होती। हमारी पृथ्वी पर शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका कोई न कोई शत्रु न हो व उसका बुरा चाहने वाला न हो। परन्तु क्या इन बुरा चाहने वालों के प्रयत्नो से उस व्यक्ति का निश्चित रूप से बुरा हो जाता है ? राजनीति में तो हम देखते है कि एक पक्ष के व्यक्ति विपक्ष के व्यक्तियो को शारीरिक व मानसिक कष्ट पहुंचाने के लिए सभी प्रकार के उपाय काम मे लाते है। कुछ व्यक्ति तो इसके लिए तंत्रो व मत्रो तक का प्रयोग करते है। परन्तु फिर भी अधिकाश में विपक्ष के व्यक्तियो का कुछ भी नही बिगड़ता। इसका कारण यही है कि जब तक किसी प्राणी का भाग्य अच्छा है तब तक उसको कोई भी किसी प्रकार की भी हानि नही पहुचा सकता। इन्ही अनुभवो के आधार पर एक कवि ने कहा है,

जाको राखे साइया, मार सके न कोय।
बाल न बाका हो सके, जो जग बैरी होय॥

इसी अर्थ को दर्शाने वाली एक और कहावत है, "कौओ के कोसने से बैल नही मरा करते।" अर्थात् कौआ सदैव यही चाहता है कि गाय-भैंस आदि पशु मरते रहे, जिससे उसको भरपेट मास मिलता रहे। परन्तु क्या कौओ के ऐसा सोचने से ही गाय-भैंस आदि पशु मर सकते है ?

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के द्वारा किसी अन्य प्राणी के प्रति भला सोचने व भला करने से क्या सदैव ही उस प्राणी की भलाई हो सकती है ? एक व्यक्ति अपने रोगी पुत्र के स्वास्थ्य-लाभ के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न करता है। परन्तु क्या उसके ऐसा करने से उसका रोगी पुत्र निश्चित रूप से ही निरोग हो जाता है ? वह पुत्र कभी स्वास्थ्य-लाभ कर भी लेता है और कभी नही भी करता। तथ्य यही है कि जब उस पुत्र का भाग्य अच्छा होता है तब वह स्वास्थ्य लाभ कर लेता है यदि उसका भाग्य अच्छा नही होता तो वह रोगी ही रहता है।

इसी संदर्भ मे एक प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति दूसरे प्राणियों को सुख व दुःख क्यों देते है ?

माता-पिता अधिकाश में अपनी सन्तान की इसीलिए देखभाल करते है और उसे सुख पहुचाते है कि बुढ़ापे मे वह सन्तान उनकी देखभाल करेगी तथा उनको सुख पहुंचायेगी। कभी-कभी ममता के वश होकर भी व्यक्ति अपनी सन्तान की देखभाल करते है। इसी प्रकार व्यक्ति अन्य व्यक्तियो को सुख देने का इसीलिये प्रयत्न करते हैं कि बदले में वे व्यक्ति भी उनको सुख पहुंचायेंगे।

परन्तु जहां तक किसी व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति को दुःख देने का प्रश्न है, ऐसा कभी नही होता कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इसलिये दुःख देता हो कि भविष्य में वह व्यक्ति बदले मे उसे दु.ख पहुंचायेगा। (क्योकि कोई भी प्राणी यह नहीं चाहता कि उसे दु.ख मिले।) अधिकांश में व्यक्ति किसी व्यक्ति से बदला लेने के लिये ही उसे दुःख देते है। जैसे गोविन्द ने कभी हरी के प्रति कोई बुराई की होगी तो हरी गोविद से उस बुराई का बदला लेने के लिये अवसर मिलते ही गोविद को दु.ख पहुचाता है। अनेको बार व्यक्तिगत शत्रुता के बिना ही केवल अपने स्वार्थ के लिये भी व्यक्ति दूसरो को दु.ख देते रहते है जैसे, धन के लिये दूसरो की जेब काटते है, दूसरो के घर मे चोरी करते है। अपनी विषय वासना के वश होकर महिलाओ से बलात्कार करते है। ऐसी स्थिति मे भी दूसरो को दुःख तभी मिलता है जब उनका भाग्य खराब होता है। यदि उनका भाग्य अच्छा है तो किसी के द्वारा लाख प्रयत्न करने पर भी उनको दु ख नही मिल सकता। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति का भाग्य खराब है तो दूसरो के द्वारा उसको सुख देने के लाख प्रयत्न करने पर भी उसको सुख नही मिल सकता। हम जीवन मे प्रति दिन ही ऐसे उदाहरण देखते है।

एक बात और, क्या कारण है कि कोई बालक जन्म से ही अपंग, रोगी व मन्द-बुद्धि होता है और दुःख भोगता रहता है जबकि कोई अन्य बालक जन्म से ही हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ, चतुर व मेधावी होता है। क्या कारण है कि एक बालक निर्धन के घर मे जन्म लेता है और सभी प्रकार के अभावो को सहता है जबकि एक अन्य बालक एक धनवान के घर जन्म लेता है जहा उसे सभी प्रकार के सुख व सुविधाएं प्राप्त होती है। क्या इन विडम्बनाओ का यही कारण नही है कि जिस बालक ने पिछले जन्मो मे बुरे कार्य किये थे वह उन बुरे कार्यों के फलस्वरूप अब दुःख उठा रहा है और जिस बालक ने पिछले जन्मो मे अच्छे कार्य किये थे वह उन अच्छे कार्यों के फलस्वरूप अब सुख भोग रहा है।

इतने किये गये विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि कोई भी प्राणी किसी भी अन्य प्राणी को सुख व दुःख नही दे सकता। हाँ, वह उनको सुख व दु ख देने मे निमित्त अवश्य बन जाता है।

अत. तीसरी सम्भावना ही हमारे पास रह जाती है जिसके अनुसार किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दु.ख मिलते है वे उसको अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिलते हैं। यह सम्भावना तर्क-संगत भी है और न्याय-सगत भी।

अपने दुःखों को कम कैसे करें ?

यदि हम अपने चारों ओर दृष्टि डालें, तो हम लगभग प्रत्येक व्यक्ति को दुखी पायेंगे। कोई किसी एक कारण से दुःखी है, तो दूसरा किसी अन्य कारण से। हाँ, एक बात अवश्य है, कोई कम दुखी है तो कोई अपेक्षाकृत अधिक दुखी है। कभी-कभी हमको कुछ हंसते व खिलते हुए चेहरे भी दिखाई दे जाते हैं, परन्तु उनकी भी यह हँसी-खुशी स्थायी नहीं होती। हमारे जीवन में कुछ ही अवसर ऐसे आते हैं जब हम कुछ सुखी दिखाई देते है, परन्तु वह सुख क्षणिक ही होता है और हम दूसरे ही क्षण फिर दुःख के बादलों से घिर जाते हैं। प्रश्न यह है कि हम इन दुःखों को कम कैसे करें ?

उत्तर में निवेदन है कि यदि हम इन दुःखों के वास्तविक कारणों को जान जायें और इन दुःखद प्रसंगों के प्रति अपने दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन कर लें, तो हम इन दुःखों को सहज ही में सहन कर सकेंगे। इसके विपरीत हम दुःखों के वास्तविक कारणों से अनभिज्ञ रहें और इन दुःखद प्रसंगों के केवल अंधकार वाले पक्ष को ही देखें, तो हमको तनिक-सा दुःख भी पहाड़ जैसा मालूम होगा और हमारा जीना भी दूभर हो जायेगा। ऐसे ही क्षणों में कुछ दुर्बल-हृदय व्यक्तियों का हार्ट फेल हो जाता है और कुछ व्यक्ति आत्म हत्या तक कर लेते हैं। अब हम इसी सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे।

(१) सबसे पहली बात तो यह है कि हमें इस तथ्य पर पूर्ण रूप से विश्वास रखना चाहिये कि जो भी दुःख हमें मिल रहे हैं, वे हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिल रहे हैं। अधिकांश में तो ये दुःख हमें अनायास ही मिलते रहते हैं; जैसे कि हमें व्यापार में हानि हो जाती है, हम स्वयं तथा हमारे परिवार के सदस्य रोगग्रस्त हो जाते हैं, हम किसी दुर्घटना में फंस जाते है, इत्यादि। कभी-कभी हमें दूसरे व्यक्तियों के द्वारा भी दुःख मिलता है, जैसे कोई हमारा धन चोरी कर लेता है; कोई हमे तथा हमारे परिवार के सदस्यों को मानसिक व शारीरिक कष्ट पहुचाता है, इत्यादि। परन्तु ऐसे अवसरों पर भी हमको यही विश्वास रखना चाहिये कि यह दुःख तो हमारे अपने बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिला है। जिस व्यक्ति के द्वारा हमको दुःख मिल रहा है, वह तो केवल निमित्त मात्र ही है। ऐसा विश्वास हो जाने पर हम बड़े-से-बड़ा दुःख भी

आसानी से सह सकेंगे, क्योंकि यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही भूल से मिले कष्ट को अपेक्षाकृत सहजभाव से सह लेता है। यही बात हम छोटे-छोटे बालकों मे भी देखते है, उनको यदि कोई अन्य व्यक्ति मार दे, तो वे जोर से रोते हैं, परन्तु जब उनको अपनी ही भूल से चोट लग जाती है, तो वे बहुत कम रोते हैं।

वास्तविकता का ज्ञान हो जाने पर हमारे दृष्टिकोण में कितना परिवर्तन आ जाता है—इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए हम यहाँ पर एक सत्य घटना का उल्लेख कर रहे हैं।

एक बार एक न्यायाधीश द्वारा एक व्यक्ति को फासी का दण्ड सुना दिया गया, और उस व्यक्ति को जेल की कोठरी मे बद कर दिया गया। वास्तव मे वह व्यक्ति निर्दोष था, परन्तु उसके शत्रुओ ने उसके विरुद्ध बहुत से प्रमाण बना लिये थे जिसके कारण उस व्यक्ति को मृत्यु दण्ड सुना दिया गया। अपनी इस असहाय अवस्था के कारण वह व्यक्ति बहुत ही क्रोधित और उत्तेजित रहा करता था, और सारे ससार को बुरा-भला कहता रहता था। एक दिन एक महात्मा जेल मे अपराधियो से मिलने के लिये आये। वह महात्मा उस व्यक्ति से भी मिले। उन महात्मा ने उस व्यक्ति से कई प्रश्न किये, जिनको सुनकर वह व्यक्ति और भी अधिक उत्तेजित हो गया और कहने लगा "इस दुनिया मे कही भी इन्साफ नही है। कुछ बदमाशो ने षडयन्त्र करके मुझे फासी की सजा दिला दी।" महात्मा जी ने बहुत शान्त भाव से कहा—"जब तुम जानते हो कि इस संसार में इन्साफ नही है, तब तुम्हे इन्साफ न मिलने पर शिकायत क्यो है ?" उन महात्मा के ये शब्द सुनते ही वह व्यक्ति कुछ सोच मे पड गया। उसके पास इस तर्क का कोई उत्तर नही था। कुछ ठहर कर महात्मा जी ने फिर कहा—"परन्तु मेरे भाई, वास्तविकता यह नही है। वास्तविकता तो यह है कि तुम यह विश्वास करते हो कि इस संसार मे न्याय है। फिर भी तुमको निर्दोष होते हुए भी मृत्यु दण्ड सुना दिया गया है। तुम्हे इसी बात की शिकायत है और इसीलिये तुम न्याय की मांग कर रहे हो।" कुछ देर ठहर कर महात्मा जी ने फिर कहा—"हो सकता है कि यह मृत्यु-दण्ड तुम्हारे उस अपराध का दण्ड हो, जिस अपराध को तुम भूल चुके हो (अर्थात् यह दण्ड तुम्हारे द्वारा पूर्व जन्मो में किये हुए किसी अपराध का हो)।" इस वार्तालाप से वह व्यक्ति बहुत शान्त हो गया। इसके बाद भी महात्मा जी ने उस व्यक्ति से कई बार भेंट की। उस व्यक्ति को पढने के लिये कई पुस्तकें दीं और उसके प्रश्नों का तर्क सम्मत समाधान भी किया। उन पुस्तको को पढ़कर और अपने प्रश्नों का तर्क सम्मत समाधान पाकर उस

व्यक्ति के विचारों में बहुत परिवर्तन आ गया। उसने अपने पुत्र से कहा — "बेटे, बदला लेने का विचार भी कभी अपने मन में नही लाना। अब मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है।" समय आने पर वह व्यक्ति शान्ति पूर्वक फांसी पर झूल गया।

यह घटना इस तथ्य का जीवन्त उदाहरण है कि वास्तविकता को समझ लेने से हमारे दृष्टिकोण में कितना परिवर्तन आ जाता है, हम कितने शान्त हो जाते है और हमारे विचारो में कितनी पवित्रता आ जाती है।

(२) दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमको दुःखद प्रसंगों को देखने के अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिये। जो हानि हो गयी है तथा जिसका वियोग हो गया है, उस पर शोक करने के बजाय जो बचा है और जो हमारे पास है, हमें उस पर संतोष करना और हर्ष मनाना सीखना चाहिये। हम नीचे लिखे उदाहरणों से इस बात को स्पष्ट करते है।

मान लीजिये हमारे पास दस हजार रुपये हैं। किसी व्यापार में हमको दो हजार रुपये की हानि हो जाती है। हम दो हजार रुपये की हानि पर दुःख मनाने के बजाय यह सोचकर हर्ष क्यों न मनायें कि हमारे आठ हजार रुपये हानि होने से बच गये है?

ऐसे ही, हमारे पास एक गिलास है जो पानी से आधा भरा हुआ है। हम यह कहने के बजाय "कि हमारा गिलास आधा खाली है" यह क्यों न कहे कि "हमारा गिलास आधा भरा हुआ है।"

इसी प्रकार किसी व्यक्ति की दुर्घटना में एक टांग कट जाती है। यदि वह अपनी इस कटी हुई टांग के विषय में न सोचकर इस बात को सोचें कि उसकी एक टांग बिलकुल ठीक बच गयी है और वह एक टांग से ही लकडियों के सहारे या नकली टांग लगवा कर आराम से चल-फिर सकेगा, तो उसका दुःख कितना हल्का हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में हम एक बोध कथा दे रहे है—

एक बार महात्मा बुद्ध अपने कुछ शिष्यों को धर्म प्रचार के लिये किसी दूर प्रदेश मे भेज रहे थे। शिष्यों के जाने से पहले महात्मा बुद्ध ने उनसे पूछा— "यदि उस प्रदेश के निवासियों को तुम्हारी बातें अच्छी न लगीं और वे तुम्हें गालिया देने लगें, तब तुम क्या करोगे?" उनमें से एक शिष्य ने उत्तर दिया—"हम यह सोचेंगे कि इन व्यक्तियो ने हमें गालिया ही तो दी हैं, हमें मारा तो नहीं।" महात्मा बुद्ध ने फिर पूछा, "यदि वे तुम्हें मारने लगें, तब?" दूसरे शिष्य ने कहा, "हम सोचेंगे कि इन व्यक्तियों के

हमें मारा ही तो है, हमारी जान तो नहीं ली।" महात्मा बुद्ध ने फिर पूछा—"यदि वे तुम्हारे प्राण लेने लगे, तब ?" तीसरे शिष्य ने उत्तर दिया —"हम यह सोचेंगे कि वे हमारे प्राण ही तो ले सकते है, हमारी आत्मा का तो कुछ नही बिगाड सकते ।"

अतः हमें दु.खद प्रसगो मे भी उनके उज्ज्वल पक्ष को खोजकर उनकी ओर ही देखने की आदत डालनी चाहिये। इससे हमारे दु.ख बहुत ही हल्के हो जायेंगे।

(३) तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दु:ख की घड़ियों में हमें अपने से नीचे, अपने से अपेक्षाकृत अधिक दु:खी व्यक्तियो की ओर देखना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि हम उनसे कितने अधिक सुखी है। ऐसा सोचने से हमारे दु ख की घडिया बहुत सरलता से बीत जायेंगी। इस सम्बन्ध में हम एक उदाहरण देते हैं।

एक व्यक्ति तेज धूप मे सडक पर चला जा रहा था। तभी उसने देखा कि एक व्यक्ति पालकी में बैठा जा रहा है। उस पालकी को चार व्यक्ति उठाये लिये जा रहे है। परिश्रम के कारण उन चारों व्यक्तियो का सास फूल रहा है और गर्मी के कारण उनके शरीर से पसीना बह रहा है। वह व्यक्ति यह सोचकर दु:खी होने लगा कि "यह पालकी मे बैठा हुआ व्यक्ति मुझसे कितना अधिक सुखी और भाग्यशाली है और मैं कितना दुःखी व अभागा हूँ कि ऐसी तेज धूप में भी पैदल ही घिसट रहा हूँ।" तभी उसको पालकी ढोने वाले उन चार व्यक्तियों का ध्यान आया और वह सोचने लगा "कि मैं उन चार व्यक्तियो से कितना अधिक सुखी और भाग्यशाली हूं। मुझको किसी अन्य व्यक्ति को अपने कन्धो पर उठाना तो नही पड रहा है।" उसने सोचा कि वह एक आदमी से अपेक्षाकृत दु:खी है तो क्या हुआ, चार आदमियों से तो वह अपेक्षाकृत अधिक सुखी है। ऐसा विचार आते ही उसकी सारी थकावट और उसका सारा दु.ख दूर हो गया।

इसी सम्बन्ध में हम एक और बोध कथा देते हैं– एक स्त्री के एक मात्र पुत्र की मृत्यु हो गयी, जिसके फलस्वरूप वह बहुत दु:खी हुई। एक व्यक्ति ने उस स्त्री से कहा कि वह अपने मृत पुत्र को अमुक महात्मा के पास ले जाये। वे महात्मा बहुत चमत्कारी हैं कदाचित् वह उसके पुत्र को भी जीवित कर दें। वह स्त्री उस महात्मा के पास गयी और महात्मा से अपने दु:ख का कारण बता कर अपने पुत्र को जीवित करने के लिये प्रार्थना की। महात्मा ने कहा, "बेशक, मैं तुम्हारे पुत्र को जीवित कर दूंगा, परन्तु इसके लिये तुम्हें ऐसे घर मे थोडा-सा पानी लाना होगा जिस घर में कभी कोई

भी मरा न हो।" स्त्री यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और बोली—"ऐसे घर से पानी लाना क्या कठिन है? मैं अभी लेकर आती हूं।" वह कई दिन तक सारे नगर में ढूंढ़ती फिरी, परन्तु उसे कोई भी ऐसा घर नहीं मिला, जहां पर कभी भी किसी की भी मृत्यु नहीं हुई हो। इस तथ्य का ज्ञान होते ही "कि मित्र व सम्बन्धी तो सभी व्यक्तियों के मरने आये हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है, फिर शोक किस बात का?" उस स्त्री को बोध हो गया और यह बोध होते ही उसका दुःख बहुत हल्का हो गया।

इस संसार में सभी व्यक्तियों के इष्ट सम्बन्धियों की मृत्यु होती रहती है। व्यक्ति अपने इष्ट सम्बन्धी के वियोग में बहुत शोकाकुल होते हैं और प्रतिक्षण यही सोच-सोच कर दुःखी होते रहते हैं कि उस इष्ट सम्बन्धी के बिना उनका पहाड़-सा जीवन कैसे कटेगा? यदि वे व्यक्ति शान्ति से बैठकर इस प्रकार विचार करें कि प्रति दिन उनके सात-आठ घन्टे तो सोने में चले जायेंगे (सोते समय तो किसी प्रकार के शोक होने का प्रश्न ही नहीं उठता), प्रति दिन दो-तीन घन्टे शौच-स्नान व अन्य निजी कार्यों में व्यतीत हो जायेंगे, प्रति दिन सात-आठ घन्टे व्यापार व नौकरी आदि में निकल जायेंगे (यदि कोई महिला हुई तो भोजन बनाने व घर के अन्य कार्यों में यह समय लग जायेगा। यदि कोई महिला नौकरी करती है, फिर तो उसको खाली समय मिलता ही नहीं)। इस प्रकार बीस-इक्कीस घण्टे तो आसानी से व्यतीत हो जायेंगे, जब उस मृत व्यक्ति का वियोग नहीं सतायेगा। रही बाकी तीन-चार घन्टों की बात, यदि इन तीन-चार घन्टों में भी वह व्यक्ति अपने को किसी अपने रुचि के कार्य में व्यस्त रक्खे, तो उसके लिए अपने इष्ट सम्बन्धी के बिना जीवन व्यतीत करना कुछ कठिन नहीं होगा। इस प्रकार वास्तविक स्थिति पर ठण्डे मस्तिष्क से विचार करने से हमारा शोक कितना कम हो जाता है, यह अनुभव करने की ही बात है।

(४) चौथी बात यह है कि किसी भावी दुःख की आशंका से हम वर्तमान में मिलने वाली अपनी खुशियों में विष न घोलें। यदि हम यही सोचते रहें कि भविष्य में हमको हानि हो गयी तो क्या होगा, हमारे किसी प्रियजन का वियोग हो गया तो क्या होगा, हमारे कोई रोग हो गया तो क्या होगा—ऐसी ही आशंकाओं से यदि हम निराशावादी बन गये, तो हम केवल अपने ही नहीं, अपितु अपने परिवार के सदस्यों के जीवन में भी विष घोल देंगे। हमारी आशंकाएं सच निकलें या न निकलें; हमने अपना वर्तमान जीवन तो खराब कर ही लिया, जिसे हम अपेक्षाकृत सुखपूर्वक जी सकते थे। अतः प्रसन्न रहने के लिये हमें भविष्य की आशंकाओं से अपना वर्तमान खराब नहीं कर लेना चाहिये। इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि

हम भविष्य को ओर से बिलकुल ही लापरवाह हो जायें। मान लोजिये हमारी आय एक हजार रुपये प्रति मास है। हम उसमे से भविष्य के लिये अनिवार्य रूप से दो-तीन सौ रुपये बचाते रहते है। अपने बालको का भविष्य बनाने के लिये हम उन्हे यथाशक्ति अच्छी शिक्षा दिलाते है। बाकी आय को भी हम इस प्रकार व्यय करते है कि जिससे हमारी कोई भी आवश्यकता अपूर्ण न रह जाये। भविष्य के लिये इतना सोचना तो ठीक है। परन्तु यदि हम वर्तमान मे रूखा-सूखा भोजन करते रहे, फटे-पुराने कपड़े पहनते रहे और सारा धन भविष्य के लिये ही संग्रह करते रहे, तो यह गलत है। भविष्य के लिये हमे समुचित सावधानी अवश्य रखनी चाहिये और हमे यही सोचना चाहिये कि ऊपर लिखे अनुसार समुचित सावधानी रखते हुए भी यदि भविष्य में हम पर कोई कष्ट आ भी पड़ेगा, तो हम उस कष्ट को समयानुसार धैर्यपूर्वक सह लेगे।

इसी प्रकार चोर आपके घर में प्रवेश न कर सके इसलिये आप अपने मकान के दरवाजे मज़बूत बनवा लेते है, रात के समय उनको भली प्रकार बन्द कर लेते है, यहा तक तो ठीक है, परन्तु चोरो के भय से यदि आप रात-रात भर जागते रहे, तो यह बात ठीक नही है।

इसके विपरीत भविष्य की कुछ भी चिन्ता किये बिना यदि हम अपनी सारी आय दो-चार दिन मे ही खर्च कर देते है तथा रात के समय अपने मकान के दरवाजे भी भली प्रकार देख भाल कर बन्द नही करते है, तो यह भी ठीक नही है।

(५) पाँचवी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपनी आजीविका के लिये या अन्य किसी कारणवश हम जो भी कार्य करे, वह बहुत सहज भाव से, उसको अपना कर्त्तव्य समझ कर, उसे पूजा की भावना से करे। इस भावना से करने से वह कार्य बहुत हल्का हो जाता है और उसको करते हुए हमे थकावट के स्थान पर आनन्द आने लगता है।

इस सम्बन्ध में हम एक उदाहरण देते है। मान लीजिये तीन नर्से है। एक व्यक्ति उनसे उनके कार्य के सम्बन्ध में पूछता है। पहली नर्स कुढ कर कहती है—"मेरे भाग्य में तो दूसरो का मल-मूत्र साफ़ करना ही लिखा है, वही कर रही हूं।" दूसरी नर्स सहज भाव से कहती है—"नर्स का कार्य मेरा व्यवसाय है। मैं यथाशक्ति अपना कार्य पूरी तत्परता और लगन से करती हू। यह कार्य करके मैं अपने परिवार का पालन करती हू।" तीसरी नर्स बहुत प्रसन्नतापूर्वक कहती है- "मैं एक नर्स हूं। मैं यथाशक्ति रोगियों के कष्टो को दूर करने और उन्हे आराम पहुचाने का प्रयत्न करती हूं। उन्हे रोगमुक्त और कष्टमुक्त देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। हां,

इस कार्य से मुझे पैसा तो मिलता ही है, जिससे मैं अपने परिवार का पालन करती हूं।" आप इन तीनो नर्सों के, अपने-अपने काम के प्रति, उनके दृष्टि-कोण में आकाश-पाताल का अन्तर पायेंगे। तीनों ही नर्सें हैं। तीनों को एक जैसा ही कार्य करना पड़ता है। पहली अपना कार्य लाचारी से दुःख मानकर करती है, दूसरी उसको अपनी आजीविका का साधन मानकर सन्तोषपूर्वक करती है, जबकि तीसरी वह कार्य बहुत प्रसन्नतापूर्वक कर्त्तव्य की भावना से करती है और उस कार्य से सुख प्राप्त करती है।

एक छोटी-सी बालिका है। वह अपने छोटे भाई को गोदी में लिये जा रही है। एक व्यक्ति उस बालिका से पूछता है कि वह इतना बोझ कैसे उठा रही है। बालिका सहज भाव से उत्तर देती है "यह बोझ थोड़े ही है, यह तो मेरा छोटा भाई है।" देखा आपने, उस बालक को छोटा भाई मानते ही उसका भार, भार नही रह जाता।

इसी प्रकार यदि हम भी जो भी कार्य करें, उसको अपना समझ कर, उसमें रम लेकर, उसे पूजा की भावना से करें, तो वह काम दुःख का कारण नही, अपितु सुख का स्रोत बन जाता है।

(६) अनेकों बार ऐसा भी होता है कि हम उन बातों पर दुःखी होते रहते है, जिनसे हमारा कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नही होता, न जिनसे हमें किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट ही होना है और न किसी अन्य प्रकार की हानि ही। हम इसी उधेडबुन मे लगे रहते है कि अमुक व्यक्ति की हार हो जाये, अमुक व्यक्ति की हानि हो जाये, अमुक व्यक्ति को सफलता न मिले; अमुक व्यक्ति को धन-लाभ क्यों हुआ? अमुक व्यक्ति प्रसन्न और सुखी क्यों है? इत्यादि। हम ऐसी बातों को सोच-सोच कर कुढते रहते है, दूसरों से ईर्ष्या करते रहते है और दुःखी होते रहते हैं। हमारी दशा उस व्यक्ति के समान हो जाती है जो यह मनौती मनाता रहता है कि चाहे उसकी दोनों आखें फूट जायें, परन्तु उसके पडोसी की एक आंख अवश्य फटनी चाहिये। इस बात में तो कोई संशय ही नही है कि इस प्रकार के विचारों से व्यर्थ में ही हमारे अशुभ कर्मों का संचय होता रहता है। यदि हम ऐसी बातों को जिनसे हमारा कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध व हानि-लाभ नहीं है, देखना सुनना ही छोड दें और यदि देखनी व सुननी पड भी जायें तो उनको उपेक्षा की दृष्टि से ही देखें व सुनें तथा उन पर तटस्थ भाव ही रक्खें, तो न तो हमे ऐसी बातो से दुःख ही होगा और न हमारे विचार व भावनाएं ही तनिक भी अपवित्र ही होंगी। हमे तो सदैव यही कामना करते रहना चाहिये कि किसी भी जीव को कोई भी कष्ट न हो और सब जीव सुखी रहें।

(७) अनेको बार हम ऐसी वस्तुओ की इच्छा करने लगते हैं जिनको खरीदना हमारी शक्ति से बाहर होता है। जैसे कोई निर्धन व्यक्ति यह कहने लगे कि हाय-हाय उसके पास मोटर नही है। हम इसी प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओं को पाने के लिये हाय-हाय करते रहते है, दुखी होते रहते हैं और असंतोष की आग मे जलते रहते है। हमे ऐसे विचार अपने मन में भी नहीं लाने चाहिये और जो भी ईमानदारी व परिश्रम से उपलब्ध हो सके, उस पर ही सन्तोष करना चाहिये। क्योकि ससार में किसी भी व्यक्ति की सभी इच्छाए कभी पूर्ण नही हो सकती।

(८) इस सम्बन्ध में एक और महत्त्वपूर्ण बात यह भी है किसी भी परिस्थिति मे दुःख व सुख मानना अधिकाँश मे व्यक्ति के अपने मन की भावनाओ पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति को ईमानदारी से परिश्रम करके साधारण दाल-रोटी ही मिल पाती है, परन्तु वह उसमें ही बहुत प्रसन्न रहता है और सन्तोष पूर्वक भोजन सेवन करता है। एक दूसरे व्यक्ति को जो साधन-सम्पन्न है उस को कई प्रकार के सुस्वादु भोजन उपलब्ध हैं परन्तु फिर भी खाते समय वह नाक-भौं सिकोडता रहता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति धूप मे खडा हुआ पसीने से लथपथ, परिश्रम कर रहा है, फिर भी प्रसन्न रहता है, जबकि एक अन्य व्यक्ति वातानुकूलित कमरे मे गुदगुदे पलग पर लेटा हुआ है, फिर भी बेचैनी का अनुभव कर रहा है। तो इस प्रकार हम देखते है कि दुःख व सुख किसी विशेष वस्तु तथा किसी विशेष परिस्थिति मे नही है, अपितु हमारे हृदय मे ही सुख व दुःख का वास है। हम चाहे तो प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी सुख मान सकते है और चाहे तो अनुकूल परिस्थितियो में भी दुखी हो सकते है। अत हमको अपने मन की भावनाए ऐसी बनानी चाहिये कि हम प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रह सकें।

यदि हम ऊपर लिखे अनुसार दुःख के वास्तविक कारणों को जान लें और अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन कर ले, तो कितने भी और कैसे भी कष्ट क्यो न आये, वे हमें विचलित नही कर सकेंगे और हमारे हृदय से सुख का स्रोत ही झरता रहेगा। यही दुखो को कम करने का उपाय है और यही जीवन जीने की कला है।

आत्म-हत्या

कुछ व्यक्ति सांसारिक कष्टो से घबराकर आत्म-हत्या कर लेते हैं। वे समझते है कि इस जीवन का अन्त कर लेने से उन्हे कष्टो से मुक्ति मिल जायेगी। परन्तु यह उनका भ्रम ही है। आत्म-हत्या करने की सोचने वाले तथा आत्म-हत्या करने वाले व्यक्ति दुर्बल-हृदय और कायर होते हैं। वे इस विश्व की वास्तविकताओं से नितान्त अनभिज्ञ होते है तथा सत्य का सामना करने से घबराते हैं। यदि वे विश्व की वास्तविकताओं को और अपने दु खो के वास्तविक कारणों को जान ले, तो वे आत्म-हत्या की निरर्थकता से परिचित हो जायेगे।

हम अनेकों बार यह कह चुके है कि हमको जो भी सुख व दुःख मिल रहे है, वे हमको हमारे अपने ही अच्छे व बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही मिल रहे है। किसी भी अन्य प्राणी मे यह शक्ति नही है कि वह हमको सुख व दु ख दे सके। अधिकांश मे ये दु ख हमको अनायास ही मिलते रहते है। कभी-कभी हमको दूसरे व्यक्तियो के द्वारा भी दुःख मिलते है, परन्तु ऐसी परिस्थितियो मे भी दुःख तो हमारे अपने ही बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही मिलते है, वे व्यक्ति तो केवल निमित्त मात्र ही होते है। परन्तु हम अज्ञान-वश उन व्यक्तियो को ही दु.ख देने वाला समझते रहते है और उनसे द्वेष करके बुरे कर्मों का संचय करते रहते है। हमारी आत्मा हमारे अपने कर्मों के अनुसार ही नये-नये शरीर धारण करती रहती है और दुःख व सुख भोगती रहती है। चाहे कैसा भी कर्म हो, वह अपना फल दिये बिना नष्ट नही होता। (हां, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा कुछ कर्म, बिना फल भोगे, अवश्य ही नष्ट किये जा सकते है।) इसलिये यदि कोई व्यक्ति आत्म-हत्या कर लेता है तो उसका यह भौतिक शरीर बेशक छूट जाये, परन्तु न तो उसकी आत्मा ही नष्ट होती है और न उसके कर्म ही नष्ट होते हैं। आत्म-हत्या करते समय जितने भी कर्म बाकी है, वे अपना फल अवश्य ही देंगे और वे उसी आत्मा को भोगने पड़ेंगे, चाहे वह इस ही मनुष्य-शरीर के माध्यम से भोगे, चाहे वह भविष्य मे मिलने वाले नये शरीर के माध्यम से भोगे। फल पाने वाली और सुख व दुःख का अनुभव करने वाली तो हमारी आत्मा ही है जो अमर है। अतः यह निश्चित है कि आत्म-हत्या कर लेने से दुःखों से छुटकारा नही मिल सकता। हा, आत्म हत्या कर लेने से व्यक्ति

अपने सिर पर पाप का बोझ अवश्य बढा लेते है, क्योंकि हत्या करना हिंसा है; चाहे वह अपनी की जाये चाहे दूसरे की।

एक बात और भी है। यह मनुष्य जन्म जो हमें प्राप्त हुआ है यह बहुत ही अधिक पुण्यो के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ है। इतने पुण्यों से प्राप्त इस मनुष्य जन्म को आत्म-हत्या करके नष्ट कर देना हमारी सबसे बडी मूर्खता होगी। इस मनुष्य जन्म की सार्थकता तो इसमें ही है कि हम इस जीवन मे अधिक से अधिक परोपकार करे, अहिंसा, संयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट करें और अपनी आत्मा की उन्नति के लिये समुचित पुरुषार्थ करते रहे। यदि बुरे कर्मों के फलस्वरूप हम पर कोई असहनीय शारीरिक व मानसिक कष्ट आ पडे, तो उसको अपने ज्ञान व विवेक का उपयोग कर समतापूर्वक सहन करके हमे उन कर्मों को नष्ट करना चाहिये।

मान लीजिये किसी व्यक्ति को कुछ ऋण चुकाना है। ऋण चुकाने का सबसे अच्छा समय तो वह है, जब उसके पास पर्याप्त धन हो अथवा उसकी पर्याप्त आय हो। ऐसी अनुकूल परिस्थितियो मे ऋण चुकाने मे उसको अधिक परेशानी नही होगी। इसके विपरीत प्रतिकूल परिस्थितियो मे ऋण चुकाने मे उसे बहुत परेशानी होगी। ऋण चुकाने से बच तो वह सकता नही। यही बात कर्मो के फल भोगने के सम्बन्ध मे भी है। इस मनुष्य जन्म मे अपने ज्ञान व विवेक का उपयोग कर अपने बुरे कर्मों का फल हम समतापूर्वक भोग कर उन कर्मो को नष्ट कर सकते है और नये-नये कर्मों के सचय होने को रोक सकते है। परन्तु किसी अन्य योनि मे हमे ऐसा सुअवसर नही मिलेगा। अतः इन सब वास्तविकताओ को दृष्टि मे रखते हुए हमे आत्म-हत्या का विचार भी अपने मन मे नही आने देना चाहिये।

इसी प्रसंग मे हम एक और तथ्य की ओर पाठको का ध्यान दिलाना चाहते है। जो विद्वान और मनोवैज्ञानिक पुनर्जन्म की घटनाओ पर शोध और अनुसन्धान कर रहे है, उन्होने ऐसे अनेक व्यक्तियों को देखा है जिनके इस जन्म में भी वही रोग होते है जो उनको अपने पूर्वजन्मो मे थे। इन घटनाओ से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि मृत्यु हो जाने से अथवा आत्म-हत्या कर लेने से किसी प्राणी के कर्म नष्ट नही होते। कर्म तो अपनी पूरी अवधि तक (अर्थात् जितने समय के लिये किसी कर्म का फल मिलते रहना है) अपना फल देते रहेगे, चाहे वह अवधि एक जन्म मे ही समाप्त हो जाने वाली हो चाहे अगले जन्म मे भी चलने वाली हो।

इस तथ्य से भी आत्म-हत्या की निरर्थकता की सिद्धि होती है।

मनुष्य जन्म की सार्थकता

हम अनादिकाल से विभिन्न योनियो मे शरीर धारण करते हुए सुख व दु.ख भोग रहे है। इन सुखो व दु:खो के लिये हमारे अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए अच्छे व बुरे कार्य ही उत्तरदायी है। हम अपने अनादिकालीन अज्ञान और हिसा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओ के वश होकर ही अच्छे व बुरे कार्य करते रहते हैं। यदि हम नये-नये शरीर धारण करने व सुख-दुख पाने के चक्कर से छुटकारा पाकर सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करना चाहते है तो हमको हिंसा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओ को छोड़ना होगा और इस विश्व के तथा अपने शरीर व अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझना होगा। मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षियों में न तो इतनी शक्ति होती है और न इतना ज्ञान व विवेक ही होता है कि वे इन वास्तविकताओ का ज्ञान प्राप्त करके अपना भविष्य सुधारने तथा सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये कुछ प्रयत्न कर सके। मनुष्यों में भी अपनी सच्ची भलाई की बाते सुनने व समझने का अवसर कितने व्यक्तियो को मिलता है ? कुछ व्यक्ति तो ऐसे स्थानो, ऐसी जातियो और ऐसी परिस्थितियो मे जन्म लेते है जहा कभी सच्चे धर्म की बाते सोची व समझी ही नही गयी, जैसे बहुत ही असभ्य तथा जगली जातियो व बर्फ़ीले स्थानो में रहने वाले व्यक्ति। दुर्भाग्य से कुछ व्यक्ति जन्म से ही और कुछ व्यक्ति छोटी आयु मे ही गूगे, बहरे, नेत्रहीन व निर्बल मस्तिष्क के हो जाते है और ऐसी परिस्थितियो मे उनको अपने कल्याण की बातें सुनने को ही नही मिलती। यदि सौभाग्य से किन्ही व्यक्तियो को अपनी सच्ची भलाई की बातें सुनने का सुअवसर मिल भी जाता है, तो उन बातो को समझने और फिर उन पर आचरण करने का प्रयत्न कितने व्यक्ति करना चाहते है ? फिर, अपनी भलाई के लिये प्रयत्न करना चाहने वालो में भी कितने व्यक्तियो को इतने साधन व सुविधाये उपलब्ध है जो अपने मन, वाणी व शरीर के द्वारा उन बातो पर आचरण कर पाते है। इतनी सब अनुकूलताएं उपलब्ध होने पर भी यदि हम अपना भविष्य नही सुधारते और सच्चा सुख प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर नही होते, तो हमसे अधिक अभागा व मूर्ख कौन होगा ? पैदा होना, खाते-पीते रहना, इन्द्रियों के विषय सेवन करते

रहना और अन्ततः मर जाना—क्या यही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है ? ये सब कार्य तो पशु-पक्षी भी करते रहते है। फिर मनुष्य और पशु-पक्षी में अन्तर ही क्या रहा ?

वास्तव में यह मनुष्य जन्म उस रेलवे जकशन तथा चौराहे के समान है जहां से हम जिधर भी चाहे जा सकते हैं। इस मनुष्य जन्म में हम अपनी आत्मा अपने शरीर व इस विश्व का सच्चा स्वरूप जानकर, हिंसा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ, आदि की भावनाओ को त्याग कर, अहिंसा, सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट करते हुए अपनी आत्मा के कल्याण की ओर— मुक्ति की ओर—भी अग्रसर हो सकते है और इसके विपरीत अपनी राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की भावनाओ के कारण चिरकाल के लिये पशु-पक्षियो आदि की क्षुद्र योनियो मे भी गिर सकते हे। एक बार इस मनुष्य जन्म को व्यर्थ में गवां देने पर न जाने कितने काल के पश्चात् हमें यह मनुष्य जन्म फिर से प्राप्त हो।

इस तथ्य को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं। मान लीजिये कोई व्यक्ति किसी नदी की बाढ मे बहा जा रहा है। जब तक उस नदी के पानी का बहाव तज है तथा पानी की गहराई भी अधिक है, तब तक वह व्यक्ति पुरुषार्थ करके उस बाढ से निकलना भी चाहे, तो भी निकल नही सकता। परन्तु जब सौभाग्य से वह ऐसे स्थान पर आ जाता है जहा पानी का बहाव सामान्य है तथा उसकी गहराई भी कम है, उस समय यदि वह व्यक्ति पुरुषार्थ करे, तो उसके बाढ से बच जाने की सम्भावना अधिक हो जाती है। इसी प्रकार हम अनादि काल से इस ससार रूपी बाढ़ मे बहे जा रहे है। परन्तु अब हमारे सौभाग्य से यह मनुष्य जन्म मिला है। यदि हम अब भी विवेक से काम न लें और आत्मोन्नति के लिये प्रयत्न व पुरुषार्थ न करें, तो हमारा यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला जायेगा और हम सदैव की तरह इस ससार रूपी बाढ़ में बहते रहेंगे और न जाने ऐसा सुअवसर हमे फिर कब प्राप्त हो ?

ससार मे अनेको ऐसे व्यक्ति है जो इन बातों पर कुछ सोचने की आवश्यकता ही नही समझते। ऐसे व्यक्ति अधिकांश में वे होते है, जिनको जीवन मे अभी तक कोई विशेष कष्ट नही मिला है तथा जिनको जीवन की वास्तविकताओ और कटुताओ का सामना ही नही करना पड़ा है। हम उनसे पूछते है कि अपने पूर्व मे किये हुए शुभ कार्यों का फल तो वे इस समय भोग रहे हैं, परन्तु भविष्य के लिये वे क्या संचय कर रहे हैं ? एक किसान भी, चाहे उसकी वर्तमान फ़सल अच्छी हुई हो या बुरी, चाहे उसको वर्तमान मे आधे पेट ही भोजन करके रहना पड़े, अगली फ़सल के लिये बीज

बचा कर अवश्य ही रखता है, इसी प्रकार मनुष्य जन्म की सार्थकता भी इसी में है कि भविष्य में सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये हम इस जन्म में अधिक से अधिक प्रयत्न करते रहें। जैसे पशु-पक्षी केवल अपने वर्तमान जीवन को ही जीते है, और भविष्य के लिये वे कुछ भी नहीं कर पाते, यदि मनुष्य भी ऐसा ही करने लगे, तो मनुष्य में और पशु-पक्षी में अन्तर ही क्या रह जायेगा ?

कुछ व्यक्ति यह सोचते हैं कि अभी तो वे जवान हैं, अभी उनकी उम्र ही कितनी है ? अभी तो जीवन का अधिक से अधिक सुख भोग ले ; बडी उम्र मे जाकर धर्म-कर्म की बाते कर लेगे। परन्तु उनका ऐसा सोचना ठीक नही है। तथ्य तो यह है कि मृत्यु का कोई समय निश्चित नही होता। हम प्रतिदिन हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ व युवा व्यक्तियो को भी क्षणमात्र मे मृत्यु का ग्रास बनते देखते है। क्या कोई भी व्यक्ति निश्चय पूर्वक कह सकता है कि वह इतने वर्ष तक जीवित रहेगा, और मृत्यु पर्यन्त उसको कोई रोग, शोक व किसी भी प्रकार का अन्य कष्ट नही होगा। वास्तविकता तो यह है कि एक ही दुर्घटना हमारे स्वप्नो के महल को धूल-धूसरित कर देती है। जो व्यक्ति इन वास्तविकताओ की ओर से आखे मीचे रहते है, उनकी स्थिति उस कबूतर के समान समझनी चाहिये जो बिल्ली को देखकर अपनी आँखे मीच लेता है और यह तसल्ली कर लेता है, क्योकि अब बिल्ली दिखाई नही देती इसलिये उसकी मृत्यु भी टल गयी।

हम अपने चारो ओर मनुष्यो व अन्य पशु-पक्षियो को देखते है। इनमें से कुछ मनुष्य अन्य मनुष्यों की तुलना मे अधिक सुखी होते हैं। इसी प्रकार कुछ पशु-पक्षी अपनी ही जाति के अन्य पशु-पक्षियो की तुलना में अधिक सुखी होते है। क्या आपने कभी यह जानने का प्रयत्न किया है कि सुख व दुख भोगने की अपेक्षा से मनुष्य-मनुष्य में व पशु-पशु में इतनी भिन्नता क्यो है। यदि आप कभी ठण्डे मस्तिष्क से तथा समुचित रीति से इनके कारणो पर विचार करें तो आपको वस्तुस्थिति समझ में आ जायेगी और आपको अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व का सच्चा ज्ञान हो जायेगा। इस सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर लेने से ही हमारा मनुष्य जन्म सार्थक हो सकता है।

एक बात और भी है, क्या यह किसी भी व्यक्ति के अपने अधिकार की बात है कि वह अच्छे व बुरे सब प्रकार के प्रयत्न कर लेने पर भी जीवन के सब सुख प्राप्त करले और अपनी समस्त इच्छाएं पूरी कर ले ? यह लगभग असम्भव ही होता है। अधिकांश मे अथक प्रयत्न करने और सब प्रकार के अच्छे व बुरे साधनो का प्रयोग करने पर भी, यदि हमारे पूर्व में किये हुए शुभ कर्म हमारे साथ नहीं है, हम सफल मनोरथ नहीं हो पाते। इस

वास्तविकता को दृष्टि मे रखकर हमारे लिये केवल एक ही मार्ग शेष रह जाता है कि हम अपना प्रत्येक क्षण ईमानदारी और परिश्रम से कार्य करने में बिताये, अपने विचार सदैव ही अहिसामय और पवित्र रखें, कोई भी कार्य करते समय कभी भी, कैसा भी अनैतिक व अनुचित साधन प्रयोग में न लायें, अपना सारा ध्यान अपना भविष्य सुधारने में लगाये तथा मृत्यु के स्वागत के लिये सदैव तैयार रहे। ऐसा जीवन जीने में ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है।

यह कैसी विडम्बना है कि इस जीवन के चालीस-पचास वर्षों को सुखपूर्वक जीने के लिये तो हम इतनी योजनाये बनाते है तथा रात-दिन परिश्रम करते है, परन्तु जो अनन्त भविष्य हमारे सामने पडा हुआ है, और जिसको सुधारने के लिये, इस मनुष्य जन्म की थोडी-सी अवधि के अतिरिक्त हमें और कोई अवसर नही मिलेगा, उसके लिये हम कुछ भी नही करते।

अत अब भी समय है कि हम वास्तविकता को समझ और इस मनुष्य जन्म का उपयोग अपना भविष्य सुधारने मे करे और इस प्रकार इस मनुष्य जन्म को सार्थक करे।

इस सदर्भ में एक प्रश्न यह उठता है कि जिस मनुष्य-जन्म को हमने इतना अनमाल बतलाया है, यदि उस शरीर मे कोई रोग हो जाये, तो हम उसकी रक्षा कैसे करे ?

इस सम्बन्ध में निवेदन है कि हमें अपने शरीर की रक्षा तो यथा-सम्भव करनी ही चाहिये, परन्तु विवाद इस बात पर है कि वह रक्षा हम किस कीमत पर करे ? क्या हम धर्म के शाश्वत सिद्धान्त "अहिसा" का बलिदान करके भी इस शरीर की रक्षा करे ? कुछ व्यक्ति चाहे सामान्य जीवन मे शाकाहारी रहे हो, परन्तु कोई रोग हो जाने पर वे अण्डों व मास का सेवन करने लगते है तथा इनसे निर्मित औषधियो का प्रयोग करने लगते है। परन्तु यह बात बिल्कुल अनुचित है। जिस सिद्धान्त अर्थात् अहिसा का पालन करना हमे सच्चा व स्थायी सुख (मुक्ति) प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है, यदि उस सिद्धान्त का ही हनन हो गया, तो फिर मनुष्य जन्म की सार्थकता ही क्या रही ? सबसे पहली बात तो यह है कि हम अपना जीवन नियमित व सयमित ही रक्खे जिससे कि रोग होने की सम्भावना ही कम-से-कम हो जाय। फिर भी, यदि अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप हमें कोई रोग हो भी जाये तथा हम दुर्घटनाग्रस्त होकर घायल हो जाये, तो भी हमे अपना उपचार हिसक साधनो से कभी नही करना चाहिये। अहिसक साधनो से उपचार करते हुए यदि हमे मृत्यु का भय हो, तो हमें ऐसी मृत्यु का भी सहर्ष स्वागत करना चाहिये। परन्तु मृत्यु के भय से हिसक साधनों का

प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। हमें इस बात को दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, देर या सवेर वह अवश्य ही आयेगी। हम लाख प्रयत्न कर ले, परन्तु अपने कर्मों के अनुसार जितनी आयु हमे मिली है, उसमे कोई भी एक क्षण की भी वृद्धि नही कर सकता। अतः जब हम हिंसक उपचारों के द्वारा भी अपने जीवन मे एक क्षण की भी वृद्धि नही कर सकते, तो हिंसक उपचारों से क्या लाभ। इसलिये हमे अपने उपचार के लिये भी हिंसक साधनो का प्रयोग कभी भी नही करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में एक शंका यह उठती है कि इस प्रकार तो हमें शाकाहारी भोजन भी नही करना चाहिये, क्योकि वनस्पति में भी जीवन होता है और शाकाहारी भोजन करने से भी हिंसा होना अनिवार्य है। इस शंका के उत्तर मे निवेदन है कि यह ठीक है कि वनस्पति मे भी जीवन होता है और शाकाहार से भी हिंसा होती है परन्तु बिना भोजन किये तो कोई भी जीवित नही रह सकता। जीवित रहने के लिये भोजन करना अनिवार्य है। हमें तो यही विवेक रखना है कि हम केवल ऐसे भोजन का ही सेवन करे जिसमे हिंसा की सम्भावना कम-से-कम हो। हम स्वाद के लिये नही, केवल जीवित रहने भर के लिये ही भोजन करे। भोजन करने मे हमें निम्नलिखित सूत्र का पालन करना चाहिये :— जैसे एक स्वामी अपने सेवक को कम-से-कम वेतन देकर (जिससे वह ठीक प्रकार काम करता रहे) उससे अधिक-से-अधिक कार्य लेता है। इसी प्रकार हमें भी केवल उतना ही भोजन सेवन करना चाहिये, जितने से हमारा शरीर स्वस्थ रहे और अपना जीवन-यापन करते हुए हम अधिक-से-अधिक परोपकार व अपनी आत्मोन्नति कर सकें। इस सम्बन्ध मे हम यह भी समझ ले कि मासाहार मे शाकाहार से लाखों गुणी अधिक हिंसा होती है।

इस तथ्य को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं, जैसे अधिक लाभ-प्राप्ति की आशा मे कोई व्यापारी थोड़े धन की हानि भी सह लेता है उसी प्रकार हम भोजन करके हिंसा करने का जो पाप करते है, हमे उस पाप से कई गुणा अधिक परोपकार व आत्मोन्नति करनी चाहिये, जिससे कुल मिला कर हम लाभ में ही रहे।

हमारा पेट कितना छोटा है? इस सम्बन्ध मे एक विद्वान का कहना है :—

> "जिस पेट के लिये गरीबों को कष्ट दिया, जिसके लिये आत्मीय-जनो से झगडा-टन्टा किया, जिसकी खातिर धन संग्रह करते हुए यह भी भुला दिया कि आंख मूद लेने के बाद यमराज के दूत नरक

में ले जाकर कठोर यातनाएं देंगे, वह कमबख्त पेट इतना छोटा निकला कि एक मुट्ठी चावल से ही भर गया।"

एक विचित्र तर्क

कुछ व्यक्ति एक और विचित्र तर्क देते है। वे कहते हैं कि इस संसार मे कोई भी कार्य न अच्छा है और न बुरा, यहा पर न कुछ पुण्य है न पाप। ये तो हमारे मन की भावनाएं है, जो हम किसी विशेष कार्य को अच्छा समझ लेते है और किसी अन्य कार्य को बुरा। वे कहते है कि यदि कोई व्यक्ति मांसाहार में दोष नही समझता और वह सहज भाव से ही मांसाहार करता रहता है, तो उसको मासाहार से दोष लगने का प्रश्न ही पैदा नही होता। इसी प्रकार शिकार खेलने, शराब पीने, जुआ खेलने व व्यभिचार करने आदि के सम्बन्ध मे भी उन व्यक्तियो की ऐसी ही धारणा है। वे कहते है कि यदि कोई व्यक्ति इन कार्यों को बुरा समझता है और फिर भी वह व्यक्ति इन कार्यो को करता है, तो यह अवश्य ही बुरी बात है। परन्तु यदि वह इन कार्यो को बुरा नही समझता और सहज भाव से ही करता रहता है, तो इसमे कोई बुरी बात नही है।

कैसा विचित्र तर्क है यह ? इस प्रकार के तर्क देकर ऐसे व्यक्ति जो व्यवहार दूसरे प्राणियो के प्रति करते है, यदि इसी तर्क के आधार पर वैसा ही व्यवहार दूसरे प्राणी भी इन व्यक्तियो के प्रति करने लगे तब इनकी क्या दशा होगी ? यह सोचने का कष्ट भी ऐसे व्यक्तियो ने कभी नही किया होगा। यदि वे अपने तर्क के इस पक्ष पर भी विचार कर लेते, तो उनको अपने तर्क का खोखलापन प्रतीत हो जाता।

मांसाहार करने के लिये और शिकार खेलते हुए जिन पशु-पक्षियो की हत्या की जाती है, क्या उससे उनको कष्ट नही होता ?

शराब पीने, जुआ खेलने व व्यभिचार करने से क्या परिवार नष्ट नही होते ? क्या इनसे समाज मे अनैतिकता का विष नही फैलता, जिसके कारण समस्त समाज को ही कष्ट उठाना पड़ता है ?

यदि कोई प्राणी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति से हमें घायल करे, तो क्या हमे कष्ट नही होगा ? यदि कोई गुण्डा आदतन हमारी महिलाओ को छेड़े या अपमानित करे, तो क्या हमे बुरा नही लगेगा ?

साधारणतया असामाजिक तत्त्व ऐसे घिनौने कार्य अपनी साधारण प्रवृत्ति के अनुसार ही करते है क्योकि उनका विवेक मर चुका होता है और वे दूसरे प्राणियो के कष्टो के प्रति बिल्कुल भावना-शून्य हो चुके होते है। परन्तु जिन प्राणियो के प्रति ये कार्य किये जाते है उनको तो कष्ट होता ही है।

अतः इन सब तथ्यों को ध्यान में रखकर प्रत्येक व्यक्ति का यह सर्वप्रथम कर्तव्य हो जाता है कि वह इस प्रकार की थोथी बातों में न आकर वास्तविकता को समझ और अपना जीवन अहिंसा व संयम पूर्वक ही व्यतीत करे।

हम तटस्थ कैसे रहे

इस पुस्तक में हमने अनेकों बार तटस्थ या निरपेक्ष रहने पर बल दिया है। अब हम संक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि हम तटस्थ कैसे रह सकते हैं।

हम सब यह जानते हैं कि कोई भी पदार्थ अपने आप में न अच्छा होता है न बुरा। यह तो हम पर निर्भर करता है कि हम उसको अच्छा या बुरा कैसा समझते हैं और उसका किस प्रकार प्रयोग करते हैं। अतः किसी भी वस्तु में अच्छाई या बुराई आरोपित न करना ही उस वस्तु से तटस्थ रहना है।

अनेकों बार किसी से शत्रुता या द्वेष होने पर हमारे मन में यह भावना उठती है, कि उस व्यक्ति को कुछ कष्ट पहुंच जाये, तो बहुत अच्छा हो। परन्तु क्या हमारे ऐसा सोचने से या ऐसा कहने से किसी को कोई भी कष्ट पहुंच सकता है? स्पष्ट है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। फिर, जब हमारे बुरा सोचने या बुरा कहने से किसी की कोई बुराई नहीं हो सकती, तो हम व्यर्थ में ही अपने भाव क्यों खराब करें और व्यर्थ में ही बुरे कर्मों का संचय क्यों करें? हमें इस तथ्य को हृदयंगम कर लेना चाहिये, कि किसी भी प्राणी को जो भी सुख व दुःख मिलते हैं, वे उसके अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही मिलते हैं। जिन व्यक्तियों के द्वारा ये सुख व दुःख मिलते हैं, वे तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। यदि एक बार भी हम इस तथ्य को भली प्रकार समझ गये, तो हमारे मन में किसी के प्रति राग-द्वेष करने की भावना भी नहीं आयेगी। हम यह भी समझ लें कि यदि किसी प्राणी को हमारे निमित्त से कुछ सुख मिल जाता है, तो वह सुख तो उसको अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप ही मिलता है उसमें हमारा कोई कर्तृत्व नहीं है, जिससे हम उस पर किसी तरह का अहंकार करें। हमारी इस प्रकार की भावनाएं होना ही तटस्थ रहना तथा समता भाव रखना है।

हमारे दुःखों का मूल कारण

संसार में प्रत्येक जीव दुःखी है, कोई किसी एक कारण से, तो कोई किसी अन्य कारण से। परन्तु इन दुखो का वास्तविक कारण क्या है? वास्तव में इन दु.खो का मूल कारण हमारा अनादिकालीन अज्ञान है। हम अपनी अज्ञानता के कारण, विभिन्न जन्मो में हमको जो भी शरीर मिलता रहा है, उसी को अपना सब कुछ मानते रहे हैं। इस अज्ञानता के फलस्वरूप ही इस शरीर के सुख को हम वास्तविक सुख मानते रहे है और इस शरीर के दुःख को वास्तविक दु ख मानते रहे है। जो भी प्राणी हमें शारीरिक सुख प्राप्त करने में सहायक होता है, उसको हम अपना मित्र—अपना हितैषी—मानत रहे हैं, और उससे राग—प्रीति—करते रहे है, तथा जो भी प्राणी हमे शारीरिक सुख प्राप्त करने मे बाधक होता है और हमें शारीरिक दु ख देता है, उसको हम अपना शत्रु मानते रहे है और उससे द्वेष—नफरत—करते रहे हैं। इस प्रकार हम अपनी अज्ञानता और इन राग-द्वेष की भावनाओं के कारण ही अनादिकाल से बुरे कर्मों का संचय करते रहे हैं, जिनके फलस्वरूप हम अनादिकाल से ही दुःख भोगते रहे है। अतः हमारी अज्ञानता तथा हमारी राग-द्वेष की भावनाएं ही हमारे दुःखो की मूल कारण है। जिस समय भी हमको अपनी इस अज्ञानता का बोध हो जायेगा और हम इस शरीर की वास्तविकता को जानकर इसको अपनी आत्मा से बिलकुल भिन्न समझ जायेगे और अपनी राग-द्वेष की भावनाओं को त्याग करके वीतरागता—समता—को अपना लेंगे, तभी हम सच्चे सुख के मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

तथ्य यह है कि जिस शरीर के कारण हम यह दु ख उठा रहे हैं, वह "हम" नहीं है। "हम" आत्मा है जो अजर, अमर, अनादि, अकृत्रिम व अनन्त है, वही चेतन तथा दु ख व सुख का वेदन करने वाली है, जबकि यह शरीर जड व नष्ट होने वाला है। अनादि काल से शरीर तो हमने अनन्त धारण किये है, परन्तु हमारी आत्मा वही एक ही है। जिस प्रकार किसी वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिए हमें उस वृक्ष के पत्तो को नही, अपितु उसकी जड को सींचना चाहिये, इसी प्रकार सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये हमे शारीरिक सुख के लिये प्रयत्न करने के बजाय अपनी आत्मा के कल्याण का प्रयत्न करना चाहिये। हमें इस तथ्य का

दृढतापूर्वक विश्वास करना चाहिये कि हमारी आत्मा राग-द्वेष, मोह आदि भावों तथा इस भौतिक शरीर से बिलकुल भिन्न है। हमको यह समझ लेना चाहिये कि हमको जो भी सुख व दुःख मिल रहे है, वे हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिल रहे हैं, अन्यथा किसी भी अन्य प्राणी में इतनी शक्ति नहीं है कि वह हमको सुख व दुःख दे सके। हां, दूसरे प्राणी हमको सुख व दुःख देने में निमित्त अवश्य बन जाते हैं। इस वास्तविकता को समझकर हमें उन प्राणियों पर राग व द्वेष न करके सुखों व दुःखों को तटस्थ भाव से धैर्यपूर्वक भोग लेना चाहिये। और इस प्रकार हमें अपने को मिलने वाले दुःखों के मूल कारणों को दूर करना चाहिये।

ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर

जो व्यक्ति ऊपर लिखी वास्तविकता को समझकर दुःखों व सुखों को तटस्थ भाव से भोग लेता है, अर्थात् जो व्यक्ति दुःख मिलने पर हाहाकार नहीं करता (क्योंकि वे दुःख उसके अपने ही द्वारा किये हये बुरे कार्यों के फलस्वरूप ही मिल रहे होते हैं) तथा सुख मिलने पर हर्ष से उन्मत्त नहीं हो जाता और यह अहंकार नहीं करता कि सुख उसके अपने प्रयत्नों का ही फल है, वही व्यक्ति ज्ञानी होता है। सुख व दुःख भोगते हुए उसके पुराने कर्म तो नष्ट होते ही रहते हैं, परन्तु उसके भाव तटस्थ होने के कारण उसके नये-नये कर्मों के संचय होने की सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है।

परन्तु जो व्यक्ति इस वास्तविकता को न समझ कर दुःख मिलने पर हाहाकार करता है और जिन जीवों के निमित्त से उसे दुःख मिलता है, उन जीवों के प्रति द्वेष करता है, तथा सुख मिलने पर हर्ष से उन्मत्त हो जाता है, अहंकार करता है और यह समझता है कि यह सुख उसके अपने ही प्रयत्नों का फल है और जिन जीवों के निमित्त से उसे सुख मिलता है, उन जीवों के प्रति राग करता है, वह व्यक्ति अज्ञानी होता है। सुख व दुःख भोगते हुए उसके पुराने कर्म तो नष्ट होते ही हैं, परन्तु अपनी राग-द्वेष, अहंकार व कर्तृत्व आदि की भावनाओं के कारण वह नये-नये कर्मों का संचय भी करता रहता है और इन कर्मों के फलस्वरूप भविष्य में भी वह सुख व दुःख भोगता रहता है।

इस सम्बन्ध में एक तथ्य और भी हृदयंगम कर लेना चाहिये। जो व्यक्ति "मेरी आत्मा इस भौतिक शरीर से बिलकुल भिन्न है और शारीरिक सुख नहीं, अपितु आत्मिक सुख ही सच्चा सुख है" इस पर पूर्ण रूप से विश्वास व श्रद्धान करता है और अपना आचरण भी तदनुसार ही रखने का

प्रयत्न करता है, वही व्यक्ति वास्तविक ज्ञानी है। परन्तु जो व्यक्ति इस तथ्य में विश्वास नहीं रखता, वह व्यक्ति लौकिक विद्याओ में चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो, आत्मिक ज्ञान की अपेक्षा से वह अज्ञानी ही माना जायेगा। ऐसा अज्ञानी व्यक्ति करोडों वर्ष तप करके जितने कर्मों को नष्ट करता है, उतने कर्म एक ज्ञानी व्यक्ति अपने मन, वचन व शरीर को अपने वश में करके क्षण भर में नष्ट कर देता है।

ज्ञान धारा और कर्म धारा

हम पहले भी बता चुके है कि आत्मा का स्वभाव जानना व देखना है। जब आत्मा अपने समस्त कर्मों को नष्ट करके अत्यन्त पवित्र हो जाती है, तो उसके जानने व देखने की शक्ति पूर्ण रूप से प्रकट हो जाती है। उस समय वह संसार के प्रत्येक पदार्थ की, भूत, भविष्य व वर्तमान तीनो कालो की समस्त अवस्थाओं को पूर्ण रूप से जानती व देखती है। हमें यह समझ लेना चाहिये कि केवल जानने व देखने में कोई बुराई नहीं है। एक ज्ञानी भी किसी वस्तु को जानता व देखता है और एक अज्ञानी भी उस वस्तु को जानता व देखता है। परन्तु दोनो के जानने व देखने में बहुत अन्तर है। ज्ञानी वस्तु को केवल जानता व देखता ही है, वह अपनी रुचि व अरुचि के अनुसार उस वस्तु को अच्छा व बुरा नहीं समझता। जबकि अज्ञानी जानने और देखने के साथ-साथ अपनी रुचि व अरुचि के अनुसार, वस्तु में अच्छाई व बुराई आरोपित करता रहता है, जिसके फलस्वरूप उसके कर्मों का संचय होता रहता है। उदाहरण के लिये एक फल है, उसमें रंग, रूप व सुगन्ध है। ज्ञानी व्यक्ति केवल इतना जानता व देखता है कि यह फल अमुक रंग का है, अमुक आकार का है, अमुक सुगन्ध वाला है, इसका अमुक नाम है इसमें अमुक गुण हैं तथा अमुक दोष हैं। जबकि अज्ञानी व्यक्ति इतना जानने व देखने के साथ-साथ कहता है कि "इस फल का रूप, रंग, मुझे अच्छा लगता है, इसकी सुगन्ध मनमोहक है, अत: इस फल को तोड कर मैं अपने पास रखूँगा।" ज्ञानी व्यक्ति के केवल जानना और देखना होने से उसमें ज्ञानधारा प्रवाहित हो रही है। परन्तु अज्ञानी व्यक्ति के जानने व देखने के साथ-साथ, उसकी अपनी रुचि के अनुसार, उस वस्तु को अच्छा व बुरा समझने के कारण, उसमें कर्मधारा प्रवाहित हो रही है। ज्ञानधारा से कर्मों का संचय नहीं होता, जबकि कर्मधारा से कर्मों का संचय होता रहता है। अत हमें किसी भी वस्तु को जानने व देखने पर यथा-सम्भव उसमें अपनी ओर से अच्छाई व बुराई आरोपित नहीं करनी चाहिये, जिससे कि हमारे कर्मों के संचय होने की सम्भावना न रहे।

आत्मा के ज्ञान गुण की तुलना हम दर्पण से कर सकते हैं। दर्पण में उसके सामने रक्खे हुए सभी पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। परन्तु दर्पण सभी पदार्थों को प्रतिबिम्बित करता हुआ भी निरपेक्ष व निर्लिप्त रहता है। न तो दर्पण किसी पदार्थ के पास जाता है, न किसी पदार्थ को अपने पास बुलाता है। यदि दर्पण के सामने अग्नि है, तो वह अग्नि को प्रतिबिम्बित करता है, परन्तु वह स्वयं गर्म नहीं हो जाता। यदि दर्पण के सामने बर्फ है, तो वह बर्फ को प्रतिबिम्बित करता है, परन्तु वह स्वयं ठण्डा नहीं हो जाता। जैसी भी जिस पदार्थ की आकृति होती है, दर्पण हूबहू वैसी ही प्रतिबिम्बित करता है, न तो वह अपनी ओर से उसमें सुन्दरता अथवा कुरूपता ही जोड़ता है और न वह किसी पदार्थ को अच्छा अथवा बुरा ही समझता है। हमें भी दर्पण के समान ही निर्लिप्त रहते हुए किसी पदार्थ को देखना व जानना चाहिये तथा उसमें अपनी ओर से अच्छाई व बुराई आरोपित नहीं करनी चाहिये।

कोई भी पदार्थ स्वयं में अच्छा व बुरा नहीं होता।

वास्तव में कोई भी पदार्थ अपने आप में न अच्छा होता है, न बुरा। यह तो हमारे अपने मन की भावनाएं ही हैं जो हम किसी पदार्थ को अच्छा तथा किसी पदार्थ को बुरा समझने लगते हैं। हम सबका अनुभव है कि किसी व्यक्ति को कोई विशेष फल, दाल व सब्जी अच्छी लगती है, तो किसी अन्य व्यक्ति को वही फल, सब्जी व दाल बुरी लगती है। जिस प्रकार हम अपनी रुचि व अरुचि के अनुसार किसी पदार्थ को अच्छा व बुरा समझने लगते हैं, उसी प्रकार हम किसी भी पदार्थ को अच्छे व बुरे किसी भी प्रकार से प्रयोग भी कर सकते हैं, जैसे कि आग हमारे लिये कितनी आवश्यक और उपयोगी है, इससे हमें गर्मी मिलती है इससे हम अपना भोजन पकाते हैं, इससे हम अपने रोगों का उपचार करते हैं, यह हमारे उद्योगों में काम आती है। परन्तु यदि इस आग से कोई अपने को जला ले अथवा किसी अन्य को जला दे तो क्या आग बुरी हो जायेगी? इसी प्रकार जीवित रहने के लिये जल एक अति आवश्यक पदार्थ है; परन्तु यदि उसी जल में कोई व्यक्ति स्वयं ही डूब जाये अथवा किसी और को डुबा दे, तो क्या जल बुरा हो जायेगा? इसी प्रकार धन के द्वारा हम दूसरों का उपकार भी कर सकते हैं और उनको कष्ट भी दे सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी पदार्थ अपने आप में न अच्छा होता है न बुरा। यह तो हमारे ऊपर निर्भर है कि हम उसको अच्छा या बुरा कैसा समझते हैं तथा उसका किस प्रकार प्रयोग करते हैं।

चौथी विचारधारा और आधुनिक विज्ञान

वर्तमान युग विज्ञान का युग कहलाता है। क्योंकि जिन वस्तुओं की हमारे पूर्वजो ने कभी कल्पना भी नही की थी, वैज्ञानिको ने उनको मूर्त रूप दे दिया है। आज का मनुष्य, विशेषकर युवा वर्ग, प्रत्येक बात को विज्ञान की कसौटी पर कस कर देखता है, कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह बात ठीक है या गलत है। अब हम इसी सम्बन्ध में कुछ विचार करेगे।

चौथी विचारधारा का लक्ष्य हमें सच्चा सुख प्राप्त कराना है। विज्ञान का लक्ष्य भी मनुष्य को अधिक-से-अधिक शारीरिक सुख प्राप्त कराना है। साधारण दृष्टि से देखने पर दोनो का लक्ष्य एक ही दिखलाई देता है, परन्तु कुछ अधिक गहराई से विचार करने पर हमें पता चलेगा कि सुख के सम्बन्ध में दोनों की मान्यताए भिन्न-भिन्न हैं। चौथी विचारधारा का लक्ष्य एक प्रकार का अनुपम, अतीन्द्रिय, सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त कराना है, जबकि विज्ञान का लक्ष्य अधिक-से-अधिक शारीरिक सुख प्राप्त करना है। चौथी विचारधारा ऐसे सच्चे व स्थायी सुख की प्राप्ति का विश्वास दिलाती है, जो स्वाधीन है तथा जिसके लिये किसी भौतिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं है, अत: इसके द्वारा प्रदत्त सुख, निर्बल व बलवान, निर्धन व धनवान, सबकी पहुंच के भीतर है, जबकि विज्ञान द्वारा प्रदत्त शारीरिक सुख पराधीन होता है, क्योंकि उसके लिये भौतिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। अत. विज्ञान के द्वारा प्रदत्त सुख का उपभोग केवल भौतिक साधनों से सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते है। एक बात और, चौथी विचारधारा संसार के प्रत्येक प्राणी, चाहे वह मनुष्य हो या छोटा सा कीट-पतंग, सबके लिये सच्चे सुख का मार्ग दिखलाती है, जबकि विज्ञान का लक्ष्य केवल मनुष्य मात्र तक ही सीमित है। इस विचारधारा के माध्यम से प्राप्त सुख से किसी भी अन्य प्राणी को तनिक सा भी कष्ट नहीं मिलता, जब कि विज्ञान के द्वारा प्रदत्त बहुत से शारीरिक सुख तो पशु जगत के कष्टो—उनकी हिंसा—पर ही आधारित होते हैं।

चौथी विचारधारा सत्य का प्रतिपादन करती है और विज्ञान भी सत्य का अन्वेषक है। एक विचारक की प्रयोगशाला उसका हृदय होता है; वह अपने ज्ञान, अध्ययन मनन, तर्क व चिन्तन के द्वारा सत्य की खोज करता है, जबकि एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोग करके सत्य की खोज

करता है। दोनों ही अन्धविश्वास को कोई मान्यता नहीं देते। जहां तक सत्य का प्रश्न है, सत्य एक और केवल एक ही होता है। दो और दो का जोड सदैव चार ही होगा, चाहे कोई भी व्यक्ति, किसी भी समय, कैसी भी परिस्थितियों में यह जोड कर ले। इसी प्रकार चाहे एक विचारक खोजे चाहे एक वैज्ञानिक, यदि उन दोनों के मार्ग सही हैं, तो उन मार्गों के निष्कर्ष एक ही निकलेंगे। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कुछ व्यक्ति कह सकते हैं कि "विज्ञान ने अभी तक आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म व कर्म-सिद्धान्त आदि स्वोकार नही किये हैं, फिर हम इनको सत्य कैसे मान लें?" यह ठीक है कि इन तथ्यों को अभी तक विज्ञान ने स्वीकार नहीं किया है, परन्तु वास्तविकता तो यह है कि विज्ञान अभी तक भौतिक पदार्थों में ही उलझा हुआ है, अभी तो उसने इन अभौतिक क्षेत्रों को छुआ भी नहीं है। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि कुछ वैज्ञानिक अभौतिक क्षेत्रों में भी प्रयोग कर रहे है और अपने प्रयोगों के परिणामों से वे निराश नहीं हैं। उनको आशा है कि वे इन सिद्धान्तो को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सिद्ध करने में अवश्य सफल हो जायेगे। केवल समय की बात है। उदाहरण के लिये चौथी विचारधारा के विचारकों ने अब से हजारों वर्ष पहले ही वनस्पति में जीवन होने की घोषणा कर दी थी, परन्तु विज्ञान ने इस तथ्य को अब बीसवी शताब्दी में स्वीकार किया है।

एक तथ्य और भी ध्यान देने योग्य है। विज्ञान के द्वारा प्रदत्त सुख के साधनों से, सुख के साथ-साथ कष्ट मिलने की भी सम्भावना रहती है, जैसे विज्ञान ने मनुष्य को सुख-सुविधा के लिये उसे विद्युत-शक्ति दी, परन्तु इसी विद्युत-स्पर्श से हम प्रतिदिन मनुष्यों को मरते हुए भी देखते हैं। विज्ञान ने मनुष्यों को ईंधन से चलने वाले वाहन दिये, परन्तु उन वाहनों से निकलने वाले धुंए ने पृथ्वी के वायुमण्डल को ही दूषित कर दिया है, जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये खतरा उत्पन्न हो गया है। इसी विज्ञान ने मनुष्य की सुख-सुविधा के लिये वायुयान दिये; परन्तु उन्हीं वायुयानों की दुर्घटनाओं के फलस्वरूप हजारों व्यक्तियों की मृत्यु होती रहती है। अतः हम देखते है कि विज्ञान अभी तक हमको निरापद तथा व्यवधान-रहित सुख देने में समर्थ नही हो सका है; जबकि चौथी विचारधारा हमको निरापद, तथा शाश्वत सुख प्राप्त कराने का उद्घोष करती है।

एक सबसे महत्त्वपूर्ण बात और भी है। चौथी विचारधारा अपने अनुयायियों पर अहिंसा तथा विवेक का अंकुश रखती है, अतः इस विचार- ... किसी भी प्रकार का तनिक सा भी कष्ट

पहुंचने का भय नहीं है। परन्तु विज्ञान पर अभी तक कोई अंकुश नहीं है, अतः उससे जितना सुख मिलने की आशा है उससे अधिक कष्ट मिलने की सम्भावना है। वैज्ञानिकों ने वायुयान मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए बनाये थे; परन्तु उन्ही वायुयानों से मनुष्य पर मौत और आग बरसायी जा रही है। जो विज्ञान मनुष्य को सुख और सुविधा पहुंचाने के लिये नये-नये अनुसन्धान और आविष्कार करता है, उसी विज्ञान ने ऐसे बम तैयार किये जिनसे हिरोशिमा और नागासाकी जैसे नगर देखते-देखते ही नष्ट-भ्रष्ट हो गये, वहाँ के हजारो नागरिक कुछ ही क्षणों में काल के गाल मे समा गये और उनसे भी अधिक व्यक्ति सदैव के लिये अपंग तथा असाध्य रोगों से ग्रस्त हो गये। और आज तो वैज्ञानिको ने उन बमो से भी हजारों गुने अधिक शक्तिशाली बम तैयार कर लिये है। आज विभिन्न राष्ट्रों के पास इतने बम इकट्ठे हो गये है कि उन बमो से हमारी जैसी एक नहीं, अपितु ऐसी कई-कई पृथ्वियां, कुछ ही क्षणो में नष्ट-भ्रष्ट हो सकती हैं। इन तथ्यों को देखते हुए आज के बुद्धिजीवी सोच रहे है कि यदि विज्ञान पर किसी प्रकार का अंकुश नही लगा, तो कदाचित् ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण समय आ जाये, जब कि कुछ ही व्यक्तियों के अविवेकपूर्ण निर्णय से यह पृथ्वी ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाये।

इन सब तथ्यों को देखते हुए हमे यह निर्णय करना है कि हमें चौथी विचारधारा के द्वारा प्रदत्त स्वाधीन, सच्चा व स्थायी तथा विश्व के समस्त प्राणियों के लिये ये निरापद सुख प्राप्त करना है, जिसका मार्ग संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये खुला हुआ है; अथवा विज्ञान के द्वारा मिलने वाले उस शारीरिक सुख को प्राप्त करना है जो न निरापद है, न सच्चा है और न स्थायी तथा जो थोडे से साधन-सम्पन्न व्यक्तियों के लिये ही उपलब्ध है।

हम यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि हमारा अभिप्राय किसी भी तरह से भी वैज्ञानिक उपलब्धियो का मूल्यांकन कम करना नहीं है।



चन्द्रमा हमको इसीलिये प्रिय लगता है, क्योंकि वह सूर्य से प्रकाश लेकर, उस प्रकाश को अपने पास न रखकर सारी पृथ्वी पर लुटा देता है।



एक पाप दूसरे पाप के लिये दरवाजा खोल देता है।



दुःख को भूलने से दुख मर जाता है।

कुछ शंकाएं और उनका समाधान

इस प्रकार हमने चौथी विचारधारा पर अपनी यथाशक्ति विवेचन किया। अब इस विचारधारा से सम्बन्धित कुछ शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न करते हैं।

क्या चौथी विचारधारा व्यक्तिगत स्वार्थ पर आधारित है ?

कुछ व्यक्ति यह आक्षेप कर सकते हैं कि चौथी विचारधारा व्यक्तिगत स्वार्थ पर आधारित है। यह विचारधारा व्यक्ति की केवल अपनी मुक्ति की ही बात करती है। इस विचारधारा से अन्य व्यक्तियो को तथा समाज, देश व संसार को क्या लाभ है ?

यह ठीक है कि यह विचारधारा व्यक्ति की केवल अपनी मुक्ति के विचार पर ही आधारित है, परन्तु हम इसको स्वार्थपूर्ण नही कह सकते। हम पहले भी कह चुके है और यह जनसाधारण का अनुभव भी है कि प्रत्येक प्राणी अपने अच्छे व बुरे कार्यों के फलस्वरूप स्वय ही सुख व दुःख भोगता है। इस सुख व दुःख भोगने में उसका कोई भी साथी नहीं होता। हमारे जो मित्र व सम्बन्धी हमारे साथ सुख व दुःख भोगते हुए दिखते है, वे सब भी वास्तव मे अपने ही द्वारा किये हुए अच्छे व बुरे कार्यों का फल भोग रहे होते हैं। हम सबने ऐसी बहुत सी घटनाएं देखी होंगी कि एक व्यक्ति के पास करोड़ो का धन है, परन्तु जब उसका प्रिय पुत्र किसी दुर्घटना के कारण घायल हो जाता है या किसी रोग से ग्रस्त हो जाता है, तो वह बह पुत्र स्वयं ही कष्ट पाता रहता है और उसके माता-पिता, पत्नी व अन्य सम्बन्धी, सब प्रकार से सम्पन्न होते हुए भी उसे असहाय-से खड़े देखते रहते हैं। हम प्रतिदिन देखते है कि प्रत्येक प्राणी अकेला ही जन्म लेता है और अकेले ही उसका निधन होता है। इस जन्म में निधन हो जाने पर इस जन्म के सम्बन्धियों व मित्रों से उसका कोई भी सम्बन्ध नही रहता। कोई भी नहीं जानता कि अपने निधन के पश्चात उसने कहां व किस योनि में जन्म लिया है ? इन्हीं सब वास्तविकताओं को दृष्टि में रखते हुए यह विचारधारा इस तथ्य को प्रतिपादित करती है कि प्रत्येक प्राणी केवल अपनी मुक्ति के लिये ही प्रयत्न कर सकता है। दूसरे प्राणियों का तो वह केवल मार्गदर्शन ही कर सकता है। प्रत्येक प्राणी को अपने ही प्रयत्नों

से मुक्ति मिल सकती है। किसी भी तथाकथित सर्वशक्तिमान परमेश्वर में अथवा किसी भी अन्य प्राणी मे इतनी शक्ति नही है कि वह किसी भी अन्य प्राणी को सुख व दुख दे सके तथा उसे मुक्ति दिला सके ।

जहां तक इस विचारधारा के द्वारा दूसरे व्यक्तियो तथा समाज, देश एवं विश्व की भलाई का प्रश्न है; इनकी सबसे बड़ी भलाई तो यही है कि यह विचारधारा यथाशक्ति अहिसा का पालन करने पर बल देती है। जो व्यक्ति अहिसा का पालन करता है, वह किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट देना तो दूर, कष्ट देने का विचार भी मन मे नही लाता। क्या यह इस विचारधारा की कम उपलब्धि है? इस विश्व मे जितने भी कष्ट हम देख रहे है उनके मूल मे हिसा की भावना ही है। यदि प्रत्येक व्यक्ति हिसा का त्याग करके अहिसा का पालन करने लगे तो इस विश्व के सारे ही कष्ठ दूर हो जायें।

अहिसा के सिद्धान्त पर बल देने के साथ-साथ यह विचारधारा दया, दान व परोपकार करने पर भी बल देती है। दया, दान व परोपकार से दूसरे प्राणियों की भलाई ही होती है। यह विचारधारा तो यह कहती है कि जो भी दया, दान व परोपकार किया जाये वह निष्काम व निस्वार्थ भावना से किया जाये, तभी वे दया, दान व परोपकार कल्याणकारी है, अन्यथा तो वे व्यापार बन जाते है, जैसे, आपने किसी का उपकार किया और बदले मे आपने प्रतिष्ठा व सम्मान चाहा। हाँ, अनेको बार बिना चाहे भी परोपकारी को प्रतिष्ठा व सम्मान मिल जाता है। इसमे उसका कोई दोष नही है। इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विचारधारा पर स्वार्थपूर्ण होने का दोष लगाना ठीक नही है।

सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये कितना ज्ञान पर्याप्त है ?

कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये हमको कितने ज्ञान की आवश्यकता है ?

आज इस संसार में धर्म, दर्शन, राजनीति, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि अनेकों विषयो पर विभिन्न भाषाओ में लाखो पुस्तके उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रो मे नये-नये अनुसंधान व शोध हो रहे हैं और प्रतिदिन ही इन विषयो पर नया-नया साहित्य रचा जा रहा है। क्या सच्चा सुख प्राप्त करने के लिये इन सब विषयो का विशेषज्ञ होना आवश्यक है ? आज ससार मे इतनी पुस्तके उपलब्ध है कि किसी भी व्यक्ति

के लिये, एक जन्म तो क्या, कई जन्म लेकर भी इन सब विषयों का विशेषज्ञ होना तो दूर, इन पुस्तकों का पढ़ पाना भी सम्भव नहीं है। तो फिर, क्या अपने अधूरे ज्ञान के कारण हम सच्चा सुख प्राप्त करने से वंचित ही रह जायेंगे?

परन्तु ऐसी बात नही है। वास्तव में सच्चा सुख प्राप्त करने के लिये किसी भी व्यक्ति को इन सब विषयों का विशेषज्ञ होना आवश्यक नही है। जिस प्रकार किसी डूबती हुई नौका में बैठे हुए यात्रियो के लिये भली प्रकार तैरने का ज्ञान व उसका अभ्यास ही पर्याप्त है, जिससे वह अपनी व दूसरो के जीवन की रक्षा कर सके, उसी प्रकार सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए हमें—अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व की वास्तविकता का ज्ञान, अपने दुखो के कारण और उनको दूर करने के उपाय तथा सच्चा सुख और उसको प्राप्त करने के साधनो के ज्ञान की ही आवश्यकता है। हा, यह ज्ञान सच्चा होना चाहिये और इसके साथ सच्चे श्रद्धान और सच्चे आचरण का समन्वय होना भी आवश्यक है।

इहलोक तथा परलोक ?

कुछ व्यक्ति यह कहते है कि इस बात मे क्या तुक है कि जो इहलोक हमारे सामने है, उस पर तो ध्यान न दिया जाये और जिस परलोक का का कोई निश्चय ही नही है, जिसको आज तक किसी ने देखा ही नही है और जो कदाचित् किन्ही निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों की कल्पना मात्र है, उसके लिये चिन्ता करते रहे।

ऐसा कहने वाले व्यक्तियो से हम एक प्रश्न पूछते है कि परलोक की बात तो जाने दीजिये, व्यक्ति को अपने भविष्य की चिन्ता भी करनी चाहिये या नही? क्योंकि जिस प्रकार परलोक अनिश्चित है, उसी प्रकार भविष्य भी अनिश्चित है। कौन जानता है कि उसकी आयु कितनी है और कल क्या होगा? हम बड़ी-बड़ी योजनाए बनाते है, आकाश व पाताल एक करते हैं, परन्तु काल का एक ही झटका हमारे सारे प्रयत्नो को निष्फल कर देता है। इन वास्तविकताओ को देखते हुए भी कितने व्यक्तियो ने भविष्य के लिये योजनाएं बनानी छोड़ दी है? हमारा सबका अनुभव है कि माता-पिता अपने बालको का भविष्य सुधारने के लिये उनके लिये प्रारम्भ से ही उत्तम शिक्षा की व्यवस्था करते है। इसी प्रकार बहुत से बालक मनोरंजनों से अपना मन हटाकर बहुत तत्परता व परिश्रम से पढ़ाई करते है। अधिकाश में ऐसे ही बालक अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते है। इसके विपरीत जो माता-पिता और बालक भविष्य को दृष्टि मे नही रखते और अपना समय

खेल तमाशों में लगाते हैं, उनको अन्ततः क्या परिणाम भुगतना पड़ता है? वह किसी से छिपा नहीं है। इसलिये भविष्य के लिये चिन्ता करना और उसके लिये प्रारम्भ से ही योजनाबद्ध कार्य करना सदैव ही अच्छा रहता है। यही बात हम परलोक के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। हमारा वर्तमान जीवन तो बहुत ही सीमित है, अधिक से अधिक सौ वर्ष का, परन्तु भविष्य तो अनन्त है। इस छोटे-से सीमित जीवन में परलोक की चिन्ता करने से हम हर प्रकार से लाभ में ही रहेगे।

यदि हम थोड़ी देर के लिये यह मान भी लें कि इस वर्तमान जीवन के अतिरिक्त अतीत में हमारा किसी प्रकार का भी अस्तित्व नही था और वर्तमान जीवन में मृत्यु हो जाने के बाद, भविष्य में भी हमारा कोई अस्तित्व नही रहेगा (अर्थात् परलोक का अस्तित्व ही नहीं है) तो भी संयम व अहिंसा का पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने मे हम कभी भी घाटे में नही रहेगे। हम सब का यही अनुभव है कि जो व्यक्ति इस प्रकार का पवित्र जीवन व्यतीत करते है, उनका सब आदर करते हैं। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी लोग उनको सम्मानपूर्वक याद करते है। इसके विपरीत जो व्यक्ति उद्दंडता पूर्वक जीवन बिताते हैं और दूसरो को कष्ट देते रहते हैं, वे सदैव निरादर ही पाते हैं। उनके भय के कारण उनके सामने चाहे कोई व्यक्ति अपना मुँह न खोले, परन्तु मन मे तो सब उनको बुरा ही कहते हैं और उनके अनिष्ट की ही कामना करते रहते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चाहे परलोक हो अथवा न हो, पवित्र व सयमित जीवन व्यतीत करना प्रत्येक दशा मे अच्छा ही रहता है।

हम यह भी भली प्रकार समझ ले कि परलोक सुधारने का अर्थ यह कदापि नही है कि परलोक की चिन्ता में हम इस लोक के उत्तरदायित्वों को भूल जायें और घर-द्वार छोड़ कर जंगल में चले जाये या जीवनयापन के लिये धन उपार्जन करना छोड़ दें तथा अपने परिवार और अपने ऊपर आश्रित अन्य व्यक्तियों को निराधार छोड़ कर उनका जीवन कष्टमय बना दें। (यद्यपि वास्तविकता तो यही है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों के अनुसार ही सुखी व दुःखी होता है। कोई भी अन्य प्राणी उसे सुखी व दुःखी नहीं कर सकता। दूसरा तो केवल निमित्त मात्र ही होता है।) इसके विपरीत परलोक सुधारने का अर्थ यही है कि हम अपना वर्तमान जीवन इस प्रकार जियें, जिससे हमारे द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कोई कष्ट न हो। हम ईमानदारी, सच्चाई, परिश्रम व अहिंसक साधनों से ही अपनी आजीविका का उपार्जन करें और इस प्रकार जो भी हमे प्राप्त हो, उसमें ही सन्तोषपूर्वक अपना और अपने आश्रितो का जीवन निर्वाह करें। इसके साथ-साथ हम

यथाशक्ति प्राणी मात्र की भलाई और अपनी आत्मा की उन्नति के लिये प्रयत्न भी करते रहें।

यदि आप पर्याप्त सौभाग्यशाली हैं, आपके आश्रित आत्म-निर्भर हो गये हैं, आपने अपने समस्त लौकिक उत्तरदायित्व पूरे कर लिये हैं, आपके पास अपना जीवनयापन करने के लिए पर्याप्त साधन हैं, तो आपको अपना अधिक-से-अधिक समय अपनी आत्मा की उन्नति तथा परोपकार में लगाना चाहिये। ऐसा न हो कि आप निन्यानवे के फेर में ही पड़े रहें और मृत्यु का बुलावा आ जाये। उस समय आपको पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ न लगेगा।

इस सम्बन्ध में हम एक लघु कथा दे रहे है।

एक राजा बहुत ही महत्वाकांक्षी था। वह अपनी सेना लेकर दूसरे देशो को जीतने के लिये निकला। एक दिन उस राजा को एक साधु मिला। साधु ने उस राजा से प्रश्न किया कि भविष्य के लिये उसकी क्या योजना है। राजा ने उत्तर दिया, "मैं अमुक-अमुक देश को जीतकर अपने राज्य का विस्तार करूँगा।" साधु ने पूछा, "उन देशों को जीतने के पश्चात् फिर क्या करोगे ?" राजा ने कहा "इन देशों को जीतकर मैं अपने देश लौट जाऊँगा और फिर सुखपूर्वक अपना जीवन बिताऊँगा।" साधु ने कहा, "राजन्, यह कार्य (सुखपूर्वक जीवन बिताना) तो आप आज भी कर सकते है, फिर इन युद्धों और हत्याकाण्डों से क्या लाभ ?"

यही प्रश्न हम उन सौभाग्यशाली व्यक्तियो के सम्मुख रखते हैं, जिनके पास अपने जीवनयापन के लिये पर्याप्त साधन है, जो अपने समस्त उत्तरदायित्वों से मुक्त हो चुके हैं, परन्तु फिर भी सांसारिक झंझटो में उलझे हुए हैं।

जहाँ तक परलोक के होने अथवा न होने का प्रश्न है, इस विषय पर हम पहले ही पर्याप्त विवेचन कर चुके हैं।

क्या परलोक सुधारना कठिन है ?

कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि परलोक सुधारने का कार्य बहुत कठिन है। इसमें अपनी इन्द्रियों व इच्छाओं को मारना पड़ता है और बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं। इसलिये किसी अनिश्चित भविष्य (परलोक) के लिये स्वेच्छा से कष्ट उठाकर अपना वर्तमान (इहलोक) भी क्यों खराब किया जाये ?

परन्तु यह बात ठीक नहीं है। यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम इसी परिणाम पर पहुंचेंगे कि परलोक सुधारने का काम इहलोक

सुधारने से बहुत सरल है। आज सब प्रकार के शारीरिक सुख प्राप्त करने का साधन धन को ही माना जाता है। परन्तु इस धन को उपार्जन करने में जितने कष्ट सहने पडते है, वे परलोक को सुधारने के प्रयत्नो के फलस्वरूप हुए कष्टो से बहुत अधिक होते है। धन ऐसी वस्तु है जिसको उपार्जित करने में भी कष्ट सहने पड़ते है तथा जिसको अपने पास सुरक्षित रखने में भी कष्ट सहने पड़ते हे। धन प्राप्त करने के लिये ही व्यक्ति उचित व अनुचित सब प्रकार के साधन अपनाते है। धन प्राप्त करने के लिये ही व्यक्ति दूसरो को ठगते है, दूसरो के यहाँ चोरी करते है, डाके डालते है और कभी-कभी दूसरो की हत्या तक कर डालते है। यदि यह अनुचित साधन न भी अपनाये, तो भी धन का उपार्जन करने के लिये व्यक्तियो को दिन-रात परिश्रम करना पड़ता है, दूसरो की नौकरी करनी पड़ती है, तरह-तरह के अपमान सहने पड़ते है, बहुत से जान-जोखिम के काम करने पड़ते है, देश छोड़ विदेश जाना पड़ता है, अपने घर, परिवार और सगे-सम्बन्धियो से अलग रहना पड़ता है, तब कही जाकर चार पैसो का उपार्जन हो पाता है। धन-उपार्जन के पश्चात् उसको सुरक्षित रखने की चिन्ता सताती रहती है। कई बार तो इस धन को रक्षा करने मे अपने प्राणो से भी हाथ धोना पड़ता है। इसी प्रकार जब यह धन व्यय किया जाता है, तो भी कष्ट होता है कि इतनी कठिनाई से उपार्जित किया हुआ धन खर्च हो रहा है। इसके विपरीत यदि हम केवल अपनी अनिवार्य आवश्यकताओ के लिये ही धन का उपार्जन करे और धन को इकट्ठा करने का लालच न करें तथा सन्तोषपूर्वक रहे, तो हम थोड़े-से परिश्रम और थोड़े से समय मे ही तथा समुचित साधनो के द्वारा ही अपने जीवनयापन के लिये धन का उपार्जन कर सकते है। और इस प्रकार अपनी तृष्णा को वश मे रखने और समुचित साधनो का प्रयोग करने के फलस्वरूप हम अपना परलोक भी सुधार सकते है।

एक बात और भी ध्यान देने की है। धन-उपार्जन करने के लिये भी परिश्रम करना पड़ता है और कष्ट सहने पड़ते है तथा अपनी आत्मोन्नति व परोपकार करने मे भी परिश्रम करना पड़ता है और कष्ट सहने पड़ते है, परन्तु दोनो प्रकार के कष्टो के फल मे महान् अन्तर है। उदाहरण के लिये एक चोर और एक डाकू चोरी करने और डाका डालने के लिये अपनी जान जोखिम में डालते है। दूसरी ओर सैनिक भी देश की रक्षा करने तथा शत्रु को परास्त करने के लिये अपनी जान जोखिम मे डालते है। घायल होने पर चोर को और सैनिकों को एक जैसा ही कष्ट होता है। परन्तु चोर व डाकू को सब अपमानित करते है, जबकि सैनिक सबसे सम्मान पाते है। इसी प्रकार एक निर्धन व्यक्ति साधनहीन होने के कारण भूखा व नगा रहता है, दूसरी ओर एक साधु भोजन उपलब्ध होते हुए भी उपवास करता रहता है

और सब प्रकार के साधन उपलब्ध होते हुए भी उनका उपयोग न कर स्वेच्छा से अपनी आवश्यकताएं कम करता जाता है। गर्मी और सर्दी भी दोनो व्यक्तियो को एक समान ही कष्ट देती हैं। परन्तु निर्धन व्यक्ति जहा भी जाता है अपमानित किया जाता है, जबकि साधु जहा भी जाता है, पूजा जाता है। इस अन्तर का कारण क्या है ? कारण यही है कि एक चोर की और एक सैनिक की तथा एक निर्धन की और एक साधु की भावनाओं और उनके अभिप्रायों में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। चोर अपने निज के स्वार्थ के लिये कष्ट उठाता है जबकि सैनिक देश की रक्षा के लिये कष्ट उठाता है। इसी प्रकार एक निर्धन व्यक्ति नंगा व भूखा होने के कारण कष्ट उठाता है परन्तु उसकी सदैव यह इच्छा रहती है कि यदि मुझे धन मिल जाये, तो मैं इस कष्ट से छुटकारा पा जाऊ ! इसके विपरीत एक साधु भी गर्मी, सर्दी व भूख से कष्ट पाता है, परन्तु सब प्रकार के साधन उपलब्ध होते हुए भी वह अपनी आत्मोन्नति और दूसरो के उपकार के लिये उनका त्याग कर देता है। इन व्यक्तियो की भिन्न-भिन्न भावनाओ का जो फल उनको इसी लोक मे मिलता है, वह तो हम सब प्रत्यक्ष देखते ही है; हमारी अच्छी भावनाओ का भविष्य (परलोक) मे जो फल मिलेगा उसका भी सहज में अनुमान लगाया जा सकता है। ये हम सब के प्रतिदिन अनुभव में आने वाले तथ्य है। परन्तु इन पर सोचने की आवश्यकता कितने व्यक्ति समझते है ?

हम एक और उदाहरण लेते है। मान लीजिये कि हम बहुत सौभाग्यशाली है और हमारे पास पर्याप्त धन है। हम उस धन को विभिन्न प्रकार से खर्च कर सकते है :—

(१) हम उस धन को दूसरो का उपकार करने और उनका कष्ट दूर करने के लिये भी खर्च कर सकते है,

(२) हम उस धन को अपनी उचित आवश्यकताओ की पूर्ति पर खर्च कर सकते हैं;

(३) हम उस धन को मांस-मदिरा सेवन करने, वेश्या-गमन करने, शिकार खेलने जैसे अधम कार्यों पर भी खर्च कर सकते है।

यदि हम उस धन को प्रथम प्रकार से खर्च करते है, तो हमको इस लोक में भी प्रतिष्ठा व सम्मान मिलेगा और हम अपना परलोक भी सुधार सकेंगे।

यदि हम उस धन को दूसरी प्रकार से खर्च करते हैं, तो न तो इस लोक में कोई हमे भलाई देगा और न हम परलोक के लिये ही कुछ अच्छे कर्मों का सचय कर सकेगे।

यदि हम उस धन को तीसरी प्रकार से खर्च करते हैं, तो कुछ स्वार्थी, दुष्ट व लम्पट मित्रों को छोड़कर इस लोक में हमें कोई भी व्यक्ति अच्छा नहीं कहेगा और इस प्रकार के बुरे कार्य करके हम इस लोक के साथ-साथ अपना परलोक भी बिगाड़ लेंगे।

एक बात और, यह आवश्यक नहीं है कि इहलोक और परलोक सुधारने या बिगाड़ने के लिये धन का होना ही आवश्यक है। यदि हमारे पास धन न भी हो, तो हम अपने शारीरिक बल, अपनी योग्यता, अपने समय तथा अपने अन्य साधनों का भी ऊपर लिखित तीनों प्रकार से प्रयोग कर सकते हैं और अपना इहलोक व परलोक सुधार व बिगाड़ सकते है। अधिकांश में यही देखा जाता है कि जो व्यक्ति परोपकार करते हुए संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करते है, वे दूसरों की अपेक्षा अधिक सुखी रहते हैं। इस प्रकार अपनी भावनाओ व कार्यों के द्वारा हम अपना इहलोक और परलोक सुधार भी सकते है और बिगाड भी सकते है।

ऊपर किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परलोक सुधारने के लिये जो कार्य किये जाते है, वे इहलोक सुधारने के कार्यों से कठिन नही है, फिर भी उनके परिणामों मे महान अन्तर है।

●

अपने अवगुण अपने को ही दुख देते है।

—स्वामी विवेकानन्द जी

●

जहां प्रेम है वहा जीवन है, जहां घृणा है, वहा विनाश है।

—महात्मा गाधी जी

●

वही काम ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े और जिसके फल का प्रसन्न मन से भोग कर सकें। —धम्मपद

●

प्रवास (विदेश) मे विद्या मित्र है, घर में पत्नी मित्र है, रोग में औषधि मित्र है और मृत-व्यक्ति का मित्र धर्म है।

—चाणक्य नीति दर्पण

●

जो व्यक्ति हम पर विश्वास करते है, उन्हे ठगने में क्या बहादुरी है?

●

अपनी गलती को मान लेने में कोई अपमान नहीं है।

इहलोक और परलोक दोनों एक साथ सुधर सकते हैं

हम यह पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि अपना परलोक सुधारने के प्रयत्नों से हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपना घर-द्वार और सब उत्तरदायित्व छोड कर जंगल में चले जायें। इसी प्रकार इहलोक सुधारने का भी यह तात्पर्य नहीं है कि हम दूसरों के कष्टों के प्रति असावधान होकर जैसे भी हो, अच्छे साधनों से अथवा बुरे साधनों से, केवल अपना स्वार्थ ही सिद्ध करते रहें। परलोक सुधारने के प्रयत्नों से तात्पर्य यही है कि हम चाहे जिस कार्यक्षेत्र में भी हों और चाहे जैसी स्थिति में भी हों, वहीं पर रहकर, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर, प्राणी मात्र की भलाई का ध्यान रक्खें व तदनुसार ही प्रयत्न भी करते रहें; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का कार्यक्षेत्र ही उसकी तपोभूमि है। हम सामाजिक प्राणी है; अपने जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त हम समाज से कुछ-न-कुछ लेते ही रहते हैं। यदि समाज हमें सहयोग न दे तो हमारा जीवित रहना भी असम्भव हो जाये। यदि समाज को हम कुछ दे न भी सकें, तो इतना ध्यान तो अवश्य ही रक्खें कि हमारे किसी भी कार्य व व्यवहार से विश्व के किसी भी प्राणी को प्रत्यक्ष रूप में तथा परोक्ष रूप में किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचे। हमारा आचरण प्रामाणिक हो। हम मनसा वाचा व कर्मणा यथासम्भव अहिंसा का पालन करते रहें। हमारी कथनी व करनी में कोई अन्तर न हो। हम अपने अधिकार मांगने की बजाय अपना कर्तव्य पूरा करने के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक रहें।

हम उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रत्येक क्षण यही भावना करते रहें :—

सुखी रहें सब जीव जगत के,
कोई कभी न दुःख पावे।

यह भावना हमारे हृदय की गहराइयों से उठनी चाहिये और हमें अपना आचरण भी यथाशक्ति इस भावना के अनुसार ही रखना चाहिये। सच्चे हृदय से निकली हुई इस भावना से हमारे आचरण में बहुत अन्तर आजायेगा और हमारे जीवन में बहुत शान्ति आयेगी।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति का कार्यक्षेत्र ही उसकी तपोभूमि है। यदि आप विद्यार्थी हैं, तो अपने तन-मन से विद्याध्ययन

करते रहें, अपने माता-पिता व गुरुजनों के प्रति विनम्र बने रहें; अपना चरित्र व व्यवहार उच्चकोटि का रक्खें; सिगरेट, मदिरा व अन्य मादक पदार्थों का सेवन कभी भूल कर भी न करें, अश्लील साहित्य न पढ़ें; अश्लील चित्र न देखें, अपने विचार पवित्र रक्खें; हिंसात्मक व तोड़-फोड़ के कार्यों में भाग न ले, परीक्षा में पास होने के लिये अनुचित साधनों का प्रयोग न करें, तथा ऐसा कोई भी कार्य न करें जिससे देश, समाज व धर्म का तनिक भी अहित होने की सम्भावना हो।

यदि आप गृहिणी हैं, तो अपने परिवार में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाये रक्खें; परिवार के सब सदस्यों की यथा-योग्य सेवा शुश्रूषा करती रहे, अपनी सन्तान में उच्चकोटि के संस्कार डालने का प्रयत्न करती रहे; घर में ही शुद्ध, सात्विक तथा स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन बनाकर सबको खिलायें; घर की सफाई करते हुए, भोजन बनाते हुए तथा गृहस्थी के अन्य कार्य करते हुए सदैव यह ध्यान रक्खें कि आपके द्वारा यथासम्भव किसी जीव-जन्तु को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंचे; यदि दुर्भाग्यवश आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तथा आपके पति की आय कम है, तो ऐसी स्थिति में भी संतोष रक्खे और यथासम्भव परिवार के किसी भी सदस्य को शिकायत का अवसर न दें, आपके बहुत से परिचित व सम्बन्धी आप से अधिक अच्छी स्थिति में होंगे, उनको देखकर ईर्ष्या व द्वेष न करें, अपने पति को यथासम्भव घर के झंझटों से मुक्त रक्खें, उनको कभी भी ऐसी परिस्थितियों में न डालें, जिससे कि वे अनुचित साधनो से धन उपार्जन करने को लाचार हो जायें; इसके विपरीत उनको सदैव ही समुचित साधनो से ही धन उपार्जन करने की प्रेरणा देती रहें।

यदि आप किसी वस्तु के निर्माता है, तो आपको यथासम्भव उच्चकोटि की तथा अच्छे स्तर की वस्तु का ही उत्पादन करना चाहिये, उस वस्तु के तोल-माप इत्यादि ठीक-ठीक रखने चाहिये, आपको सदैव यही भावना रखनी चाहिये और ऐसे ही प्रयत्न करते रहने चाहियें कि ग्राहक को उचित मूल्य पर प्रामाणिक वस्तु मिल सके, आपको अपना लाभांश समुचित ही रखना चाहिये; अपने आधीन श्रमिको तथा अन्य कर्मचारियों को समुचित वेतन देना चाहिये तथा उनकी सुख-सुविधाओं का अधिक-से-अधिक ध्यान रखना चाहिये; धन उपार्जन के लिये तथा किसी भी अन्य कार्य के लिये अनुचित व अनैतिक साधनो का प्रयोग कभी नही करना चाहिये तथा शासन के नियमों का पालन करना चाहिये।

यदि आप व्यापारी हैं, तो आपको यथासम्भव प्रामाणिक वस्तुओं का ही व्यापार करना चाहिये; आपको सदैव यही प्रयत्न करना चाहिये कि

ग्राहक को उचित मूल्य पर प्रामाणिक वस्तुएं मिल सकें तथा ग्राहक को अपने प्रत्येक पैसे का पूरा-पूरा लाभ मिल सके। आपको सदैव यही ध्यान रखना चाहिये कि जो वस्तु आप बेच रहे हैं, उससे ग्राहक हर प्रकार से संतुष्ट रहे। आपको कभी भी अनुचित लाभ नहीं लेना चाहिये। किसी भी कार्य के लिये अनुचित व अनैतिक साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। वस्तुओं में कभी भी मिलावट नहीं करनी चाहिये, बढिया वस्तु के स्थान पर कभी भी घटिया वस्तु नहीं देनी चाहिये तथा शासन के नियमों का पालन करना चाहिये।

यदि आप चिकित्सक है, तो आपका सर्व प्रथम लक्ष्य रोगी का अच्छे-से-अच्छा उपचार तथा उसकी अच्छी-से-अच्छी सेवा करना होना चाहिये।

यदि आप वकील हैं, तो आप न तो स्वयं ही अन्याय का पक्ष लें, और न किसी अन्य व्यक्ति को ही अनुचित व अनैतिक साधनों के प्रयोग करने की सलाह दें।

यदि आप शिक्षक हैं, तो आप विद्यार्थियों की उन्नति व उनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित ध्यान रक्खें, किसी के प्रभाव में आकर व किसी भी प्रलोभन के वश होकर कोई भी अनैतिक कार्य न करें तथा अपना आचरण भी आदर्श रखने का प्रयत्न करते रहें, जिससे विद्यार्थियों पर भी अच्छा प्रभाव पड़े। और उनको आपके आचरण से प्रेरणा मिलती रहे।

यदि आप कलाकार हैं, तो ऐसी कला का ही सृजन करें, जिससे समाज में सुरुचि बढ़े।

यदि आप में शारीरिक बल, शस्त्र बल, धन बल या अन्य किसी प्रकार का भी बल है, तो अपना यह बल दीन-दुखियों के उपकार व समाज की भलाई में लगायें।

यदि आप किसी शासकीय कार्यालय अथवा सार्वजनिक संस्था में कार्य करते हैं, तो आपका लक्ष्य यथासम्भव जनता की अच्छी-से-अच्छी सेवा करना होना चाहिये। रिश्वत लेकर या किसी अन्य प्रलोभन के वश तथा किसी भी दबाव में आकर कोई अनुचित तथा अनैतिक कार्य कभी भी नहीं करना चाहिये।

यदि आप किसी निजी कार्यालय अथवा फ़ैक्टरी में कार्य करते हैं, तो आपको अपने स्वामी का अधिक-से-अधिक कार्य करना चाहिये। परन्तु आप अपने स्वामी के लिये भी कोई ऐसा कार्य न करें, जिससे जनसाधारण का तथा देश का अहित होने की सम्भावना हो। यदि अपने स्वामी से आपका कोई मतभेद भी हो, तो उस मतभेद को आपसी बातचीत के द्वारा या किसी अन्य निष्पक्ष व्यक्ति को बीच में डालकर सुलझा लेना

चाहिये; हड़ताल, घेराव, हिंसा तथा तोड़-फोड़ का सहारा कभी नहीं लेना चाहिये।

यदि आप सैनिक है, तो आपका सर्वप्रथम कर्तव्य देश की रक्षा करना होना चाहिये। आपको कितना भी शारीरिक कष्ट तथा कैसे भी प्रलोभन क्यों न दिये जायें, परन्तु आपको कभी भी देश के प्रति विश्वासघात नही करना चाहिये। युद्ध की स्थिति में भी आपकी देश-रक्षा की भावना सर्वोपरि होनी चाहिये, परन्तु उस समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि आपसे व्यर्थ में ही हिंसा न हो।

इस प्रकार आप चाहे किसी भी क्षेत्र में हों, उसी क्षेत्र में ही आप अपने कर्तव्य को पूरा करने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु यह सब निर्लिप्त भाव से ही करे, क्योंकि निर्लिप्त भाव से अपना कर्तव्य करने पर कर्मों का संचय कम होता है।

यदि इस प्रकार अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर प्राणीमात्र की भलाई का ध्यान रखते हुए आप अपना कर्तव्य करते रहेंगे, तो प्रथम तो आपको किसी प्रकार का कष्ट हो नही होगा, फिर भी यदि कभी कोई कष्ठ आ ही पडे, तो उस कष्ट को अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए बुरे कार्यों का फल समझ कर धैर्य पूर्वक सह लेना चाहिये; परन्तु अपने मार्ग से कभी भी विचलित नही होना चाहिये। इस प्रकार के व्यवहार से औरों की भलाई के साथ-साथ आपकी अपनी भलाई भी होगी और इहलोक के साथ-साथ आपका परलोक भी सुधरेगा।

यहां पर एक शका यह उठ सकती है कि इस प्रकार कर्तव्य करते हुए जीवन व्यतीत करना तो बहुत कष्ट-कर होगा। ऐसा करने से हमें अपनी इच्छाओं को दबाना पडेगा और शरीर को कष्ट देना पड़ेगा, तो इस प्रकार किसी अनिश्चित भविष्य के लिये स्वेच्छा से कष्ट सहने से क्या लाभ? इस शका के उत्तर में निवेदन है कि अपना कर्तव्य पूरा करते हुए जीवन व्यतीत करना हमें तभी तक कष्ट-कर मालूम होता है, जब तक हम अपनी आत्मा और अपने शरीर की वास्तविकता को नहीं जानते और अपने शरीर को ही, अपना सब कुछ समझते रहते हैं। जैसे ही हमें पूर्ण रूप से यह विश्वास व श्रद्धान हो जाता है कि हमारी आत्मा हमारे इस भौतिक शरीर से बिल्कुल भिन्न है, कि सच्चा व स्थायी सुख तो अपने समस्त कर्मों को नष्ट करके अपनी आत्मा को अत्यन्त निर्मल व पवित्र करने से ही प्राप्त हो सकेगा, कि यह शारीरिक सुख वास्तविक सुख नही केवल सुखाभास मात्र है—तब अपना कर्तव्य करते हुए संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना क्या कभी हमें कष्टकर लगेगा?

एक महिला को अपनी गर्भावस्था में, फिर सन्तान को जन्म देने में तथा फिर सन्तान का लालन-पालन करने में कितने कष्ट सहने पड़ते हैं; परन्तु अपनी सन्तान के प्रति अपार स्नेह होने के कारण क्या वह इन कष्टों को कष्ट समझती है ?

क्या कोई कृपण धन-संग्रह करने में होने वाले कष्टों को कष्ट समझता है ? इसके विपरीत वह तो इन कष्ट-साध्य कार्यों को करने में प्रसन्नता ही अनुभव करता है ।

इसी प्रकार जब हम इस विश्व को, अपने इस भौतिक शरीर तथा अपनी आत्मा की वास्तविकता से परिचित हो जाते हैं, तो हमें अपना कर्तव्य-पालन करते हुए संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करने में और अपनी आत्मा को अत्यन्त निर्मल बनाने की साधना करने में कभी कष्ट प्रतीत नहीं होता, अपितु एक प्रकार के अपूर्व आनन्द व अलौकिक शान्ति का ही अनुभव होता है ।

इस प्रकार अपना जीवन संयमपूर्वक व्यतीत करने और अपना आचरण प्रामाणिक रखने से हम अपना इहलोक सुधार सकते हैं । ऐसे प्रामाणिक, संयमित व अहिंसक आचरण के कारण हमारे बुरे कर्मों के संचय होने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है, और इसके फलस्वरूप हमारा परलोक भी सुधरता है ।

इस सम्बन्ध में हम एक और तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहते हैं । कोई व्यक्ति स्वयं दूसरों को कितने ही शारीरिक व मानसिक कष्ट क्यों न देता हो, परन्तु वह यही चाहता है कि कोई भी प्राणी उसे किसी भी प्रकार का कष्ट न दे । कोई व्यक्ति स्वयं चाहे कितना ही झूठ क्यों न बोलता हो, परन्तु वह यही चाहता है कि कोई भी अन्य व्यक्ति उससे झूठ न बोले । कोई व्यक्ति स्वयं कितनी ही चोरियां क्यों न करता हो, परन्तु वह यही चाहता है कि कोई अन्य व्यक्ति उसकी वस्तुएं नहीं चुराये । कोई व्यक्ति स्वयं कितना ही बड़ा लम्पट व व्यभिचारी क्यों न हो, परन्तु वह यह कभी नहीं चाहता कि उसके घर की महिलाओं से कोई ऐसा व्यवहार करे । कोई व्यक्ति स्वयं कितनी ही बेईमानी क्यों न करता हो, परन्तु वह यह नहीं चाहता कि कोई भी अन्य व्यक्ति उससे बेईमानी करे । कोई व्यक्ति स्वयं कितना ही पक्का शराबी व जुआरी क्यों न हो, परन्तु वह यह नहीं चाहता कि उसके पुत्र इन बुराइयों में पड़ें ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रामाणिक व संयमित आचरण ही पसन्द करता है, चाहे वह स्वयं ऐसे आचरण पर न चलता हो ।

सच्ची धार्मिक भावना का फल तुरन्त मिलता है

हम यहां पर एक तथ्य और स्पष्ट करदें। हम किसी भी ऐसे धर्म को धर्म नहीं मानते, जिसका फल प्राप्त करने के लिये हमें सुदूर भविष्य अथवा परलोक की ही प्रतीक्षा करनी पड़े। वास्तविक धर्म तो वह है कि इधर आपके अपने हृदय में धार्मिक भावना उत्पन्न हुई और उधर उसी क्षण आपको अतीन्द्रिय सुख व शान्ति का अनुभव होने लगा। पिछले पृष्ठों में "सच्चा सुख क्या है", "सच्चे सुख का मार्ग," "सच्चा सुख अर्थात मुक्ति प्राप्त करने के साधन" तथा "अपने दुःखो को कम कैसे करें" नामक अध्यायों में जो दिशा संकेत किये गये है, उनके अनुसार अपना दृष्टिकोण बदलते ही क्या हमको सच्चे सुख व शाति का अनुभव नही होने लगता। विश्व को इस बदले हुए दृष्टिकोण से देखते ही हमारा जीवन पलट जाता है। बेकार के लौकिक झंझटों से हम दूर-दूर होते जाते है, केवल अपने शारीरिक सुख के लिये ही कोई लौकिक कार्य करना हमें व्यर्थ-सा दिखाई देने लगता है। दूसरों के प्रति हमारे मन में जो अच्छे व बुरे विकल्प उठते रहते थे, वे शान्त होने लगते हैं। फलस्वरूप हमारी प्रति क्षण करने-धरने, बनाने-बिगाडने आदि के विकल्पों में रंगी हुई जीवन की भाग-दौड़ विराम पाने लगती है। हमारी चिन्ताएं समाप्त होती जाती हैं, जीवन का भार हल्का होना हुआ प्रतीत होता है, और हमें एक अपूर्व, अलौकिक, सच्चे सुख व शान्ति का अनुभव होने लगता है जो हमें कृतकृत्यवत् कर देता है।

हमारी दृष्टि बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होती जाती है और हमें यह सच्चा ज्ञान होने लगता है कि आज तक इस शरीर को अपना मानकर हम व्यर्थ ही भाग-दौड़ करते रहे और अपनी इच्छाओं व वासनाओं को कम करने के स्थान पर उनकी वृद्धि ही करते रहे, जिसके फलस्वरूप सुख पाने के बजाय हम दुःख ही पाते रहे।

इतना समझते हुए भी, हम अपने पारिवारिक व अन्य लौकिक उत्तरदायित्वों से मुख नहीं मोडते और अपने वास्तविक उत्तरदायित्वों को अपने सत्-पुरुषार्थ से पूरा करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

अपने हृदय में सच्ची धार्मिक भावना के उत्पन्न होते ही हमें किस प्रकार एक अपूर्व आनन्द व शान्ति का अनुभव होने लगता है, इसको स्पष्ट करने के लिये हम कुछ उदाहरण देते हैं।

(१) मान लीजिये कोई व्यक्ति किसी रोग से पीड़ित है। यदि वह रोगी उस रोग की पीडा से हाय-हाय करने की बजाय यह सोचने लगे कि "यह रोग मेरे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए बुरे कार्यों का ही फल है। इसमें किसी भी अन्य प्राणी का कोई दोष नहीं है। जब तक वह बुरे कर्म अपना फल देकर मेरी आत्मा से अलग नही हो जायेंगे, तब तक मुझे उनका बुरा फल भोगना ही पडेगा, चाहे हाय-हाय करके भोगूं, चाहे शान्तिपूर्वक भोगू। यदि हाय-हाय करके भोगूगा तो भविष्य के लिये भी मेरे कर्मों का संचय होता रहेगा। यदि मैं यह कष्ट समताभाव से शान्ति-पूर्वक सह लूंगा, तो वे कर्म तो अपना फल देकर मेरी आत्मा से अलग हो ही जायेगे, मेरे नये-नये कर्मों के सचय होने की सम्भावना भी बहुत कम हो जायेगी।" इस प्रकार चिन्तन करते रहने से क्या उस व्यक्ति को सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं होगी ?

(२) मान लीजिये कोई व्यक्ति अपने पुत्र की चरित्रहीनता के कारण दु:खी है। यदि वह यह सोचने लगे कि "इस पुत्र के निमित्त से मुझे जो दु:ख मिल रहा है, वह तो मेरे अपने ही द्वारा पूर्व मे किये हुए बुरे कर्मों के फलस्वरूप ही मिल रहा है। यह पुत्र तो केवल निमित्त मात्र है। प्रत्येक प्राणी का स्वभाव अपने द्वारा पूर्व में किये हुए कर्मों के अनुसार ही बनता है। कोई भी प्राणी किसी भी अन्य प्राणी का स्वभाव नहीं बदल सकता, फिर मैं अपने पुत्र की चरित्रहीनता के कारण क्यों दुखी होऊँ। मेरा और इसका सदा-सदा का साथ तो है नहीं, केवल इसी जन्म का साथ है। इस जन्म में मेरी मृत्यु होते ही सब सम्बन्ध समाप्त। इसलिये इस थोड़े से समय के लिये अपने भाव खराब करके अपना अनन्त भविष्य क्यों खराब करूँ, आदि-आदि।" इस प्रकार सोचने से क्या उस व्यक्ति को अपूर्व व सच्ची शान्ति का अनुभव नहीं होगा ?

(३) मान लीजिये किसी व्यक्ति के किसी इष्ट-मित्र अथवा प्रिय सम्बन्धी की मृत्यु हो जाती है, जिससे उसको बहुत दु:ख होता है। यदि वह व्यक्ति उस मृत व्यक्ति के सम्बन्ध में ही सोचता रहे तो उसका दु:ख कभी कम नही होगा। इसके विपरीत यदि वह यह चिन्तन करने लगे, "इस मृत व्यक्ति से मेरा इतने दिनों का ही सम्बन्ध था, मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, वह तो एक न एक दिन आती ही। मेरा इस व्यक्ति से जन्म-जन्म का नाता तो था ही नहीं, केवल इसी जन्म का नाता था और वह भी इस

भौतिक शरीर के आधार पर, जो स्वयं ही मेरा नहीं है। अनादि काल से विभिन्न योनियो में विभिन्न शरीर धारण करते हुए न जाने इस जैसे मेरे कितने इष्ट-मित्र व सम्बन्धी हो चुके हैं, क्या मुझे उनमें से किसी की भी याद है ? यह विश्व अनादि काल से इसी प्रकार से चलता आ रहा है और अनन्तकाल तक इसी प्रकार से चलता रहेगा। हम सब की दशा तो उन पक्षियो के समान है जो विभिन्न स्थानों से आकर एक रात के लिये किसी वृक्ष पर बसेरा लेते है और सुबह होते ही फिर से विभिन्न दिशाओं में उड जाते हैं। कुछ ही समय तक साथ रहने वालो के लिये मैं अपने भाव तथा अनन्त भविष्य क्यो खराब करूँ ?" ऐसा सोचत रहने से क्या उस व्यक्ति को सच्ची शान्ति का अनुभव नही होगा ?

(४) आजकल अधिकाश व्यक्ति असन्तोष की आग में जलते रहते हैं और मन ही मन कुढते रहते हैं। अनेकों व्यक्ति जानबूझ कर अपने लिये स्वयं ही व्यर्थ की समस्यायें व चिन्ताएं (Worries) खडी कर लेते हैं। इनके फलस्वरूप वे अपनी रात की नींद और दिन का चैन हराम कर लेते है। उनके मन और मस्तिष्क तनावो (Tensions) से दबे रहते हैं और वे जीवन भर ईर्ष्याओं व कुण्ठाओं का बोझ ढोते हुए फिरते रहते हैं। ऐसी अवस्था में कुछ व्यक्तियों के मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड जाता है और वे जीवन भर के लिये अपने व अपने परिवार के ऊपर एक बोझ बनकर रह जाते हैं। ऐसी ही परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों के हृदय-रोग लग जाते हैं और वे जीवन भर कोई भी कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के जीवन का भी कुछ भरोसा नही रहता। ऐसी ही परिस्थितियों मे कुछ दुर्बल मन और मस्तिष्क वाले व्यक्ति आत्महत्या तक कर लेते है। यदि ये व्यक्ति अपने शरीर, अपनी आत्मा व इस विश्व की वास्तविकता को समझ कर अपने दृष्टिकोण में थोडा सा भी परिवर्तन कर लें तो ये अपने जीवन को, जिसको इन्होने स्वयं ही पतझड़ के समान बना रखा है, बसन्त के सुन्दर व सुहावने मौसम के समान बना सकते हैं।

यदि हम निम्नलिखित तथ्यों को भलो प्रकार से हृदयंगम करलें, तो हमारे दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अन्तर आ जायेगा :—

(१) इस काल के अनन्त प्रवाह में हमारा यह जीवन एक क्षण के बराबर भी नहीं है,

(२) हम कुछ व्यक्तियों से अपेक्षाकृत दुःखी हैं तो क्या हुआ, करोड़ों व्यक्तियों से तो हम बहुत अच्छी अवस्था में हैं;

(३) हमें जो दुःख मिल रहे हैं, वे हमारे अपने ही द्वारा पर्व में

किये हुए बुरे कार्यों के ही परिणाम हैं और इनका फल हमको भुगतना ही पड़ेगा। हां, हम अपने सत्प्रयत्नों से इन कर्मों की तीव्रता को अवश्य ही कम कर सकते है;

(४) विशेष परिस्थितियों में सुख व दुःख मानना अधिकांश में हमारे अपने दृष्टिकोण पर ही निर्भर होता है, अत हमें प्रत्येक परिस्थिति मे उस परिस्थिति के उज्ज्वल पक्ष को ही ध्यान में रखते हुए सुख का ही अनुभव करते रहना चाहिये;

(५) हमें अपने हृदय से असन्तोष, ईर्ष्या व कुण्ठा को दूर करके जो भी परिश्रम व ईमानदारी से मिले, उतने में ही सन्तोष-पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये,

(६) इस शरीर की मृत्यु अवश्यम्भावी है और जब मृत्यु आयेगी, तब ये सब मित्र व सम्बन्धी तथा यह धन व ऐश्वर्य सब यही रह जायेंगे,

(७) केवल इस मनुष्य जन्म मे ही हम अपनी आत्मा का कल्याण करने और सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते है।

इस प्रकार अपने हृदय में सच्ची धार्मिक भावना के उत्पन्न होते ही हमारा जीवन कितना हल्का-फुल्का हो जाता है और हमको कितने सुख व शान्ति की अनुभूति होती है, यह अनुभव करने की ही बात है।



जीव स्वय ही कर्म करता है, स्वय ही उन कर्मों का फल (सुख व दुख) भोगता है। जीव स्वय ही ससार मे विभिन्न योनियो मे जन्म लेता है और स्वय ही पुरुषार्थ करके ससार-बधन से छूट कर मुक्त हो जाता है।

चाणक्य नीति दर्पण



दृष्टि से छने (ठीक प्रकार से देखे हुए) स्थान पर पांव रक्खे, वस्त्र से छना हुआ जल पीवें, शास्त्र से छने (निकले) वाक्यों को बोले और मन से छने (सोचे विचारे) ढग से कार्य करें।

चाणक्य नीति दर्पण



प्रवास (विदेश) में विद्या मित्र है, घर में भार्या मित्र है, रोग में औषधि मित्र है, और मरे हुए का मित्र धर्म है। चाणक्य नीति दर्पण

धर्म का स्वरूप

अब हम पाठको का ध्यान एक और तथ्य की ओर दिलाना चाहते है। आज अधिकाश व्यक्ति धर्म के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध मे भ्रम में पड़े हुए है। वे किन्ही विशेष देवी-देवताओं, पीर-पैगम्बरों व गुरुओं आदि के गुण-गान व उनकी पूजा-भक्ति को ही धर्म समझ बैठे हैं। वे अपने-अपने छोटे छोटे दायरों में इस प्रकार सिमट कर रह गये है कि उन्हे उन दायरों से बाहर देखना भी रुचता नही है। वे अपने विशेष देवी-देवताओ, पीर-पैगम्बरों व गुरुओ आदि को न मानने वालो को अपने से बहुत नीचा समझते है। वे उनको सम्मानपूवक जीवित रहने देने को भी तैयार नही है। अपनी इसी कट्टरता के कारण वे दूसरो को पापी समझते है और उनके रक्त के प्यासे तक बने रहते है। इस पृथ्वी पर धर्म के नाम पर अनेको बार भयंकर नरसहार हुए है जिनमे करोडो मनुष्यो की हत्याए की गयी है। विडम्बना तो यह है कि ये नर-सहार दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के बीच ही नही, अपितु एक ही सम्प्रदाय के दो भिन्न-भिन्न गुटो के बीच भी होते रहते है। जिस विश्वास के आधार पर दूसरे मनुष्यो का रक्त बहाया जाता है, उसे हम और कुछ भी कहे परन्तु सच्चा धर्म नहीं कह सकते। सच्चा धर्म तो मनुष्य को मनुष्य की सेवा करना तथा एक दूसरे से प्यार करना सिखाता है, न कि आपस में वैमनस्य रखना और एक दूसरे का रक्त बहाना।

आज हमने किन्ही विशेष देवी-देवताओ, पीर-पैगम्बरो व गुरुओं आदि की पूजा व भक्ति करना ही सबसे बड़ा धर्म मान लिया है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि ऐसा करना बहुत ही सरल है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे आदि बना लेना और वहा पर अपने-अपने देवी-देवताओ, पीर-पैगम्बरों व गुरुओं आदि की प्रतिमाएं, चित्र तथा अन्य दूसरे प्रतीको की प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा-भक्ति कर लेना, इससे आसान और कौन सा धर्म हो सकता है ? (अनेको व्यक्तियों ने तो इन मन्दिरो, मस्जिदों गिरजो, गुरुद्वारों आदि को ही अपनी आजीविका का साधन बना रक्खा है) ये प्रतिमाए तथा प्रतीक न तो अपने भक्तो से कुछ मागते है और न उन्हे कुछ आदेश ही देते है। वे (भक्त) उन स्थानो पर आये तो ठीक और न आयें तो ठीक। यह तो भक्तो की इच्छा पर निर्भर है कि वे वहा पर कब और

कितनी देर के लिये जाते हैं तथा कितनी भेंट चढ़ाते हैं। इसके विपरीत यदि हम मनुष्य मात्र (पशु-पक्षियों की बात छोड़ भी दें) की सेवा करने और उनके दुःख-दर्द दूर करने में अपना समय लगायें, तो यह कार्य बहुत कष्टकर प्रतीत होता है; क्योंकि इसमें हमें अपना समय व तन-मन-धन लगाना पडता है।

यह कैसी विडम्बना है कि हम मन्दिरों, मसजिदों, गिरजों, गुरुद्वारों आदि में जाकर देवी-देवताओ, पीर-पैगम्बरों व गुरुओं आदि की प्रतिमाओं, उनके चित्रों व अन्य प्रतीको की तो पूजा-भक्ति करते हैं, परन्तु मार्गों पर पड़े हुए उन जीते-जागते, अपंग, अपाहिज, दीन-हीन, निर्धन व लाचार, हाड़-मांस के पुतलो के लिये हमारे हृदय में तनिक भी कसक नही उठती, जिनको हमारी सेवा और हमारे प्यार की सबसे अधिक आवश्यकता है।

एक बात और, यहा पर कुछ सज्जन व सस्थायें ऐसे व्यक्तियों की भलाई के लिये कुछ कार्य करते अवश्य हैं, परन्तु इनमे भी ऐसे व्यक्ति व सस्थाये कदाचित् ही कोई होती हो जो नि.स्वार्थ भाव से यह सेवा-कार्य करती हो। अधिकाश व्यक्ति व संस्थाये तो यह कार्य स्वार्थवश ही करती हैं। अधिकाश में वे यह चाहते है कि या तो ये दीन-हीन व्यक्ति उनका अपना धर्म अंगीकार करले या उनके किन्ही अन्य स्वार्थों की पूर्ति मे सहायक बनें।

एक तथ्य और भी ध्यान में रखने योग्य है। हम अपने पूर्वजों द्वारा मानते आये धर्म (क्रियाकाण्ड) पर ही चिपके रहते हैं। हम यह निर्णय करने का कभी कष्ट भी नही उठाते कि वास्तव मे सत्य क्या है? हमे कोई वस्तु खरीदनी होती है, तो हम कई दुकानो पर तलाश करते हैं कि कभी दुकानदार हमे घटिया वस्तु नही दे दे या हमसे अधिक मूल्य नही ले ले। परन्तु जहां तक धर्म का सम्बन्ध है, जिससे हमारा अनन्त भविष्य सुधरता या बिगडता है, हम अपने मस्तिष्क की खिड़कियां बन्द कर लेते हैं। उदाहरण के लिये हम पिछले पृष्ठो में विवेचन की हुई विचारधाराओ को ही लेते हैं। यदि पुनर्जन्म का सिद्धान्त एक वास्तविकता है (इसके पक्ष में हमने अनेकों तर्क व घटनाएं प्रस्तुत की हैं), तो पहली व दूसरी विचारधारायें युक्तियुक्त प्रमाणित नही होती। इसी प्रकार यदि किसी तथाकथित सर्वशक्तिमान कर्त्ता, हर्त्ता व पालनकर्त्ता परमेश्वर का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता, तो तीसरी विचारधारा के युक्तियुक्त होने पर भी प्रश्नचिन्ह लग जाता है। परन्तु हम इन तथ्यों को समझते हुए भी अनजान बने रहते हैं और इन तथ्यों की ओर से आखें मूद कर पुरानी लकीर को ही पीटते रहते हैं।

तथ्य तो यह है कि वास्तव में सच्चा धर्म तो वही है जो हमें केवल मनुष्य से ही नहीं, अपितु इस विश्व के प्रत्येक प्राणीमात्र से प्यार करना और उसकी सेवा करना सिखाये, जो हमें अपने विपक्षियों व अपना धर्म न मानने वालों के प्रति भी सहिष्णु बनना सिखाये, जो हमें आत्मा, शरीर और इस विश्व की वास्तविकता से परिचित कराये और अन्त में इस विश्व के प्राणियो को नये-नये शरीर धारण करने और सुख-दुःख भोगने के चक्कर से छुटकारा पाने का उपाय बतलाकर उन्हें सच्चे सुख का मार्ग दिखलाये।

●

अपने अवगुण अपने को ही दुःख देते है।

स्वामी विवेकानन्दजी

●

जहां प्रेम है वहां जीवन है, जहां घृणा है वहा विनाश है।

महात्मा गाधी जी

●

वही काम ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े, और जिसके फल का प्रसन्न मन से भोग कर सके।

धम्मपद

●

हे समुद्र, तुम्हारे इन रत्नो से क्या? तुम्हारे बादल सदृश शरीर से क्या? जब तुम्हारा पानी प्यासे के मुह में नही पड़ता।

भामिनी विलास

●

बचपन मे विद्याध्ययन नही किया, यौवन में धन नही कमाया, प्रोढ़ावस्था में तपस्या नही की तो वृद्धावस्था में क्या करोगे?

●

कौए के साथ पली हुई कोयल की वाणी के माधुर्य को सुनकर यही कहा जा सकता है कि दुष्ट व्यक्ति की सगति से भी कोमल स्वभाव वाले प्राणी में निष्ठुरता नहीं आ सकती।

सुभाषितावली

●

विष और विषय में बहुत अन्तर है। दोनों को एक सरीका नहीं समझना चाहिये। विष तो खाया जाने पर ही मारता है, जबकि विषय स्मरण करने मात्र से ही मार देते हैं।

मृत्यु : मित्र या शत्रु

अधिकांश व्यक्ति, मृत्यु की बात तो दूर, मृत्यु के नाम से भी डरते हैं। परन्तु यह उनकी अज्ञानता ही है। तथ्य तो यह है कि जो भी प्राणी इस विश्व में पैदा हुआ है उसकी मृत्यु, देर या सवेर, अवश्य ही होगी। मृत्यु जीवन की अनिवार्य परिणति है। दूसरे शब्दों मे हम यह भी कह सकते है कि जब तक यह आत्मा अपने समस्त कर्मों को नष्ट करके अत्यन्त निर्मल व पवित्र होकर मुक्ति प्राप्त नही कर लेती, तब तक यह नये-नये शरीर धारण करने के चक्कर में पडी ही रहेगी। अत. जो बात अवश्यम्भावी है, उससे डरना व घबराना कैसा ? उसको तो सहज रूप से स्वीकार ही करना चाहिये। मृत्यु की अनिवार्यता तथा इस विषय में व्यक्ति की विवशता का अनुभव करते हुए ही उर्दू के शायरों ने कहा है : -

"कमर बाधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं,
बहुत आगे गये, बाकी जो है, तैयार बैठे हैं।"
"लाई हयात आये, कज़ा ले चली चले,
अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले।"

एक हिन्दी कवि के भी इसी प्रकार के उद्‌गार है :—

"मैं आज चला, तुम आओगे कल, परसों सब संगी साथो,
दुनिया रोती-धोती रहती, जिसको जाना है, जाता है।"

तुलसीदास जो ने भी कहा है .—

"सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहांहु मुनिनाथ।
हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस विधि हाथ।"

कुछ व्यक्ति यह कहते है कि किसी परिवार के आजीविका उपार्जन करने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उस परिवार के सदस्यों पर बहुत मुसीबतें आ पड़ती हैं। ऐसे ही किसो नवयुवती के पति की तथा किन्हीं माता-पिता के युवा पुत्र की मृत्यु हो जाने पर उस नवयुवती विधवा तथा उन माता-पिता का जीवन बहुत ही कष्टमय हो जाता है। इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि जहां तक मृत व्यक्ति का सम्बन्ध है, उसको तो नये जन्म में इस जन्म की कुछ याद ही नहीं रहती कि इस जन्म में वह कौन था ? अत: उसको तो कष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। रही बात मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों की, तो उनको भी अपने-अपने बुरे कर्मों का फल ही मिलता है।

उस व्यक्ति की मृत्यु तो निमित्त मात्र है। या यह कहलें कि उनको इसी माध्यम से दुःख भोगना था। अतः किसी व्यक्ति की मृत्यु को अन्य व्यक्तियों के कष्टों का कारण मानना अज्ञानता ही है।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचारणीय है। क्या हम वास्तव में मृत्यु से डरते है? हम प्रतिदिन अनेको व्यक्तियों को मृत्यु का ग्रास बनते हुए देखते हैं और सुनते हैं। परन्तु इनका हम पर कभी भी कुछ भी प्रभाव नही पडता। परन्तु जब हमारे किसी प्रिय सम्बन्धी तथा इष्ट मित्र की मृत्यु हो जाती है, तो हम दुःखी होते है। यदि "मृत्यु" ही दुःख का कारण होती, तो हम प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु से दुःख का अनुभव करते। परन्तु ऐसा कभी नही होता। हमे केवल उन्ही व्यक्तियो की मृत्यु से दुःख का अनुभव होता है जिनसे हमारा किसी प्रकार का स्वार्थ सधता है। अतः वास्तविकता तो यह है कि हम किसी को मृत्यु से दुःखी नही होते, अपितु उस व्यक्ति के न रहने से अपना स्वार्थ न सधने के कारण दुःखी होते है। यदि हमारा कोई स्वार्थ, कोई इच्छा ही न हो तो किसी का भी मृत्यु, चाहे वह हमारा कितना ही निकट का सम्बन्धी क्यो न हो, हमारे दुःख का कारण नही हो सकती।

एक बात और, जो व्यक्ति चरित्रहीन हो, जो कोई जीविकोपार्जन न करता हो, जो घर मे आकर अपनी पत्नी व अपने माता-पिता से झगड़ा करता हो और उनको मारता-पीटता हो, जो उनके परिश्रम की कमाई को शराब व जुए में उड़ाता हो, क्या ऐसे व्यक्ति की मृत्यु पर उसकी पत्नी व उसके माता-पिता को कोई दुःख होगा? इसी प्रकार जो व्यक्ति असाध्य रोग से पीड़ित हो, जिसकी औषधि व चर्य्या मे घर का पैसा समाप्त होता जा रहा हो, जिसके नीरोग होने की कोई भी आशा न हो, क्या ऐसे व्यक्ति की मृत्यु पर किसी को दुःख होगा? अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि हम किसी व्यक्ति की मृत्यु पर दुःखी नही होते, अपितु अपने स्वार्थ पूरे न होने के कारण ही दुःखी होते है।

कभी आपने इस दृष्टिकोण से भी सोचा है कि यदि "मृत्यु" न होती तो यह विश्व कितना घिनौना हो जाता? विश्व की बात छोड़ भी दें, हमारी पृथ्वी पर ही बालको, युवाओ तथा स्वस्थ व्यक्तियो की अपेक्षा चारों ओर बूढे, थके-हारे, लुञ्ज-पुञ्ज तथा रोगों व कष्टो की पीड़ा से कराहते हुए व्यक्ति ही दृष्टिगोचर होते, जिनके दुःखो का, मृत्यु न होने के कारण, कोई अन्त ही नही होता। बूढ़े, रोगग्रस्त व दुःखी व्यक्तियों का सहारा मृत्यु ही होती है। कुछ व्यक्ति तो अपने दुःखो का अन्त करने के लिये स्वेच्छा से ही मृत्यु का आलिंगन कर लेते हैं अर्थात् आत्महत्या कर लेते हैं। (आत्महत्या करना महापाप है, क्योंकि यह हिंसा व कायरता का कार्य है।)

इस पृथ्वी की इसी दशा की कल्पना करते हुए ही किसी शायर के हृदय से ये उद्‌गार निकले होंगे :

"हर तमन्ना पे बेहिसी होती, हर मसर्रत बुझी-बुझी होती,
मौत होती अगर न दुनिया मे, जिन्दगी मौत बन गयी होती।"

"ये तो है इक कड़ी सजा, साईं,
ज़िन्दगी की न दे दुआ, साईं।"

जीवन में प्रतिदिन मिलने वाले कष्टो से घबराकर अनेकों व्यक्ति तो मृत्यु की कामना ही करते रहते है। परन्तु क्या केवल कामना करने से ही मृत्यु मिल जाती है ?

इसी तथ्य को एक कवि ने इस प्रकार कहा है,

"मागने से जो मौत मिल जाती,
कौन जीता फिर इस जमाने में।"

यह मृत्यु तो हमारी परम-मित्र व हितैषी है, क्योंकि यह हमको हमारे जीर्ण-शीर्ण शरीर से छुटकारा दिलाकर हमे नवीन व उत्तम शरीर प्राप्त कराती है। फिर इस जन्म में हम जो अच्छे कार्य करते है, उनका फल भी अधिकाश में हमे अगले जन्मो मे ही मिलता है। अतः यह मृत्यु ही है जो हमें हमारे शुभ कर्मों का फल दिलाने मे हमारी सहायक होती है। इन सब तथ्यों को दृष्टि मे रखते हुए क्या हमे मृत्यु को अपना परम हितकारी व मित्र समझकर उसका स्वागत नही करना चाहिये ?

यहा पर यह प्रश्न उठता है कि हम मृत्यु का स्वागत कैसे करे? इसके उत्तर मे निवेदन है कि मृत्यु का स्वागत करने का तात्पर्य जानबूझ कर मरना अर्थात् आत्म-हत्या करना नही है, क्योकि आत्म-हत्या करना तो महापाप है, अत. हमे आत्म-हत्या का विचार भी अपने मन मे नही लाना चाहिये। यदि हमे कोई रोग हो जाये या हम दुर्घटनाग्रस्त हो जायें तो हमें धैर्य व शान्तिपूर्वक केवल अहिसक साधनो से ही अपना उपचार करना चाहिये। परन्तु यदि वह रोग असाध्य हो जाये अथवा हम पर कोई ऐसा संकट आ पड़े जिसका परिणाम देर या सवेर अनिवार्यतः मृत्यु ही हो तो भी हमें किसी भी प्रकार से अधीर व निराश नही होना चाहिये, अपितु उन कष्टों को अपने द्वारा पूर्व में किये हुए बुरे कर्मों का फल जानकर उस रोगजनित पीड़ा तथा मानसिक कष्ट को धैर्य व शान्तिपूर्वक सहते रहना चाहिये। हमे अपने सम्बन्धियो, मित्रों व धन-सम्पदा तथा अपने शरीर से भी मोह-ममता कम करते रहना चाहिये। हमे अपने भोजन की मात्रा भी धीरे-धीरे घटाते रहना चाहिये। पहले अन्न, उसके पश्चात् दूध को त्याग कर केवल पानी का ही सेवन करते रहना चाहिये और जब अन्त निकट दिखाई देने लगे तो हमे पानी लेना भी छोड़ देना चाहिये। इसी प्रकार

धीरे-धीरे एक-एक करके हमें अपने वस्त्रों का भी त्याग कर देना चाहिये। परन्तु हमें यह सब ज्ञानपूर्वक करना चाहिये और अपने हृदय में किसी प्रकार की आकुलता नही आने देनी चाहिये। इस प्रकार बिल्कुल निर्लिप्त होकर मृत्यु का स्वागत करने से हमारे शुभ कर्मों का ही संचय होगा, जिसका फल अगले जन्मो में हमें अच्छा ही मिलेगा। जिस प्रकार किसी विद्यार्थी के पूरे वर्ष की पढ़ाई और परिश्रम की सार्थकता तभी होती है जब वह वार्षिक परीक्षा में अच्छे अक लेकर उत्तीर्ण होता है, उसी प्रकार हमारे जीवन भर के किये हुए सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि की सार्थकता तभी है जब अन्त समय मे हमारी भावनाएं व विचार पवित्र रहे और हम इस प्रकार शांत परिणामों से मृत्यु का वरण कर सके।

इस प्रकार भोजन का त्याग करके मृत्यु का वरण करने को कुछ व्यक्ति "आत्म-हत्या" को सज्ञा देते है, परन्तु यह उनका भ्रम ही है। आत्म-हत्या क्षणिक आवेश में, कोई शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा न सह सकने के कारण, जीवन से निराश होकर की जाती है जबकि इस प्रकार मृत्यु का वरण योजनापूवक किया जाता है और ऐसा भो तभी किया जाता है जब मृत्यु अनिवार्य दिखलाई देती है। ऐसा करने में किसी के प्रति कटुता व दुर्भावना होने तथा क्षणिक आवेश में आने का तो प्रश्न ही नही होता। इन तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए इस प्रकार की मृत्यु को आत्म-हत्या कभी नही कहा जा सकता।

मृत्यु सामने दिखलाई देने पर

एक राजा बहुत ही क्रूर व निर्दयी था। वह अपनी प्रजा पर तरह-तरह से अत्याचार करके उससे बलपूर्वक धन वसूल करता रहता था, और इस प्रकार अपना कोष बढ़ाता रहता था। उसके अत्याचारो से प्रजा बहुत तग आ गयी थी, परन्तु उसके प्रतिकार मे वह कुछ भी नही कर पाती थी। एक बार कुछ व्यक्ति मिलकर एक विद्वान् के पास गये और उनसे राजा के अत्याचारो से मुक्ति दिलवाने की प्रार्थना की। विद्वान ने उनको आश्वासन देते हुए कहा कि वह अवश्य ही कुछ प्रयत्न करेगा, शायद वह राजा के अत्याचारो को कुछ कम करा सके। बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् उन विद्वान ने एक तरकीब सोची। उन्होने गुप्त रूप से राजा की कुछ ऐसी निजी बातो का पता लगाया, जिन बातो को जन-साधारण नही जानते थे। ऐसा करने के पश्चात् वह विद्वान राजा के दरबार में जाने लगे। राजा ने कई दिनों तक उनको दरबार में आते देखकर उनसे आने का कारण पूछा। वह विद्वान् बोले—"मुझे ज्योतिष विद्या में कुछ रुचि है। इसी सम्बन्ध में मैं दरबार में उपस्थित हुआ हू।" दरबार के पश्चात् राजा ने उन विद्वान्

को अपने कमरे में बुलवाया और उनसे अपने सम्बन्ध में पूछा। उन विद्वान् ने राजा के निजी जीवन के सम्बन्ध में जो सूचनाएं एकत्र की थीं, वे सब राजा को बतलाईं, जिससे राजा बहुत प्रभावित हुआ। अन्त में उन विद्वान् ने राजा से कहा—"मुझे यह बतलाते हुए बहुत दु:ख हो रहा है कि सात दिन में आपकी मृत्यु हो जायेगी।" विद्वान् तो यह कह कर चले गये, परन्तु राजा के लिये एक कठिन समस्या छोड़ गये। राजा को रात भर नींद नहीं आई और वह इसी सोच में डूबा रहा "कि सात दिन में मेरी मृत्यु हो हो जायेगी। मैंने आज तक कोई शुभ कार्य नहो किया। मैं अपनी प्रजा पर अत्याचार ही करता रहा। अगले जन्मों में मुझे न जाने कैसे-कैसे दु:ख भोगने पडेंगे? मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अब मैं किसी पर भी अत्याचार नहीं करूंगा और अपना सारा समय और अपना कोष प्रजा की भलाई व उपकार में व्यय करूंगा।" अगले दिन से ही राजा के स्वभाव और उसकी दिनचर्या में धरती-आकाश का अन्तर आ गया। उसको प्रतिक्षण अपने सामने अपनी मृत्यु खड़ी दिखाई देती। वह अपना समय और अपना धन परोपकार में व्यय करने लगा। राजा के इस व्यवहार से प्रजा ने भी संतोष की सांस ली। इस प्रकार पन्द्रह-बीस दिन व्यतीत हो गये। राजा को आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी कि ज्योतिषी की बात झूठ निकली। परन्तु राजा के निश्चय और उसके व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया और वह परोपकार में लगा रहा। कुछ दिन के पश्चात् वे विद्वान फिर राजा के पास आये। राजा ने उनसे अपनी मृत्यु की भविष्य वाणी के सम्बन्ध में पूछा। विद्वान् ने कहा—'राजन। मैंने झूठ नहीं कहा था। सप्ताह में सात दिन होते है और प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु इन्ही सात दिनो में होती है। मेरा यही अभिप्राय था।"

इस सम्बन्ध में राजस्थान के जेल महानिरीक्षक के पद पर कार्य कर चुके तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित 'जेल सुधार समिति' के निर्देशक के पद पर (सन १९८३ में) कार्य कर रहे श्री राधाकान्त सक्सेना के अनुभव भी उल्लेखनीय हैं। उनका कहना है, "फांसी की सजा पाने के बाद अपराधी एक प्रकार से क्रियाहीन हो जाता है। उसे लगता है कि जैसे जीवन में कुछ रहा ही न हो। वह सीमित परिस्थितियों का उपयोग पढ़ने-लिखने और आध्यात्मिक चिन्तन के लिये करता है। मैं बहत्तर हत्याएं करने वाले राजस्थान के कनपटीमार शंकरिया का उदाहरण देता हूं। वह बिल्कुल अनपढ़ था। फांसी की सजा पाने के बाद उसने पढना लिखना शुरू किया, यहा तक कि उसकी लिखाई भी बहुत सुन्दर हो गयी। वह श्रीमद्भागवत, रामायण आदि पढ़ता रहता था। मृत्यु उसके द्वार पर खड़ी थी, यह जानकर भी वह

पढ़ता रहा। मैंने देखा है कि फांसी का दण्ड पाये हुए अपराधी आमतौर पर शान्तचित्त हो जाते हैं।"

यदि हम भी मृत्यु की अनिवार्यता और उसके कभी भी आ जाने के तथ्य को स्वीकार करलें तो हमारा जीवन भी अनेको बुराइयों से दूर होकर कितना शान्त हो जाये? परन्तु हमारा तो वही हाल है :—

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नही।
सामान सौ बरस का कल की खबर नहीं॥

क्या आपने कभी कोई दुर्घटना होते हुए देखी है? हम प्रतिदिन ही समाचार पत्रों में पढते रहते हैं कि अमुक स्थान पर एक वायुयान गिर गया और उसमें यात्रा कर रहे इतने व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी। अमुक स्थान पर एक बस फिसल कर नदी या खड्ड में गिर गयी जिसके फलस्वरूप इतने व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी और इतने व्यक्ति घायल हो गये। किसी गाडी का ब्रेक खराब हो गया जिसके फलस्वरूप गाडी ने इतने व्यक्तियो को रोंद डाला, जिससे उनकी तत्काल मृत्यु हो गयी। दो गाडियो की टक्कर हो जाने से, किसी पेड के गिर जाने से, किसी मकान के ढह जाने से भी अनेको व्यक्तियों की तत्काल मृत्यु हो जाती है। हमने कभी सोचा है कि इन दुर्घटनाओ के होने से कुछ क्षण पहले भी इन दुर्घटनाओं में मृत किसी भी व्यक्ति को क्या इस बात का अहसास था कि अगले ही क्षण दुर्घटना होने जा रही है और इसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो जायेगी। जीवन और मृत्यु में क्षण भर का अन्तर भी नही होता। इसीलिये जीवन को क्षणभगुर कहते हैं।

इन वास्तविकताओ को ध्यान मे रखकर हमें अपने जीवन का प्रत्येक क्षण सयम व नैतिकता पूर्वक व्यतीत करना चाहिये, जिससे मृत्यु आ जाने पर हमारे मन में किसी प्रकार का पश्चाताप न हो कि हम बुढ़ापा आने का ही इन्तजार करते रहे और जीवन मे कोई भी अच्छा कार्य नही किया।

●

बुद्धि में विकार उत्पन्न होने के कारण उपस्थित होने पर भी जिनका मन विकृत नही होता, उन्ही को धीर पुरुष कहा गया है।

●

कौआ किसका धन हरे, और कोयल किसको देत।
मीठी वाणी बोल कर, सबका मन हर लेत॥

●

क्या आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के सिद्धान्त निहित स्वार्थ वालों की कल्पना मात्र हैं ?

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि ये धर्म-कर्म, पाप-पुण्य, लोक-परलोक, आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म के सिद्धान्त, निहित स्वार्थ वाले धनवानों व उनके द्वारा पोषित विद्वानों की कल्पना मात्र है, जिससे कि निर्धन और निर्बल व्यक्ति इन शब्दों के मायाजाल में फंसे रहें और अपने अधिकारो के प्रति जागरूक न हो। वे कहते हैं कि ये धनवान और उनके द्वारा पोषित विद्वान उनको यही समझाते रहते है कि वे अपने पिछले पापो के कारण ही निर्धन व निर्बल है और यदि वे इस दशा मे ही सन्तोष रक्खेंगे तो अगले जन्मों में उनको इस सन्तोष का अच्छा फल प्राप्त होगा। और इस प्रकार ये निहित स्वार्थ वाले व्यक्ति इन निर्धन व निर्बल वर्ग के व्यक्तियों का शोषण करते रहते हैं।

ऐसी बातें केवल वही व्यक्ति करते हैं, जो धनवानों के प्रति कुण्ठा और ईर्ष्या से भरे हुए होते है। वे न तो स्वयं ही कोई परिश्रम करते हैं और न दूसरो को ही परिश्रम व ईमानदारी से कार्य करने देते है। अपनी नेतागिरी बनाये रखने और अपने को प्रगतिशील दिखलाने के लिये वे इसी प्रकार की बे-सिर-पैर की बातें करते रहते हैं और वर्ग-संघर्ष को बढावा देते रहते हैं। तथ्य यह है कि इनकी बातें सुनने में अवश्य ही आकर्षक लगती हैं, परन्तु इन बातों में तत्त्व नाममात्र को भी नही होते। हम उनसे पूछते हैं कि क्या धनवान सदैव से ही धनवान चले आ रहे हैं? आज संसार में ऐसे लाखों व्यक्ति हैं जिन्होंने अपना जीवन बिलकुल निर्धनता से शुरू किया था परन्तु आज वे पर्याप्त सम्पन्न हैं। अपनी ईमानदारी, परिश्रम व कार्य-कुशलता से ही वे निर्धन से धनवान बने है (इसमें उनके द्वारा पूर्व में किये हुए शुभ कर्मों के फल का योग भी अवश्य है)। यहां पर ऐसे भी लाखों व्यक्ति हैं जो पहले धनवान थे परन्तु अब निर्धन हो गये हैं। इसमें कुछ तो उनकी वर्तमान की अकर्मण्यता, फ़िज़ूलखर्ची और लापरवाही कारण है और कुछ उनके द्वारा पूर्व में किये हुए बुरे कार्य भी। ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में इन तथाकथित नेताओं के पास क्या उत्तर है?

दु:ख तो इस बात का है कि इन तथाकथित नेताओं के पास इस निर्बल व निर्धन वर्ग को शक्तिशाली व सम्पन्न बनाने के लिये कोई रचनात्मक योजना नही होती। ये तो केवल उनके कंधों पर रखकर अपनी बन्दूक चलाते रहते हैं और उनके नाम से अपने लिये अनेको प्रकार की सुविधायें प्राप्त करते रहते है। ये व्यक्ति तो अपनी शक्ति और अपने प्रभाव का प्रयोग उन पुरुषार्थी व्यक्तियों (जिन्होंने अपनी कार्यकुशलता और अपने परिश्रम से सम्पन्नता की अवस्था प्राप्त की है।) की टाँगें खीच कर उन्हें नीचे गिराने में ही करते रहते हैं। ऐसा करके ये नेता, जाने-अनजाने, उन पुरुषार्थी व्यक्तियों को भी निष्क्रिय व आलसी बनाने मे और अप्रत्यक्ष रूप से समाज व देश को हानि पहुचाने में लगे रहते हैं।

एक बात और, यदि हम इन तथाकथित नेताओं में से अधिकाश के व्यक्तिगत जीवन पर दृष्टिपात करें, तो इनके जीवन को देखकर हमें इनमें से अधिकांश के असली रूप का पता चल जायेगा। ये न तो कुछ व्यापार करते हैं और न कुछ अन्य कार्य; फिर भी ये बहुत सुख-सुविधा-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं। धनवानो के जिस रहन-सहन के ढग की निन्दा करते हुए ये थकते नही है, इनका जीवन-स्तर भी अधिकाश में उसी स्तर का ही होता है। इनके पुत्र व पुत्रिया भी धनवानो की सन्तानों की तरह ही पब्लिक स्कूलों में शिक्षा पाते है और शाही खर्च करते हैं। जिन धनवानों की ये निन्दा करते है, उनके पैसे से ही ये गुलछर्रे उडाते है। ये व्यक्ति दूसरों को तो समाजवाद व साम्यवाद का उपदेश देते रहते है, परन्तु यह किसी को भी मालूम नहीं कि अपनी ओर से ये समाजवाद व साम्यवाद के लिये कितना त्याग करते है। वस्तुत: ये व्यक्ति केवल अपनी जिह्वा रूपी बन्दूक चलाकर ही अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। जिन निर्धन व निर्बल वर्गों के लिये ये नेता मगरमच्छी आंसू बहाते हैं, उनके दु:खों व कष्टों का तो इनको अनुभव तक भी नही होता। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये ही ये उनके नेता बने रहते हैं। आज जितने वर्ग-सघर्ष हो रहे है, हडतालें हो रही है, सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति को तोडा-फोड़ा व जलाया जा रहा है, ये सब ऐसे नेताओ की कृपा का ही फल है! ये तथाकथित नेता देश व समाज को कितनी अधिक हानि पहुंचा रहे हैं, इसका अनुमान लगाना भी बहुत ही कठिन है।

सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि जब कभी इन तथाकथित प्रगतिवादियों पर कोई ऐसा कष्ट आ पडता है जो इनके सब प्रकार के अच्छे व बुरे प्रयत्नों से भी दूर नहीं होता, तो ये व्यक्ति भी, चाहे अपने मन में ही सही, इस कष्ट को अपने दुर्भाग्य का फल ही मानते हैं।

अत. हमें ऐसे व्यक्तियों के निरर्थक शब्दजाल में न उलझ कर स्वयं ही सच्चाई का अन्वेषण करना चाहिये। हमें इनके बहकावे में न आकर अपना कार्य परिश्रम, ईमानदारी व कुशलतापूर्वक करते रहना चाहिये। अपने सत्प्रयत्नों का फल हमें अवश्य ही मिलेगा, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वह कब व किस रूप में मिलेगा।

आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म तथा कर्म-फल के सिद्धान्तों पर हम पिछले पृष्ठो में पर्याप्त विवेचन कर चुके हैं। उस सबको यहां पर फिर से दोहराने की आवश्यकता नही है। हम तो पूरे विश्वासपूर्वक यही कह सकते हैं कि ये सिद्धान्त कपोल-कल्पित नहीं अपितु शत-प्रति-शत सत्य हैं और अनुभव व तर्क की कसौटी पर खरे उतरते है।



गुलाब के फूल को खिलखिलाते देखकर तितली ने कहा, "मित्र, ईर्ष्या-योग्य है तुम्हारी सहन शक्ति। कांटो के बीच मे रहते हुए भी तुम इस तरह मुस्कराते रहते हो, मानो हिण्डोले में झूल रहे हो। भई हमें तो एक क्षण भी ऐसी परिस्थिति सह्य नहीं।"

फूल झूमते हुए बोला "अच्छों और भलों के साथ तो सभी निर्वाह कर लेते है, परन्तु बुरों के बीच रहते हुए भी हसी-खुशी दिन काट लेना ही तो ज़िन्दा-दिली है।"

यह पुस्तक "सच्चे सुख का मार्ग" और "तीर्थंकर महावीर और उनका अहिंसा सिद्धान्त" नीचे लिखे पते से नि.शुल्क मंगवा सकते हैं—

प्रेम रेडियो एन्ड इलैक्ट्रिक मार्ट
महालक्ष्मी मार्केट, भागीरथ पैलेस,
चांदनी चौक, दिल्ली—६

सच्चा अपरिग्रही कौन ?

कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि हम सच्चा अपरिग्रही किसे समझें ? इस सम्बन्ध में निवेदन है कि परिग्रह का अर्थ साधारणतया, धन, सम्पदा, खेत, मकान इत्यादि समझा जाता है। अत. साधारणतया वही व्यक्ति अपरिग्रही कहा जाता है, जिसके पास ये धन, सम्पदा, खेत, मकान इत्यादि कुछ भी नहीं हों। इस परिभाषा के अनुसार तो जो व्यक्ति जितना अधिक निर्धन होगा, वह उतना ही अधिक अपरिग्रही होगा और जो व्यक्ति जितना अधिक धनवान होगा वह उतना ही अधिक परिग्रही होगा। परन्तु वास्तविकता ऐसी नही है। तथ्य तो यह है कि परिग्रही होने का भी हमारी भावनाओ के साथ गहरा सम्बन्ध है। वास्तव मे अपरिग्रही का अर्थ है जिसकी धन, सम्पदा आदि मे आसक्ति न हो। इस अर्थ के अनुसार कोई व्यक्ति चाहे कितना ही धनवान क्यो न हो परन्तु यदि उसमें धन-सम्पत्ति के प्रति तनिक भी आसक्ति नहीं है तो वह अपरिग्रही ही कहलायेगा। इसके विपरीत कोई व्यक्ति चाहे कितना ही निर्धन क्यो न हो यदि उसके धन-सम्पत्ति के प्रति ममत्व व तृष्णा है तो उसको परिग्रही ही कहा जायेगा।

यदि कोई व्यक्ति यह शका करने लगे कि यह कैसे सम्भव है कि कोई व्यक्ति धनवान भी हो, फिर भी अपरिग्रही हो ? तो इस शंका का समाधान करने के लिये हम एक कथा दे रहे है।

प्राचीन समय में एक राजा था, जिसको सब अपरिग्रही कहते थे। एक दिन उस राजा की राजसभा में एक व्यक्ति आया और कुछ बात-चीत के पश्चात् राजा से कहा, "आप इतने बड़े राजा है फिर भी लोग आपको अपरिग्रही कहते है, यह बात समझ में नही आती।" राजा ने विनम्रता से कहा, "मैं आपकी शका का समाधान करने का प्रयत्न अवश्य करूगा, परन्तु उससे पहले आपको मेरा एक काम करना होगा। आप अपने हाथ में पानी से भरा एक कटोरा लेकर मेरे राजमहल में घूम आइये, परन्तु यह ध्यान रहे कि कटोरे से एक बूंद पानी भी नही गिरना चाहिये। यदि कटोरे से एक बूद पानी भी छलक गया तो आपको दण्ड दिया जायेगा।" उस व्यक्ति के स्वीकार करने पर राजा ने उस व्यक्ति को पानी से लबालब भरा हुआ एक कटोरा दिलवा दिया और इस बात की निगरानी के लिये कि कटोरे से पानी छलकता है या नहीं, एक सैनिक को उसके साथ करके अपने सेवकों को उसको

राजमहल में घुमा लाने के लिये भेज दिया। कुछ समय पश्चात् जब वह व्यक्ति राजमहल में घूमकर वापिस आया तो राजा ने उससे पूछा कि उसने राजमहल में क्या-क्या देखा? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "मेरा ध्यान तो कटोरे के पानी की ओर लगा था, इसलिये मैं तो महल में कुछ भी नहीं देख सका।" राजा ने उस व्यक्ति की शंका का समाधान करते हुए कहा, "जिस प्रकार आप सारे राजमहल में घूम आये, परन्तु दण्ड पाने के भय से आपका ध्यान पानी के कटोरे पर ही लगा रहने से आप महल में कुछ भी नहीं देख सके, इसी प्रकार मैं भी अनादिकाल से इस विश्व में नये-नये शरीर धारण करते रहने और सुख दुःख पाते रहने से बहुत डर गया हूँ। अतः सच्चा व स्थायी सुख अर्थात मुक्ति पाने की तीव्र इच्छा के कारण मै अपना ध्यान आत्मा की उन्नति की ओर ही लगाये रखने का प्रयत्न करता रहता हूँ। ये राज-वैभव पिछले किये हुए कर्मों का फल है। अपने कर्मों के अच्छे व बुरे फल तो प्रत्येक प्राणी को भोगने ही पडते है। वैसे ही मैं भी इस वैभव को भोग रहा हूँ, परन्तु मेरा प्रयत्न यही रहता है कि इससे निर्लिप्त व तटस्थ ही रहूँ।" राजा के इस उत्तर से उस व्यक्ति की शंका का समाधान हो गया।

इस प्रकार कोई व्यक्ति चाहे वह कितना ही धनवान क्यों न हो यदि वह इस धन सम्पत्ति से निर्लिप्त व आसक्तिहीन रहता है तो उसको अपरिग्रही ही कहा जायेगा। इसके विपरीत कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही निर्धन क्यो न हो, यदि वह शेखचिल्ली के समान दिवा-स्वप्न देखता रहता है, तो उसे परिग्रही ही कहा जायेगा। धन-सम्पत्ति के प्रति जिस व्यक्ति की जितनी अधिक आसक्ति होगी, वह उतना ही अधिक परिग्रही कहलायेगा।

इसका अर्थ यह भी नही है कि कोई व्यक्ति चाहे वह कितना ही अधिक धनी हो, यदि वह मुह से यही कहता रहे कि उसकी तो इस धन के प्रति आसक्ति ही नही है, तो हम उसको ही अपरिग्रही मान लें। वास्तव में जो सच्चा अपरिग्रही होता है वह इस सब धन-सम्पत्ति को जंजाल ही समझता है। उसको धन के लाभ से प्रसन्नता नही होती और धन की हानि से कोई दुःख नहीं होता। उसके लिये सोना और मिट्टी बराबर होते हैं। वह तो अवसर मिलते ही सब कुछ त्याग करने के प्रयत्न में ही लगा रहता है। उसको अपनी जिह्वा से कहने की आवश्यकता नही होती कि वह अपरिग्रही है। उसके हृदय की भावनाए उसके आचरण व व्यवहार में स्वयं ही प्रतिबिम्बित होती रहती हैं।

चौथी विचारधारा का सार

इस प्रकार हमने चौथी विचारधारा का विवेचन किया। इस विचारधारा का सार यही है—

(१) यह विश्व अकृत्रिम, अनादि व अनन्त है, न इसको किसी ने बनाया है और न इसको कोई नष्ट ही कर सकता है।

(२) इस विश्व मे दो द्रव्य हे, एक चेतन तथा दूसरा अचेतन। चेतन द्रव्य प्रत्येक प्राणी की आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी इस विश्व मे है वह सब अचेतन है। यह चेतन व अचेतन द्रव्य भी अकृत्रिम, अनादि व अनन्त है।

(३) इस विश्व मे अनन्त आत्माएं है और प्रत्येक आत्मा का अपना-अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। प्रत्येक आत्मा पर अनादि काल से ही कर्मों का आवरण पड़ा हुआ है और उन्ही कर्मों के फल-स्वरूप ही प्रत्येक आत्मा नये-नये शरीर धारण करती रहती है और सुख-दुख भोगती रहती है। प्रति क्षण पुराने कर्म, इस आत्मा को अच्छे व बुरे फल देकर आत्मा से अलग होते रहते हैं और प्रति क्षण ही इस आत्मा की भावनाओ व कार्यों के अनुसार नये-नये कर्मो का संचय होता रहता है जो भविष्य में अपने अच्छे व बुरे फल देते रहेगे। जब तक यह आत्मा इन नये-नये कर्मों के सचय को रोक नही देती और इन पुराने कर्मों को समूल नष्ट नही कर देती तब तक यह आत्मा-इसी प्रकार नये-नये शरीर धारण करती रहेगी और सुख व दु:ख भोगती रहेगी।

(४) हमारे अपने पुराने कर्मों के फलस्वरूप हमें जो सुख व दु:ख मिलते रहते हैं, वे प्राकृतिक रूप से स्वयमेव ही मिलते रहते हैं। इसमे किसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर अथवा अन्य किसी शक्ति का कोई हाथ नही होता। वास्तव में ऐसे किसी सर्व शक्तिमान परमेश्वर का कोई अस्तित्व ही नहीं है जो विश्व

का कर्त्ता, पालनकर्त्ता व हर्त्ता हो तथा हमारे कर्मों के फल-स्वरूप हमें सुख व दुःख देता हो ।

(५) किसी भी प्राणी में इतनी शक्ति नही है कि वह किसी अन्य प्राणी को सुख व दुःख दे सके । वास्तव मे जो भी सुख व दुःख हमें मिलते है वे हमारे अपने ही द्वारा पूर्व में किये हुए कर्मों के फलस्वरूप ही मिलते हैं । जिन प्राणियों के द्वारा हमको ये सुख व दुःख मिलते हुए प्रतीत होते हैं, वे प्राणी तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं ।

(६) इन कर्मों से छुटकारा पाने के लिए हमे मनसा, वाचा व कर्मणा यथासम्भव अहिंसा, सयम, तप, त्याग, ध्यान आदि का पालन करना चाहिये तथा अपने मन से राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ आदि की दुर्भावनाओ को निकाल कर अपने हृदय मे वीतरागता तथा समता की भावनाओ को उत्पन्न करना चाहिये ।

(७) यह आत्मा अपने ही प्रयत्नो से अर्थात् सच्चे श्रद्धान, सच्चे ज्ञान और सच्चे चारित्र के समन्वय से अपने समस्त कर्मों को नष्ट कर सकती है और मुक्ति—सच्चा व स्थायी सुख—प्राप्त कर सकती है। (कोई भी अन्य शक्ति इसको मुक्ति प्राप्त नही करा सकती) मुक्ति मे आत्मा के साथ किसी प्रकार का भौतिक शरीर भी नही रहता । एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेने पर यह आत्मा सदैव-सदैव के लिये नये-नये शरीर धारण करने और सुख दुःख भोगने के चक्कर से छूट जायेगी और अनन्त काल तक मुक्ति में एक अपूर्व, अनुपम, अतीन्द्रिय, परम आनन्द का उपभोग करती रहेगी । आत्मा की इसी मुक्त, परम-पवित्र अवस्था को ही परमात्मा कहते है । प्रत्येक प्राणी का "इसी प्रकार का परमात्मा-पद प्राप्त करना" परम लक्ष्य होना चाहिये ।

इस प्रकार हमने चारों विचारधाराओं पर अपनी शक्ति के अनुसार विवेचन किया । हम अपना कोई निर्णय और कोई विश्वास पाठकों पर थोपना नहीं चाहते । यह निर्णय करना हम विद्वान व जागरूक पाठकों पर ही छोड़ते हैं कि वे इन चारों विचारधाराओं में से कौन सी विचारधारा को तर्क-सम्मत, विज्ञान-सम्मत, सत्य (अथवा सत्य के अधिकतम निकट)

तथा सच्चे व स्थायी सुख का मार्ग दिखलाने वाली समझते है। हमने तो पाठकों को विचार करने के लिये कुछ दिशा-संकेत ही किया है। वास्तव मे ठडे मस्तिष्क से गम्भीरतापूर्वक सत्यान्वेषण के द्वारा निर्णीत तर्क-सम्मत व विज्ञान-सम्मत विचारधारा ही हमारे लिये सबसे अधिक कल्याण-कारी होगी, इस लोक के लिये भी और परलोक के लिये भी।

एक बात और, "सच्चे सुख का मार्ग" का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें बड़े-बड़े ग्रन्थ और पोथियां पढने की आवश्यकता नहीं है। (हम ग्रन्थों के अध्ययन का निषेध नही करते। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह संभव नही है।) हमें तो केवल अपने मस्तिष्क, अपनी आंखो और अपने कानो को खुला रखना है और यह पता लगाना है कि हमारे चारों ओर घटित हो रहीं इन विडम्बनाओं का वास्तविक कारण क्या है? यहा पर कोई प्राणी अधिक सुखी क्यो है और कोई प्राणी अधिक दुखी क्यों है? हमारे निष्कर्ष पूर्वाग्रह तथा अन्ध-विश्वास से मुक्त हो तथा तर्क सम्मत हो। यदि हम सही-सही कारणो का पता लगा सके तो हमे अपनी आत्मा, अपने शरीर और इस विश्व का सही-सही ज्ञान हो जायेगा और हमारे लिये "सच्चे सुख का मार्ग" खुल जायेगा।

—x—

मेरी चाह

एक दिन एक माली ने एक छोटे से पौधे से कहा—"यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें इस बन से उखाड़ कर सोने व चादी के पर्वतो पर लगा दूं।" छोटे पौधे ने उत्तर दिया, "मैं सोने व चांदी के पर्वतो पर लगकर क्या करूंगा? क्योंकि वहां पर तो मैं ऐसे का ऐसा ही रहूंगा। यदि तुम लगा सकते हो तो मुझे चन्दन के वृक्षो वाले उस मलय पर्वत पर लगा दो, जहां पर सभी प्रकार के पौधे सुगन्धित चन्दन बन जाते हैं।"

इसी प्रकार मैं भी उस परम-आत्मा के पद-चिन्हों पर चलना चाहता हूं जिनका अनुसरण करने से मैं भी उन जैसा ही परम-आत्मा बन जाऊं।

आत्म निवेदन

जिस चौथी विचारधारा का पिछले पृष्ठो में विवेचन किया गया है, वह जैन दर्शन पर आधारित है। जिन विद्वान पाठकों को इस विषय में रुचि हो वे जैन धर्म के सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक ग्रन्थो का अध्ययन अवश्य करें। इनके अध्ययन से जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान वृद्धि होगी और उनको बहुत शान्ति प्राप्त होगी।

जो कुछ भी मैंने इस पुस्तक में विवेचन किया है, उसमें मेरा अपना कुछ भी नही है। पूज्य आचार्यों द्वारा लिखित ग्रन्थों से जो कुछ भी मैंने पाया है और जो कुछ भी अपनी अल्प-बुद्धि तथा अपने सीमित ज्ञान व विवेक से सत्य समझा है उसी को अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया है। न तो मैं कोई साहित्यिक व धार्मिक विद्वान ही हू और न कोई सिद्धहस्त लेखक ही, अतः इस पुस्तक में जो कुछ भी त्रुटिया रह गयी है वह मेरी अपनी अज्ञानता के कारण ही रह गयी है, जिनके लिये मैं विद्वान पाठको से क्षमा-प्रार्थी हू।

यदि विद्वान पाठक इस पुस्तक को और अधिक उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक व रोचक बनाने के लिये कुछ सुझाव देने की कृपा करेंगे तो उनका सहर्ष स्वागत है। अगले संस्करण में उन सुझावो का समुचित उपयोग करने का प्रयत्न करूँगा। यदि किन्ही सज्जन को कोई शका हो तो मुझे (पुस्तक मिलने के पते पर) अवश्य लिखे, मैं यथाशक्ति उनकी शकाओं का समाधान करने का प्रयत्न करूगा।

यदि आपको यह पुस्तक ज्ञानवर्द्धक, उपयोगी व रोचक लगी हो तो अपने परिचितों से इसे अवलोकन करने का अनुरोध अवश्य करें। कृपा करके इस पुस्तक को अलमारी में बन्द करके न रक्खे, अपितु अपने मित्रों व परिचितों को पढ़ने के लिये दे तथा अपने यहां के वाचनालय में रख दें, जिससे कि अधिक से अधिक व्यक्ति इस पुस्तक से लाभ उठा सकें। यदि और पुस्तक की आवश्यकता हो तो पुस्तक मिलने के स्थान पर पत्र लिख कर नि.शुल्क मंगा ले।

इस पुस्तक में अनेकों स्थानों पर अहिंसक आचरण पर बल दिया गया है। वास्तव में हमारे दुःखो का मूल कारण हमारा अविवेक और हमारी हिंसा की भावनायें ही है। यदि हम अविवेक और हिंसा की भावनाओं का त्याग कर दे तो हमारे सारे दुःख ही दूर हो जायेगे। ऐसा हम

तभी कर सकते हैं जब हम हिंसा व अहिंसा के भेद को भली प्रकार समझ लें। केवल किसी की हत्या कर देना ही हिंसा नहीं होती, अपितु अनेकों बार हम किसी को शारीरिक कष्ट पहुंचाये बिना भी हिंसा करते रहते हैं और बुरे कर्मों का सचय करते रहते हैं। इस पुस्तक के मिलने के स्थान से ही "तीर्थंकर महावीर और उनका अहिंसा सिद्धान्त" नामक पुस्तक मिलती है, जिसमें हिसा व अहिंसा पर विस्तार से विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। जिन पाठको को इस विषय में रुचि हो वे उस पते पर पत्र लिखकर यह पुस्तक भी निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।

इस पुस्तक के पिछले सस्करणो को पढ़कर कुछ पाठकों ने यह संकेत किया था कि इस पुस्तक में एक ही बात को कई-कई बार कहा गया है। मैं इस आपत्ति से इन्कार नही करता, परन्तु इस आपत्ति के उत्तर में यही कह सकता हू कि यह कोई उपन्यास या कहानियो की पुस्तक तो है नही कि जिसको समय काटने व मनोरजन करने के लिये पढा जाता है। यह पुस्तक तो "सच्चे सुख के मार्ग" का दर्शन कराती है, जिसके श्रद्धान, ज्ञान व तदनुसार आचरण के द्वारा हम सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। बालको को गिनती सिखाने और कण्ठस्थ कराने के लिये उनसे महीनो तक सुबह-शाम गिनती का अभ्यास कराया जाता है, जिसके फलस्वरूप वह गिनती उनको जीवनपर्यन्त याद रहती है और फिर वे गिनने में कभी भूल नही करते। ऐसे ही गणित का कोई नियम पक्का करावे के लिये बालकों से एक ही प्रकार के पचासो प्रश्न कराये जाते है, तब कहीं जाकर उन बालको को वह नियम पक्का होता है। जर्मनी का तानाशाह हिटलर कहा करता था कि यदि किसी झूठी बात को भी बार-बार कहा जाये, तो उस बात के भी सच होने का विश्वास होने लगता है। फिर, मैंने तो जो भी बाते कही हैं वे तर्क सम्मत और सभी व्यक्तियों के अनुभव में आने वाले तथ्य है और विभिन्न प्रसगो में कहने के कारण उनकी बार-बार पुनरावृत्ति हुई है। मेरा तात्पर्य भी यही है कि पाठक इन तथ्यों का बार-बार तथा भली प्रकार मनन व चिन्तन करें, जिससे वे सत्य का अन्वेषण करके सच्चा व स्थायी सुख प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो सकें। अन्त में पाठकों के समाधान के लिये एक सस्कृत को सूक्ति का अर्थ देकर मैं अपने निवेदन को समाप्त करता हू :

"विद्या (ज्ञान) सौ बार के अभ्यास से आती है और सहस्र बार किये गये अभ्यास से स्थिर हो जाती है। यदि सहस्र गुणे सहस्र बार अभ्यास किया जा सके तो वह जन्म जन्मान्तर में भी साथ नही छोड़ती।"

—लेखक